D.El.Ed. 02
Block-01 Understanding About India
Unit-I India : Historical Evolution
इकाई–1 भारतः ऐतिहासिक मूल्यांकन

स्वरूप

1.0.0 प्रस्तावना **(Introduction)**
1.1.0 उद्देश्य **(Objectives)**
1.1.1 पूर्व–भारत : भू–भाग एवं जन **(Early India: Landscope and People)**
1.1.2 भू–भाग **(Landscope)**
1.1.3 जन **(People)**
1.1.4 सारांश **(Summary: Things to Remember)**
1.1.5 अपनी प्रगति की जाँच **(Check Your Progress)**
1.1.6 प्रदत्त कार्य/गतिविधि **(Assignments/Activity)**
1.2.0 प्राचीन भारत सभ्यताः परिचय **(India as Ancient Civilization: Introduction)**
1.2.1 मानव प्रगति **(Human Development)**
1.2.2 प्राचीन सभ्यताएं **(Anciant Civilization)**
1.2.3 सिन्धुघाटी सभ्यता **(Sindhughati Civilization)**
1.2.4 सिन्धुघाटी सभ्यता की विशेषताएं **(Characteristics of Sindhughati Civilization)**
1.2.5 सारांश **(Summary: Things to Remember)**
1.2.6 अपनी प्रगति की जाँच **(Sindhughati Civilization)**
1.2.7 प्रदत्त कार्य/गतिविधि **(Assignments/Activity)**
1.3.0 भूतकाल का बोध–परिचय **(Perception of the past: Introduction)**
1.3.1 भूतकाल (बोध) **(Perception of the past)**
1.3.2 भूतकाल को समझने के साधन **(Understanding of Means)**
1.3.3 सारांश **(Summary: Things to Remember)**
1.3.4 प्रदत्त कार्य/गतिविधि **(Assignments/Activity)**
1.4.0 ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के स्त्रोत एवं तरीके **(Ways and Sources of Understanding the Historical Past)**
1.4.1 ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के स्त्रोत **(Sources of Understanding the Historical Past)**
1.4.2 ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के तरीके **(Ways of Under Historical Past)**
1.4.3 सारांश **(Summary: Things to Remember)**
1.4.4 अपनी प्रगति की जाँच **(Check Your Progress)**
1.4.5 प्रदत्त कार्य/गतिविधि **(Assignments/Activity)**
1.5.0 भारत एक राजनैतिक सत्ता के रूप मेंः परिवर्तन और निरन्तरता (परिचय) **(India as Political Entity: Change and Continuity: Introduction)**
1.5.1 राजनीतिक सत्ता **(Political Entity)**
1.5.2 परिवर्तन उपं निरन्तरता **(Change and Continuty)**
1.5.3 सारांश **(Summary: Things to Remember)**
1.5.4 अपनी प्रगति की जाँच **(Sindhughati Civilization)**
1.5.5 अपनी प्रगति की जाँच **(Sindhughati Civilization)**
1.5.6 प्रदत्त कार्य/गतिविधि **(Assignments/Activity)**
1.5.7 संदर्भ ग्रंथ सूची **(List of Referance Books)**

1.0.0 प्रस्तावनाः—मानव संस्कृति के उदय से ही मनुष्य इतिहास या कहें कि अपने भूतकाल को जानने के लिए जिज्ञासू रहा है। मनुष्य ने जब से अपनी आखेटक जीवन को छोड़कर अपनी स्थिति में सुधार हेतु प्रयास करना प्रारंभ किया तभी से मानव जीवन का इतिहास प्रारंभ हो गया। इतिहास हमें एक साथ मनुष्य अतीत, वर्तमान एवं भविष्य का बोध कराता है। इतिहास के द्वारा ही हम अतत के आधार पर ही वर्तमान को समझते हैं और भविष्य को जानने का प्रयास करते हैं। मानव जीवन में आये उतार—चढ़ाव, उन्नति का ज्ञान हमें इतिहास से ही प्राप्त होता है। इतिहास के माध्यम से ही मानव जीवन की प्रगति एवंक्रियाकलापों के विवरण का ज्ञान होता है। मानव की संस्कृति एवं सभ्यता का विकास करता है।

1.1.0 उद्देश्यः—प्रस्तुत इकाई के अध्ययन उपरांत—

1. छात्राध्यापक भारत के भू—भाग, भारतीय जन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. छात्राध्यापक भारत की प्राचीन सभ्यता से परिचित हो सकेंगे।
3. छात्राध्यापक सिन्धुघाटी सभ्यता की विशेषताओं को बता सकेंगे।
4. छात्राध्यापकों में भूतकाल के बोध को समझने की क्षमता का विकास होगा।
5. छात्राध्यापक ऐतिहासिक स्त्रोत और उनको समझने के तरीके का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
6. छात्राध्यापक भारत की राजनीति के अस्तित्व, परिवर्तन एवं निरन्तरता को जान सकेंगे।
7. छात्राध्यापक में भारत की संस्कृति, सभ्यता इतिहास, एवं मानव विकास के प्रति जिज्ञासा एवं अपनत्व की भावना का विकास हो सकेगा।
8. छात्राध्यापक अपनी समझ की जाँच कर सकेंगे।
9. छात्राध्यापक इकाई की विषय वस्तु से दिये गये संबंधित कार्य को कर सकेंगे।
10. छात्राध्यापक प्राचीन तथा वर्तमान सभ्यताओं में तुलना तथा समानता कर सकेंगे।

पूर्व—भारत : भू—भाग एवं जन (Early India: Landscope and People) :—

1.1.1 परिचय

एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित भारत जो कि पूर्व में पाकिस्तान और बंगला देश के निर्माण से पूर्व का क्षेत्र रहा है। स्वयं अपने आप में एक उप—महाद्वीप है। यह विश्व का एकमात्र ऐसा देश है जिसका नाम हिन्द महासागर से जुड़ा हुआ है। प्राचीन काल में भारत देश को आर्यावत नाम से पहचाना जाता था। यह उत्तर भारत में बसने वाले आर्या के नाम पर रहा है। आर्यो के शक्तिशाली राजा भरत के नाम पर यह देश भारत वर्ष कहा जाने लगा। जो भारत को ऐतिहासिक नारम स्वरूप है। कुछ लोगों तथा विद्वानों का मानना है कि दुष्यन्त के पुत्र सम्राट भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। भगवान ऋषभदेव पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र भरत थे जो अन्य भाईयों से अधिक श्रेष्ठ एवं गुणवान थे अतः उनके नाम पर भारतवर्ष नाम हमारे देश का रहा। वैदिक आर्यो का निवास सिन्धुघाटी में होने के कारण ईरानियों के निवासियों को भी हिन्दु कहते थे। मुस्लिम शासन काल में भी भारत देश को हिन्दुस्तान नाम से ही पुकारा जाता था । युनानियों ने सिंधु को इण्डस और भारत देश को इंडिया कहा। वर्ततान में हम प्राचीन परम्परानुसार भारत नाम से ही अपने देश को पहचानते हैं। यहॉ की भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ही प्राचीन समय से भारत की संस्कृति एवंज न समूह को एक विशेष पहचान प्राप्त हुई है।

1.1.2 भू–भाग (Landscope) :–भारत देश का आकार (Shape) चतुष्कोणीय है और यह दक्षिणी एशिया के बीचों–बीच स्थित है। इसकी पूर्व दिशा में इण्डोचीन प्रायद्वीप तथा पश्चिम में अरब प्रायद्वीप स्थित हैं। भारत देश उत्तरी गोलार्द्ध का देश है एवं मध्यवर्ती स्थिति रखता है।

भारत देश का कुल क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग कि.मी. है। क्षेत्रफल अनुसार यह देश विश्व का सातवां विशाल देश माना जाता है। अमेरिका, ब्राजील, आस्ट्रेलिया, रूस, चीन तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत देश से बड़े माने जाते हैं।

भारत देश का विस्तार उत्तर दक्षिण दिशा से 3214 कि.मी. तथा पूर्व दिशा से 2933 कि.मी. है। यह भू–मध्य रेखा की उत्तर दिशा में 84^0 से 37^06 उत्तरी अक्षाशों तथा 68^07 से 97^025पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित है। कर्क रेखा उसे दो समान भागों में बांटती है। 82^030 पूर्वी देशान्तर रेखा भारत देश की प्रमाणिक मध्याह्वान कहलाती है।, **(Standard Meridian)** रेखा कहलाती है, और यह भारत के मध्य में इलाहाबाद के पास से होकर गुजरती है। हमारे देश का मानक समय **(Indian Standard Time)** इसी देशान्तर रेखा से निर्धारित है। भारत देश विश्व का ह्वदय स्थल स्वरूप भी कहा जाता है। इसकी जमीनी सीमा 15,000 कि.मी. तथा मुख्य स्थल की समुद्री सीमा 6100 किमी. लम्बी है। अण्डमान–निकोबार व लक्ष्यद्वीपों सहित भारत की समुद्री सीमा 7517 कि.मी. है। भारत की जमीनी सीमाएं बंगला देश, चीन, पाकिस्तान, नेपाल, म्यांवार, भूटान एवं अफगानिस्तान देशों के साथ छूती है। समुद्री सम्पर्क की दृष्टि से श्रीलंका भारत देश के बहुत पास है जो मन्नार की खाड़ी व पाकजल मरूमध्य द्वारा अलग होता है।

पूर्वी गोलार्द्ध में भारत का स्थान अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। यह हिन्द महासागर के उत्तरी सिरे पर स्थित है, जो इसे पश्चिम में अरब सागर व पूर्व में बंगाल की खाड़ी के रूप में स्पर्श करता है और जिसे भारत का पश्चिमी एवं पूर्वी तट स्पर्श करते हैं।

भारत एवं चीन के बीच की सीमा रेखा मैकमोहन रेखा कही जाती है। नदियों एवं पर्वतों के शिखरों से निर्धारित यह एक प्राकृतिक सीमा है। भारत तथा पाकिस्तान के मध्य रेडक्लिक रेखा बनावटी (क्रत्रिम) रेखा के रूप में सीमा का निर्धारण करती है। भारत एवं बंग्ला देश की स्थलीय सीमा भी बनावटी है। पहाड़ियों के द्वारा भारत म्यांमार के बीच प्राकृतिक रूप से सीमा रेखा का निर्माण होता है।

भारत देश की मुख्य भूमि का दक्षिणी सिरा कन्याकुमारी कहलाता है। यहाँ पर बंगाल की खाड़ी, अरब सागर और हिन्दसागर क`जल मिलते हैं। अण्डमान–निकोबार द्वीप समूहों का दक्षिणी धुर भारत का इंदिरा बिन्दु कहलाता है। भारत का क्षेत्रफल विश्व का लगभग 24% है। भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत की श्रृंखलाएँ हैं। हिमालय की श्रृंखलाएँ बहुत ऊँचा माना जाता है। कश्मीर से लेकर असम तक फैली हुई हिमालय की इस पर्वत श्रृंखला ने भारत को उत्तर में एक मजबूत प्राचीर प्रदान की है। भारत के उत्तर–पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत हैं, जिसे इस दिशा में भारत की प्राकृतिक सीमा माना जा सकता है। इसका कुछ भाग आधुनिक अफगानिस्तान में सम्मिलित हैं। हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में सफेदकाह, सुलेमान, कराकोरम और किरमार पर्वत की श्रृंखलाएं हैं जो भारत को ईरान से पृथक करती है, लेकिन इनका भी कुछ भाग अफगानिस्तान से मिला हुआ है। उत्तर पूर्व में पटकोई,, लुशाई, चीन आदि की पहाड़ियों और उनके घने जंगल हैं जो भारत को वर्मा से पृथक करते हैं। इन विभिन्न पर्वत श्रृंखलाओं में कई पठारी प्रदेश हैं और कुछ सुंदर तथा उपजाऊ घाटियाँ भी हैं। उत्तर पश्चिम के इन पठारों और घाटियों में विभिन्न पहाड़ी जातियाँ निवास करती रही हैं एवं जिन्होनें समय–समय पर विदेशी आक्रमणकारियों से संघर्ष किया है। उत्तर हिमालय में कश्मीर की घाटी अपने

सौन्दर्य के लिए विश्व में प्रसिद्ध मानी जाती है। हिमाचल की तराई का प्रदेश घास और जंगलों से परिपूर्ण है। भारत के उत्तर पश्चिम में खैबर, बोलन, टोची और गोमल नाम के दर हैं।

हिमाचल पर्वत के दक्षिण में सिंधु, गंगा ब्रह्मपुत्र और उनकी अनेक सहायक नदियों के कारण बना हुआ उपजाऊ मैदान है जो पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल तक फैला हुआ है। सिंधुघाटी हिमालय से निकलकर पहाड़ों में फिर पंजाब और सिंध के मैदानों में बहती हुई अरब—सागर में गिरती है। पंजाब की पाँच नदियाँ—झेलम, रावी, व्यास, चिनाब तथा सतलज भी हिमालय से ही सहायक नदियों के रूप में निकलती हैं। गंगा नदी हिमालय से निकलकर पूर्व में गंगा जमुना के दोआब से गुजरती हुई बंगाल की खाडी में गिरती है। भारत के उत्तर से गोमती, घाघरा, गण्डक, कोस आदि नदियाँ तथ्ज्ञा दक्षिण की ओर से विन्ध्यांचल पर्वत से निकलकर मध्य भारत के पठार से होती हुई चम्बल, काली सिंधु बेतवा एवं केन नदियां भी गंगा में आकर मिलती है। पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी असम और बंगाल से गुजरती हुई गंगा के नदी के पद्मा मुहाने से आकर मिलती है। दिबांग, लुहित मेघना आदि विभिन्न नदियाँ मार्ग में विभिन्न स्थानों पर ब्रह्मपुत्र से मिलती हैं। सिंधु और गंगा नदी की घाटियों के मध्य एवं पंजाब के दक्षिण में थार रेगिस्तान है। अरावली की पहाड़ियाँ एवं राजस्थान का मरूप्रदेश इसी में आता है। गंगा—यमुना के दोआब और राजस्थान के रेगिस्तान के दक्षिण में मध्य भारत का पठारी प्रदेश है जो पश्चिम गुजरात के निकट से आरंभ होकर पूर्व में उड़ीसा तथा बंगाल तक फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत मालवा, बुन्देलखंड छोटा नागपुर आदि आते हैं। यह प्रदेश अत्यन्त दीर्घकाल तक जंगलों से परिपूर्ण रहा था।

मध्य—भारत के पठार के पश्चिम एवं राजस्थान के रेगिस्तान के दक्षिण में गुजरात है। इस क्षेत्र में कई छोटी—छोटी पहाडियाँ हैं, किन्तु यह अधिकांश माही, साबरमती, नर्मदा और ताप्ति नदियों के मुहानों से बना हुआ उर्बद भू—प्रदेश है। गुजरात का तट अरब—सागर से मिला हुआ है। और यही पर काठियावाद तथा कच्छ के भू—प्रदेश हैं।

मध्य भारत के पठार के दक्षिण में विन्ध्यांचल तथा सतपुड़ा पर्वत हैं जिन्हें नर्मदा नदी की घाटी पृथक करती है। नर्मदा नदी के उत्तर में विन्ध्यांचल एवं दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत है। विन्ध्यांचल पर्वत का ढाल उत्तर की ओर है, जिसके कारण इसमें से निकली हुई नदियां गंगा में जाकर मिलती है विन्ध्यांचल पर्वत की श्रेणियाँ पश्चिम से पूर्व की ओर के मैदान के तरफ बढ़ती गयी हैं और वाराणसी के दक्षिण में गंगा नदी के साथ—साथ चलती हुई राजमहल की पहाड़ियों तक पहुंच जाती हैं जिनके कारण वाराणसी से आगे का बंगाल सम्मिलित होने वाले मैदानी भाग का कुछ हिस्सा संकरा हो गया है।

सतपुड़ा पर्वत के दक्षिण में भारत का फैला हुआ पठारी प्रदेश है जो उत्तर के दक्षिण की ओर संकरा होता चला गया है एवं जिसमें विभिन्न नदियां हैं। सतपुड़ा के दक्षिण में उसी से निकलती हुई ताप्ती नदी है। नर्मदा तथा ताप्ती दोनों ही पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हैं एवं अरब—सागर में जाकर गिरती है। दक्षिण की अन्य नदियाँ महानदी, उसके दक्षिण में गोदावरी उसके दक्षिण में कृष्णा तथ्ज्ञा उसकी सहायक नदी तुंगभदा तथा अंत में काबेरी है। इन सभी की अन्य विभिन्न सहायक नदियां भी है। यह सभी नदियां पश्चिमी घाट से निकलकर सम्पूर्ण पठार से गुजरती हुई पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है और बंगाल की खाडी में गिरती हैं।

दक्षिण पठार के दोनों और ऊंची पहाड़ियाँ हैं। पश्चिम में उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई ऊंची पहाड़ी दीवार को पश्चिमी घाट और पूर्व की पहाड़ियों को पूर्वी घाट कहा जाता है। इन्हीं के सामान्तर फैला हुआ पश्चिम में अरब—सागर का तट और पूर्व में बंगाल की खाड़ी का तट है। भारत की सुदृद

दक्षिण की नोक को केप कमोरिन कहा जाता है। इसके दक्षिण पूर्व में श्रीलंका है जिसे मनार की खाड़ी भारत से अलग करती है।

इस प्रकार भारत के इस विशाल भू–खंड में ऊंचे से ऊंचे पहाड़ उर्वर मैदान पठार बड़ी–बड़ी नदियाँ मरूस्थल और समुद्र तट सभी कुछ हैं। यहॉ ऐसे प्रदेश हैं जहॉ बहुत सर्दी होती है और ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ अधिक गर्मी होती है। अधिक से अधिक वर्षा वाला क्षेत्र विस्तृत जंगल एवं मरूस्थल भी पाये जाते हैं। भारत का आकार विशाल है तथा यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ और जलवायु में अत्यधिक भिन्नताएं हैं। यही भारतीय जन–जीवन की विविधता का कारण है और भारत के भू–खंड की विशेषताएं भी है।

1.1.3 जन (People) :–

भारत की भौगोलिक विभिन्नता के कारण यहाँ की सभ्यता के निर्माण में विभिन्न नस्लों (Races) का भी योगदान रहा है। नीग्रो आदिम आग्नेय, मंगाल, अल्पाइन, डाइनेरिक और आरमीनोईड, मेडीटरेनियन जाति एवं नॉर्डिक (आर्य) जाति के व्यक्ति भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाते हैं और इनमें से प्रत्येक ने किसी न किसी रूप में भारतीय सभ्यता के निर्माण में भाग लिया है। इनके अतिरिक्त ईरानी, ग्रीक, पार्थियन, हूण, तुर्क, अरब, अफगान और विभिन्न यूरोपीय जातियाँ भी समय–समय पर भारत में आकर हमारी भारतीय सभ्यता को प्रभावित किया।

प्राचीन समय में नीग्रो, आग्नेय, द्रविड़ और आर्य हुए उसके बाद में यवन, शक, हूण, तुर्क और मंगलों में इसका मिश्रण हुआ। पहले यह माना जाता था कि द्रविड भारत के मूल निवासी हैं और आर्य बाहर से आये हैं लेकिन बाद में यह माना जाने लगा कि भारत में पाये जाने वाले सभी जन (नस्लें) मूलतः बाहर से आये हैं।

वर्तमान जन को हम छः वर्गो में विभाजित कर सकते हैं–नीग्रो, आदिम आग्नेय भूमध्यसागरीय (द्रविड) पश्चिमी वृत्तकपाल (गोल सिर वाले), नार्डिक (आर्य) तथा मंगोल।

1.नीग्रो (Negrito) :–

नीग्रो वंश की शाखा जिसका कद बहुत नाटा होता है। गहरा काला रंग बहुत छोटा कद, मोटे होंठ तथा ऊनी बाल उनकी मुख्य विशेषताएं हैं यह भारत में बसने वाले प्राचीनतम जन (नस्ल) है और अब इसके विशेष बहुत कम मिलते हैं यह प्रधान रूप से आजकल अंडमान टापू में बसे हुए हैं और इसके कुछ अंश भारत के दक्षिणी भाग कोचीन और ट्रावनकोर के पर्वतों के की कडर और पलयन जातियों में, आसाम के अंगमी नागों में तथा राजमहल (बिहार) की पहाड़ियों में बसने वाली जातियों में पाये जाते हैं। इसे इसके बाद आने वाली नस्ल ने, विशेषकर आग्नेय नस्ल ने बहुत कुछ लुप्त कर दिया।

2.आदिम आग्नेय (Preto-Australoid) :–

नीग्रो नस्ल के बाद यह नस्लें भी पश्चिम से भारत से आई। इसे आग्नेय कहने का कारण यह है कि इस समय यह नस्ल प्रधान रूप से संसार के दक्षिण पूर्व (आग्नेय) कोण में पाई जाती है। भारत में इस नस्ल से संबंद्ध विभिन्न बोलियां बोलने वाले समुदाय संथाल, मुण्डा शबर आदि प्रधान रूप से उड़ीसा के पास झारखंड में रहते हैं। इन्हें कोल भी कहा जाता है। भारत में इनकी संख्या बहुत कम है, किन्तु इस देश से बाहर इस नस्ल के लोग वर्मा, हिन्दी चीन, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह तथा प्रशांत महासागर के टापुओं में बहुत दूर तक फैले हुए है। ऐसा समझा जाता है कि प्रागैतिहासिक युग में इनकी जो शाखा भारत में आई वह इस समय विद्यमान आग्नेय नस्ल का पूर्व रूप थी, अतएव उसे आद्य आग्नेय **(Preto-Australoid)**– का नाम दिया जाता है। भारत में इसे नस्ली विशेषताएं प्राप्त हुई हैं और यही से इसकी एक शाखा दक्षिण–पूर्व (आग्नेय) कोण की ओर चली गई। आद्य आग्नेय नस्ल के

लोगों की शक्ल सूरत के संबंध में हमें सही–सही ज्ञान प्राप्त नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह भी नाटे कद और चपटी नाक वाले थे। आज भी भारत के अधिकांश भाग में यह निम्न जातियों के रूप में विद्यमान है। प्राचीन काल में निषाद शायद इन्हीं का नाम था।

3.भूमध्यसागरीय(द्रविड):–

पहले जिस नस्ल को द्रविड कहा जाता था उसे भूमध्यसागरीय नाम दिया जाता है। इसके तीन उपभेद माने जाते हैं।

(क) पूरा भूमध्यसागरीय काला रंग और मंझलार कद इसकी विशेषताएं हैं। यह प्रधान रूप से मलयालम, तमिल तथा कन्नड़ भाषी प्रदेशों में अवस्थित है।

(ख) असली भूमध्यसागरीय यह पुराभूमध्यसागरियों घाटी में बसे हुए हैं। ऐसा समझा जाता है कि आर्यो के आने से पहले उत्तरी भारत में इसी नस्ल का निवास था।

(ग) प्राच्य भूमध्यसागरीय इसकी नाक लम्बी और रंग अधिक गोरा है। यह पंजाब, सिंध, राजपूताना और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाई जाती है। यह सभी नस्लें लम्बें सिर वाली है।

द्रविड़ जनः–द्रविड़ भारत की प्राचीन सभ्य जातियों में से एक माने गये है। द्रविड़ नाम का आधार संस्कृत का द्रविड़ शब्द है। द्रविड़ भारत के उन प्राचीन निवासियों की संतान मानी जाती है जिन्होनें अपने जीवन को धीरे–धीरे बर्बरता से सभ्यता की ओर अपने पैर बढ़ाये थे। ये पश्चिम एशिया के तूरान देश से भारत में आर्यो से पहले आये थे। मानव आकृति एवं ब्लूचिस्तान के एक खं डमें बोली जाने वाली द्रविड़ बोली से यह बात सिद्ध होती है।

सिंधुघाटी सभ्यता से ज्ञात होता है कि द्रविड़ भारत के प्रथम नागरिक थे जिन्होनें सिंधुघाटी सभ्यता को निर्मित किया था यह द्रविड़ कई नस्लों का मिश्रण तथा जो भारत में आर्यो के आने से पूर्व अपनी एक संस्कृति एवं सभ्यता को (सिंधुघाटी सभ्यता) स्थापित कर चुके थे ये शांतिमय जीवन व्यतीत करने थे इनमें आर्यो के समान बर्बरता एवं असभ्यता नहीं थी। इनके समाज में यज्ञ नहीं किया जाता था। इसी कारण से आर्यो ने इन्हें दास, दस्यु, शूद्र अनार्य नाम दिये थे। द्रविड़ छोटे–छोटे समूह में रहकर आपसी सहयोग से अपना जीवन यापन करते थे। उनमें आर्यो के समान संघर्ष या अपना वर्चस्व बढ़ाने की प्रवृत्ति नहीं थी।

4.पश्चिमी वृत्तकपाल (गोल सिर वाली):–मध्य एशियाई पर्वतमालाओं में विकसित इस नस्ल के आल्पाइनी दोनारी और आर्मीनियन नामक तीन भेद पाये जाते हैं। पहला भेद गुजरात में दूसरा बंगाल, उड़ीसा, काठियावाड, कन्नड़ और तमिल प्रदेशों में तथा तीसरा प्रधान रूप से बम्बई के पारसियों में मिलता है।

5.नार्डिक/आर्य(Nordic) :– गोरा या गेंहुआ रंग ऊंचा कद, उभरा हुआ माथा, लम्बी नुकीली नाक और भरपूर दाढ़ी मूंछ आर्य भाषा–भाषी नार्डिक नस्ल के खास लक्षण हैं। इसके नमूने उत्तर–पश्चिमी सीमाप्रांत, विशेषतः सिंधु नदी की ऊपरली घाटी तथा स्वात, पंजकोरा, कुनार, चित्राल नदियों की घाटियों और हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में मिलते हैं। पंजाब, राजपूताना और गंगा की ऊपरली घाटी में यह नस्ल अन्य नस्लों के साथ सम्मिलित पाई जाती है। महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों में भी इसका तत्व प्रधान है। प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि आर्य सुनहले बालों तथा नीली आंखों वाले थे। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय जलवायु के प्रभाव से उनके रूप में कुछ परिवर्तन आ गया।

आर्यजनः–आर्य एशिया से लेकर दक्षिणी रूस तथा पौलेण्ड तक के विस्तृत देश में बसे हुए थे। दूसरी सहस्त्राबधि ई. पू. के लगभग आर्यो के ताम्र और लौह धातुओं के औजारों और अवशेषों के आधार पर कह सकते हैं कि उसके पहले से भारत के पश्चिमी हिस्से में इनका फैलाव हो चुका था। आर्य घुमन्तु

एवं युद्धप्रिय जनजाति के लोग थे। आर्य अपने मवेशियों को बड़े–बड़े भू–क्षेत्र में चराने जाया करते थे और अपने साथ सामान लादने के लिए घोडे जुते रथ या बैल गाड़ियों का उपयोग करते थे। जनसंख्या में वृद्धि और चरागाहों की खोज के कारण इन्होंने पूर्व–पश्चिम और दक्षिण की ओर बढ़ना आरंभ किया। यूरोप पर आक्रमण किया जो ग्रीक, लेटिन, केल्ट और ट्यूशन जातियों के पूर्वज बने इन्हीं में से कुछ अन्टोलिया में गये जो स्थानीय निवासियों से मिल जाने के पश्चात् महान हिट्टी साम्राज्य के निर्माता बनें। इन्हीं में से कुछ अन्य काकेशस पर्वत और ईरान के पठारी प्रदेश की ओर बढ़ गये जिन्होंने मध्य पूर्व की स्थानीय सभ्यताओं का विनाश करके अथवा उन्हें अपने में सम्मिलित करके उनके प्रदेशों को अपने अधिपत्य में कर लिया। शेष रह गये आर्य अपने प्रदेश में रहे जो बाल्टिक तथा स्लाव नस्लों के पूर्वज बने।

मध्य एशिया और ईरान की ओर बढ़ती हुई इनकी एक शाखा कस्सी ने बेबीलोन को विजय किया बाद में मध्य एशिया और ईरान में आये हुए आर्यो ने पूर्व की ओर बढ़ना आरंभ किया और अफगानिस्तान होते हुए भारत में प्रवेश किया और यहॉ के उपजाऊ भू–भाग उपयुक्त जलवायु को देखकर आकृष्ट हुए और इन्होंने सिंधुघाटी और भारत के अन्य निवासियों को परास्त करके भारत को अपना निवास स्थान बनाया और यह भारतीय आर्य या हिन्दु आर्य कहलाये। आर्य लगभग ई. स. 5000 वर्ष पूर्व से लेकर 2000 वर्ष ईसा पूर्व तक भारत आये होंगे। आर्य भारत में एक बार में नहीं आये वरन् इनकी कई शाखाएं विभिन्न अवसरों व समय पर भारत वर्ष में आयी थी। भारतीय आर्यो का सम्पर्क ईरानी आर्य समूह से होने के कारण इनमें धार्मिक भावना विद्यमान थी। क्योकि ईरान के आर्य लोग भी भारत के ऋग्वेद में वर्णित इन्द्र, वरूण, मित्र आदि देवताओं का पूजन करते थे अर्थात ईरानी आर्य पंच तत्वों में विश्वास रखते थे। अतः भारतीय आर्यो ने भारत में आकर धार्मिक ग्रंथों की भी रचना की, वैदिक सभ्यता का निर्माण किया एवं भारतीय सभ्यता (वर्ण व्यवस्था) की आधारशिला रखी। आर्यो के समाज की महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती थी तथा धन का स्वामी भी पुरूष ही हुआ करते थे।

आर्य अनेक कबिलों में बंटे हुए थे ये काबिले अन्य द्रुहयु, यदु, तुर्वस तथा पुरू नाम से जाने जाते थे। का कबिलों को जन कहते थे और इन पाँचों को पन्चजन कहा जाता था। ये पाँचों जन संगठित थे और सरस्वती नदी के तटों पर रहा करते थे इनके अलावा भरतों (जो बाद में कुरूओं में शामिल हुए थे) सृंजयों, तृत्सुओं, क्रिवियों तथा अनय गौण जन भी हुआ करते थे आर्यो के ये जन आपस में अधिकतर समय लड़ते रहते थे इस समय का सबसे भीषण युद्ध परूषी के तट पर हुआ था जो इन्हीं की आपसी लड़ाई का परिणाम था इस युद्ध को दाशराज्ञ युद्ध नाम से भी जाना जाता है।

वैदिक काल में देश या राष्ट्र का आधार जन, जाति या कुल हुआ करता था। समान पूर्वजों से मिले हुए कुलों का समूह ग्राम कहलाता था ग्रामों के समूह को विश नाम से जाना जाता था और इन्हीं विशों के समूह को जन कहते थे। जन के नेता को राजा कहते थे। राजा का चयन चुनाव द्वारा किया जाता था। लेकिन बाद में यह कुलों से चुना जाने लगा या कुलागत होने लगा था। कभी–कभी राजा को विश निर्वाचित करते थे तो कभी–कभी विश के अन्य जन भी राजा को चुनाव कर सकते थे। युद्ध के समय राजा ही जनता का नेतृव्य एवं उनकी रक्षा किया करता था। इसके फलस्वरूप प्रजा उनका अनुशासन मानती थी और राजा को उपहार भी दिया करती थी। राजा के द्वारा कोई शासित कर नहीं लगाया जाता था शांति के समय में राजा न्याय एवं यज्ञ के कार्य करता था जो कि भौतिक समृद्धि को बढ़ाने के लिए हुआ करते थे। आर्यो के प्राचीन वंश मनु अथवा सूर्यवंश और ऐलन अथवा चंद्रवंश थे।

पुराहित राजा का प्रमुख अधिकारी होता था। साथ में सेनानी और ग्रामीण भी हुआ करते थे। पुरोहित राजा के सर्वांगीण राजा सफलता के लिए पेजा–पाठ, तंत्र–मंत्र आदि क्रियाओं को करता था।

राजा की शक्ति प्रजा के विचारों से परिमित होती थी। जनता की दो संस्थाएं, सभा और समिति हुआ करती थी। समिति नाम की संस्था जन के कार्यो एवं आवश्यकताओं को पूर्ण करती थी और सभा अधिवेशन का स्थल थी जहाँ अन्य सामाजिक कार्य करते थे। उत्तर वैदिक युग के उपरांत आर्यो के राजनैतिक जीवन में परिवर्तन आया। अब विभिन्न जातियां स्थाई रूप से एक निश्चित प्रदेश में रहने लगी। ये निश्चित प्रदेश जनपद कहलाये उस समय में सोलह जनपद प्रमुख थे। आर्यो के वंश मानव एवं सूर्यवेश, चंद्र या ऐलन वंश, हैदय वंश, यादव वंश आनव वंश, भरत वंश, रघु वंश, पांचाल वंश तथा कौरव वंश रहे हैं।

आर्य और अनार्य (द्रविड) प्रतिरोध और संघर्ष सांस्कृतिक श्रेष्ठा की स्थापना के लिए भी हुआ था। भारत में आने से पूर्व सिंधु नगर वासियों की तुलना में बर्बर और असभ्य थे। उनकी संस्कृति अविकसित तथा निम्नस्तर की हुआ करती थी।

6.मंगोल (Mongoloid) :– पीला रंग चपटा चेहरा, उभरी हुई गालों की हड्डिया बराबर दाढ़ी/मूंछ तथा नाक की कुछ चपटी जड़ इस नस्ल की मुख्य पहचान है। भारत में इसके दो भेद–लम्बे सिर वाले और गोल सिर वाले पाये जाते हैं। लम्बे सिर वाले पुराने मंगोल है ये आसाम में तथा भारत और वर्मा की सीमा प्रदेश में रहते हैं। गोल सिर वाले इन्हीं से विकसित समझे जाते हैं यह चटगांव की पहाड़ियों तथा वर्मा के निवासी हैं। तिब्बत के किरात वंश में इस नस्ल के भेदक चिन्ह अधिक स्पष्ट रूप से मिलते हैं। ये सिक्किम और भूटान के निवासी हैं और तिब्बत से काफी आधुनिक समय में भारत आये हैं।

इस तरह भारतीय जनता प्रधान रूप से छः नस्लों के सम्मिश्रिण से बनी है।

1 समाजशास्त्र के मूल आधार मुदगल राहुल पृष्ठ सख्या 60–62

1.14 सारांश (Summary: things to Remember) :– एशिया महाद्वीप के दक्षिण में स्थित भारत स्वयं अपने आप में एक उपमहाद्वीप है। यह हिन्द महासागर से जुड़ा हुआ है। भारत को प्राचीन समय में आर्यावत, भारतवर्ष, भारत, हिन्दु तथा इंडिया नाम से जाना जाता था।

भारत का भू–भाग चतुष्कोणीय है। इसका कुल क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग कि.मी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह विश्व का सांतवा बड़ा देश है। कर्क रेखा इसे दो भागों में बांटती है। पूर्वी गोलार्द्ध में भारत का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। यह हिन्द महासागर के उत्तरीय सिरे पर स्थित है। भारत एवं चीन के बीच की सीमा रेखा मैकमोहन रेखा कही जाती है। यह नदियों एवं पर्वतों के शिखरों से निर्धारित एक प्राकृतिक सीमा है।

भारत देश की मुख्य भूमि का दक्षिणी सिरा कन्याकुमारी कहलाता है। हिमालय पर्वत के दक्षिण में सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र और उनकी अनेक सहायक नदियों के कारण बना हुआ उपजाऊ मैदान है। सिंधु और गंगा नदी की घाटियों के मध्य एवं पंजाब के दक्षिण में थार रेगिस्तान है। मरूप्रदेश भी यही आते हैं।

मध्य भारत के पठार के पश्चिम एवं राजस्थान के रेगिस्तान के दक्षिण में गुजरता है जो उर्बद भू–प्रदेश कहलाता है। मध्य भारत के पठार के दक्षिण में विघ्यांचल तथा सतपुड़ा पर्वत है जिन्हें नर्मदा नदी की घाटी अलग करती है। दक्षिण पठार के दोनों ओर ऊंची पहाड़ियाँ हैं। इस प्रकार भारत के इस विशाल भू–खंड में ऊंचे–से ऊंचे पहाड़ उर्वर मैदान, पठार बड़ी–बड़ी नदियाँ मरूस्थल और समुद्र तट सभी कुछ हैं। यहां ऐसे प्रदेश हैं जहॉ बहुत सर्दी होती है और ऐसे भी प्रदेश हैं जहाँ अधिक गर्मी होती है। अधिक से अधिक वर्षा क्षेत्र विस्तृत जंगल एवं मरूस्थल भी यहाँ पाये जाते हैं। भारत का आकार

विशाल है तथा यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियॉ और जलवायु में अत्याधिक भिन्नताएं हैं। यही भारतीय जन–जीवन की विविधता का कारण है और भारत के भू–खंड की विशेषताएं भी हैं।

आर्य अनेक कबिलों में बंटे हुए थे ये कबिले अन्य द्रुहयु, यदु तुर्वस तथा पुरू नाम से जाने जाते थे। कबिलों को जन कहते थे और इन पाँचों को पन्चजन कहा जाता था। ये पाँचों जन संगठित थे और सरस्वती पदी के तटों पर रहा करते थे इनके अलावा भरतों (जो बाद में कुरूओं में शामिल हुए थे), सृंजयों, तृत्सुओं, क्रिवियों तथा अन्य गौण जन भी हुआ करते थे आर्यो के ये जन आपस में अधिककर समय लड़ते रहते थे इस समय का सबसे भीषण युद्ध परूषी के तट पर हुआ था जो इन्हीं की आपसी लड़ाई का परिणाम था इस युद्ध को दाशराज युद्ध नाम से भी जाना जाता है। आर्य और अनार्य (द्रविड) प्रतिरोध और संघर्ष सांस्कृतिक श्रेष्ठा की स्थापना के लिए भी हुआ था। भारत में आने से पूर्व सिंधु नगर वासियों की तुलना में बर्बर और असभ्य थे। उनकी संस्कृति अविकसित तथा निम्नस्तर की हुआ करती थी।

सिंधुघाटी सभ्यता से ज्ञात होता है कि द्रविड भारत के प्रथम नागरिक थे जिन्होंने सिंधुघाटी सभ्यता को निर्मित किया था यह द्रविड कई नस्लों का मिश्रण तथा जो भारत में आर्यो के आने से पूर्व अपनी एक संस्कृति एवं सभ्यता को (सिंधुघाटी सभ्यता) स्थापित कर चुके थे ये शांतिमय जीवन व्यतीत करते थे इनमें आर्यो के समान बर्बरता एवं असभ्यता नहीं थी। इनके समाज में यज्ञ नहीं किया जाता था। इसी कारण से आर्यो ने इन्हें दास, दस्यु, शूद्र, अनार्य नाम दिये थे। द्रविड छोटे–छोटे समूह में रहकर आपसी सहयोग से अपना जीवन यापन करते थे। उनमें आर्यो के समान संघर्ष या अपना वर्चस्व बढ़ाने की प्रवृत्ति नहीं थी।

1.1.5 अपनी प्रगति की जाँच (Check Your Progress):-

1. भारत के भू–भाग कुल क्षेत्रफल कितना है?
2. भारत के भू–भाग की क्या विशेषताएं हैं?
3. जन किसे कहते हैं?
4. जन कहॉ से आये थे?
5. आर्य कबिले किस नाम से जाने जाते थे?

1.1.6 प्रदत्त कार्य (Assignments):-

1. भारत के भू–भाग का एक मानचित्र (नक्शा / Map)तैयार कीजिए।
2. आर्य जीवन पर एक निबन्ध लिखिए।

भारत एक प्राचीन सभ्यता के रूप में:विशेषताएं
(India as Anciant Civilization: Characteristics):-

1.10 परिचयः–

मानव की ओर उसकी सभ्यता का उदय एवं उसके विकास के बारे में अभी तक भी ठीक से नही कहा जा सकता है कि मानव की उत्पत्ति का निश्चित समय और स्थान क्या है? इसलिये भारत के मानव का अस्तित्व धुंधला और कहीं–कहीं रोशनीहीन जान पड़ता है। कह सकते हैं कि भारत में मानव अस्तित्व के प्रारंभ में ही मानव का अस्तित्व रहा है। प्रारंभ से मनुष्य अंधकारमय जीवन व्यतीत करता था और धीरे–धीरे उसने प्रगति की ओर कदम बढ़ायें एवं प्रकाश को प्राप्त किया। भारत को ही कुछ लोग मानव उत्पत्ति का स्थान मानते हैं।

मानव प्रगतिः–

मानव प्रगति का वह काल ही प्रागैतिहासिक या प्राचीन काल के नाम से जाना जाता है। मनुष्य की प्रगति के समय को हम निम्नलिखित विभिन्न भागों में बांट सकते हैंः–

1. **पूर्व–पाषाण काल या पूर्व प्रस्तर युग (Paleolithic Age):-** संभवतः 5,00,000 वर्ष से 2000 ईसा वर्ष पूर्व द्वितीय हिम–युग के आरंभ काल में भारत में मानव का अस्तित्व आरंभ हुआ। सर्वप्रथम दक्षिण–भारत में हुआ और यहॉ से वह उत्तर पश्चिम पंजाब गया परंतु कुछ लोग इसे सिंधु एवं झेलम नदी के बीच उत्तर पश्चिम के पंजाब प्रदेश तथा जम्मू में हुआ, ऐसा मानते हैं। इसको बाद मानव इस युग में गंगा जमुना के दोयाब को छोड़कर राजपूताना, गुजरात, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और दक्षिण भारत में फैल गया। भारत का आदि मानव पूर्णतः बर्बर तथा असभ्य रहा है। इस समय के मानव को अपना अधिकांश समय भोजन की खोज में तथा पशुओं से अपनी रक्षा करने में लगाना होता था। वह हिंसक था और छोटे–छोटे पशुओं को मारकर उनका माँस खाता था मछली पकड़ने का ज्ञान भी उसे था। अपनी सुरक्षा के लिए उसने कुछ हथियारों और औजारों का निर्माण किया था जो पत्थर के बने थे। यह औजार मानव ने क्वार्टजाइट नामक कठोर पत्थर के बनाये थे जो साधारण और भद्दे थे। इन औजारों में कुल्हाड़ी, भाले, तीर, फल काटने, छेदने, फेकनें कूदने और छीलने के औजार आदि थे। यह मानव हथियारों के प्रयोग का युग कहा जाता है। उसने पेड़ की टहनियों एवं जानवरों की हड्डियों का भी प्रयोग किया था। उस समय वह नदियों अथवा झीलों के किनारे, गुफाओं एवं पेड़ों के नीचे एवं ऊपर रहता था। उस समय के मानव उदर पूर्ति हेतु कन्दूल फल, मछली एवं कच्चे माँस का उपयोग करते थे एवं आग जलाना नहीं जानते थे। इस काल में मानव हिंसक पशुओं से अपनी रक्षा करने के लिए छोटे–छोटे समूह में रहते थे। और इसी कारण उनमें मिल–जुलकर रहने तथा सामाजिक भावना का उदय हुआ। भोजन सामग्री भी सम्मिलित रूप से ही प्राप्त करने जाते थे प्रारंभ में लज्जा का ज्ञान नहीं था। किन्तु बाद में वे अपने गुप्त अंगों को पेड़ों की छाल और पत्तों से ढँकने लगे थे इनका सामाजिक जीवन बहुत साधारण और सादा था। वे मृतक संस्कार से भी परिचित नहीं थे। मृतकों को खुले में या यथावत छोड़ देते थे। धार्मिक भावना का उदय भी उनमें नहीं हुआ था और वे किसी ऐसी शक्ति या कल्पना से परिचित नहीं थे।
2. **मध्यपाषाण काल (Mesolithic Age):-** ई. पू. प्रायः 25,000 वर्ष पूर्व मानव ने अपने पत्थर के हथियारों में कुछ साधारण सुधार करने में सफलता प्राप्त की तथा उनके साथ–साथ पशुओं की हड्डियों से बने हथियारों का प्रयोग भी प्रारंभ किया इस काल में मानव ने क्वार्टजाइट पत्थर के स्थान पर जैस्पर, चर्ट और ब्लडस्टोन नामक पत्थर का प्रयोग आरंभ किया और अपने हथियार इन्हीं पत्थरों से बनाये, परंतु इन हथियारों का आकार एक इंच से अधिक नहीं था। इन्हें लकड़ी के हत्थे में लगाकर प्रयोग किया जाता था। इस काल में भी मानव जीवन के अवशेष भारत में प्रायः प्रत्येक स्थान पर पाये गये हैं। इस काल में भी मानव मुख्यतः शिकार पर ही निर्भर था। कृषि–कार्य निवास–गृहों का निर्माण अभी भी आरंभ नहीं हुआ था। परंतु मृतकों को जमीन में गाड़ना या दफनाना प्रारंभ कर दिया था। कुत्ता इनका पालतु पशु बन गया था और बाद में मिट्टी के बर्तन बनाना भी आरंभ कर दिया था।
3. **उत्तर पाषाण काल (Neolithic Age):-**मानव ने हजारों वर्ष के उपरांत उत्तर पाषाण काल में प्रवेश किया। यह समय सभंवतः ई. पू.5000 वर्ष से पूर्व 3000 ई. पू. रहा होगा या सम्मिलित किया जाता है। सम्पूर्ण भारत में इस समय के अवशेष प्राप्त हुए हैं जो आज भी कल्कत्ता ,मद्रास, मैसूर, हैदराबाद आदि के संग्रहालय में सुरक्षित है। आदि मानव ने इस काल में तीव्रता से प्रगति की ओर सभ्यता की ओर कदम बढ़ाये। इस युग को हम उत्तर पाषाण युग की सभ्यता की पूर्व सीढ़ी भी

कह सकते हैं। इस समय मानव के मस्तिष्क एवं बुद्धि में विकास होना आरंभ हुआ। उसने अपने अनुभव, ज्ञान,परम्परा, स्मृति आदि से लाभ लेना प्रारंभ किया। इस काल के मानव के हथियार और औजार पत्थर के ही बने हुए थे जैसे–पूर्व पाषाण काल में थे, परंतु उन्हें नुकीला और पॉलीश करके चमकीला बना लिया गया था। कार्यो के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के हथियार प्रयोग में लाये जाने लगे थे। इस काल में मानव ने कृषि और पशु–पालन प्रारंभ कर दिया था। पहाड़ियों, नदियों कन्दराओं व झीलों को छोड़कर नदियों के तट पर घर बनाकर रहने लगे थे। अतः उसके भ्रमणशील जीवन का अंत होने लगा था। वह पत्थरों के बड़े–बड़े टुकड़ों को एक दूसरे के ऊपर तथा नीचे रखकर अपना घर बनाया करते थे। उसने मकान की छतों का निर्माण पेड़ों की शाखाओं, डालियों से किया था। वे घास की झोपड़ियों को मिट्टी से लीप कर बनाने लगे थे। उसने शांति एवं युद्ध के लिये उपयोग किये जाने वाले हथियारों, और औजारों का निर्माण प्रारंभ कर दिया था जैसे तीर, भाले आदि। जानवरों की हड्डियों को अपने जीवन में सम्मिलित कर लिया थ्ज्ञा। इस समय आदि मानव पत्थर की अपेक्षा लकड़ी तथा हड्डियों का अधिक उपयोग करने लगा था। उन्होनें मिट्टी के बर्तन, वस्तुएं आदि का निर्माण भी आरंभ कर दिया था। ये सादे और अंलकृत भी हुआ करते थे। उसने इस समय कुम्हार का चाक और लकड़ी का पहिया बनाना भी सीख लिया था। कन्दमूल और फल के एकत्रीकरण से उसकी दिन–प्रतिदिन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं का निराकरण न होने के कारण शिकार की अनिश्चतता तथा माँस के दो–चार दिन में खराब हो जाने के कारण उसका ध्यान पशुपालन की ओर गया जो अधिक दूध देते थे। पशुपालन की भावना के फलस्वरूप उसने गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं का पालन करना आरंभ किया और वह उनका व्यवसाय भी करने लगा। उसको कृषि का भी ज्ञान हुआ और उसने आस–पास के जंगलों को साफ कर वहां की भूमि को कृषि योग्य बनाकर कृषि करना आरंभ किया। इस कारण उनका एक स्थान विशेषकर नदी किनारे पर निवास करना अनिवार्य सा हो गया था। इस प्रकार सभ्याता का उदय होने लगा था। वे पेड़ों तथा कन्दमूल–फलों के रस तथा शहद पीने लगे थे। उसने माँस का परित्याग कर दिया था, या वह खाना और माँस को पकाकर खाने लगा था क्योंकि उसे अग्नि का ज्ञान इस काल में हो गया था। दूध से दही बनाने की क्रिया से भी वह परिचित हुआ और पृथ्वी से कुछ पैदा करना भी सीख चुका था, किन्तु इस ओर विशेष रूप से उसका ध्यान आकर्षित नहीं हुआ था।

इस युग में मानव ने कपास पैदा किया, पशुओं की ऊन तथा चमड़े से तथा कपास से वस्त्र तैयार करने लगा था। व इन कपड़ों को रंग वनस्पति से रंगते भी थे। अतः मानव के लिए रंग का आकर्षण हुआ और व पीलेक, नीले, हरे और लाल रंग की ओर आकर्षित हुआ। वे कपड़े का आधा भाग कमर में लपेट लिया करते थे और आधे भाग को कमर में डाल लिया जाता था पुरूष सिर पर पकड़ी बाँधते थे और स्त्रियाँ लंहगे का प्रयोग करती थी।

उत्तर पाषाण काल में मानव आभूषणों का प्रयोग भी करने लगा था। इनके आभूषण पत्थर, पशुओं की हड्डियों सीप और कौड़ी के बने होते थे। स्त्री और पुरूष इनका समान रूप से प्रयोग करते थे। इनका मुख्य आभूषण माला, बाली, अंगूठी आदि थे। इनमें इस समय श्रृंगार की भावना का भी उदय हो गया था। बर्तनों पर चित्रकारी, रंग करना आदि बाते उसके कालात्मक एवं सौंदर्य प्रिय होने की ओर इशारा करत है। उसकी प्रकृति जीवन की सजीवता आदि के चित्रकारी के नमूने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में प्राप्त हुए हैं।

इस काल में मानव के अंदर जाति तथा वर्ग की भावना का उदय भी हो गया था। इस समय की जाति व्यवस्था आर्यो द्वारा बनाई गई जाति व्यवस्था से काफी प्राचीन व्यवस्था है जिसे भारत की आदिम जाति संस्थाओं में से एक कहा जा सकता है। विभिन्न जीवन व्यवस्थाओं के आधार पर एक प्रदेश में निवास करने वाले व्यक्ति विभिन्न जातियों और वर्गो में विभाजित हो गये। इस समय समुद्रतट, झीलों वनों, पर्वतों तथा मैदानों तथा रेगिस्तान में निवास करने वाले अपने को एक–दूसरे से अलग समझते थे ओर उनका आपस में संबंध कम या नही ंके बराबर होता था। प्रत्येक की अपनी एक अलग विशेषता थी। इसका मुख्य कारण यह था कि अभी मानव अपने को प्रकृति पर ही निर्भर मानता था और उसका दास स्वरूप था। वह प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करता था, किन्तु प्रकृति को अनुकूल बनाने का प्रयास करने में भी संलग्न अवश्य था।

इस समय से पूर्व मानव चित्रों, चिन्हों आदि के माध्यम से अपने विचारों, भावों को प्रकट कर रहा था किन्तु इस काल में बोलियों का प्रचलन आरंभ हो गया था। शब्द–भंडार के विकास के साथ ही भाषा का उदय भी होने लगा था। धार्मिक क्षेत्र में भी वह अपने पूर्वजों अर्थात पूर्व पाषाण काल के मानव से अधिक प्रगति कर ली थी। वह अब भौतिक पदार्थो में जीवन शक्ति का अनुभव करने लगा था। प्रकृति के विभिन्न रूपों में भी उसे शक्ति के दर्शन का आभास हुआ। वह प्रकृति की पूजा करने लगा। धर्म और देवी तथा दानवी शक्तियों की कल्पना करना भी आरंभ कर दी थी। अब मानव ने जीवन मरण पर गहन चिंतन मनन करना आरंभ किया। अब वह शवों को गाड़ना अथवा जलाने लगा था। मृतकों की हड्डियां रखने के लिए अस्थि पात्रों तथा शवों की समाधियां बनाना प्रारंभ कर दी थी। मृतक की भस्म को हांडियों में रखा जाता था अर्थात इस समय के लोग जीवन श्रृंखला और पुर्नजन्म में विश्वास करते थे और अपने पितरों की पूजा करते थे। भूतों में आविष्ट प्रस्तर खंडों की पूजा आरंभ हुई जो क्रमशः लिंग के रूप में विकसित हुई। चढ़ावे में दूध, बली, मॉंस आदि पदार्थ अर्पित किये जाते थे। इस तरह देश में आदि मानव में धार्मिक विश्वास और पूजा पद्धति का ढॉंचा बनने लगा था।

1. **ताबें और कांसे का काल (Coppr and Bronze Age):-** अनुमानतया यह युग ई.पू.3000 वर्ष से ई. पू. 1000 वर्ष अथवा उससे भी थोड़ा आगे के समय तक रहा है। कई शताब्दियों उपरांत भारत में उत्तर पाषाण युगीन मानव ने धातुओं का प्रयोग जाना या कहें कि पाषाण काल के अंतिम चरणों में मानव को धातुओं का ज्ञान होना आरंभ हो गया और वह उनका उपयोग भी करने लगा इन धातुओं में तांबा, कांसा, स्वर्ण, लोहा आदि धातुएं भी कहा जाता है कि धातु–काल का मानव भारत में उत्तरी–पश्चिमी सीमा के मार्गो से आया था और उसका भारत के पाषाण युग के मानव से कोई सम्पर्क नहीं था। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि दक्षिण भारत में उत्तर–पाषाण काल के पश्चात् आर्यो के दक्षिण–भारत में प्रवेश करने के साथ लौह–काल आरंभ हो गया था। इसी प्रकार भारत में कांस्य काल आया क्योंकि कांसे के प्रयोग के प्रमाण भारत में प्राप्त नहीं या बहुत कम हैं। इसी कारण से अधिकतर विद्वान उत्तर–पाषाण काल के बाद ताम्र (तॉंबा) काल और उसके बाद लौह–काल आरंभ होना मानते हैं। भारत में धातुकाल को ताम्रयुग और लौह युग दो भागों में जाना जाता है। परंतु ताम्र काल में भी पत्थर के हथियारों का प्रयोग होता रहा और जिसे ताम्र पाषाण काल नाम से पुकारा जाने लगा। भारत में सिंधु नदी की घाटी की सभ्यता को इसी काल की सभ्यता माना गया है। इस समय हथियार तॉंबे के बनाये जाते थे जो नुकीले और तीक्षण होते थे। इनमें खंजर, बर्छे तलवार आदि बनाये गये फिर लोहे के बनाये गये। जितने समय इन धातुओं (ताम्र/तांबा और लोहा)

का उपयोग अधिक से अधिक हुआ उस समय को लौह एवं ताम्र युग के नाम से जाना गया। कालांतर में कुछ स्थानों पर प्रयोग स्वरूप कटोरे तथा अन्य पात्र कांसा जो कि ताँबे और टिन को मिलाकर (ताँबे का नौ भाग और टिन का एक भाग मिलाकर) बनाये गये थे। इस युग में मानव रहने के लिए गांव और नगर बसाने लगे थे कृषि के द्वारा विभिन्न प्रकार के अनाज उत्पन्न करने लगा और पशुपालन भी करता था ऊनी व सूती वस्त्रों का प्रयोग करने लगा था। दैनिक आवश्यकताओं की अनेक वस्तुओं का निर्माण कर चुका था। आवागमन के साधनों का भी उपयोग करने लगा था।

2. **लौह–काल (Iron Age)** भारत में आर्यो से पहले लौह काल नहीं था। लौह काल का आरंभ आर्यो के काल से भारत में माना जाता है जिसका समय लगभग ई. पू. 1000 वर्ष या उससे कुछ अधिक समय पहले का हो सकता है। इस काल में मानव ने अपनी सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण विकास किया वैदिक सभ्यता लौह–काल में सम्मिलित की जाती है और इसी काल ई. पू. छटी शताब्दी से भारतीय इतिहास भी प्राप्त हो जाता है।

भारत का भू–प्रदेश भी उन भू–प्रदेशों में से एक है जहाँ मानव–जीवन की कहानी आरंभ हुई। इस कारण भारतीय सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रकृति की बदलती हुई विभिन्न परिस्थितियों ने इस सभ्यता के निर्माण में सहयोग दिया विभिन्न नस्लों **(races)** के व्यक्तियों ने इसकी प्रगति में अपना योगदान दिया और यहाँ के निवासियों को एक विशेष आध्यात्मिक दृष्टिकोण इस सभ्यता की श्रेष्ठता को अभी तक स्थापित किये हुए है।

प्राचीन सभ्यताएं (Ancient Civilization) मानव ने वातावरण पर विजय प्राप्त करते हुए तथा उसे अपने अनुकूल बनाते हुए निरंतर बढ़ता चला आ रहा है। प्राचीन सभ्यताओं का उदय नदियों की घाटियों में हुआ था। जिनमें मिस्त्र, बेबीलोन, चीन, समेर, असीरियन भारतवर्ष और क्रीट की सभ्यताएं अधिक महत्वपूर्ण है। चतुर्थ सहस्त्राब्दि ई. पू. से पहले सम्पूर्ण विश्व में नदियों के किनारे जिन विभिन्न सभ्यताओं का विकास हुआ उनमें है–नील नदी के किनारे मिस्त्री सभ्यता, दजला–फरता नदियों की घाटी में मेसोपोटामिया, यूनान में क्रीट तथा माइसीन हुगली नदी के किनारे चीन तथा भारत में सरस्वती सिंधु नदियों की घाटी में विकसित सैंधव सभ्यता आदि। इन सभी सभ्यताओं के बीच पारस्परिक व्यापारिक संपर्क तथा आवागमन होता था।

1 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास डॉ. सुमन गुप्ता, पृ. स. 01

इन सभ्यताओं में नील नदी की घाटी की सभ्यता (मिस्त्र की सभ्यता, दजला–फरात की घाटी और सिंधु नदी की सभ्यता प्राचीनतम सभ्यता है। प्राचीन समय में बसने वाली मुख्यतः चार जातियाँ थी– प्रागस्त्रलायद, मेडिटरेनियन, अल्पाइन और मंगोलियन ।इन चार जातियों में से किसके द्वारा सिंधुघाटी सभ्यता का निर्माण किया गया यह आज तक ज्ञात नहीं है क्योंकि सिंधुघाटी सभ्यता अंतरावलंबित होने के कारण इसमें अनेक जातियों का मिश्रण पाया जाता है। भारत की प्राचीन सभ्यता सिंधुघाटी सभ्यता के नाम से जानी जाती है।

1.2.2 सिंधुघाटी सभ्यताः–5000 ई.पू. इस सभ्यता का उदय हुआ था। इस घाटी का क्षेत्र नील घाटी तथा टिगरिस दजला–फरात यूफरेटस के क्षेत्रफल से अधिक था। सिंध के लरकाना जिले में खुदाई स्वरूप प्राप्त हुए जिसे मोहनजोदड़ों **(The city of the dead)** के नाम से पुकारे जाने वाले एक भव्य नगर के अवशेष प्राप्त हुए।

कुछ समय बाद वर्तमान पाकिस्तानी पंजाब के मॉटगोमरी जिले में हड़प्पा के अवशेष प्राप्त किये गये और यह माना गया कि मोहनजोदड़ों और हडप्पा के अवशेष समकालीन एवं एक ही सभ्यता के अवशेष हैं तथा ये दोनों स्थान एक बड़े राज्य की दो राजधानियाँ थे। अवशेषों की समानता के आधार पर उसे सिंधुघाटी सभ्यता नाम दिया गया। इस सभ्यता का क्षेत्र सिंधु नदी की घाटी से अधिक विस्तृत था। पूर्व से पश्चिम की ओर इसका फैलाव 1550 कि.मी. एवं उत्तर से दक्षिण की ओर 11000 कि.मी. था। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा एक दूसरे से प्रायः 650 कि.मी दूर है और एक ही सभ्यता के अंग हैं। सिंधु घाटी सभ्यता केवल उत्तरी सिंध प्रदेश, गंगा नदी की घाटी तक था। इस सभ्यता का संबंध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मिस्त्र की सभ्यता, सुमेरियन सभ्यता और सम्पूर्ण पंजाब एवं सिंध उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत की घाटियाँ, अधिकांश काठियाबाड़, राजस्थान और गंगा–यमुना के दोआब तथा दक्षिण पंथ के प्रारंभ स्थान तक के कुछ भाग में फैली हुई थी और उसका संपर्क प्रायः सम्पूर्ण उत्तरी भारत, पश्चिमी यूरोप एशिया तथा अफ्रीका की समकालीन सभ्यताओं से था। इस सभ्यता ताम्र–पाषाण काल की सभ्यताओं में स्थान दिया गया है।

सिंधु घाटी सभ्यता एक नगर सभ्यता थी। इसके विकास में उन विभिन्न नस्लों के व्यक्तियों ने भाग लिया जो नगरों में एकचित हो गये। उन नस्लों में मुख्य नस्लें आदिम आग्नेय,मंगोलियन, अल्पाइन और भूमध्यसागरीय (जिन्हें भाषा के आधार पर द्रविड पुकारा गया है) थी। मोहनजोदड़ों की अधिकांश जनता द्रविड थ्ज्ञी अतः इस सभ्यता के निर्माता द्रविड थे। कुछ लोग आर्य को सिंधु सभ्यता का समकालीन मानने लगे थे। किन्तु आर्य सिंधुघाटी के सभ्यता के कछ समय उपरांत या कहे कि लौह युग में भारत आये थे और इस सभ्यता के विकास में अपना योगदान दिया था। अतः कह सकते हैं कि सिंधुघाटी सभ्यता आर्य अनार्य (द्रविड) सभ्यताओं का प्रतिनिधित्व करती है।

पुरातत्व खोजों में प्राप्त नगरों के भग्नावशेषों, जेवरों, बर्तनों, मुहरों, खिलौनों, मूर्तियों तथा अन्य विभिन्न वस्तुओं के आधार पर हम इस सभ्यता की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते

हैं। इस सभ्यता को सैंधव सभ्यता, हड़प्पा मोहनजोदड़ों पाषाण–धातु युगीन सभ्यता के नामों से भी जाना जाता है। पाकिस्तान में स्थित सिंधु नदी एवं उसकी सहायक रावी नदी के काँठें में ताम्रयुगीन नगर सभ्यता का विकास हुआ जिसके भग्नावेश इन दोनों स्थानों के टीले की खुदाई में मिले हैं। पहला अवशेष मोहनजोदड़ों के नाम से जाना जाता है, जो सिंधु नदी के दक्षिण तट पर स्थित है तथा दूसरा हड़प्पा जो पश्चिम पंजाब में रावाी नदी के तट पर स्थित है। दोनों स्थान इन दिनों पाकिस्तान में हैं तथा दोनों नदियों द्वारा धाराएं बदल दिये जाने के कारण अलग हैं।

---

1 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, डॉ. जयशंकर मिश्र, पृ. सं.23,24

1.2.3 सिंधुघाटी सभ्यता की विशेषताएंः–इस सभ्यता की विशेषताएं इस प्रकार से हैं–

1. **नगर और भवन निर्माणः**–हड़प्पा और मोहनजोदड़ों का नगर निर्माण एक समान योजना पर किया गया था। दोनों नगरों की पश्चिम दिशा में 9 से 15 मीटर तक ऊँचा और 360×180 वर्गमीटर के क्षेत्रफल का एक सुरक्षा स्थान अथवा गढ़ था जो एक दीवार से रक्षित था और जिसमें सार्वजनिक भवन बनाये गये थे। उससे नीचे नगर बनाये गये थे जिनमें से प्रत्येक का क्षेत्रफल कम से कम एक वर्ग मील था। दोनों नगर निर्माण कला की दृष्टि से अद्वितीय थे। नगर की स्वच्छता के लिए विशेष प्रबंध था। सड़कों के नीचे नालियाँ थी जो एक बड़े नाले में मिलती थी। इनमें प्रत्येक घर का गंदा पानी आता था। दोनों नगरों की मुख्य सड़कें जो 2.70 से 10.20 मीटर तक चौड़ी थी जिससे नगर विभिन्न भागों (वार्डो) में बंट गये थे। सड़कें पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थी। सबसे चौड़ी और बड़ी सड़क मोहनजोदड़ों में थी । एक राजमार्ग भी होता था जिससे नगर की सड़कें और गलियां मिलती थी। नगर के विभिन्न भागों (वार्डो) में छोटी–छोटी गलियां थी जिनके दोनों ओर मकान बने हुए थे। सड़क के दोनों ओर वृक्ष थे। नगर की सफाई के लिए सड़कों के किनारे पर मिट्टी के बर्तन रखे जाते थे जिनमें कचरा एकत्र किया जाता था नगरों में गंदें पानी को निकालने के लिए नालियां और मोरियां बनाई गई थी मकानों की नालियां सड़क की नालियों में आकार मिलती थी। सड़क की नालियां ईटों से ढंकी हुई थी। नालियां साफ करने तथा नालियों के पानी बाहर निकालने का प्रबंध भी था। सड़कों पर रोशनी का प्रबंध भी किया जाता था, यह विभिन्न दीप–स्तम्भों के पाये जाने से ज्ञात होता है। प्रत्येक गली में एक सार्वजनिक कुआं था कोई भी मकान मुख्य सड़क को नहीं ढंक सकता था। नगर नदी किनारे होने के कारण उस समय बाढ़ से सुरक्षा बांध भी बनाये गये थे। यह नगर प्लान के अनुरूप बनाये गये थे।

   सिंधुघाटी के निवासियों की भवन निर्माण कला सादी और उपयोग पर आधारित थी, उसमें सुन्दरता एवं विशालता का अभाव था। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में मकान बनाने के लिए केवल ईटों का प्रयोग किया गया था। ये ईटें 51×26×9 सेंटीमीटर के आकार की ओर पकी हुई होती थी। कुछ मकान दो–दो मंजिल तथा उससे अधिक भी थे। प्रत्येक मकान में आंगन होता था। मकानों की छतें लकड़ी की होती थी। मकानों में खिड़कियॉ भी थी और ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए जीना अथवा सीढ़ियां होती थी। दरवाजे बीच में न होकर कोने में बनाये जाते थे। मकानों के प्रवेश द्वार सड़क या गली की ओर हुआ

करते थे। दरवाजे लकड़ियों से बनाये गये थे। सभी मकानों में कुएं भी थे। मकान छोटे–बड़े सभी चौकोर आकार के थे। मोहनजोदड़ों में पाई गई सबसे बड़ी इमारत का क्षेत्रफल 69×24 वर्गमीटर है जो संभवतः एक महल होगा। हड़प्पा में पायी गई सबसे बड़ी इमारत एक अनाज का गोदाम घर स्वरूप है। जिसका क्षेत्रफल 51×41 वर्गमीटर है जो छोटे–छोटे भागों में बांटा हुआ है। दोनों नगरों में 6×3.6 वर्गमीटर के छोटे निवास ग्रह भी मिले हैं जो संभवतः मजदूरों के निवास गृह हो सकते हैं खुदाई में 90 फुट का एक विशाल सभा मंडप भी प्राप्त हुआ है जो आंगन बरामदा, स्नानकुंड आदि से युक्त रहा है। मोहनजोदड़ों की सर्वप्रमुख विशेषता में यहां प्राप्त हुआ विशाल स्नान गृह है जिसका आकार 54×32 वर्गमीटर है और तैरने के तालाब का क्षेत्रफल 11×7 वर्गमीटर है, इसकी गहराई 2. 40 मीटर है। तालाब के किनारे सीढ़ियां बनी हुई हैं और उसके चारों तरफ उठे हुए चबूतरे तथा बरामदें हैं।

स्नानागार की दीवारों पर विशेष प्रकार का मिट्टी का प्लास्टर किया हुआ बरामदों के पीछे तीन तरफ गलीआरे और कमरे बनाये गये थे। पानी को निकालने तथा पुनः भरने का प्रबंध भी किया गया था साथ ही अन्य स्नानागृह भी बनाये गये थे जहां संभवतः गर्म पानी से नहाने की व्यवस्था थी और इन्हें हम्माम नाम से जाना जाता था। अर्थात उस समय के लोग गर्म जल से परिचित थे और उसका उपयोग करते थे। स्नान गृह के छः प्रवेश द्वार थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की नगर व्यवस्था तथा भवन निर्माण की व्यवस्था से ज्ञात होता है कि उस समय वहां श्रेष्ठ नगरपालिका की शासन व्यवस्था रही होगी।

2. **आर्थिक जीवनः**–सिंधु घाटी सभ्यता के निवासियों का जीवन कृषि पशुपालन और व्यापार पर निर्भर था। वे लोग विभिन्न व्यवसाय भी किया करते थे उनके द्वारा जौं, गेंहू, कपास और विभिन्न प्रकार के फलों का उत्पादन किया जाता था। वे लोग चावल की खेती से परिचित नहीं थे। सिंचाई के लिए वे बाढ़ वर्षा तथा नदी के पानी का उपयोग करते थे और बड़े पैमाने पर खेती आपसी सहयोग से की जाती थी।

भैंस, गाय, कुत्ता, बैल, भेड़, सुअर, नंदी, गधा, तोता और बाज उनके पालतु जानवर हुआ करते थे। हड़प्पा में पालतु बिल्ली पाये जाने के भी प्रमाण मिले हैं। अर्थात उस समय वहॉ के लोगों को पशुपालन का ज्ञान था और वे दूध के अतिरिक्त शौक स्वरूप भी पशुपालन में रूचि रखते थे। वे हाथी और ऊंट से भी परिचित थे इसी समय घोड़े के भी अवशेष प्राप्त हुए हैं जो संभवतः विदेशियों के द्वारा यहां लाये गये थे। इसका ज्ञान होते ही उनका व्यापार अधिक मूल्यवान बन गया था। उनका व्यापार भारत के अन्य भागों और विदेशों से भी था। भारत में कश्मीर, मैसूर एवं नीलगिरी पहाड़ी के प्रदेशों में तथा विदेशों में मिश्र, क्रीट, सुमैर, मेसोपाटामिया आदि देशों से उनके व्यापारिक संबंध थे। जो उनकी आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य कारण रहा है।

बढ़ई, कुम्हार, जुलाहा, सुनार, जौहरी, शिल्पी, चिकित्सक, मकान निर्माता बुनकर आदि के द्वारा विभिन्न व्यवसाय किये जाते थे। इन्हें कुम्हार की चाक और गोल पहिये का भी ज्ञान था जिसकी सहायता से बर्तन, खिलौने आदि का निर्माण किया जाता था। यातायात के लिए लकड़ी की गाड़ियां बनाते थे जिन्हें बेलों के द्वारा खींचा जाता था। इनके भोजन एवं व्यापार में अनाज के साथ–साथ शूकर–गो मांस, खजूर, फल, भेड़ों और जल–जन्तुओं के मांस,मछली आदि भी शामिल रहते थे। जंगली पशुओं में वे भैंसा, बंदर, भालू, चीता, गेंडा, घड़ियाल, कछुआ, खरगोश और

मगरमच्छ से परिचित थे और उनका शिकार करते थे। इन पशुओं के चित्र यहां से प्राप्त मुहरों और ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण हैं।

वे लोग तोल, वजन आदि के लिए विभिन्न बांटों का उपयोग करते थे, जो आपस में 1,2,4,8,16,32 और 64 के अनुपात में हुआ करते थे। सबसे अधिक 16 इकाई के बांटों का प्रयोग अधिक होता था। नापने के लिए नाप का प्रयोग स्पष्ट रूप से नहीं मिलते है परंतु 16.8 सेंटीमीटर एवं 9 स्पष्ट भागों में विभाजित थे। कुछ वस्तुएं इस बात को स्पष्ट करती है कि वे अपने आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर धनवान बनकर नगर–जीवन का निर्माण कर सके थे।

3. **सामाजिक जीवनः**–सिंधुघाटी की सभ्यता के निवासियों का सामाजिक जीवन बहुत उन्नत किन्तु सादा और सरल था। समाज में अधिकांश व्यक्ति उच्च एवं मध्यम श्रेणी के थे। नगर–निर्माण से ज्ञात होता है कि उस समय मजदूरों के पास भी दो कमरों वाले मकान प्राप्त थे। उन्हें जीवन की अन्य सुविधाएं भी प्राप्त थी। समाज के विभिन्न वर्गो की चार श्रेणियाँ हुआ करती थी। प्रथम बुद्धिजीवी वर्ग जिसमें पुरोहित, चिकित्सक, ज्योतिष आदि आते थे। द्वितीय–योद्धा वर्ग जो सैनिक वर्ग था। तृतीय वर्ग में व्यापारी, शिल्पियों, कलाकारी आदि का था। चतुर्थ वर्ग श्रमिक वर्ग हुआ करता था। जिसमें किसान, मजदूर, मछली पकड़ने वाले, गृह सेवक आदि सम्मिलित थे। समाज के वर्गीकरण का आधार विभिन्न आर्थिक व्यवसाय थे।

स्त्री और पुरूषों की वेशभूषा लगभग समान हुआ करती थी। वे कमर के नीचे धोती और कमर से ऊपर बायें कंधें से दायें कंधें के नीचे दबने वाले शाल को उपयोग करते थे स्त्रियों के सिर पर पंखें के समान एक वस्त्र हुआ करता था। इनके वस्त्र ऊनी तथा सूती हुआ करते थे। इन्हें वस्त्रों की सिलाई का ज्ञान था क्योंकि अवशेषों में सुईयों की प्राप्ति हुई है। स्त्री एवं पुरूषों के लंबें बाल रखते थे और बालों में सोने, ताँबे आदि के पीन बनाये जाते थे।

स्त्रियाँ चोटी बनाती थी और पुरूष दाढ़ी रखा करते थे। पुरूष उस्तरे का उपयोग जानते थे। आभूषणों का प्रयोग स्त्री एवं पुरूषों दोनों के ही द्वारा समान रूप से किया जाता था। आभूषण सोना, ताँबा, चाँदी, कोढ़ी, सीप तथा हड्डियों और कीमती पत्थरों का भी उपयोग आभूषण बनाने के लिए होता था, कण्ठहार, भुजबंद, अंगूठी, बुन्दें, चूड़ियाँ, कमरबंद या तगड़ी प्रमुख आभूषण थे जिनका उपयोग स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा किया जाता था। यहां के निवासियों का भोजन गेहूं, जौं,फल, मछली, पशुओं का मांस, खजूर आदि था। उनके हथियार ताँबें के हुआ करते थे जिसमें परशु, भाला, कटार, धनुष बाण आदि थे। इनकी नांच गाने में भी रूचि थी जिनका प्रमाण खंडहरों की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों से चलता है। बच्चों के लिए खिलौने बनाये जाते थे। नाच–गाना, जुआ, खेलना, चौपड़, गेंद, पशु–पक्षियों को पकड़ना आदि इनके मनोरंजन के साधन हुआ करते थे। यातायात के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोग करते थे और इनकी बैल गाड़ियों की छत लकड़ी से ढ़की हुआ करती थी। इन लोगों को मानवीय चिकित्सा का भी ज्ञान था वे शीलाजीत का प्रयोग करते थे पशुओं की हड्डियों, वृक्ष के पत्ते, वृक्ष की छालें से दवाईयाँ बनाई जाती थी।

इस समय के लोग मृतकों को भूमि में गाढ़ते थे और कभी–कभी शरीर को पशु–पक्षियों को खाने के लिए छोड़ दिया जाता था। कुछ समय बाद ये लोग मृतकों के अवशेषों को घड़े में बंद करके गाड़ने लगे थे और मृत व्यक्तियों की पंसद की चीजे उस व्यक्ति या मृत शरीर के साथ रख दी जाती थी।

घरों में उपयोग किये जाने वाले बर्तन आदि सामग्रियों के लिये ताँबें, काँसे, मिट्टी लकड़ी का उपयोग किया जाता था मिट्टी की वस्तुओं को पकाकर उपयोग में लाया जाता था और उन पर पॉलिश और चित्रकार की जाती थी। इन्हें विभिन्न धातुओं का ज्ञान भी था जैसे–सोनार, चाँदी, ताँबा, काँसा, टीन, सीसा आदि। धार्मिक भावनाओं का भी उदय इनमें हो गया था। इस प्रकार इन लोगों का सामाजिक जीवन संघर्षमय नहीं था ये शांत प्रकृति के विलासी एवं सुखी व्यक्ति थे।

4. **धार्मिक जीवनः**—सिंधुघाटी के लोग मातृदेवी या प्रकृति की देवी की पूजा किया करते थे मूर्तियों तथा मुद्राओं पर अंकित चित्रों से ज्ञात होता है कि शिव की पूजा अमूर्त और मूर्त रूप में की जाती थी उनके द्वारा लिंग और यौनी की भी पूजा की जाती थी। अग्नि, पशु, नदी, जल, वृक्ष, कबूतर, नाग की भी पूजा का प्रचलन था। धार्मिक पर्वो पर ये लोग स्नान करने को पवित्र मानते थे। बलि देने की प्रथा भी थी।
5. **कलाः**—इनको भवन—निर्माण कला का ज्ञान था। मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी और पॉलिश की जाती थी। बुनने, कातने की कला से परिचित थे। सुंदर आभूषण, खिलौने आदि का कलात्मक ज्ञान इन्हें था। मूर्तिकला, नृत्यकला से परिचित थे क्योंकि कई नृत्य अवस्था में मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मुहरों पर अंकित नंदी—बैल की सुंदर आकृतियां कलात्मकता का परिचय देती हैं। पशुपति—शिव कांसे की मूर्ति भी कलात्मक ज्ञान को प्रदर्शित करती है। इस समय लेखन कला का भी अविष्कार हो चुका था, किन्तु इनकी लिपि चित्रकला की अवस्था में थी। इनके लिखने की दिशा दायें से बांये हुआ करती थी। लिपि के लगभग 400 चिन्ह् मुद्राओं आदि पर अंकित थे। संक्षिप्त में कहे कि ये लोग कला प्रेमी थे किन्तु इनकी कला कल्पनाओं पर आधारित न होकर वास्तविक वातावरण पर आधारित थी।
6. **मुहरेंः**—इस समय की मुहरे पकी हुई मिट्टी तथा पत्थर की हुआ करती थी। ये धनवानों के घरों में हुआ करती थी किन्तु इनका उपयोग सिक्के के रूप में नहीं होता था। खुदाई से लगभग 2000 मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन पर पशुओं के चित्र ऊपर पार्श्व में तथा नीचे कुछ लिपि के चिन्हों द्वारा कुछ लिखा गया है जिसे आज तक पढ़ा नहीं जा सका है। मुद्राओं का आकार भी भिन्न—भिन्न है संभवतः ये पैतृक धरोहर के रूप में उपयोग की जाती होगी।
7. **अस्त्र—शस्त्र एवं सुरक्षाः**—खुदाई में विभिन्न प्रकार के अस्त्र—शस्त्र प्राप्त हुए हैं जैसे हथियार कुल्हाड़ी, गदा, भाला, कटार, बिना धार की तलवार, धनुषबाण आदि तांबे और पत्थर के हुआ करते थे जिनका उपयोग शिकार करने, अपनी रक्षा करने में किया करते थे। ये शांतिप्रिय हुआ करते थे नगर निवासी थे किन्तु युद्ध कौशल का ज्ञान भी रखते थे।
8. **धातु—ज्ञानः**—इन्हें मुख्य रूप से सोना, चांदी तांबा, कांसा टीन तथा सीसा का ज्ञान था ये टीन और तांबें को मिलाकर कांसा तैयार करना जानते थे। इन्हें लोहे का ज्ञान नहीं था।
9. **मृतक संस्कारः**—मृतक संस्कार तीन प्रकार से किये जाते थे। इनकी धारणा थी कि विधिवत संस्कार करने से मृतक की आत्मा सुखमय होगी। मृतक संस्कार इस प्रकार थे—
1. मृतक शरीर को पृथ्वी में गाड़ दिया करते थे। शव के साथ आराम की वस्तुएं भी गाड़ दी जाती थी।
2. पक्षियों को खाने के लिए फेंक देते थे और अवशिष्ट शरीर को मिट्टी के बर्तन में रख पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।
3. मृतक शरीर को जला भी दिया जाता था जो बाद में अधिक रूप से प्रचलित हो गई थी।
10. **राजनीतिक जीवनः**—सिंधुघाटी सभ्यता व्यापारिक कुलीन तंत्र न होकर एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार थी। योजनाबद्ध नगर—निगम, नापने—तौलने के समान साधन, योजनाबद्ध सड़कों का निर्माण आदि। इस कथन के प्रमाण माने जाते हैं। यहां श्रेष्ठ नगरपालिका शासन व्यवस्था के संकेत भी मिलते हैं। एक धर्म राज्य पर आधारित यह सभ्यता रही है। सम्पूर्ण घाटी की दो राजधानियां हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों थी। दुर्ग भवन के अवशेषों से ज्ञात होता है कि इनमें अधिकारी गण रहा करते थे और प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करते होंगे। शासक तथा शासित दोनों ही शांत प्रकृति के रहे होगें। समाज में सभी समान रूप से रहते थे। और सुरक्षा के लिए हथियारों का उपयोग किया जाता था।

सिंधुघाटी सभ्यता की खुदाई में पाई गई सात परतें स्पष्ट करती हैं कि इस सभ्यता का अंत कई बार हुआ था यहॉ के निवासियों ने कई बार निर्माण किया था। ये लोग रूढ़िवादी थे और सिंधु नदी की बाढ़े और उसके प्रवाह का मार्ग इसके विनाश के कारण रहे। भौगोलिक परिवर्तन से भी इस सभ्यता का विनाश हुआ परंतु इस सभ्यता का पूर्ण विनाश का कारण विदेशी,

आक्रमण विशेषकर आर्यो का आक्रमण प्रमुख था। घोड़ों और रथों का उपयोग करने वाले आर्य–आक्रमणकारियों से यहां के निवासी सफल विरोध नहीं कर सके और आर्यो ने इस सभ्यता को नष्ट कर दिया। अथवा कह सकते हैं कि आर्यो ने अपनी शक्ति से यहॉ के निवासियों को अपने पृथक अस्तित्व को समाप्त करने में सफलता प्राप्त की।

1.2.4 सारांशः–

मानव एवं उसकी सभ्यता का उदय का ज्ञान मुलतः धुंधला एवं रोशनीनीहित रहा है। वह प्रारंभ में अंधकारमय जीवन जीता था। पूर्व पाषाण काल का मानव असभ्य, जंगली एवं बर्बर था। वह मछली एवं छोटे–छोटे पशुओं को मारकर खाता था, हड्डी तथा पत्थरों के हथियारों का उपयोग करता था। वृक्षों के ऊपर वृक्षों के नीचे, कन्दराओं एवं नदी के कगारों में रहता था। कंदमूल, फल एवं पशुओं के मांस का सेवन करता था। छोटे–छोटे समूह में रहता था, कमर में छाल और पत्तों को धारण करता था। इनका केन्द्र दक्षिणी भारत और पश्चिमी भारत रहा था।

मध्य पाषाण काल में मानव ने अपने हथियारों में पशुओं की हड्डियों को सम्मिलित किया क्वार्टजाइट पत्थर के स्थान पर जैस्पट चर्ट और ब्लडस्टोन नामक पत्थर का प्रयोग किया। हथियार छोटे अर्थात 1 इंच के होते थे जिन्हें लकड़ी में लगाया जाता था। मुख्य रूप से शिकार करते थे और मृतकों को भूमि में गाड़ना आरंभ कर दिया था। पालतु पशु कुत्ता और ये पूरे भारत में फैले हुए थे।

उत्तर पाषाण काल के मानव ने निश्चित स्थान पर घर एवं ग्राम बसाकर रहना, आरंभ कर दिया था। उत्तम प्रकार के पैन हथियारों को बनाने का प्रयास किया था तथा पशुपालन एवं कृषि को भी अपनाने लगे थे। इनके भोजन में कंदमूल, फल, दूध, दही, रस, अनाज, मांस आदि था। वस्त्र, कपास, रंगों का ज्ञान हो गया था। पत्थर, हड्डी, सीप कौड़ी आदि के आभूषण पहनते थे। व्यवसायों के आधार पर जाति एवं वर्ग का वर्गीकरण हुआ था लेकिन ये वर्ग आपस में सम्पर्क नहीं करते थे अलग–अलग रहते थे। धार्मिक विचार, जीवन–मरण विचारों में स्थिरता, वृक्ष, लिंग भूत–प्रेतों की पेजा, मृतकों की हड्डियों को गाड़ना आदि का आरंभ हो चुका था। बोलियों का प्रचलन तथा शब्द भंडार में वृद्धि के साथ भाषा का प्रयोग भी किया जाने लगा था। इसी काल से कला का उदय और विकास भी प्रारंभ हो गया था।

भारत की प्राचीन सभ्यता सिंधुघाटी सभ्यता के नाम से जानी जाती है जो लगभग 5000 ई. पू. की है। इसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ों सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। यह सिंधु नदी के किनारे से देश के वृहत भाग में फैली हुई थी। विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में सबसे प्राचीन सभ्यता जानी जाती है। इस सभ्यता के जनक मिश्रित नस्ल के थे किन्तु अधिकांश जनता द्रविड थी।

सिंधुघाटी सभ्यता की विशेषताएं मुख्य रूप से वहां के नगर–निर्माण भवन निर्माण, बड़े–बड़े स्नानागार, आर्थिक जीवन, सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन, धार्मिक कला मुहरें मृतक संकार आदि से ज्ञात होती है।

1.2.5 अपनी प्रगति की जाँच (Check Your Progress):-

1. प्राचीन मानव प्रति के कालों का उल्लेख करें।
2. भारत की प्राचीन सभ्यता कौन सी है? तथा सभ्यता कितने समय पूर्व की है।
3. सिंधुघाटी सभ्यता को और किस–किस नाम से जाना जाता है?
4. सिंधुघाटी की सभ्यता की विशेषताओं का उल्लेख करें।

1.2.6 प्रदत्त कार्य (Assignments):-

सिंधुघाटी सभ्यता एवं वर्तमान समाज व्यवस्था की समानता पर एक तुलनात्मक चार्ट बनाईयें।

भूतकाल का बोध अनुभूति (Perception of the Past)

1.2.0 परिचयः—मनुष्य एक चेतनाशील प्राणी है अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में चेतना तथा बुद्धि का अधिक होना कहा जाता है। मानव प्राचीन समय से ही जिज्ञासु प्रवृत्मि का रहा है। उसके मन एवं दिमाग में अपने आस—पास के वातावरण, दिन रात का होना, प्रकृति के बारे आदि में हमेशा चिंतन होता रहा है। मानव का चिंतन विशेषकर भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने में भी रहा है। वह जितना चेतनाशील हुआ उतना वह अपने अतीत अर्थात भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य के बारे में रूचि लेने लगा। मानव अपने अतीत की पुर्नरचना करता है और तभी से इतिहास का जन्म होने लगता है। भूतकाल का बोध हमें क्रमशः इतिहास द्वारा ही ज्ञात होता है। इतिहास ही हमें बताता है कि अतीत या भूतकाल में ऐसा ही हुआ है या हुआ था।

अतीत या भूतकाल को जानने के लिए ज्ञान करना एक आवश्यक प्रक्रिया या कहें कि बिन्दु है। इस बिन्दु के द्वारा अनवरत सत्य की खोज का क्रम निश्चित किया जाता है और यह हमें विकास की ओर आगे बढ़ाने में सहायक होता है। ज्ञान की प्रगति पर ही भौतिक प्रगति की वृद्धि संभव है और ये दोनों प्रगति मानव मस्तिष्क की प्रगति पर निर्भर होती है। परिवर्तन मनुष्य जीवन का एक सत्य नियम है और इसलिये प्रगति हमें भूतकाल से अलग भी करती है। भूतकाल की घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन हमें भूतकाल का बोध भी कराता है। भूतकाल के तथ्यों पर घटनाओं का कल्पनात्मक चित्र भी दिखाता है जिसमें वर्णित घटनाएं अर्थपूर्ण होती है।

भूतकाल की प्रत्येक घटना तथ्यपरक, उद्देश्यपरक और अर्थपूर्ण तथा क्रमबद्ध होती है और इन्हीं के द्वारा हमें हमें उस भूतकाल का प्रत्यक्षीकरण होता है। इतिहास भी घटनाओं या विचारों की उन्नति का एक संबद्ध विवरण होता है उसी से हमें भूतकाल का बोध होता है। इतिहास का अपना एक बौद्धिक स्वरूप है इसी से भूतकाल का चित्र हमारे समक्ष उभरता है। भूतकाल या अतीत से ही मानव सभ्यता का भी बोध होता है जो कि मानव के कार्यो और उपलब्धियों का अभिलेख होता है।

अतः काल स्थान, व्यक्ति तथा घटनाएं भूतकाल एवं इतिहास की आधारभूत साधन है जो भूतकाल और इतिहास को प्रभावित करते हैं। इन साधनों के साथ ही हमें ऐतिहासिक भूतकाल को समझने में सहायता मिलती है।

1.3.1 भूतकाल (बोध):—

शब्द से अनुमान लगाया जाता है कि बीते समय, तिथियों आदि का ज्ञान ही भूतकाल है। भूतकाल से ही हमें तिथियों को, जो देश और जाति को संस्कृति तथा समाज की उन्नति का कारण हुई अपने मस्तिष्क में रखे तो हम यह न समझ सकेंगे कि एक घटना से दूसरी घटना और दूसरी घटना से तीसरी में समय के विचार से कितना भेद है। यही नही वरन् उस काल में अन्य राष्ट्रों में जो घटनाएं घटित हुई उनको भी नही समझ सकेंगे। दूसरे घटनाविहीन तथा जीवन विहीन समय से हमारा कोई अभिप्राय नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी ऐसे काल अथवा समय का कोई महत्व नहीं है जिसमें कोई विशेष घटना नहीं घटी हुई हो इसलिये कहा जाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से उस काल का ही महत्व होता है जिस काल में सृष्टि के जीवन क्रियाशील एवं सजीव रहें हैं। क्रियाशील और जीवनयुक्त समय का भूतकाल एवं इतिहास हमारे लिए उपयोगी है। अतः भूतकाल का बोध और इतिहास को पूर्णतया समझने के लिए समय का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है।

समय एक भावनात्मक वस्तु है, जो समझने और अनुभव के योग्य होती है परंतु व दृश्यमान नहीं है। समय का ज्ञान अपनी प्रकृति के अनुसार जटिल एवं कठिन वस्तु है, क्योंकि वह अपने में पूर्ण नही है। इसके विषय में हम दूसरी घटनाओं के संबंध के अभाव में कुछ नहीं कह सकते हैं। भूतकाल के बोध के लिए यह भी आवश्यक है कि समय का ज्ञान स्थूल रूप में हो जिससे भूतकाल की समझ बढ़ सके। अतः भावयुक्त विचार को दृश्यमान रूप में होना चाहिये।

प्रायः समय ज्ञान को समझने में भूल होती है। तिथियों, सन् संवतों को याद रखना ही समय—ज्ञान नहीं है। समय—ज्ञान वह शक्ति है जिसकी सहायता से हम जीवन और क्रियाशीलता का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, परंतु यह तभी संभव हो सकता है जबकि जीवन तथा क्रियाशीलता का संबंध घटनाओं से भी हो। दूसरे शब्दों हम कह सकते हैं कि समय की तिथियां सन् एवं संवतों

का भी महत्व है जब वे महापुरूषों घटनाओं तथा आंदोलनों को समझने क्रम स्थापित करने तथा उनकी प्राचीनता का आभास कराने में सहायता प्रदान करें। एक तरह से समय की स्वयं अपनी कोई सत्ता नहीं होती है। उसकी सत्ता घटनाओं वस्तुओं स्थान एवं महापुरूषों आदि के संबंध में है। इनका संबंध ही हमें बताता है कि समय–ज्ञान को बनाने वाले मुख्य तत्व कौन–कौन से है। इन तत्वों में स्थिति समय की दूरी समय की अवधि तथा समय का संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

1. **स्थिति (Location):-**जब तक हम तथ्यों की स्थापना समय एवं स्थान में नही करेंगे, तब तक समय की दूरी को नहीं नाप सकते हैं। अर्थात स्थानीयकरण का अर्थ है कि वस्तुओं तथा घटनाओं को या समय से चिन्हित किया जाये। एक बिन्दु या चिन्ह् दूसरे से संबंधित होता है। साधारण भाषा में कहा जा सकता है कि स्थिति का अर्थ–तिथियों को घटनाओं से स्थिर करना है। इस प्रकार स्थिति समय–ज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण वस्तु है जिसको कार्यरूप में लाना अत्यन्त आवश्यक है।
2. **समय की दूरी (Distance):-**दूरी का अर्थ समय की लंबाई है जो ऐतिहासिक व्यक्तियों महापुरूषों और हमारे बीच में होती है। यदि कहा जाये कि सन् 1630 में शिवाजी का जन्म हुआ। यदि व्यक्तियों को बताया जाये कि आज से बहुत साल पहले उनका जन्म हुआ था तो इससे भी उन्हें संतोष न होगा। वे यह जानना चाहेंगे कि शिवाजी का जन्म आज से कितने वर्ष पहले हुआ था। यदि व्यक्तियों को स्पष्ट रूप से यह बता दिया जाये कि आज से 359 वर्ष शिवाजी का जन्म हुआ था तो व्यक्ति आसानी से ग्रहण कर सकते है।। अतः इस समय के अंतर या दूरी के ज्ञान को हम भूतकाल के समय की दूरी कहेंगे।
3. **समय की अवधि (Duration):-** भूतकाल एवं ऐतिहासिक दृष्टि से समय की अवधि का विशेष महत्व है। ऐतिहासिक आंदोलन, युगों वंशों का ज्ञान हमें भूतकाल की समझदारी प्रदान करता है। कोई भी घटना जब या आंदोलन जब घटित होती है तो उसके पहले के कुछ कारण होते हैं जिसकी भूमिका या वातावरण तैयार रहता है। उसी तरह घटना के घटित हो जाने के बाद भी घटना का कुछ समय तक प्रभाव रहता है। जब तक वह घटना या आंदोलन व्यक्ति विशेष समाज राष्ट्र के वातावरण को प्रभावित करती रहती है, तब तक के समय को उस घटना या आंदोलन की अवधि कहते हैं। समय की अवधि की सहायता से हम अपने निर्णय का संतुलन कर सकते हैं। इसी से हम यर्थाथवादी एवं निर्णयात्मक ज्ञान ले सकते हैं। अवधि की सहायता से हम सरल रूप में आमुल की उन्नतियाँ, अवनति का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं।
4. **समय का संबंध (Relation of Time):-** भूतकाल या ऐतिहासिक घटनाओं आदि की तिथियाँ प्रायः हम स्मरण करते रहते हैं लेकिन ये तिथियाँ एक प्रकार से संख्या है, आंकड़ा है न कि वह स्वयं कोई पदार्थ है। जैसे–ईसा से 453 पूर्व सन् 1857 आदि का केवल इसलिये महत्व है कि इन तिथियों से महान भूतकाल की ऐतिहासिक घटनाओं का संबंध है। यदि इन तिथियों को हम समय स्तम्भ मान लेते हैं तो इन घटनाओं को समझने में सुगमता होती है। तिथियों और घटनाओं के साथ क्या संबंध है यह जानना ही समय का संबंध है।

1.3.2 **भूतकाल को समझने (बोध) के साधन (Means):-** भूतकाल को समझने के लिए तरीके एवं साधन मुख्यतः तीन हैं। इनके आधार पर भूतकाल एवं ऐतिहासिक घटनाओं का बोध आसानी से कर सकते हैं।

(अ)समय चार्ट (time Chart):-समय चार्ट से हम चित्रात्मक, तुलनात्मक तरीके से भूतकाल का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जिसमें राजाओं या शासकों के चित्रों को दिखाया जा सकता है। जैसे–बाबर का गद्दी पर बैठने की तिथि और उसके पास उसका चित्र हो, इसी प्रकार बाद की क्रमशः वंशावली का उल्लेख समय चार्ट में होगा तो भूतकाल को आसानी से समझ सकते हैं। इसी प्रकार घटना का चित्र भी हो सकता है। चौथी शताब्दी को समझने के लिये समुद्रगुप्त के अश्वमेघ–यज्ञ के घोड़े को चित्र देखेंगे, पाँचवी शताब्दी

के लिए स्कन्दगुप्त का चित्र, छटी शताब्दी के लिए अंजता की चित्रावली के नमूने का चार्ट आदि। इससे क्रम याद रखने तथा समझने में आसानी होती ह।। हम सम्पूर्ण राष्ट्रीय ऐतिहासिक घटनाओं या इतिहास को समझने के लिए तुलनात्मक समय चार्ट का प्रयोग कर सकते हैं जिसमें तिथि रेखा के दोनों ओर दो प्रकार की अथवा दो देशों की घटनाओं का उल्लेख हो। इसी प्रकार दक्षिण भारत की घटनाओं की तुलना भी समय चार्ट से ज्ञात की जा सकती है। एक ही सूची में कई प्रकार की घटनाएं भी पृथक–पृथक विभागों में देख सकते हैं जो संयुक्त समय चार्ट के रूप में हो।

(ब) समय रेखा (time Line):-समय रेखा भूतकाल एवं समय ज्ञान की समझ को विकसित करने के लिए सरल तथा प्रभावशाली तरीका एवं साधन है। यदि हम किसी के सामने तिथियों का ढेर बिना किसी क्रम के प्रस्तुत करें तो उनको समय का कुछ भी आभास नहीं होगा। अतः तिथियों का ज्ञान हमें क्रमशः एक तिथि के उपरांत दूसरी तिथि का ज्ञान समझने में आसानी होती है। इसलिये हमको इन तिथियों को क्रमानुसार समझने के लिए समय रेखा की सहायता लेनी चाहिये क्योंकि इन पर तिथियों को कालक्रमानुसार उपस्थित रहता है इसी प्रकार तिथियों को प्रस्तुत करते समय भी पैमानों एक सा ग्रहण करना या रखना चाहिये और विभागों में समानता रखनी चाहिये। यदि हम समय रेखा बना कर भूतकाल का बोध करना या कराना चाहते हैं तो कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिये जैसे–

1. तिथियां बहुत थोड़ी तथा चुनी हुई हों। ये तिथियां पर्याप्त समय को ढकती हों। अर्थात तिथियॉ ऐसी चुनी जाये जो कि मुख्य घटनाओं, मानवीय कार्यो एवं आंदोलनों से संबंध रखती हो।
2. तिथियों के चयन में इस बात का ध्यान दिया जाये कि व प्रभावपूर्ण हों और समाज में सामंजस्य स्थापित करने में उनका पूर्ण हाथ हों। इन तिथियों की विशेषता में हमें उस अवधि की शासन व्यवस्था, सामाजिक रहन–सहन, कृषि–व्यापार, कला आदि का स्तर एक समान रहा हो। इसके अतिरिक्त उन तिथियों को चुना जाना चाहिये जो किसी काल विशेष की उन्नति, अवनति एवं परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करती हो।
3. समय रेखा बहुत अधिक छोटी नहीं होनी चाहिय। समय ज्ञान कराने के लिए कहानियों को कालानुक्रम के अनुसार एक रेखा पर प्रदर्शित किया जा सकता है। इनका उपयोग वंश के उत्थान एवं पतन अथवा किसी विचारधारा के उत्कर्ष और अपकर्ष को प्रदर्शित करने के लिए भी प्रयोग में ला सकते हैं।

(स) समय ग्राफ (time Graph):-साम्राज्यों या विचारों के उत्थान पतन को ग्राफ चार्ट से समझा जाता है। इस प्रकार के चाटों में घटनाओं का काल संबंध स्पष्ट होता है। आधुनिक काल के ऐतिहासिक एवं भूतकाल का बोध हम तुलनात्मक समय ग्राफ से प्राप्त कर सकते हैं जैसे कि–

समय रेखा एवं समय ग्राफ
छत्रपति शिवाजी के कार्यकाल से संबंधित समय–ग्राफ

1630 → जन्म

1635 →
मुगलों के द्वारा शाहजी पर विजय
शिवाजी तथा उसकी माता को भेजना

1640

→

1645 शिवाजी ने स्वराज के लिए रोहितेश्वर मंदिर में प्रतिज्ञा की।

तोरण किले पर शिवाजी का अधिकार
दादा कोणदेव की मृत्यु

1650

1655 →
जवाली के किले पर अधिकार–अफजल खाँ की सेना का विनाश ।

अजफल खाँ की प्रतापगढ़ में मृत्यु ।

1660

शाहस्ता खाँ पर अचानक आक्रमण।
सूरत की लूट शाहजी की मृत्यु।

1665 → पुरन्दर की संधि

शिवाजी का आक्रमण।

1670 → तानाजी ने सिंहगढ़ पर अधिकार किया।

रामदास जी से मिलन।

1680 → रायगढ़ में शिवाजी की मृत्यु।

क्रमबद्ध रूप से प्रयोग की जा सकने वाली समय–रेखा

1700 →
2
4
6 औरंगजेब की मृत्यु–बहादुरशाह का राज्याभिषेक ।
8 शाह का मुक्तिकरण ।

1710 →
12 जहाँदारशाह का राज्यभिषेक–बालाजी विश्वनाथ पेशवा बना।
14 सैयद भाईयों के द्वारा फरूखसियर को गद्दी पर बैठाना।
16 ईस्ट इंडिया कम्पनी को ग्रांट प्रदान की गई।
18 फरूखसियर को गद्दी से हटाना और सैयद भाईयों द्वारा मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाना

1720 → सैयद भाईयों का पतन ।
22 हैदराबाद तथा अवध का स्वतंत्र राज्य के रूप में उत्थान।

24

26 सआदखाँ तथा चीन का किलचखों का नेतृव्य ।

28

1730 →

32

34 मराठों का मालवा पर अधिकार।

36 नादिरशाह का आक्रमण।

38 बेसिन पर मराठों का अधिकार।

1740 → बालाजी बाजीराव पेशवा।

42

44

46

48 शाह की मृत्यु, पूना में सत्ता की स्थापना, निजाम की मृत्यु।

1750 →

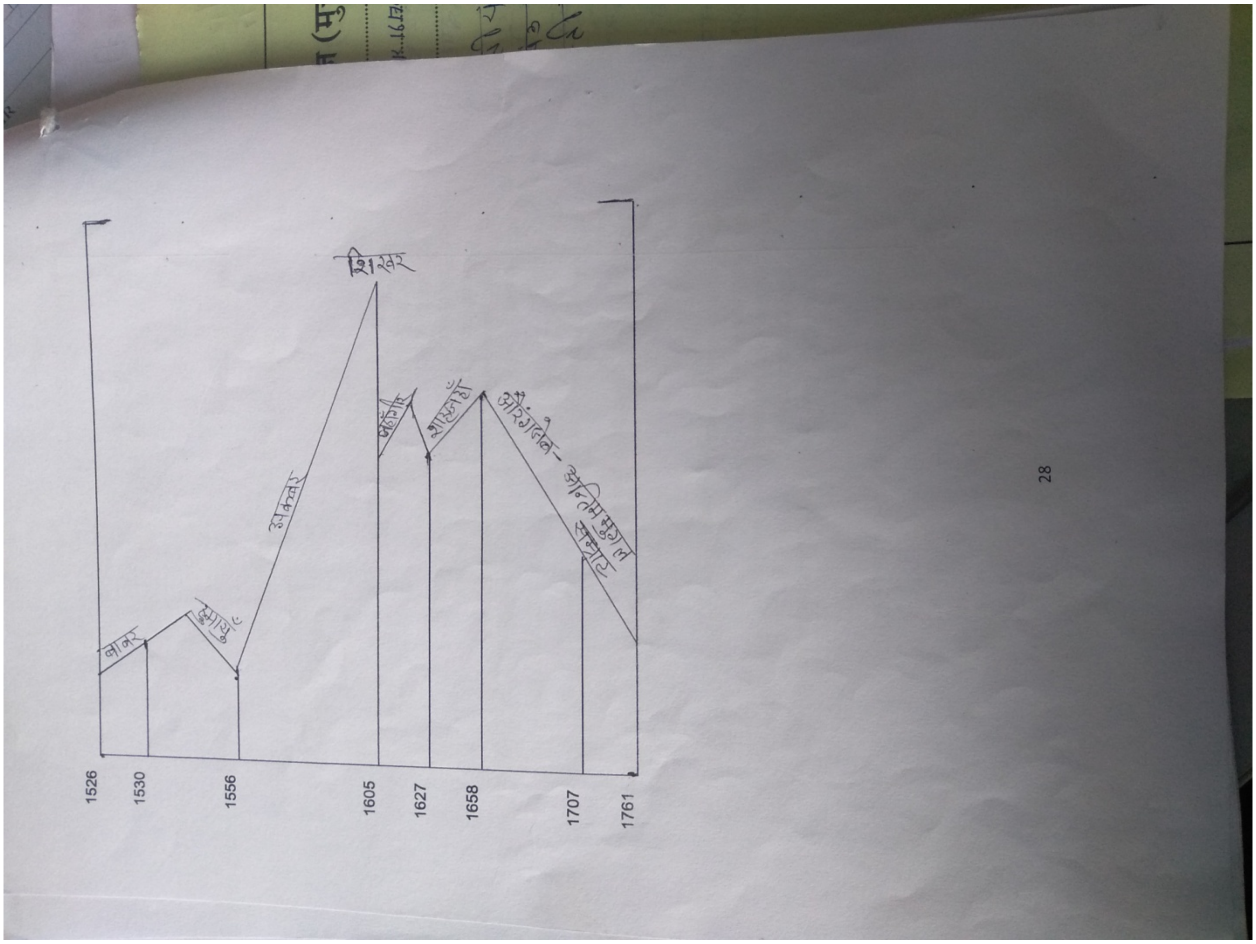

1.3.3 **सारांश (Summary: things to Remember):-**भूतकाल का बोध हमें बीते हुए समय तिथियों, घटनाओं आदि से होता है। समय, तिथियों घटनाओं का क्रमशः संबंध हमें भूतकाल का बोध कराता है। इन्हीं के द्वारा विचारों की भिन्नता भी ज्ञात होती है। भूतकाल का बोध ही हमें बताता है कि मानव एवं संस्कृति का विकास किस प्रकार हुआ आदि। भूतकाल का बोध करने के लिये हमें सबसे पहले समय के ज्ञान को समझना आवश्यक है। समय के साथ—साथ समय ही दूरी समय की अवधि समय का संबंध आदि का ज्ञान भी होना चाहिये। इसके लिए हम समय चार्ट समय रेखा एवं समय ग्राफ जैसे साधनों का सहारा भी ले सकते हैं।

1.3.4 **अपनी प्रगति की जाँच करें (Check Your Progress):-**

1. भूतकाल का बोध किसे कहते है?
2. समय अवधि एवं समय की दूरी में क्या अंतर है?
3. समय एवं घटनाओं को ज्ञात करने के साधन कौन—कौन से हैं?

1.3.5 **प्रदत्त कार्य/गतिविधि (Assignment/Activity):-**किसी एक ऐतिहासिक घटना पर समय रेखा समय चार्ट एवं समय ग्राफ बनाईये।

ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के स्त्रोत व तरीके
(Was and Sources of Understanding the Historical Past)

1.3.0 **प्रस्तावनाः**—इतिहास को समझने के लिए उस समय के स्त्रोत को समझना अतिआवश्यक है। यह स्त्रोत ही हमें समकालीन घटनाओं, तथ्यों आदि का ज्ञान प्रदान करते हैं इनके द्वारा ही म इतिहास को क्रमशः जान सकते हैं ई. पू. छठी शताब्दी (600 BC) से पहले के भारतीय इतिहास को जानने के समकालीन स्त्रोत सीमित मात्रा में प्राप्त होते हैं। लेकिन ई. पू. छठी शताब्दी से प्रारंभ होने वाले इतिहास के स्त्रोत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। भारत वर्ष के प्राचीन निवासियों को लेखन—कला का ज्ञान प्राप्त था विभिन्न विषयों पर कई ग्रंथ रचे गये थे, किन्तु कोई भी ग्रंथ ऐसा नहीं है जिसके आधार पर भारत के क्रमबद्ध इतिहास का पूर्ण प्राप्त हो सके। उस काल के विद्वानों की इतिहास संबंधी कल्पना आज साहित्यकारों आदि ने तिथि तथा घटनाचक्र पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया।

भारत में यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस, रोमन इतिहासकार लिबी, तुर्की, इतिहासकार ज्ञान को विस्तृत ज्ञान का ही अंग माना और उसे धर्म, नैतिकता, राजनीति, अर्थव्यवस्था, साहित्य, दर्शन आदि के साथ सम्मिलित कर लिया। ज्ञान की पृथक शाखा के रूप में इतिहास की रचना मुसलमानों के आने के समय से हुई। भारत के प्राचीन इतिहास और उसकी सभ्यता को क्रमशः जानने का कार्य अंग्रेज विद्वानों ने आरंभ किया था। जिससे कई भ्रांतिपूर्ण धारणाओं का निर्माण हुआ। अब भारतीय विद्वानों, आधुनिक भारतीय इतिहासकारों तथा पुरातत्ववेत्ताओं के अथक प्रयास ने भ्रांतियों को दूर करके प्राचीन भारत के इतिहास को उसका उचित स्थान प्रदान किया और आज भी भारतीय इतिहासकारों द्वारा त्रुटियों का निराकरण किया जा रहा है। अंग्रेज एवं भारतीय विद्वानों ने भारतीय इतिहास की खोज में अपना योगदान दिया जैसे—सर जॉन मार्शल और श्री राखलदास बनर्जी ने 1922 ई. में सिंधु नदी की घाटी की सभ्यता की खोज की।

1.4.1 ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के स्त्रोत

1. **स्त्रोत (Sources):-** प्राचीन ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के स्त्रोतों को हम निम्न वर्गो में वर्गीकृत कर सकते हैं—

   (I) साहित्यिक स्त्रोत।

   (II) पुरातत्व संबंधी स्त्रोत

   (I) **साहित्यिक स्त्रोतः**—के अंतर्गत धार्मिक साहित्य तथा धर्म निरपेक्ष साहित्य आते हैं। जो इस प्रकार हैं—

   (अ) **धार्मिक साहित्यः**—इनको तीन वर्गो में विभाजित किया गया है जिसमें हिन्दु धर्म, बौद्ध एवं जैन धर्म—ग्रंथ सम्मिलित हैं। हिन्दू धर्म—ग्रंथ सम्मिलित हैं।

   हिन्दु धर्म—ग्रंथों में प्रमुख स्थान संहिताओं का है जिनमें चारों वेद—ऋग्वेद, सामवेद,यजुर्वेद,अर्थवेद सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण (उेतरेय, शतपथ, ग्रहसूत्रः पंचविश आदि) उपनिषद, अरण्यक, सूत्र ग्रंथ (धर्म सूत्र, ग्रहसूत्र कल्पसूत्र आदि) स्मृति—ग्रंथ (मनु—स्मृति नारद—स्मृति, बृहस्पति—स्मृति आदि) पुराण विष्णु—पुराण मत्यस्य—पुराण, वायु—पुराण आदि कुल संख्या 18 और गाथा—ग्रंथ (रामायण और महाभारत) प्रमुख ग्रंथ हैं। इनसे हमे वैदिक काल और उसके बाद के राजनीतिक इतिहास तथा तत्कालीन सभ्यता का ज्ञान प्राप्त होता है जो हमारी ऐतिहासिक समझ को बल प्रदान करता है। वेदों के द्वारा हमें उस समय की सभ्यता का ज्ञान प्राप्त होता है आर्यो के विस्तार, उनके धार्मिक विश्वासों तथा कर्मकांड की पद्धतियों तथा उपनिषदों से आर्यो के दर्शन, आत्मा, ईश्वर तथा आत्मा के आवागमन आदि सिद्धांतों का ज्ञान मिलता है। सूत्र ग्रंथों से यज्ञ संबंधी नियमों, मनुष्यों के लौकिक एवं परालौकिक, धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक कर्त्तव्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। स्मृतियां हमें 300 ई. पू.

600 ई. पू. के सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान कराती है। पुराण महाभारत के युद्ध के उपरांत जिन राजवंशों ने ईसा की छठी शताब्दी तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में राज किया उसका ज्ञान देते हैं। इनमें प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास को जानने में सहायता प्राप्त होती है रामायण और महाभारत से उत्तर—वैदिक के आर्यो के जीवन का ज्ञान होता है।

बौद्ध धर्म—ग्रंथों को पीटक पुकारा गया है इन ग्रंथों से हमें उस समय के बौद्ध संगठन नियम बौद्ध धर्म के उपदेश, बौद्ध दर्शन, आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। महात्मा बुद्ध से संबंधित 549 जातक—कथाओं, विभिन्न धार्मिक ग्रंथ (महायान, व्रजयान) की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। बौद्ध धर्म हमें प्राचीन ग्रंथ हमें प्राचीन भारत के राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का ज्ञान देते हैं। इनसे विदेशों से हुए सांस्कृतिक संबंधों का ज्ञान भी होता है।

जैन ग्रंथों को 'आगम' नाम से पुकारा जाता है। बाद में उनका संकलन पूर्व नाम 14 ग्रंथों में किया गया और उसके पश्चात् उनका संकलन अंग नामक ग्रंथों में हुआ उनमें से एक खो चुका है। 12 अंग अभी भी प्राप्त हैं। इनसे चन्द्रगुप्त मौर्य काल की घटनाओं की तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

(ब) धर्म—निरपेक्ष साहित्यः—के अन्तर्गत विदेशियों के यात्रा वर्णन, जीचन चरित्र और ऐतिहासिक ग्रंथ आते हैं। तथा जन साहित्य भी इसी में सम्मिलित है। विदेशियों के यात्रा वर्णन में ग्रीक, चीन, मुसलमान लेखक प्रमुख है। यूनानी व्यक्ति मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इंडिया' के बारे में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में लिखा था।

समकालीन जीवन चरित्र भी उस समय के इतिहास को जानने में बहुत सहायता करता है,जैसे— हर्ष—चरित, विक्रम—देव—चरित, नवसाहसांक—चरित, हमीर काव्य, पृथवीराजविजय, भोज—प्रबंध रामचरित, कुमारपाल—चरित, कीर्ति कौमुदी, राजतरंगिनी आदि। राजतरंगिनी में कश्मीर के इतिहास की जानकारी का वर्णन किया गया है तमिल भाषा में लिखे गये विभिन्न ग्रंथ मुख्यतः संगम साहित्य दक्षिण—भारत के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। जन—साहित्य जैसे—कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पातांजलि का महाभाष्य पाणिनी का व्याकरण—ग्रंथ,मुद्राराक्षस, प्रियदर्शिका आदि विभिन्न विषयों के ग्रंथें से मौर्यकाल, परमार वंश शुग—वंश के इतिहास तथा तत्कालीन समाज की जानकारी मिलती है। साहित्य हमें अतः सभी ऐतिहासिक ज्ञान की खोज एवं बोध में सहायता प्रदान करते हैं।

2. **पुरातत्व संबंधी खोजः**—देश भारत के भूतकाल के इतिहास को जानने एवं समझने में पुरातत्व संबंधी स्त्रोतों का भी विशेष महत्व होता है। पुरातत्व के स्त्रोतों से हमें इतिहास की अनेक अप्राप्त एवं खोई हुई कड़ियों को पाने और जोड़ने में सहायता मिलती है इन स्त्रोतों को हम निम्नलिखित भागों में बांट सकते हैं—
   1. अभिलेख
   2. कला—कृतियाँ
   3. स्मारक और भगनावशेष
   4. मिट्टी के बर्तन और सिक्के

   भारतीय अभिलेख ने भारतीय इतिहास के ज्ञान को प्राप्त करने में विशेष सहायता प्रदान करते है। ये अभिलेख मुख्यतया शिलाखंडों, कला—कृतियों, मूर्तियों और ताम्रपत्रों, पर प्राप्त हुए हैं। इनके अंतर्गत कुछ राजशासन, कुछ प्रसस्ति, कुछ दान—पत्र, कुछ समर्थक पत्र और कुछ स्मारक भी हैं। इनमें से अनेकों को राजाओं ने लिखवाया था। इनमें से प्रमुख स्थान समुद्रगुप्त, सम्राट अशोक के स्तम्भों एवं शिलालेखों का है, जो भारत में विभिन्न स्थानों पर

पाये गये हैं। ये अभिलेख ग्रम्ही अथवा खरोष्ठी लिपि (जो दाहिनी और से बायी और लिखी गयी थी) में लिखे गये हैं। अशोक के पश्चात् के अभिलेखों को दो भागों में बांटा गया है–शासकों के अभिलेखों और सामान्य व्यक्तियों द्वारा लिखवायें गये अभिलेख। सामान्य व्यक्तियों द्वारा लिखवाये गये अभिलेखों से हमें राजवंशों के इतिहास उनके राज्य की सीमाएं वंशावली आदि को जानने में सहायता प्राप्त होती है। इनके द्वारा निजी अभिलेख बहुत मंदिरों या मूर्तियों पर अंकित हैं। विदेशों से भी कुछ अभिलेख ऐसे प्राप्त हुए हैं जिनसे भारतीय इतिहास को जानने में सहायता मिली है।

भित्ती–चित्र, स्तम्भ, मूर्तियाँ, मंदिर, खिलौने, आभूषण आदि विभिन्न वस्तुएं कला के नमूनों के रूप में भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त की गई हैं जो हमें प्राचीन भारतीय इतिहास की संस्कृति सभ्यता का बोध कराती हैं। सिंधुघाटी के आभूषण, खिलौने और मूर्तियाँ अशोक के स्तम्भ, बौद्ध प्रतिमाएं, अंजता सित्तानवासल, बादामी एवं बाघ गुफाओं के भित्ती–चित्र आदि अमूल्य स्त्रोत हैं जो भारतीय ऐतिहासिक इतिहास का बोध कराते हैं।

विभिन्न स्थानों पर खुदाई से प्राप्त अवशेषों से प्रगैतिहासिक काल के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इसी से हमें ज्ञात हुआ है कि मानव का अस्तित्व भारत में पूर्व–पाषाण काल से या उससे पहले भी रहा है। हस्तिनापुर की खुदाई हमें महाभारत के युद्ध का ज्ञान देती है। भारत में लोहे के अस्तित्व ब्लूचिस्तान, गंगा, यमुना, दोआब, उत्तर–पश्चिम भारत, मध्य–भारत में प्राप्त हुए हैं। इनसे उस समय के आर्थिक विकास, सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने में सहयोग प्राप्त हुआ है। बाद के समय में इतिहास को जानने में अवशेषों, इमारतों और समस्याओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। स्मारकों और भग्वानशेषों में बौद्ध स्तूप, हिन्दु मंदिर के अवशेष आदि हैं। जो आर्य सभ्यता से लेकर हमें मुस्लिमकाल तक के इतिहास का बोध कराते हैं। इनसे स्थापत्यकला, सामाजिक, आर्थिक विषयों से संबंधित ज्ञान भी प्राप्त होता है।

भारत में उस समय मिट्टी के बर्तन भी हमें मिट्टी की जांच, कला एवं रंग का ज्ञान, इनकी आयु का पता लगाकर इतिहास के समय का बोध कराने में सहायता प्रदान करते हैं।

प्राचीन समय में खुदाई आदि से प्राप्त सोने, चांदी, मिट्टी तथा तांबे के सिक्के ऐतिहासिक समझ को बढ़ाने में सहायक रहे हैं। ये सिक्के सम्राटों, व्यापारियों एवं व्यक्तियों द्वारा मुद्रित थे। यूनान से भारतीयों को सिक्कों की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। इन पर अंकित देवताओं पशु–पक्षियों की आकृति लिपि, आदि हमें विभिन्न विषयों का भी ज्ञान देती है।

उपयुक्त सभी स्त्रोत हमें ऐतिहासिक इतिहास को समझने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत

1. साहित्य
   - धार्मिक साहित्य
     - हिन्दु
       - संहिताएं (चारवेद)
       - ब्राह्मण (एतरेय,शतपथ) आदि
       - उपनिषद ग्रंथ
       - अरण्यक ग्रंथ
       - सूत्र ग्रंथ (गृह सूत्र, धर्म सूत्र, कल्प सूत्र आदि)
       - स्मृति ग्रंथ (मनुस्मृति, नारद स्मृति आदि)
       - पुराण (विष्णु पुराण, वायु पुराण आदि)
       - गाथा ग्रंथ (रामायण और महाभारत)
     - बौद्ध
       - 1.त्रिविटक
         - विनयपिटक
         - सुत्तपिटक
         - अभिधम्मपिटक
       - 2. जाताककथाएं
     - जैन
       - (आगम) 14 पूर्व → 12 अंग (एक खो गया है)
   - धर्म निरपेक्ष साहित्य
2. पुरातत्व संबंधी
   - अभिलेख कला–कृतियाँ
   - स्मारक एवं भग्नावशेष
   - मिट्टी के बर्तन
   - सिक्के और मुहरें

1.4.2 ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के तरीके(Was of Understanding the Historical Past):-

ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के लिए हम किसी एक तरीके से नहीं समझ सकते हैं। भूतकाल को समझने के लिए हमें कई ढंगों तरीकों अथवा साधनों का सहारा लेना होता है। मुख्यतः एम ऐतिहासिक स्त्रोतों या आधार पर भूतकाल को समझ सकते हैं। भूतकाल का अध्ययन करना एक बहुत ही कठिन कार्य है। वर्तमान समय में रहने वाला मनुष्य व्यक्तिगत रूप से इस बात का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है कि शताब्दियों पूर्व किसी देश में क्या हुआ था? अतः मनुष्य निर्थक तथा काल्पनिक कहानियों के आधार पर भूतकाल को नहीं समझ सकता है। वास्तविकता का वर्णन करने हेतु उस समय के कुछ प्रमाणित तथ्य स्त्रोत या आधारों का होना आवश्यक है तभी हम भूतकाल का बोध कर सकते हैं। क्योंकि तथ्य ही वास्तविक आधारों पर आश्रित होते हैं। अतः उस समय जो व्यक्ति उपस्थित थे, उन्होनें जो घटनाएं देखी और उन्हें लिखकर रखा अथवा उनके पत्र–व्यवहार पर इतिहासकार को निर्भर रहना पड़ता है। इन प्रमाणों

और आधारों को चाहें वे लिखित हैं अथवा अलिखित, तथ्य कहलाते हैं। तथ्य ही हमारे भूतकाला के ऐतिहासिक स्त्रोत हैं। जिनके द्वारा भूतकाल का समझा जा सकता है।

स्त्रोत भूतकालीन घटनाओं द्वारा छोड़े गये शेषचिन्ह होते हैं। ये शेषचिन्ह ही घटनाओं को वास्तविकता प्रदान करते हैं। इन शेषचिन्हों की सफलता से अतीत की घटनाओं को तार्किक एवं क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त किया जाता है। भूतकाल के छोडे हुए शेष चिन्ह हमें कई स्त्रोतों के रूप में मिलते हैं जैसे– पुरातात्विक स्त्रोत, साहित्यक स्त्रोत, मौखिक परम्पराएं आदि आते हैं। (इनकी चर्चा पूर्व में की गई है) भूतकाल के प्राप्त समस्त स्त्रोत विश्वसनीय नहीं होते हैं। जैसे– कि पृथ्वीराज–रासो को प्रमाणयुक्त स्त्रोत के रूप में उपयोग नहीं कर सकते। अतः भूतकाल को समझने के लिए स्त्रोत का उपयोग सर्तकता के साथ करना चाहिये। परीक्षण के आधार पर स्त्रोत विश्वसनीय की जांच लगभग तीन रीतियों से की जा सकती है–

1. स्त्रोत के रचियता ने पक्षपातपूर्ण ढंग से अपने पात्र का विवेचन तो नहीं किया है।
2. यदि किसी विषय पर परस्पर विरोध विचारधारायें प्रचलित हैं तो उसे उनकी प्रमाणिकता आलोचनात्मक ढंग से जांचनी चाहिये और आवश्यकतानुसार अपने निर्णय का भी उपयोग करना चाहिये।
3. स्त्रोतों की तिथियों की अशुद्धियों की ओर भी ध्यान देना चाहिये। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, कि स्त्रोतों की जांच कालक्रम के आधार पर करनी चाहिये।

ब्राह्राण पर आज तक जो कुछ हुआ या जो कुछ होते हुए बीत रहा है उसका क्रमशः ज्ञान इतिहास होता है। इस बीते हुए समय को ही सामान्यतः भूतकाल या अतीत कहा जाता है। जिसका संबंध समय से होता है। समय या काल (Period) के साथ–साथ व्यक्ति स्थान एवं घटनायें भी हमें भूतकाल का बोध कराने में सहायक होती हैं

भूतकाल के बोध की सर्वप्रथम अंग एवं धुरी समय का काल है। इसी के द्वारा भूतकाल और इतिहास को विश्वसनीयता, गति और अर्थ प्राप्त होता है। जो भूतकाल की समझ (बोध) को प्रबलता प्रदान करता है। मानव की जिज्ञासा प्रवृत्ति के प्रश्नों जैसे–कब, कैसे कहाँ, काल–निर्धारण से ही प्राप्त होता है। समय के साथ तिथियों का निर्धारण भी हमें भूतकाल का बोध कराती है। काल के आधार पर ही इतिहास में मानव विकास एवं संस्कृति को बांटा जाता है जैसे–पाषाण काल, नव–पाषाण ताम्रकाल लौह युाग आदि। काल ही मानव की प्रगति मानव की आवश्यकताओं अविष्कार मानव के ज्ञान का विज्ञान कब हुआ आदि का बोध कराता है। समय ही हमें बताता है कि कब से कब तक हुआ।

व्यक्ति (Person):- व्यक्ति के कार्य एवं उपलब्धियाँ हमें भूतकाल का बोध कराने में सहायक होती है। चूँकि सभी व्यक्ति भूतकाल को बोध नहीं कराते वरन् वे व्यक्ति जो इतिहास या अतीत को दिशा प्रदान करने में सहायक होते हैं जिनके द्वारा सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में योगदान देकर अपनी बुद्धि बल से साम्राज्य निर्माण किया है। भूतकाल के बोध में सहायक माने जा सकते हैं।

भूतकाल का बोध हमें व्यक्तियों की मेहनत से भी होता है जैसे–ताजमहल का निर्माण मजदूरों की मेहनत का परिचायक है। इसी प्रकार गांधी जी की दांडी यात्रा की सफलता उस यात्रा में सम्मिलित उनके कई अनुयायियों की भूमिका पर निर्भर थी। इसी प्रकार 1857 की क्रांति में भी कई व्यक्तियों का योगदान था।

घटनास्थल/स्थान (Place):- भूतकाल के बोध में उन्हीं स्थानों का महत्व है जहां कोई विशिष्ट घटना घटित होती है। अतः स्थान को घटना स्थल भी कहा जा सकता है। भारत में हड़प्पा नामक स्थान का महत्व इसलिये है कि सिंध घाटी की सभ्यता के सभी स्थानों की खोज सबसे पहले यहॉ 1921 में हुई

थी। इसी तरह दजला–फरात नदी घाटी में मेसोपोटामिया की सभ्यता विकसित हुई थी। मेसोपोटामिया का शाब्दिक अर्थ होता है 'नदी के बीच की भूमि' जो इराक में है। नल नदी घाटी भी अपने ऐतिहासिक स्थल के रूप में महत्व रखती है क्योंकि यहाँ मिस्त्र की प्राचीन सभ्यता ने जन्म लिया था। ऐतिहासिक घटना स्थल के साथ ही प्रसिद्ध व्यक्तियों के जन्म स्थान, युद्धों, प्रमुख संधियों के स्थान भी भूतकाल की समझ या बोध को बढ़ाने में महत्वपूर्ण होते हैं।

घटना (Tragedy):- काल व्यक्ति एवं स्थान किसी घटना का ही अंग होते हैं जो भूतकाल के बोध का साधन बनते हैं। यह एक तरह से इतिहास ही होता है क्योंकि घटना के द्वारा हमें निश्चित दिशा प्राप्त होती है इसी से काल व्यक्ति और स्थान भी जुड़े हुए हैं। जैसे कि 1 सितम्बर 1939 ई. हिटलर द्वारा पौलेण्ड पर आक्रमण ऐतिहासिक घटना थी जो द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बनी थी। इसी प्रकार अकबर एक व्यक्ति है, उसका काल है 15 अक्टूबर 1542, और स्थान है अमरकोट। इन उदाहरणों से ज्ञात होता है, कि काल या समय, व्यक्ति, घटना एवं स्थान विशेष रूप से हमें भूतकाल का बोध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1.4.3 सारांश (Summary: Things to Remember):- ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के लिए हमें प्राचीन स्त्रोतों का सहारा लेना चाहिये। ये स्त्रोत कई प्रकार के होते हैं जैसे– साहित्य, धार्मिक साहित्य, पुरातात्विक संबंधी खोजे, अभिलेख कला–कृतियां, स्मारक, भग्नाशेष, सिक्के, मिट्टी के बर्तन आदि।

ऐतिहासिक भूतकाल को कई तरीकों से समझा जा सकता है जैसे–घटना को समझना, घटना के समय स्थान एवं स्थिति को समझना, शेष अवशेषों की जांच करके समझना, कारण एवं प्रभाव के आधार पर समझना आदि। समझते समय हमें पक्षपात को अपनी समझ में स्थान नहीं देना चाहिये। तथ्यों की प्रमाणिकता की भी परख करना चाहिये, तिथियों की शुद्धता आदि का भी ध्यान रखना चाहिये।

1.4.4 अपनी प्रगति की जाँच करें (Check Your Progress):-

1. ऐतिहासिक भूतकाल को किन–किन स्त्रोतों के आधार पर समझा जा सकता है?
2. ऐतिहासिक भूतकाल को समझने के साधन या तरीकों का उल्लेख कीजिये?
3. ऐतिहासिक भूतकाल को समझते समय क्या–क्या सावधानियाँ रखना चाहिये?

1.4.5 प्रदत्त कार्य/गतिविधि (Assignment/Activity):- अपने जिले में स्थित संग्रहालय का अवलोकन कर वहां रखे हुए प्राचीन ऐतिहासिक स्त्रोतों की सूची बनाईये।

भारत एक राजनीतिक सत्ता के रूप में: परिवर्तन और निरन्तरता
(**India as Political Entry: Change and Continuity**)

1.5.0 प्रस्तावनाः– प्राचीन समय से भी भारत विभिन्न भागों में विभक्त रहा है। जिससे कई कारण थे जैसे– भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति, सांस्कृतिक एकता का अभाव, आध्यात्मिक उन्नति का प्रभाव, भारतीय संस्कृतियों अन्य संस्कृतियों का सम्मिश्रण, साम्राज्य भावना का प्रभाव एवं विभिन्न राज्यों का उदय होना आदि। इन कारणों से न सिर्फ भारतीय समाज एवं संस्कृति में एकता का अभाव रहा वरन यहाँ कि (भारत) की राजनीति पर भी गहरा प्रभाव हुआ। प्राचीन, मध्यकाल एवं वर्तमान काल में हमें भारत के राजनीतिक दृष्टिकोण में शासन

व्यवस्था के तीन रूप दिखाई देते है– गणतंत्र एवं कुलीन शासन व्यवस्था, राजतंत्र व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक व्यवस्था।

राजनीतिक सत्ताः– प्राचीन सभ्यता के विकास के साथ ही भारत में एक राजनीतिक व्यवस्था भी जन्म लेने लगी थी। वैदिक काल में राज्य को राष्ट्र पुकारा जाता था। जिसका प्रधान राजा होता था और जिस राजा के पास अधिक राज्य होते थे वह सम्राट कहलाता था। राष्ट्र जनों में बँटा होता था। जन का प्रधान रक्षक या गोप कहलाता था। जन विशों में विभाजित होता था जो जिलों की भाँति थे। विश का प्रधान विशपति कहलाता था। विश (ग्रामों) में विभाजित होते थे और ग्राम के प्रधान को ग्रामणी कहते थें। गाँवों में विभिन्न कुल (परिवार) रहते थे और कुल के प्रधान को कुलप, कुलपति, अथवा गृहपति कहा जाता था।

उत्तर वैदिककाल में आर्यों के विस्तार के साथ–साथ राज्यों और राजवंशों में परिवर्तन हुए। इस प्रकार एक गंभीर परिवर्तन यह भी हुआ था कि राज्यों का निर्माण कुल के आधार पर न होकर भौगोलिक आधार पर होने लगा। अतः पूर्व वैदिक का राजनीतिक संगठन क्रमशः नष्ठट हो गया और क्षेत्रीय आधार पर राज्यों का निर्माण होने लगा।

आर्यों के जनपद के उपरांत ई.पू. छटी शताब्दी अथावा महात्मा बुद्ध के समय भारत छोटे–छोटे कई राज्यों में बंटा हुआ था। इनमें से अधिकांश राजतंत्र थे परन्तु कई राज्य गणतंत्र या कुलीनतंत्र भी थे। इन राज्यों के साधन जैन और बौद्ध धर्मों के ग्रन्थों के साथ ब्रहाण ग्रंथ भी हुआ करते थे। जिनमें राजनीतिक सत्ता संबंधी संरचनाओं आदि का उल्लेख आदि हुआ करता था।

राजनीतिक सत्ता दो वर्गो में रही हैं–(1) गणतंत्र या कुलीनतंत्र (2) राजतंत्र।

(1) गणतंत्र या कुलीनतंत्र :– बौद्ध ग्रंथों में प्रमुख गणतंत्रीय अथवा कुलीनतंत्रीय राज्यों एवं जातियों का उल्लेख है जो इस प्रकार है–

1. **कपिलवस्तु के शाक्य**– ये हिमाल की तराई में नेपाल की सीमा के निकट रहते थे। वे अपने को सूर्यवंशीय इक्ष्वाकु– वंश का मानते थे।
2. **समसुभगिरि के भग्ग**– इनका राज्य निर्जापुर जिले के निकट था।
3. **अल्लपकप्प केबुलि**– इनकी सीमाएं शाहबाद और मुजफ्फरपुर के बीच में कहीं थी।
4. **केसपुत्त के कलाप**– इनके स्थान का ठीक–ठीक पता नहीं चला है।
5. **रामगात के कोलिय**–इनका स्थान शाक्य के पूर्व में था, और रोहिणी नदी इन दोनों की सीमाओं को विभाजित करती थी।
6. **पावा के मल्लः**– आधुनिक फाजिलपुर को ही 'पावा' कहा जाता है, जहाँ महावीर की मृत्यु हुई थी।

7. कुशीनारा के मल्लः– यह मल्लों की दूसरी शाखा थी। आधुनिक केसिया को उस समय कुशीनारा (कुशीनगर) पुकार जाता था।

8.पिप्पलिवन के मोरियाः– मौर्य –वंश के राज्य का संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य इसी वंश का था।

9. मिथिला के विदेहः– नेपाल की सीमा के निकट आधुनिक जनकपुर का नाम ही मिथिला था।

10. वैशाली के लिच्छविः– आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले (उत्तरी बिहार) के बसारह को वैशाली पुकारा जाता था। ये भारती क्षेत्री थे।

प्रारम्भ में उपरोक्त जातियों और राज्य पर राजा का शासन हुआ करता था। यहां की शासन व्यवस्था में सभी व्यस्क भाग लेते थे कुछ लोगों का यह भी मानना है कि सिर्फ क्षत्री–कुल भाग लेते थे और कुछ का मानना है कि संयुक्त परिवार के केवल प्रधान व्यक्ति भाग लेते थे। मूलतः इन राज्यों की शासन व्यवस्था का मूल आधार गणतन्त्रीय था। कुछ गणराज्यों में क्षत्रिय कुलीन परिवारों को कानून बनाने और राज्य के अधिकारियों को चुनने का अधिकार था, कुछ में गणराज्यों के प्रधान इस कार्य को करते थे। कुछ राज्यों में सभी वयस्क व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं प्राप्त था या वे अधिकार का उपयोग नहीं करते थे।

कुछ गणराज्यों में स्थानीय स्वतंत्रता थी और प्रत्येक नगर के निर्वाचित सदस्य एकत्रित होकर अपने–अपने नगरों का शासन करते थे और कुछ अन्य गणराज्यों में शासन–सत्ता एक केन्द्रीय प्रतिनिधि की अन्य सभी मूल विशेषताएं विद्यमान थी जिनके कारण वे गणराज्य कहलाये। उनमें निर्वाचित अथवा नियम के अनुसार योग्यता प्राप्त सभी व्यक्ति एक स्थान (संधेगार) में एकत्र होते थे तथा महत्वपूर्ण विषयों पर वाद–विवाद करते थे। एकमत न होने पर मतदान (गुप्त या प्रकट) के द्वारा बहुमत से निर्णय करते थे और कार्यकारिणी के सदस्यों को राजन या उसके प्रधान को राजा की उपाधि दी जाती थी। सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि को चुनने का अधिकार भी उस कार्यकारणी या सार्वजनिक सभा को था। युद्ध, शांति आदि विषयों पर सार्वजनिक सभा की सर्व–सम्मति ली जाती थी पैतृक पद एवं राजाओं को निर्वाचन के द्वारा हटाया जाना भी उस समय संम्भव हुआ करता था।

कुछ राज्य में राज्य के प्रधान को गणपति पुकारा जाता था। इन राज्यों में शासन व्यवस्था का मूल आधार शासन में सम्मानित नागरिकों और सर्वश्रेष्ठ वर्गों का सहयोग प्राप्त करना था जिसके कारण वे राज्य गणराज्य कहलाने के अधिकारी थे। इस कारण प्राचीन भारतीय गणराज्य अपने समय के अनुकूल गणतन्त्रीय व्यवस्था का पालन करते थे और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। कुछ राज्य में गणतंत्रीय व्यवस्था थी और कुछ में बड़े गणराज्य संघ'–गणराज्य (जनपद) थे। आन्तरकि फूट और मगध– राज्य के विस्तार अजातशत्रु नन्द सम्राटों ने और कुछ जनपदों को मौर्य सम्राटों ने नष्ट कर दिया था। इसके बाद हमें गणराज्यों का अस्तित्व भारत के उत्तर पश्चिम भाग में प्राप्त होता है जिनका मुकाबला यूनानी

आक्रमण कारी सिकन्दर को करना पड़ा था। बाद में चन्द्रगुप्त मौर्य ने इन सभी गणराज्यों को समाप्त कर दिया परन्तु मौर्य–साम्राज्य के पतन के बाद पश्चिमी भारत के लगभग 400 AD मे पुनः गणराज्य प्राप्त होते हैं। इनमें से यौधेय, अर्जुनायन और मालवा प्रमुख गणराज्य थे इन्होंने विदेशों से युद्ध करने में प्रमूख रू॰ से भाग लिया था।

गणतन्त्र की शासन व्यवस्था :– गणराज्यों की शासन व्यवस्था लोकतंत्रात्मक सिंद्धांतों पर आधारित थी। इन राज्यों की शासन की समस्त सत्ता गण में नीहित हुआ करती थी। गण पंचायती राज्यों की समान थे। इनका शासन जनता द्वारा निर्वाचित व्यक्ति करते थे। निर्वाचित सदस्यों की संख्या परिषद कहलाती थी। इसका सभापति गणराज्य को प्रधान होता था। उसका कार्यकाल निश्चित होता था। समस्त प्रश्नों का निर्णय परिषद द्वारा किया जाता था। गणतंत्र या गण–राज्य के अन्य प्रमुख अधिकारी उपसभापति, पुरोहित आदि थे। कई गणों को मिलाकर संघ की स्थापना की जाती थी। संघ के समस्त सदस्यों के अधिकार समान होते थे। शासक अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का प्रयोग परिषद् की सलाह के अनुसार करता था। शासन के तीन प्रमुख विभाग थे–सेना,अर्थ और न्याय सेना का प्रमुख अधिकारी 'सेनापति' कहलाता था। प्रत्येक युवक को अनिवार्य रू॰ से सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। उसकों आवश्यकता के सयम सैनिक कार्य करना पड़ता था। अर्थ विभाग का मूख्य अधिकारी 'भण्डागारिक' कहलाता था। न्याय व्यवस्था क्षमता एवं स्वतंत्रता के आधार पर थी। राज्य के नागरिकों को स्वतंत्रता दी जाती थी। न्यायलय विभिन्न श्रेणियों में बंटे हुये थे। नीचे के न्यायलयों के निर्णय का पूर्नवाद उच्चन्यायलयों में किया जाता था। इसका अपना एक अलग कार्यालय था जो गणराज्य प्रधान न्याय का केन्द्र था।

(II) राजतंत्रः– बौद्ध और जैन दोनों के ही धार्मिक ग्रंथों में उस समय के भारत में 16 महाजनपदों का उल्लेख मिलता हैं ये 16 महाजनपद इस प्रकार हैं–

1. अंगः– आधुनिक मुंगेर और भागलपुर जिलों (बिहार) में अंग राज्य था जिसकी राजधानी चम्पा थी। चम्पा अथवा आधुनिक चाँदन नदी के पश्चिम में मगध राज्य और पूर्व में अंग राज्य था। जिसे अुंत में मगध में मिला लिया था।

2. काशीः– इसकी राजधानी वाराणसी (आधुनिक बनारस) थी और यह एक संम्पन्न तथा विस्तृत राज्य था परन्तु अंग, कोसल और मगध के राज्यों से इसकी प्रतिस्पर्धा हुआ करती थी। महात्मा बुद्ध के कुछ समय पहले ही कोसल ने इस राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

3. वज्जि या व्रजिः– यह आठ अथवा नौ जातियों का संघराज्य था इन राज्यों में वज्जि, विदेह, लच्छवि और ज्ञात्रिक जातियाँ प्रमुख थी। लिच्छावियों की राजधानी वैशली ही इस वज्जि–संघ –राज्य की राजधानी थी।

4. मल्लः– इस राज्य का निर्माण लगभग 9 जातियों की सीमाओं से मिलकर हुआ था। इसकी दो राजधानियाँ हैं– कुशीनारा (कुशीनगर) और पावा। महात्मा बुद्ध की मृत्यु उपरांत मल्ल राज्य पर मगध ने अधिकार कर लिया था।

5. चेदि अथवा चेतिः– चेदि –वंश भारत के प्राचीन क्षत्री–वंशों में से एक थां यह नेपाल की तराई के निकट और बुंदेलखण्ड के कोशम्बी के निकट बसा हुआ था। इसकी राजधानी शुक्ल अर्थात् शुक्मिति थी। इन्हीं की एक शाखा ने कलिंग में अपना एक राज्य बनाया था।

6.कुरूः– राज्य में आधुनिक समय के दिल्ली, मेरठ और थानेश्वर सम्मिलित थे इनकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ (हस्तिनापुर) हुआ करती थी। यह राज्य अधिक शक्तिशाली नहीं था।

7. पांचालः– यह हिमालय की तराई से चम्बल नदी तक फैला हुआ था जिसमें बदायूँ, फर्रूखाबाद और उत्तर प्रदेश के कुछ जिले थे। गंगा नदी इन्हें दो भागों में बांटती थी। उत्तर पांचाल इसकी राजधानी अहिक्षत्र (बरेली जिले का रामनगर)और दक्षिण पांचाल की राजधानी कम्पिल (फर्रूखाबाद जिले में) थी। इन्होंने लगभग पांचवी या छठी ई.पू. तक गणतन्त्र राज्य राज्य की स्थापना कर ली थी।

8. मत्स्य या मच्छः– आधुनिक जयपुर, अलवर और भरतपुर का कुछ भाग इसमें सम्मिलित था इसकी राजधानी विराट नगर (विराट) थी।

9. शूरसेनः– यह मथुरा के आस–पास था। मथुरा इसकी राजधानी थी इसे मगध राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था।

10. अस्सक अथवा अश्मकः– यह गोदावरी नदी के तट पर था और इसकी राजधानी पोटन या पोटलि हुआ करती थी।

11. गंधारः– इसमें पेशावर और रावलपिण्डी के जिले सम्मिलित थे। इसकी राजधानी तक्षशिला (आधुनिक तक्षिला) थी।

12. कम्बोजः– पूछ के दक्षिण में रामपुरा कम्बोजों का मूल स्थान रहा है। इसमें कश्मीर के दक्षिण–पश्चिम और काफिस्तान के कुछ भाग सम्मिलित थे।

13.अवन्तिः– इस समय के प्रमुख 'जनपद अवन्ति, वत्स, कोसल और मगध थे। अवन्ति राज में आधुनिक मालवा और उसके निकट के मध्यप्रदेश के कुछ भाग सम्मिलित थे। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जयिनी और दक्षिण भाग की राजधानी माहिष्मती थी। यहाँ का शासक चण्ड प्रद्योत महासेन था, जो बुद्ध का समकालीन था और बहत शक्तिशाल था। उसका वत्स, कोसल, तथा मगध से झगड़ा रहता था । प्रद्योत ने 23 वर्षों तक शासन किया था। उसके बाद उसके चार उत्तराधिकारी ने क्रमशः 24,50,21 और 20 वर्षों तक शासन किया था। अन्तिम शासक को शिशुनाग ने हराया और अवन्ति को मगध में मिला लिया था।

14.वत्सः– यह राज्य सुती वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। उदयन (बुद्ध के समकालीन) था यह योग, शक्तिशाली और विभिन्न कलाओं का ज्ञाता राजा था। संगीत तथा हाथियों का पालतु बनाने का उसे विशेष ज्ञान था। इसकी मृत्यु महात्मा बुद्ध के बाद हुई थी। इसके पश्चात् इस राज्य की जानकारी इतिहास में प्राप्त नहीं के बराबर है।

15.कोसलः– इस राज्य की सीमाऐं प्रायः आधुनिक अवध की सीमायें थी। यह पश्चिम में पांचाल राज्य की सीमाओं से लेकर पूर्व में गण्उक नदी तक और उत्तर में नेपाल की सीमाओं से लेकर दक्षिण में साई नदी तक फेला हुआ था। यह सरयू नदी के कारण दो भागों में विभक्त था। यह कपिल वस्तु और काशी के शाक्यों को जीत कर शक्तिशाली बना था। उत्तरी कोसल की राजधानी श्रावस्ती ओर दक्षिण कोसल की राजधानी कुशवती थी और यहाँ का राजा प्रसेनजित था। (बुद्ध के समय का) उसके पुत्र के कारण, पारिवारिक कारण और प्रजा के विरोध स्वरूप कोसल राज्य का यश समाप्त हो गया था एवं बाद में उसके पुत्र (दासी पुत्र) विदूदभ ने शाक्यो से बदला लेकर सम्पूर्ण शाक्य जाति को नष्ट कर दिया था।

16. मगधः– बड़े राज्यों में मगध का नाम भी था। मगध के उत्थान के समय से भारत में नन्द–वंश, मौर्य–वंश और गुप्त–वंश साम्राज्यों का निर्माण मगध में ही हुआ था।

उस समय मगध आदि राज्यों का शासन समान तथा ऐतरेय ब्राह्ममण में साम्राज्य भोज्य, स्वराजय, वैराज्य और राज्य इन पाँच प्रकार की शासन–विधियों का वर्णन किया गया है। साम्राज्य शासन विधि में राज्य के प्रधान (सम्राट) पुकारा जाता था और उसका राज्याभिषेक होता था। उसका अधिकार वंशानुगत था।

भोज्य शासन विधि में राज्य के प्रधान को 'भोज' पुकारा जाता था। यह वंशानुगत न होकर एक निश्चित समय के लिए होता था। सात्वद यादवों में यहीं शासन विधि हुआ करती थी।

स्वराज्य शासन विधि में राज्य के प्रधान को स्वराट पुकारते थे। इस 'व्यवस्था' में राज्य–शासन कुछ कलीन कुलों के द्वारा चलाया जाता था। और सभी कुलों की स्थिति को समान माना जाता था।

वैराज्य–शासन विधि में राज्य के प्रधान को राजा का पद नहीं दिया जाता था और वहाँ जन–प्रतिनिधि विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति करके स्वंय शासन चलाते थे।

राज्य –शासन विधि के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के कुरू–पंचाल आदि जनपद थे जिनमें प्राचीन परम्परागत कबायली शासन–विधि का प्रयोग अधिक मात्रा में उस समय में किया जाता था। इसमें सम्राट अथवा राजा का पद वंशानुगत होता था। ऐसे राज्यों को विस्तार का अवसर भी मिला । लोहे के ज्ञान से कृषि योग्य भूमि और कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। राजा को ही यह अधिकार प्राप्त था कि वह जंगलों को साफ कर कृषि करने की आज्ञा दे। भूमि–उत्पादन में उसका भाग पहले से निश्चित था। इससे राजा सम्पन्न हुआ और उसने अपनी शक्ति और राज्य का विस्तार किया। यहाँ साम्राज्य शासन–विधि भी थी जो मगध के राज्य को विस्तार दे रही थी वह थी राजा का पैतृक अधिकार। मगध राज्य के उत्थान में बिम्बिसार, अजातशत्रु, (493–462 ई.पू.) अजातशत्रु के उत्तराधिकारी (462–430 ई.पू.) शिशुनाग और उसके उत्तराधिकारी (430–364 ई.पू.) नन्द– वंश (364–324 ई.पू.) थे। नंद के अंतिम शासक धननंद (धन का पुजारी) पुकारा गया जो सिकन्दर का पुजारी था। वह कठोर और लालची शासक था। प्रजा में लोकप्रिय नहीं था। धननंद को हटाकर लोकप्रिय धार्मिक संप्रदायों की स्थापना करके वैदिक धर्म को चुनोती दी और शूद्र नेताओं ने क्षत्री राज्यों के अवशेषों पर आर्यवर्त में एक बड़े साम्राज्य का निर्माण किया।

राजतन्त्र शासन की व्यवस्थाः– राजतन्त्र शासन की व्यवस्था में राजा राज्य का अधिकारी होता था। उसका पद पैतृक था। उसके अधिकारी पर पर्याप्त नियन्त्रण था, जिसके कारण वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक के रूप में शासन –कार्य को संचालन नहीं कर सकता था। उसकों उसके कार्य में सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि–परिषद् थी जिसके अधिकार बहुत विस्तृत थे। राजा उनके आदेशों के अनुसार शासन करता था। जनता को अयोग्य राजाओं को पद से हटाने का अधिकार प्राप्त था। राजा प्रजा से कर के रूप में उपज का दसवाँ भाग लेता था। राजा की कुछ अपनी निजी भूमि भी होती थी, उसकों उस भूमि को बेचने का अधिकार प्राप्त था। उत्तराधिकारी के जन्म के अवसर पर जनता उपहार स्वरूप राजा को कुछ धन दिया करती थी यह धन 'दुग्ध धन' के नाम से प्रसिद्ध था।

1.5.2 परिवर्तन एवं निरन्तरता (**Change and Continuity**):– भारतीय सभ्यता वैदिक काल से भी क्रमशः ग्राम –सभ्यता से नगर सभ्यता की और अग्रसर हो रही थी, और ई.पू. छठी सदी तक इस दिशा में पर्याप्त रूप से आगे बढ़ चुकी थी। इस कारण हमें इस समय भारत के विभिन्न वैभवशाली नगर प्राप्त होते हैं।

इन नगरों के निर्माण का एक कारण बड़े राज्यों का निर्माण था। शक्तिशाली सम्राटों ने बड़े राज्यों का निमार्ण करने में सफलता पाई तब बड़े नगरों का निर्माण भी हुआ । कुछ नगरों का निर्माण बड़े राज्यों की राजधानियों के रूप में हुआ, और विस्तृत राज्यों के संरक्षण में व्यापारिक केन्द्रों के रूप में हुआ। इस प्रकार राजनीतिक विकास के साथ आर्थिक विकास का क्रम भी चला। इसी प्रकार बड़े राज्यों के निर्माण में आर्थिक सम्पन्नता ने भी सहायोग किया था।

भारत की बढ़ती हुई आर्थिक संपन्नता का एक कारण भारत का पश्चिम,उत्तर पश्चिम तथा एशिया के राज्यों से बढ़ता हुआ व्यापार था। यातायात आवागमन और व्यापारिक मार्गों की सुविधा और आर्थिक विकास में सहायक थी। जिससे विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई।

भारत की बढ़ती हुई सम्पन्नता और विदेशियों के संपर्क ने भारत की सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया था। बड़े नगरों का निर्माण, मुद्रा (चाँदी, धातु आदि के सिक्के) का प्रचलन, व्यापार एवं उद्यागों की प्रगति हुई। समाज में सम्पन्न व्यापारी और उद्योगपति वर्ग मजदूर,कारीगर एकत्रित हुए। इनके पृथक वर्ग भी बने। जिससे समाज एवं नगरों में संगठित तथा जागृत, पैतृक व्यवसाय के वर्गों का निर्माण हुआ। इसके फलस्वरूप उपजातियों का निर्माण हुआ।

समाज में बुद्धि जीतियों तथा पुरोहितों संस्कृत की भाषा के स्थान पर लोकप्रिय भाषाओं को विकास हुआ, संस्कृत से प्राकृत भाषा बनी जो लोकप्रिय थी। इस प्रकार पाली एवं मगधी भाषा का उदय हुआ । इसी प्रकार भारतीयों के धार्मिक विचारों में भी परिवर्तन हुआ वे अब ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने वाली परिस्थितियों को निर्माण करने लगे थे। जैन एवं बौद्ध धर्म इसी का उदाहरण है। समाज का आधार जाति और वर्ण था। बाद में ये बंधन शिथिल हुये अब वर्गों की गणना ब्राह्मणों से न होकर क्षत्रियों से होना आरम्भ हुई। कुछ व्यवसायिक जातियों का उदय हुआ । कुछ हीन और जंगली जातियाँ भी थी जिनकी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इस काल में तीन प्रकार के विवाहों की प्रधानता थी।

1. ब्रह्माविवाह– यह माता–पिता के संरक्षण में सम्पन्न होता था।
2. गांधर्व विवाह– स्त्री–पूरूष अपनी इच्छा से सम्पन्न करते थे।
3. स्वयंवर विवाह– किसी परीक्षा को पूर्ण करके व्यक्ति के साथ कन्या का विवाह किया जाता था। बहु–विवाह राजा और धनिक वर्ग में होते थे। संगी तथा विधवा–विवाह का भी प्रचलन था। सामान्य व्यक्ति एक विवाह करते थे।

स्त्रियों की दशा उन्नत थी। उन्हें शिक्षा दी जाती थी। जनता अपनी कन्याओं संगीत, गृहकार्य में प्रवीण करती थी। वे चरित्रवान होती थी। उन्हें समाज में मान प्राप्त था तथा वे सामाजिक कार्यों में भाग लेने की अधिकार भी रखती थी।

इस प्रकार ई.पू. छठी सदी न केवल राजनीतिक परिवर्तनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही वरन उस समय में महत्वपूर्ण आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक परिवर्तन भी हुए जिन्होंने भविष्य में भारतीय जीवन को गम्भीरता से प्रभावित किया।

1.5.3 सारांश (**Summary:things to Remember**):– ई. पू. छठी शताब्दी में महात्मा बुद्ध के समय में बहुत से गणराज्य थे। ये राज्य हिमालय की तलहटी में पूर्वी कौशल से 2 लेकर पूर्व–उत्तर बिहार तक फैले हुये थे। इस गणराज्यों को गणत्र या कुलीनतंत्र नामों से भी जाना जाता था। ये गणतंत्र इस प्रकार थे– शाक्य,भग्ग बुलि, कलाप, कोलिप, मल्ल, पावा के मल्ल, मोरिया, विदेह एवं लिच्छवी।

इनकी राज्य या शासन व्यवस्सथा लोकतन्त्रात्मक सिद्धातों पर आधारित थी। शासन की समस्त सत्ता गण में निहित थी। गण एक प्रकार से पंचायती राज्य थे। निर्वाचित सदस्य, परिषद् प्रधान, पुराहित आदि थे। सेना, अर्थ और न्याय, सेनापति, भण्डागारिक आदि पद शासन व्यवस्था में हुआ करते थे। अजातशत्रु, नन्द सम्राट एवं मौर्य सम्राटों ने इन्हें नष्ट कर दिया था।

राजतंत्र में 16 महाजनपद हुआ करते थे– अंग, काशी, ब्रजि, मल्ल, चेदि, कुरू, पांचाल, मत्स्य, या मच्छ, शूरमेन , अस्सक, गंधार, कम्बोज, अवन्ति , वत्स, कोसल और मगध । इन राज्यों में साम्राज्य विस्तार की भावना के अंतर्गत पारस्परिक युद्ध किये थे। मगध ने साम्राज्य विस्तार की भावना के अंतर्गत पारस्परिक युद्ध होते रहते थे। मगध ने इन पर विजय कर विशाल साम्राज्य की स्थापना की । राजा को समस्त अधिकार प्राप्त थे।

कृषि का मुख्य उद्यम होना। व्यापार और उद्योगों को अनन्त होना विदेशियों से व्यापारिक सम्बन्ध रहना। समाज का आधार वर्ण और जाति का होना तथा उनमें क्रमशः शिथिलता आना समाज में ब्रह्माविवाह, गांधर्व विवाह, स्वंयवर विवाह, का प्रचलन था। स्त्रियों की दशा उन्नत थी। इस तरह राजनीतिक सत्ता के साथ–साथ समाज, व्यापार, कृषि वर्ण और जाति प्रथा, विभिन्न प्रकार के विवाहों तथा सांस्कृतिक परिवर्तन आदि भी हुये थे ।

1.5.4 अपनी प्रगति की जाँच (**Check Your Progress**):–

1. वैदिक काल में राज्य को किस नाम से जाना जाता था?
2. गणतंत्र की जातियों या कुल के नाम लिखिए।
3. राजतंत्र में कितने और कौन–कौन से महाजनपद थे?
4. भारत की प्राचीन राजनीतिक सत्ता ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों को किस प्रकार प्रभावित किया?
5. भारत की गणतंत्रीय शासन व्यवस्था पर एक निबंध लिखिए।

1.5.5. प्रदत्त कार्य/गतिविधि (**Assignments /Activity**):–प्राचीन भारत के गणतंत्र एवं राजतंत्र के मानचित्रों को रेखांकित कीजिये।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

1. जैन, संजीव(...........) भारतीय संस्कृति (प्रारंभ से 650 ई.पू. तक) कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
2. पाण्डे, गोविन्दचन्द्र 2007, इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
3. बसंल, सुरेशचन्द्र ,2011 , भारत का बृहत भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, भोपाल
4. मिश्र, जयशंकर ,2006, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहारी ग्रंथ अकादमी, पटना
5. मुदगल, राहुल, 2012, समाज शास्त्र के मुल आधार, करण पेपरबैक्स प्रकाशक, प्रथम संस्करण
6. शर्मा, राजैन्द्र, प्रथम संस्करण 2013, भारतीय के मूल आधार, यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि. जयपुर
7. त्रिपाठी, रमाशंकर, 2007, प्राचीन भारत का इतिहास , मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली
8. त्रिपाठी, मधुसुदन ,संस्कार 2013, भारतीय संस्कृति का इतिहास, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली

D.E.L E.d. 02

Education in contemporary Indian Sociaty

समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा

Block –I Understanding about Indian

ब्लॉक –1 भारत के विषम में समझ

Unit – II Indian as Geo – political Entity

इकाई –2 भारत भू राजनीतिक इकाई के रूप में

संरचना (Structure)

2. 0 प्रस्तावना (Introduction)

2. 1 अधिगम उद्देश्य (Learning Objective)

2. 2 भारत का सामान्य परिचय (General Introduction of India)

2. 3 भारत की विशालता एंव विविध्ताएँ (Vastness of India)

2. 4 भारत एक भू राजनीतिक इकाई as Geo- political Entity)

2. 4. 1 भूराजनीति की परिभाषाएँ (Definitions of Geopolitios)

2. 4. 2 भू राजनीतिक संकल्पना से सम्बन्धित विचार
(Ideas rulated to geopolitical Concepts)

2. 4. 3 जर्मन विद्वानों के विचार (Thoughts of German schalars)

2. 5 भारत के भू –राजनीतिक परिधार परिवर्तन ऐ ऐतिहासिक रूप में
(Changing Geo-political Contours of India , A Historical account)

2. 6 भूराजनीति के विषय क्षेत्र (Scope of Geopolitics)

2. 7 भू– राजनीति का ऐतिहासिक विकास (Historical Development of Geopolitics)

2. 8 भू–राजनीतिक का महत्व (Importance of Geopolitics)

2. 9 भौगोलिक पर्यावरण एंव राजनीतिक (Geographical Environment &politics)

2.10 समकालीन भूराजनीतिक संरचनाओं का एक अवलोकन
(Anancient vision on the contemporary Geopolitical structures)

2. 11 प्राचीन भारतीय राजनीति व शिक्षा प्रणाली और वर्तमान शिक्षा
(Ancient Indian politics and education system and current education)

2. 12 मध्यकाल व भूराजनीति (Medieval period & Geopolitics)
2. 13 उपनिवेशवाद एंव भू– राजनीतिक (Colonial & Geopolitics)
2. 14 इकाई का सारांश (Summary of the unit)
2. 15 अपनी प्रगति की जॉच (Check your Prograss)
2. 16 निहित कार्य(Assignment)
2. 17 सन्दर्भ (References)

2. 0 प्रस्तावना (Indroduction) :– जियो पॉलीटिक्स (Geopolitics) दो शब्दों से मिलकर बना है (Geo) जियो एंव पॉलीटिक्स (Polition) । जियों का सम्बध भैगोलिक तत्वों से है एंव पॉलीटिक्स का सम्बंध राजनीतिक रूचियों से हैं जियोपॉलीटिक्स शब्द का शाब्दिक अर्थ है देश का सामाजिक राजनीतिक एंव आर्थिक विकास में भूगोल (Geography) का क्या योगदान है। प्रमुख भौगोलिक तत्व जैसे स्थान (Location)जलवायु (Climatc),प्राकृतिक संसाधन (Natural resoures),जनसंख्या (Population)एंव भौतिक भूभाग (Physical Lerrain) इत्यादि शामिल क्षेत्र, इन सभी तत्वों पर हमारे देश की राजनीतिक दशाऍ निर्भर करती है। भारत को एक भू राजनीतिक इकाई के रूप में माना जाता हैं। भारत की भूराजनीतिक आवश्यकता बहुत महत्वपूर्ण हैं। उपमहाद्वीप का भूगोल सरकारों के व्यवहार को एंव उनके कार्यों को प्रभावित करता है। भारत की भौगोलिक विविधता का भारत के विकास मैं अद्वितीय स्थान है। भारत एक बडी आबादी वाला बडा देश होने के नाते अपनी भौतिक सुविधाओं और सांस्कृतिक पैटर्न की अनेक किस्मों को प्रस्तुत करता है। यह जाति, धर्म ,भाषा, भू–भाग ,वनस्पतियों, जीवों और इसी तरह की विविधता का देश है संक्षेप में कहा जा सकता हे की भारत ''दुनिया का प्रतीक '' है। भारत में भू राजनीतिक परिवर्तन होते रहते है।, जिसके लिए यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियां जिम्मेदार हैं। किन्ही स्थानों का तापमान बहुत ज्यादा और कहीं पर तापमान बहुत कम है किन्ही स्थानों पर अत्यधिक बारिश और कहीं पर सूखा है। इन सभी भौगोलिक परिस्थितियों का सीधा प्रभाव राजनीति पर पडता हे। भारत भौगोलिक विविधताओं का देश हे। यह प्राकृतिक एंव मानव संसाधनों से परिपूर्ण व प्राचीन काल में विकसित संस्कृति के साथ गौरवमयी इतिहास रखता है। भारत के भौगौलिक परिपेक्ष्य को समझना आवश्यक हैं कृषि ,सिंचाई, खनिज उद्योग , विद्युतउत्पादन संचार परिवहन एंव विदेशी व्यापार के क्षे़त्र में सराहनीय प्रगति हुई है। भारत की सभ्यता एंव संस्कृति बहुत पुरानी है, इसकी विशालता के कारण इसे उपमहाद्वीप की संज्ञा दी गई है। विश्व का भारत एक अकेला देश हैं, जिसका नाम हिन्द महासागर से जुडा है। इसका प्राचीन नाम आयविर्त उत्तर भारत में बसने वाले आर्यो के नाम पर किया गया । इन

आर्यो के शक्तिशाली राजा भरत के नाम पर यह भारतवर्ष कहलाया। वैदिक आर्यो का निवास स्थान सिन्धु घाटी में था, जिसे ईरानियों ने 'हिन्दू' नदी तथा इस देश को ''हिन्दुस्तान'' कहा। यूनानियों ने सिन्धु को 'इण्ड्रस' तथा इस देश को 'इण्डिया' कहा गया। आज यह प्राचीन परम्परा के अनुरूप भारत नाम से पहचाना जाता है।

राज्य और सरकार के इस विज्ञान को विभिन्न नाम दिये गए है। यद्यपि हम इसे राजनीति विज्ञान के नाम से ही सम्बोधित करना पसन्द करते है। कुछ विद्धान इसे राजनीति के नाम से पुकारते है । कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और कुछ अन्य राजनीति दर्शन के नाम से सम्बोधित करते है। राजनीति के साथ भौगोलिक तत्वों के सम्बोधित करते है। राजनीति के साथ भौगोलिक तत्वों के सम्बन्ध को भूराजनीति के नाम से जाना जाता है। भारत में विविधता के साथ–साथ भू राजनीतिक विविधता पाई जाती है भारत में अनेको अनेक भू राजनीतिक परिवर्तन हुए है। भारत प्राचीन , मध्यकालीन ,औपनिवेशिक और समकालीन समय में भू राजनीतिक इकाई के रूप में अपनी भूमिका का निर्वहन करता रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप सभी –

2. 1 अधिगम उद्देश्य (**Learning Objectives**)

- भारत के विषय में समझ विकसित कर सकेगे।
- भारत एक भू राजनीतिक इकाई के रूप में की व्याख्या कर सकेगे।
- भू राजनीतिक विविधता की समझ विकसित कर सकेगे।
- भारत के भूराजनीतिक परिवर्तन के ऐतिहासिक रूप की व्याख्या कर सकेगे।
- भारत के प्राचीन, मध्यकालीन एंव औपनिवेशिक और समकालीन समय में भू राजनीतिक इकाई के रूप की व्याख्या कर सकेगे।
- इकाई का सारांश लिख सकेंगे।

2. 2 भारत का सामान्य परिचय (**General Introducation of India**)

भारत एक चतुष्कोणीय आकृति के रूप में है। यह दक्षिणी एशिया के मध्य में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग कि. मी. है। क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व का सातवाँ बडा देश है । इसका विस्तार उत्तर –दक्षिण दिशा में 3214 किमी. तथा पूर्व –पश्चिम दिशा में 2933 किमी. है। यह भूमध्य रेखा के उत्तर में 8^0 4'से 37^0 6' उत्तरी अक्षांशों तथा 68^0 7' से 97^0 25' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है । कर्क रेखा इसको लगभग दो समान भागों में बाँटती है। समुद्री सम्पर्क की दृष्टि से श्री लंका सबसे समीपवर्ती देश है, जो इससे मन्नार की खाडी व पाक जलडमरूमध्य द्वारा अलग होता

है। भारत व चीन के बीच की सीमा रेखा मैकमोहन रेखा कहलाती है। नदियों तथा पर्वत शिखरों द्वारा निर्धारित यह एक प्राकृतक सीमा है। रेडक्लिक रेखा पाकिस्तान व भारत के मध्य कृत्रिम रेखा के रूप में सीमा निर्धारित करती है। भारत–बांग्लादेश की स्थलीय सीमा की कृत्रिम है। भारत–म्यांमार के बीच पूर्वी पहाडियाँ प्राकृतिक सीमा कहलाती है। भारत की मुख्य भूमि का दक्षिणी सिरा कन्याकुमारी कहलाता है। यहाँ पर बंगाल की खाडी ,अरब सागर व हिन्द महासागर के जल मिलते है। अण्डमान –निकोबार द्वीप समूहों का दक्षिणी धर भारत का इंदिरा बिन्दु (Indira point) कहलाता है।

2. 3 भारत की विशालता एंव विविधताएँ (**Vastness of India and Diversities**):– भारत की मातृभूमि बहुत विशाल एंव विस्तृत है। भारत में जितनी भौतिक,सांस्कृतिक एंव मानवीय विविधताएँ पाई जाती है,विश्व के अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती है। यहाँ रहन–सहन वेश–भूषा में नहीं पाई जाती है।खान –पान रीतिरिवाजों, धर्मो एंव नीतियों में विभिन्नताएँ पाई जाती है। लेकिन उनमें एकता भी मिलती है। अनेकता में एकता (Unity in diversity), भारत की संस्कृति का विशेष आभूषण है। भौतिक रचना, जलवायु ,मिट्टी, जीव–जन्तु, कृषि, खनिज तथा उद्योगों की विविधता ने भारत में सामाजिक व सांस्कृतिक भूदृश्यों में विविधता ला दी है , लेकिन समस्त दृश्य एक साथ संस्कृति के सूत्र में बंधे हुए है।

धरातलीय दृष्टि से जहाँ, विश्व की ऊँची पर्वत श्रेणी रखता है तो समुद्र निर्मित मैदान भी है। भारत की सबसे ऊँची चोटी के –2 8611मीटर ऊँचा है। जलवायु की दृष्टि से यह उष्ण मानसूनी देश है। लेकिन एक ,ही समय पर जलवायु में विविधता मिलती है। यहाँ पर टुंड्रा से लेकर भूमध्यरेखीय वनस्पति विविध वन्य जीव मिलता है। यह देश सभी महत्वपूर्ण खनिज, लौह अयस्क ,मैग्नीज ,अभ्रक एंव बाक्साइट रखता है।

कोयला ,पेट्रोल की यहाँ उपस्थिति है। यहाँ कई धर्मों एंव जातियों के लोग निवास करते है। मानव सभ्यता व संस्कृति ,व्यापार व कला की दृष्टि से यह अतुलतीय है, भारत एक गणतन्त्र देश है। आज हमारे देश में 28 राज्य एंव 9 केन्द्र शासित प्रदेश है। 31 अक्टुबर 2019 को जम्मू व कश्मीर राज्य को एक केन्द्र शासित प्रदेश का दर्जा दे दिया एंव लद्दाख पूर्ण केन्द्र शासित प्रदेश होगा। भारत मैं प्राकृतिक विविधताओं के होते हुए , परिवर्तनशील सामाजिक ,आर्थिक एंव राजनीतिक परिवेश के साथ अपनी क्षेत्रीय एकता को राष्ट्रीय स्तर पर बनाए रखता हैं । हम इसे गंगा माँ कहकर पुकारते है, जो हमारी संस्कृति ,सभ्यता एंव विकास का आधार है। गंगा की तरह दक्षिण में

गोदावरी व कावेरी नदियाँ उपासना व श्रद्धा की पात्र है। भारत की सांस्कृतिक एकता ने ही विभिन्न रूकावटों के होते हुए भी इसे एकता के सूत्र में पिरोये रखा है।

भारत एक बहुभाषायी देश है। विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोग भारत में निवास करते है। इन भाषाओं ने कभी भी देश की एकता को नुकसान नहीं पहुँचाया है। रामायण एंव महाभारत प्रमुख वैदिक ग्रन्थ है। यह भारतीय नृत्य शैली एंव संगीत की विचारधारा को प्रबलता प्रदान करते है। 'इण्डिया ,ए रीजनल ज्योग्ताकी ' पुस्तक के अनुसार वाराणसी आर्यावर्त का हदय रहा है। साथ ही इसे सांस्कृतिक मेलमिलाप का केन्द्र बिन्दु भी माना जाता रहा हैं ब्रिटिश शासक में भारतीय उद्योगों की आधारशिला रखी गई थी व नगरीय संस्कृति को पनपने का अवसर मिला था। राजनीतिक एकता भारत की सांस्कृतिक एकता को निरन्तर मजबूती प्रदान करती रहेगी, ऐसा सभी भारतीयों का विश्वास हैं।

2. 4 भारत एक भू राजनीतिक इकाई के रूप में (**India as Geo-political Entity**):–जियो

पॉलिटिक्स का अर्थ जमीन या भू से सम्बन्धित राजनीति से है। भू एक भौगोलिक शहद है जिसके पक्ष इस प्रकार है। इस शब्द का प्रयोग 1899 मे Rudolf Khellen ने किया।

- पृथ्वी और उसके भागों का समन्वित भौतिक इकाई के रूप में विश्लेषण एंव विवेचना करना ।
- पृथ्वी के विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाली सामाजिक इकाईयों का पारिस्थितिकीय अध्ययन करना।
- भौतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक तथ्यों की क्षेत्रीय विविधताओं का अध्ययन किया जाता है।

राजनीति का सामान्य अर्थ राज्य की व्यवस्था के लिए नीतियों के निर्धारण और क्रियान्वयन से हैं। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में प्राकृतिक ,सांस्कृतिक और आर्थिक तत्वों का क्षेत्र राजनीतिक गतिविधियों पर व्यापक प्रभाव पडता है एंव , प्रत्येक क्षेत्र में विकसित राजनीतिक भू–दृश्य क्षेत्र की आर्थिक , सामाजिक, भौगोलिक व जनाविकी विशेषताओं को निर्धारित एंव नियंत्रित करते है। इस प्रकार राजनीतिक और भौगोलिक तत्वों में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। तथा ये तत्व पारस्परिक अर्न्तसम्बन्धित हैं एंव भारत को एक भू –राजनीतिक इकाई के रूप में विकसित करते है। भौगोलिक स्थितियों में परिवर्तन के साथ स्वतः ही राजनीतिक दशाओं में परिवर्तन होने लगता है।

भू –राजनीति

भू (जमीन) | राजनीति

Location climete,hatural resources lerrain | Population & physical

नीतियो का निर्धारण व क्रियान्यवयन

2. 4. 1 भूराजनीति की परिभाषाएँ (**Definitions of Geopolitics**)

1. भू राजनीति इस बात का अध्ययन करती है कि किस तरह उसके भौगोलिक तत्व राजनीति को प्रभावित करती है। "Geopolitics is the study of the influence of geographical factons on state Behaviour" (Indeas Related to geopolitical conupes)

2.4.2 भू – रजनीतिक संकल्पना से सम्टन्धित विचार रैटजेल एंव जेलेन के अनुसार

भू –राजनीतिक का सम्बन्ध क्षेत्र की भौगोलिकता व राजनीतिक स्वरूपों से हैं । भू – राजनीति के अर्थ को अग्र प्रकार से स्पष्ट किया जाता है।

- राजनीतिक इकाई की तुलना जैविक प्राणी से की गई। राज्य की जीव का शरीर क्षेत्र है, सीमायें अन्तस्थ अंग है, उत्पादन क्षेत्र ही भुजाएँ है, परिवहन साधनो की तरह रक्त तंत्र ही एंव राजधानी उसका मस्तिष्क, स्नायुतन्त्र से पूरे शरीर के नियन्त्रण की तरह राज्य का नियन्त्रण होता है।
- जेनेन की मान्यता थी की क्षेत्रीय विस्तार से ही राजनीतिक इकाईयों की 'सामरिक शक्ति' (Strategic) का विस्तार होता है।
- राजनीतिक इकाई की शक्ति, भौगोलिक संरचना पर निर्भर करती है।

2. अमेरिकन हेरिटेज डिक्शनरी के अनुसार , ''किसी क्षेत्र या राष्ट्र की प्रभावित करने वाले भौगोलिक और राजनीतिक संयोजनों की भू–राजनीति (Geopolitics) कहते है।

भू– राजनीति वह विशेष भौगोलिक विज्ञान है जो राजनीतिक मुख्यतः वर्गीय शक्तियों के प्रादेशिक सन्तुलन , उनके वितरण ,सहसम्बन्ध और अनुपात का अध्ययन करता है।

भू – राजनीतिज्ञों के अनुसार ,ब्रिटेन की सम्पूर्ण राजनीति को उसके राजनीतिक कार्यकर्ताओं की, उसकी द्वीपीय स्थिति और जलवायु की विशेषता सम्बंधी चेतना निर्धारित करती है। आधुनिक भू–राजनीतिज्ञ व्यवहारवाद की शब्दावली को अपनाकर यह बताने का प्रयास करते हे कि राजनीतिक नेता के कार्यकलाप किसी स्थान, संचार साधनों के बारे में उसकी स्वंय की धारणाओं व जीवन के निजी अनुभवों पर आधारित होती है।

जर्मनी में 'जाइट्स क्रिफ्ट कर जियोपोलिटिक' नामक पत्रिका के संस्थापक तथा सैन्य विभाग के अध्यक्ष हाउशोफर के नेतृत्व में 'भू–राजनीति' को राजनीतिक भूगोल से अलग करते हुए ये बताया हे कि भू–राजनीति क्षेत्र का अध्ययन राज्य की दृष्टि से करती है जबकि राजनीतिक भूगोल राज्य का अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से करता है।

2. 4. 3 जर्मन विद्वानों के विचार (**Thoughts of German scholars**)

- जैविक तत्व के रूप में राज्य के लिये 'लेविनशर्म' या जमीन प्रथम आवश्यकता थी' बढती हुई आबादी के लिये जर्मनों द्वारा अधिकृत भू क्षेत्र।
- राज्य शक्ति के लिए क्षेत्रीय विस्तार आवश्यक था।
- राज्य की प्रगति के लिये आर्थिक निर्भरता महत्वपूर्ण है और इसकी प्राप्ति क्षेत्रीय विस्तार द्वारा ही किया जा सकता है।
- हाउशोफर का विचार था कि जर्मनी के पक्ष में मैकिन्डर के हृदय स्थल सिद्धान्त के आधार पर राजनीतिक शक्तियों का ध्रुवीकरण किया जाये तथा मध्य व पश्चिमी यूरोप एंव अफ्रीका पर नियन्त्रण किया जाए।

2. 5 भारत के भू राजनीतिक परिवर्तन एक ऐतिहासिक रूप में (**Changing Geo-political Contours of India :A historical account**):

भू–राजनीति को एक गतिशील विज्ञान के रूप में स्थापित करते हुए राज्य के अनन्त विस्तार की मंशा रखी गई। इस प्रकार भू–राजनीति राजनीतिक भूगोल से अलग हटकर राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के अधिकार की संकल्पना के रूप में विकसित हुई। अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने सैन्यवाद आधारित ऐसी ही विचारधारा प्रस्तुत की जिससे राज्य सर्वशक्तिमान बन जाए। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् जर्मनी की पराजय व नवीन परिस्थितियों के उदय के साथ ही की विचारधारा जर्मनी तक ही सीमित रहते हूए समाप्त हो गई ।

परवर्ती भूगोलवेत्ताओं ने भू–राजनीति से परेशान होकर इससे नाता तोड लिया तथा इसे केवल राजनीतिक, भौगोलिक अन्तर्सम्बन्धों के विश्लेषण पर केन्द्रित कर दिया जिसे

पश्चिमी भूगोलवेत्ताओं ने राजनीतिक रणनीति के भौगोलिक पहलू के विश्लेषण के रूप में अपनाया इस प्रकार भू–राजनीति ने एक नए राजनीतिक भूगोल के विषय क्षेत्र में प्रवेश किया तो दूसरी तरफ राजनीतिक भूगोल ने युद्धोतर वर्षों की भाँति वृहद प्रदेशीय और विश्वव्यापी समस्याओं के विषय में प्रकाशन हुए। इस प्रकार शास्त्रीय राजनीतिक भूगोलवेताओं का आपस में मिलना हुआ जिससे राजनीति की पूर्व अवधारणा समाप्त हो गई तथा नई भू–राजनीति और राजनीतिक भूगोल के बीच सीमा रेखा की दूरी कम हो गई।

2.6 भू–राजनीति के विषय क्षेत्रः– (**Scope of Geopolitics**)–

भू राजनीति के नवीन सम्प्रत्यय के आधार पर इसके विषय क्षेत्र निम्नलिखित हैं।

- क्षेत्र की स्थिति (Location),आकार(size) आकृति (Shape)इत्यादि का अध्ययन करना।
- उपरोक्त तत्वों को राजनीति से सम्बन्धित किया जाना।
- इससे क्षेत्र के सभी भौतिक, जैविक व मानवीय संसाधनों का राजनीतिक क्रियाकलाप से अन्तप्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।
- भौतिक संसाधनों में धरातल, जलवायु ,अपवाह मृदा, खनिज आदि सम्मिलित हैं। जैविक संसाधनो में वनस्पति, पशु, मत्स्य तथा मानवीय संसाधनों में जनसंख्या संरचना , भाषा धर्म, जाति, मानवीय प्रकृति, मानव रीति रिवाज दृष्टिकोण तथा व्यवहार सम्मिलित किया जाता हैं।
- क्षेत्र में सरकार का स्वरूप, कार्यप्रणाली सरकार का गठन आदि सम्मिलित है।
- क्षेत्र के एक भू–राजनीतिक इकाई के रूप में विकसित होने की प्रवृति,सम्भावनाओं तथा शक्ति सन्तुलन का अध्ययन।
- सीमायें व सीमान्त, .क्षेत्रीय इकाई का समीपवर्ती इकाई से सम्बंध, विवाद वाले .क्षेत्र अतिक्रमण , क्षेत्रवाद, उग्रवाद आदि समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हे कि भू राजनीति का क्षेत्र भौगोलिक विस्तार में समाज के राजनीतिक–प्रादेशिक संगठन की संकल्पना का अध्ययन है। भू–राजनीति को प्रभावित करने वाले कारक एंव आर्थिक –भौगोलिक तथ्यों के साथ–साथ सांस्कृतिक व अन्य तथ्यों का वर्णन भी करता है।

2. 7 भू–राजनीति का ऐतिहासिक विकास (**Historical Development of Geopolitics**)

भू–राजनीति मानव भूगोल की नवीन शाखा हे जिसका विकास 19 वीं शताब्दी में हुआ। भू–राजनीति का अध्ययन प्राचीन भारतीय यूनानी व रोमन विद्वानों की रचनाओं में

देखने को मिलता है। पहली बार हेरोडोटस (425—485 Bc)तथा हिप्पोक्रेटस (460—376 Bc) ने पृथ्वी मानव सम्ब्धों के विश्लेषण में राजनीतिक तथ्यों का वर्णन किया। प्लेटो ने (427Bc-347Bc) रिपब्लिक में राज्य में भूमि के सम्बंध तथा राज्य को प्रभावित करने वाले तत्वों का अध्ययन किया मानव भूगोल के रूप में भू—राजनीति का तीन चरणों में विभाजित किया गया है—

- प्रथम चरण में यूनानी व रोमन भूगोलवेत्ताओं से लेकर कार्ल रिटर (1779—1859 AD) के समय तक का अध्ययन शामिल है। अध्ययन का विजय पर्यावरण का राजनीतिक प्रभाव था।
- द्वितीय चरण में भौगोलिक परिवेश में राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय शक्ति के अध्ययन से प्रारम्भ हुआ। इस विचारधारा का प्रवर्तन सर्वप्रथम 'रैज रैटजेल' (1897) के राजनीतिक भूगोल से होता है, और यह बताया की राज्य का क्षेत्र ही राज्य की शक्ति को प्रदर्शित करता हे। यहद राज्य की शक्ति में कमी आती है ता राज्य कमजोर हो जाता है। उन्होंने सीमान्त को आत्मसात के स्थानांतरण क्षेत्र '(Shifling zone of Assimilation) कहा जो राज्य की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।
- तृतीय चरण में राष्ट्रीय शक्ति सम्बन्धी अध्ययनों की प्रमुखता रही । इस चरण में अमेरिकी व ब्रिटिश भूगोल वित्ताओं के योगदान उल्लेखनीय हैं। इस चरण के प्रमुख विद्वान बोमेन, हीटलसी, हार्टशार्न जेम्स आदि थे।

वर्तमान में भू राजनीतिक विश्लेषण के प्रमुख विद्वान एस .डब्ल्यू. बोग्स, स्‍र्आफन जोन्स, विक्टोरियो फिशर, कीथ एंव बुचनन आदि है।

2. 8 भू —राजनीति का महत्व (**Importance of Geopolitics**)

- भू—राजनीति के अध्ययन से दार्शनिक विवेचन के साथ—साथ व्यवहारिक जीवन में इसकी उपयोगिता का पता चलता है।
- नवीन समस्याओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
- और पूर्व समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।
- भू—राजनीति में राजनीतिक एंव भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन साथ—साथ किया जा सकता है।
- देश की आन्तरिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है जैसे जनसंख्या आर्थिक ,भाषा ,धर्म एंव जाति इत्यादि।

- देश की सीमा सुरक्षा में सहायक ।
- निर्वाचन प्रणाली की सफलता व असफलता का ज्ञान
- वैश्वीकरण का विकास– भू राजनीति विश्व के राज्यों के अीच पारस्परिक सम्बन्धों का एक प्रारूप प्रस्तुत करता हैं । यह अन्तर्राष्ट्रीय समझोतो या विवादों का सही रूप प्रस्तुत करता है।
- शान्ति में सहायक –विभिन्न राज्यों के आपसी मतभेदों को सुलझा कर शान्ति कायम रखनी है। विश्व में गरीबी या अमीरी का कारण वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ है।
- राज्य के प्राकृतिक तत्वों का ज्ञान भू– राजनीति में राज्य के भौगोलिक तत्वों जैसे स्थिति, आकार, विस्तार, जलवायु, तटरेखा एंव धरातल इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

  इन तत्वों का वहाँ की राजनीति, प्रशासन तंत्र रक्षा एंव विकास पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

  शासन, व्यवस्था का भौगोलिक परिवेश में मूल्यांकन –वातावरण की अनुकूलता या प्रतिकूलता का पर राज्य शासन की सफलता या असफलता निर्भर करती हैं। राज्य की शक्तियों एंव विकास की उचित व सही जानकारी भू–राजनीति से होती है।

व्यक्ति

सामाजिक कारक क्षेत्र | राजनीतिक संरचनाए | राजनीतिक प्रबन्धन | राजनीतिक प्रबन्धन के प्रभाव

राजनीतिक रूकावटों को रोकना | स्थानों का

निर्माण

क्षेत्र मूलकता | भूदृश्य निर्माण

2. 9 भौगोलिक पर्यावरण एंव राजनीति कोहेन व रोसेन्थाल का चार्ट प्राचीन मध्यकालीन, औपनिवेशिक और समकालीन समय में भू राजनीतिक इकाई के रूप में भारत

(India as geo-polical entity during ancient, medievel,colonial and in contemporary times):–

2.10 समकालीन भूराजनीतिक संरचनाओं पर एक अवलोकन

(An ancient vision on the contemporary geopolitical structures) –प्राचीन भारतीय साहित्य में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक अच्छे दृष्किोण को प्रस्तुत करता है। कौटिल्य ने समकालीन भू राजनीति पर ध्यान केंद्रित कर शांति एंव संघर्ष के संदर्भ में बताया है कि राज्यों को किन स्थितियों में शांति बनाए रखने के लिए उन्य राज्यों का आर्थिक झुकाव चाहिए एंव युद्व के लिए क्या चाहिए। शांति स्थापित करने के लिये अन्य शर्तों की निर्भरता होती है। राज्य के आन्तरिक कारक जैसे स्थान, लतवायु, आदि राज्य के बाहरी या अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सम्बन्धों को प्रभावित कर सकते है। कौटिल्य के अनुसार राज्य की शक्तियाँ वहाँ आंतरिक तत्वों की जीवन के लिये बहुत उपयोगी एंव अत्यंत प्राचीन विषय हैं, जिसका उद्गम यूनान से हुआ है।

समाज में शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए सामाजिक प्राणियों को कुछ नियमों का पालन करना पडता है। एंव समाज में इन नियमों का सुचारू रूप से संचालन करने के लिए एक व्यवस्था की आवश्यकता पडती है। राजनीति शब्द् का सर्वप्रथत प्रयोग राजनीति विज्ञान के जनक कहे जाने वाले प्राचीन यूनानी विद्ववान् अरस्तु ने अपने प्रसिद्व ग्रंथ राजनीति (Politics) में किया। अरस्तु ने राजनीति शास्त्र को सभी विषयों में से श्रेष्ठ विज्ञान माना है। भूराजनीति का विकास प्राचीनकाल से प्रारम्भ हो गया था, जिसमें समय बदलने के साथ–साथ काफी परिवर्तन हुआ। ऋग्वेदिक काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक ही था राज्य और राजा अपने विभिन्न मन्त्रियों के परामर्श से शासन कार्य करता था एंव प्रजा की समस्याओं को सुलझाता था। सर्वप्रथम कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य की स्पष्ट परिभाषा मिलती है। राजनीतिक एंव प्रशासनिक ज्ञान प्रदान करने वाला यह प्रथम नीति ग्रन्थ था इससे पूर्व शासन सम्बंधी कोई ग्रन्थ नहीं था।

2. 11 प्राचीन भारतीय राजनीति व शिक्षा प्रणाली और वर्तमान शिक्षा

(Ancient Indian politics and education system and current aducation) कौटिल्य ने अपनी शिक्षा अर्जन तक्षशिला विश्वविद्यालय से किया था, जो कि एक प्राचीन विश्वविद्यालय की श्रेणी में आता है। इसलिये आवश्यक है कि कौटिल्य के संदर्भ में प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पर भी चिंतन किया जाए जिसमें राजनीति विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय था। प्राचीनकाल की शिक्षा और आज की शिक्षा प्रणाली में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। उपनिषद काल में स्त्रियों के लिये शिक्षा ग्रहण करने का प्रावधान नहीं था, वहीं आज स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हैं

एंव शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों सर्वोच्च स्थान पर है। प्राचीनकाल में शिक्षा मौखिक रूप से प्रदान की जाती थी वहीं आज शिक्षा में नवाचार की कमी नहीं है।

प्राचीनकाल में छात्र गुरूकुल में रहकर शिक्षा ग्रहण किया करते थे लेकिन आधुनिक युग में हमारे मूल्य कम होते जा रहे है। गुरू शिष्य परम्परा का लगभग विलोप हो गया है। प्राचीनकाल में शिक्षा निशुल्क प्रदान की जाती थी और आज शिक्षा का व्यवसायीकरण हो गया है।

यद्यपि आज की संकल्पना के अनुसार भारत प्राचीन काल से राज्य इकाई के रूप में नहीं था फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत का प्रमुख स्थान था तभी इसे सोने की चिडिया कहा जाता था।

2.12 मध्यकाल व भूराजनीति (Medieval period and Geopolitics):–

17वीं शताब्दी तक भारतीय क्षेत्र पर मुस्लिम शासकों का शासन था। मुहम्मद गोरी से लेकर बाबर तक अनेक मुस्लिम आक्रांता दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र से ही भारत आये थे। इसलिए दिल्ली से लेकर उत्तर पश्चिमी क्षेत्र से ही भारत में आयें थे। दिल्ली दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था। इसलिए दिल्ली शासित राज्यों ने परिवहन पर अधिक ध्यान नहीं दिया। दक्षिण भारत में केवल मराठा और चोल आदि ने समुद्रीय परिवहन को विकसित किया था लेकिन वह भी सीमित काल तक था।

2.13 उपनिवेशवाद एंव भू–राजनीति :– उपनिवेशवाद नये उपनिवेशों को प्राप्त करने की नीति थी शब्द उपनिवेश अंग्रेजी भाषा के शब्द कॉलोनी का हिन्दी रूपान्तरण है, कॉलोनी का सामान्य हिन्दी अर्थ है बस्ती, कोई भी ऐसा क्षेत्र जहाँ किसी जाति विशेष के लोग रहते हो बस्ती कहलाती हैं। व्यापारिक कार्यों को करने के लिए यूरोपीयाई शब्दों के निवासियों ने अपनी मातृभूमि से दूर छोटे–छोटे ठिकाने स्थापित किये वे उनकी बस्तियां या कॉलोनीज कहलाती । समय बीतने के साथ इन्हीं बस्तियों का रूप व्यापक एंव विस्तृत हो गया व विशाल भू–खण्ड इनके अन्तर्गत आ गये। इन भूखण्डों पर रहने वाली जनता का बस्तियों का निर्माण करने वाली द्वारा अपने राष्ट्रीय हितों के लिए शोषण किया जाने लगा। उसी समय से शब्द कोलोनी का प्रयोग अपनिवेशवाद के अर्थ में किया जाने लगा।

आर्गेन्सकी ने उपनिवेशों को दो वर्गों में बाँटा है–

- बिन्दु उपनिवेश – यह अत्यन्त छोटे क्षेत्र होते है। जैसे महासागरों के छोटे–छोटे द्वीप तथा किसी विशाल महाद्वीप का अत्यंत छोटा प्रदेश । विश्व मानचित्र में इनकी स्थिति बिन्दु मात्र है। इसलिए इन्हें बिन्दु उपनिवेश कहते है।

जिब्राल्तर,सिंगापुर ,हांगकांग पनामा नटर, मकाओ, आदि बिन्दु उपनिवेशों के उदाहरण हैं।

- क्षेत्रीय उपनिवेश – वे विशाल भू प्रदेश है जिन पर आर्थिक एंव राजनीतिक कारणों से नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। ये उपनिवेश दो प्रकार के होते हैं।–

  1. बस्ती उपनिवेश –वे क्षेत्र कहलाते हैं जिनकी जलवायु अनुकुल होने के कारण बडी संख्या में यूरोपीय जाति के लोग निवास करते है।
  2. शोषण क्षेत्र उपनिवेश–केवल शोषण लोगों के लिए

बैस्तर शब्दकोश के अनुसार–''उपनिवेशवाद उन आर्थिक सामाजिक एंव राजनीतिक नीतियों का नाम है जिन पर चलकर कोई साम्राज्यवादी शक्ति दूसरे क्षेत्रों में अथवा लोगो तक अपना नियन्त्रण बनाये रखना अथवा उसका विस्तार करना चाहती है।''

उपनिवेशवाद एंव भूराजनीति का गहरा सम्बन्ध देखने को मिलता है। उपनिवेशवउद का वास्तविक अर्थ और प्रयोजन किसी विजेता जाति का ऐसे निर्जन अथव अल्पजनसंख्या प्रचुर मात्रा में हो । भूराजनीति औपनिवेशक शक्तियों के अनुभवों से जूडी विश्व व्यवस्था कस दिशा बोध है, अतः इसका चिंतन प्रत्येक राष्ट्र के उपनिवेशकाल के अनुभवों का प्रतिबिम्ब हैं।

इस अवधि में भारत के लिए हिन्द महासागर का भूराजनीतिक महत्व निम्न प्रकार से था।

- ब्रिटिश औपनिवेशक काल के अन्तर्गत हिन्दमहासागर की केन्द्रीय स्थिति।
- अफ्रीका और दक्षिणी पूर्वी एशिया में फेले ब्रिटिश उपनिवेशों में परिस्परिक आवागमन की सुविधा ।
- हिन्दमहासागर के प्रवेश द्वारों पर ब्रिटिश नियन्त्रण केकारण ततकालीन भारत की स्थिति प्रतिस्पर्धी शक्तियों की पहुँच से बाहर थी।
- विश्वयुद्ध काल में भारत का ब्रिटेन के लिए आर्थि स्त्रोत के रूप में होना।

2. 14 इकाई का सारांश (Summary of the unit):– ब्लाक I की इकाई II भारत भू–राजनीतिक इकाई के रूप में का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम भूराजनीतिक की उत्पति कहाँ से हुई भारत की भौगोलिक परिस्थियाँ किस प्रकार वहाँ की राजनीति का प्रभावित करता है की पर्याप्त चर्चा की गई भारत का सामान्य परिचय उसकी आकृति चतुष्कोणीय है यह

बताया गया । भारत की विशालता एंव विविधताओं के अन्तर्गत संस्कृति एंव धरातलीय दृष्टि से भी अवलोकन किया गया।हमारे भारत की पवित्र नदियों ने किस प्रकार एकता के सूत्र में बाँध रखा है। कि चच्रा की भारत एक बहुभाषायी देश है। विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले लोग भारत में निवास करते हे। भूराजनीति जमीन और राजनीति दो शब्दो से मिलकर बना है। जमीन भौगोलिक तत्वों को इंगित करता है जबकि राजनीति शासन व्यवस्था को दर्शाती है। भूराजनीति में किस प्राकर परिवर्तन हुआ ,भूगोलवेत्ताओं की क्या भूमिका रही का वर्णन किया गया है। भूराजनीति के.क्षेत्रों को बताया गया ।

भूराजनीति के ऐतिहासिक विकास में प्लेटो की रचना 'रिपब्लिक' का वर्णन किया गया भू–राजनीति के महत्व को बतातू हुए नवीन समस्याओं को पता लगाकर पुरानी को हल किस प्रकार निराकरण किया जा सकता है। और अंत में भूराजनीति के बदलते स्वरूप के अध्ययन को साथ उनका अवलोकन प्रस्तुत किया गया। भू–राजनीति प्राचीन काल ,मध्यकाल व औपनिवेशक काल से कैसे सम्बन्धित है।

2.15 अपनी प्रगति की जाँच कीजिए (**Check your progress**)

प्र. 1. भूराजनीति से आप क्या समझते हैं?

प्र. 2. भारत का सामान्य परिचय दीजिए।

प्र. 3. भारत की विशालता एंव विभिन्नता का वर्णन भू–राजनीतिक के सन्दर्भ मे कीजिए।

प्र .4. ''भारत एक भू–राजनीतिक इकाई के रूप में '' कथन की उचित व्याख्या कीजिए।

प्र. 5. भू राजनीति के सन्दर्भ में जर्मन विचारक के विचार क्या है।

2.16 निहित कार्य (**Assignment**)

प्र. 6. भू–राजनीतिक परिवर्तन को ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में समझाइए।

प्र. 7. भू राजनीति के विषय क्षेत्र कौन–कौन से है।

प्र. 8. भू– राजनीति मे महत्व की विस्तार से चर्चा कीजिए।

प्र. 9. भू –राजनीति को प्राचीन, मध्यकाल एंव औपचारिक काल में समझाइए?

2.17 सन्दर्भ (**References**) :–

- Bose, s.c. (1966) : "Geopolitical Thought ; Trans Himalayan Kashmir,"Uttar Bharat Bhopal patrika
- सक्सेस, हरिमोहन (2005). ''राजनीतिक भूगोल'' रस्तोगी प्रकाशन ,शिवाजी मेरठ
- Dikshit,R.D. (1992) ;Political Geography Contemporary Prespective: Prentice Hall,New Delhi
- चौहान ,पी.आर (2000) ' राजनीतिक भूगोल वसुन्धरा प्रकाशन ,गोरखपुर,

- बसंत ,सुरेश चन्द्र (2011); 'भारत का बृहत् भूगोल' मीनाक्षी प्रकाशन ,मेरठ
- Chouhan, Latika (2011); "Political Geography" Mahaveer &sons Publication ,New Delhi
- कपूर, अनूप (2001) ;राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त 'एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली
- Lttps:// Sodhganga . Inflibnet . ac . in

DELED - 02

Block I Understanding about India

Unit-03 India as a Society: Characteristics & Nature

भारत एक समाज प्रकृति एवं विशेषताएं

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय सामाजिक संरचना

3.3.1 प्रकृति

3.3.2 जाति व्यवस्था

3.3.3. वर्ग व्यवस्था

3.3.4 समुदाय एवं परिवार

3.3.4.1 भारतीय समुदाय के कार्य

3.3.5 धर्म

3.4 सामाजिक संबंध सामाजिक स्तरीकरण

3.4.1 सामाजिक संबंध

3.4.2 सामाजिक स्तरीकरण

3.4.2.1 जाति के आधार पर स्तरीकरण

3.4.2.1.1 व्यक्तिगत दृष्टिकोण

3.4.2.1.2 सामुदायिक दृष्टिकोण

3.4.2.1.3 सामाजिक दृष्टिकोण

3.4.2.2 वर्ग के आधार पर स्तरीकरण

3.4.3.3 सामाजिक स्तरीकरण की विशेषताएं

3.4.2.3.1 सार्वभौमिकता

3.4.2.3.2 आपसी संबद्धता

3.4.2.3.3 समाज का विभाजन

3.4.2.3.4 स्थायित्व

3.4.2.3.5 उच्चयता एवं निम्नता की भावना

3.5 सामाजिक वर्गीकरण एवं असमानताएं

3.5.1 सामाजिक वर्गीकरण की प्रकृति

3.5.2 सामाजिक वर्गीकरण की विशेषताएं

3.5.3 सामाजिक असमानताएं

3.6 ईकाई सारांश याद रखने योग्य बिन्दु

3.7 अपनी प्रगति की जांच करिये

3.8 नियत कार्य/गतिविधियाँ

3.9 चर्चा/स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.10 संदर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

3.1 परिचयः–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसमें सोचने व समझने की क्षमता होने के कारण उसे अन्य प्राणियों से भिन्न माना गया है। तीस लाख वर्ष पूर्व पर्यावरण के जीव के रूप में उत्पन्न हुआ, आज उसी का गठनकर्ता बन गया है। मनुष्य समाज सृष्टि के प्रारंभ से कभी भी स्थिर या गतिहीन नहीं रहा, बल्कि बदलते समय की चुनौतियों और नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर गतिशील रहा है। और इसी कारण से समाज आज भी जीवित एवं प्रगतिशील है। प्रकृति का चिंतक होने से मनुष्य न केवल अपने विकास बल्कि उसके अस्तित्व एवं भविष्य की संभावनाओं के प्रति भी संवेदनशील रहा है। इस इकाई में आप जाति, वर्ग, धर्म, परिवार, समुदाय के साथ–साथ भारतीय समाज की प्रकृति के विषय में अध्ययन करेंगे।

प्रत्यक्षतः–समाज केवल एक स्थान विशेष में व्यक्तियों की संख्या को दर्शाने वाला एक सामुहिक शब्द नहीं है। बल्कि लोगों का एक संगठित समूह जिसके व्यक्तिगत सदस्यों के जीवन की शर्तो में एक प्रकार की समानता हो–जैसे उनकी वेशभूषा, जीवन पद्वति, चिंतन व्यवहार तथा पारम्परिक संबंध।

3.2 उद्देश्यः–

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारतीय समाज के अर्थ को समझ सकेंगे।
- सामाजिक संबंधों को समझने का प्रयास करेंगे।
- सामाजिक स्तरीकरण को समझ सकेंगे।
- सामाजिक वर्गीकरण की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

- सामाजिक वर्गीकरण की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- भारतीय समाज के सामाजिक स्वार्थो तथा इसकी शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव को समझ सकेंगे।
- समाज की भावी संभावनाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान विकसित कर सकेंगे।
- भारतीय समाज की संरचना का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 भारतीय सामाजिक संरचनाः—

भारतीय समाज चारों तरफ से विविधतापूर्ण है, यहाँ विभिन्न प्रकार की प्रजातियाँ, संस्कृतियाँ, धर्मो एवं सभ्यताओं का मिश्रण है। कुछ ऐसी आधारभूत शक्तियाँ हैं जो हमें बांधे रखती हैं। इसमें संवर्ग का विवाद है। फिर भी एक इकाई के रूप में जुड़ा हुआ है।

भारतीय संविधान के संगठन के लोकतांत्रिक सिद्धांतों का समर्थन आधुनिक भारतीय समाज करता है। शिक्षा के अवसरों की समानता पर बल देते हुए सामाजिक परिवर्तनों जाति, रंग और पंथ से ऊपर समाज के निर्माण का लोकतांत्रिक शस्त्र है। हरेक व्यक्ति को उसकी जाति, रंग तथा अलग हटकर उसका सम्मान होना चाहिये।

3.3.1 जाति व्यवस्थाः—

जाति को परिभाषित करने के लिए इसके चारित्रिक लक्षणों को बताना आवश्यक है। एक जाति के परिवार सामान्य या पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कार्य को ही करते रहते हैं। एक कृषि प्रधान समाज में सामान्यतया कुछ व्यवसाय जैसे खेती सबके लिए खुला हो सकता है। परन्तु साधारणतया जातियों को उनके सदस्यों द्वारा किये जाने वाले कार्यो से ही जाना जाता है, (नाई, लुहार, सुनार, बढ़ई, चर्मकार, कुम्हार, धोबी, पुजारी आदि)

अपनी जाति पर गर्व महसूस करते हैं तथा कुल परम्परा को विगत के किसी संत अथवा ऋषि से जोड़ते हैं, तथा वे जिन मूल्यों के कारण प्रसिद्ध हुए उनका अनुसरण करने की कोशिश करते हैं।

मध्यकाल के हिन्दू सामाजिक संगठन ने जाति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिरता को कायम रखा, सदस्यों ने सामाजिक तथा मानसिक सुरक्षा की देखभाल की, शिक्षा के लिए तिथियॉ निर्धारित की, तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया। जाति व्यवस्था धार्मिक प्रभाव स्थिर समाज, ग्रामीण सामाजिक संरचना, जनजातियों में भिन्नता, शिक्षा की अनुपस्थिति जैसे कुछ कारकों के कारण बनी रही, परन्तु कुछ कारकों द्वारा वर्तमान समाज को कमजोर किया जा रहा है जैसे शिक्षा सामाजिक सुधार आंदोलन राजनीतिक आंदोलन आदि। जाति व्यवस्था समाज के लिए हानिकारक है, यह सामाजिक विघटन लाती है जिसका परिणाम बहुत से लघु समूह होते हैं। यह धन के विभाजन तथा सामाजिक प्रगति में बाधा उत्पन्न करता है।

जाति प्रथा के कार्य या लाभ

जाति प्रथा के कार्य

व्यक्तिगत दृष्टिकोण से	सामुदायिक दृष्टिकोण से	सामाजिक दृष्टिकोण से
सामाजिक सुरक्षा	संस्कृति की रक्षा	श्रम विभाजन व्याख्या
मानसिक सुरक्षा		सामाजिक उन्नति
व्यवहारों पर नियंत्रण	धर्म की रक्षा	समाजवादी व्यवस्था की स्थापना
स्थिति का निर्धारण		शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था
व्यवसाय का निर्धारण	रक्त की शुद्धता	सुप्रजनन की शुद्धता
जीवन साथी का चुनाव		राजनैतिक स्थिरता

3.3.2 वर्ग व्यवस्थाः– मैकाइवर के शब्दों में एक सामाजिक वर्ग समुदाय का एक भाग होता है जो सामाजिक स्तर के आधार पर शेष से भिन्न दिखाई देता है। स्थिति (हैसियत) जीवन स्तर तथा अन्य कारक वर्ग की सदस्यता के आधार हैं। वर्ग के सदस्यों को वर्ग चेतना होती है।

वर्ग चेतना लोकतांत्रिक मूल्यों की वृद्धि में भी बाधक है। अतः विद्यालय में समानता तथा बन्धुआ की समझ को प्रोत्साहित करना चाहिये।

3.3.3 समुदाय एवं परिवारः—

समुदाय बालक की शिक्षा में समुदाय की अपनी स्वयं की भूमिका होती है। समुदाय गाँव तथा शहर में बसे परिवारों का एक समूह है। और लगभग समान, प्रथाओं, मूल्यों तथा संस्कृति से एक साथ बंधा होता है। इस प्रकार प्रत्येक समुदाय एक वृहद् समुदाय का हिस्सा होता है जो राज्य अथवा राष्ट्र कहलाता है।

बोगार्डर्स (Bogasdus) के अनुसार एक समुदाय एक सामाजिक समूह है, जो कुछ सीमा तक अहम् की भावना के साथ रहता है।

समुदाय की निम्नलिखित विशेषताएं हैं—

(क) अपनेपन की समझ अथवा निवासियों की निष्ठा

(ख) समान सामाजिक विरासत

(ग) तुलनात्मक आर्थिक आत्मनिर्भरता

भारतीय समुदाय के कार्य—समुदाय और शिक्षा के मध्य संबंध बहुत महत्वपूर्ण है। प्रत्येक समुदाय यह चाहता है कि इसकी अगली पीढ़ी योग्य नागरिक बनें, जो समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सके। यदि लोग शिक्षित हैं तो वे समाज की समस्याओं के समाधान के योग्य हैं। शिक्षा के माध्यम से समुदाय भावी पीढ़ी को इनकी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत करना है।

भारतीय समाज में शिक्षा की सर्वव्यापी मांग एक आकर्षक गुण है। प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विकास में समुदाय का प्रभाव वृहद् रूप में रहा है।

अतः यह कहा जाता है कि समुदाय शिक्षकों के साथ एक सक्षम शैक्षिक बल के रूप में है। कुछ बिन्दु पर असहमतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु कुछ सहयोग व सच्चे प्रयास से साथ कार्य होना चाहिये।

3.3.4 धर्मः—शिक्षा एवं धर्म के बीच एक निकट संबंध रहा है। ईश्वर को सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी मानते हैं। धार्मिक कल्याण के माध्यम से मानवीय आत्मा ऐसी अनुभूति का प्रयास करती है, जो इसे सर्वशक्तिमान के निकट ला सकती है। कहा यह जा सकता है कि धर्म मानव जीवन में

धार्मिक अभ्यास के माध्यम से आध्यात्मिक अनुभव की बात करता है तथा मानव और ईश्वर के संबंध को प्रकट करता है।

धर्म एवं शिक्षा में गहरे संबंध हैं, परन्तु शिक्षा देने में हम धर्म के साथ व्यापक दृष्टिकोण को अपने समक्ष रखते हैं, और धर्म के संकीर्ण स्वरूप को महत्व नहीं देते हैं। धर्म के द्वारा जन्म एवं चिरस्थायी शांति की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। यहॉ सभी आस्थाओं और धर्मो को मानने वालों को बिना किसी हस्तक्षेप के पूजा, धर्मप्रचार, पूजा स्थलों की स्थापना करने का समान अधिकार है। धार्मिक स्वतंत्रता सभी व्यक्तियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता सत्यम शिवम सुन्दरम पर अधिक बल देने के लिए प्रोत्साहित करती है।

3.4 सामाजिक संबंध एवं सामाजिक स्तरीकरणः–

3.4.1 सामाजिक संबंध

सामाजिक संबंध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का संबंध है। सामाजिक संबंध सामाजिक संरचना और सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा विश्लेषण के लिए मूल वस्तु का आधार बनाते हैं।

पाइत्र सस्टेम्पका के अनुसार सामाजिक में संबंध एवं बातचीत के रूपों को वर्णित किया गया है। पहला और बुनियादी पशु–समान व्यवहार है। अर्थात शरीर के विभिन्न शारीरिक आंदोलन। मोटे तौर पर सामाजिक संबंध उन कनेक्शनों को संदर्भित करते हैं जो परिवार के सदस्यों, दोस्तों पडोसियों, सहकर्मियों और अन्य सहयोगियों के बीच संबंध शामिल हो। अलग–अलग संदर्भो में बच्चे की सहभागिता का महत्व है बालक परिवार के साथ बातचीत करता है, लेकिन अन्य लोगों के साथ भी, जैसे कि दोस्तों, शिक्षकों, पडोसियों।

समाज के अन्तर्गत याद कराने वाले विभिन्न समूहों का ऊंच–नीच या छोटे बड़े के आधार पर विभिन्न स्तरों में बंट जाना ही सामाजिक स्तरीकरण कहलाता है।

सामाजिक स्तरीकरण की विशेषताएंः–

स्तरीकरण के द्वारा ही समाज में कार्यो का बंटवारा होता है। सामाजिक स्तरीकरण से आशय ऐसे समाज से है, जो विभिन्न स्तरों में विभाजित रहता है उदाहरण के तौर पर हिन्दू समाज का चार वर्गो–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा अलग–अलग जातियों में विभाजन या पश्चिमी समाजों का पूंजीपति एवं सर्वहारा वर्ग में विभाजन सामाजिक स्तरीकरण के ही उदाहरण हैं।

दूसरे शब्दों में सामाजिक स्तरीकरण समाज को विभिन्न वर्गो में विभाजित करने और उसी के अनुसार सामाजिक संरचना में उनकी स्थिति व भूमिका को निर्धारित की एक सामाजिक व्यवस्था है। अतः सामाजिक स्तरीकरण में उच्चतम से निम्नतम सामाजिक स्थिति वाले समूह के सदस्यों को जितने अधिकार व सुविधाएं प्राप्त होती हैं, उतनी ही सुविधाएं या अधिकार निम्नतम स्थिति वाले समूह के सदस्यों को उपलब्ध नही होती है। इस अर्थ में सामाजिक स्तरीकरण अनेक सामाजिक समूहों में न सिर्फ सामाजिक स्थिति या पद को बल्कि सामाजिक अधिकार, शक्ति सत्ता या निर्योग्यताओं को भी बांटने की एक सामाजिक व्यवस्था है।

सामाजिक स्तरीकरण की विशेषताएँ:–

- स्तरीकरण की प्रकृति सामाजिक है।
- स्तरीकरण काफी पुराना है।
- प्रत्येक समाज में स्तरीकरण पाया जाता है।
- स्तरीकरण के विभिन्न स्वरूप आयु, जाति, एवं वर्ग हैं।
- स्तरीकरण से जीवन शैली में भिन्नता आ जाती है।

जाति के आधार स्तरीकरण:–

1. जाति व्यवस्था में स्तरीकरण में ब्राह्मण सबसे ऊंचे स्तर पर है, तथा क्षूद्र सबसे निचले स्तर पर ।
2. जाति संरचना में प्रत्येक जाति का संरचना ऊंच नीच के आधार पर बना हुआ है।
3. जो व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है। समाज में उसे उसी जाति का संस्तरण प्राप्त होता है।

वर्ग के आधार पर स्तरीकरणः—

1. वर्ग के आधार पर स्तरीकरण जन्म पर आधारित न होकर, कार्य, योग्यता एवं कुशलता, शिक्षा आदि पर आधारित है।
2. वर्ग के द्वारा सबके लिए खुले हैं।
3. व्यक्ति अपने वर्ग को बदल सकता है, तथा प्रयास करने पर सामाजिक स्तरीकरण में ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता है।

वर्ग के प्रकार

→ उच्च वर्ग

→ मध्यम वर्ग

→ निम्न वर्ग

→ कृषक वर्ग

सामाजिक स्तरीकरण की विभिन्न विशेषताएं हैं—जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. **सार्वभौमिकता**—सामाजिक स्तरीकरण किसी न किसी रूप में विश्व के प्रत्येक समाज में पाया जाता है। वर्गविहीन समाज का दावा करने वाले पूर्व साम्यवादी देशों में भी यह पाया जाता है। प्रतिष्ठा, धन, दौलत तथा सत्ता के आधार पर हर समाज में व्यक्तियों की विभिन्न परिस्थितियॉ होती हैं, और इन्हीं के आधार पर सामाजिक स्तरीकरण का निर्माण होता है।
2. **आपसी संबद्धता**—इसके तहत समाज के विभिन्न स्थायी समूह व श्रेणियाँ उच्चता एवं अधीनता के संबंधों द्वारा आपस में जुड़ी रहती हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न स्तर एक दूसरे से पृथक न होकर परस्पर संबद्ध होते हैं।
3. **समाज का विभिन्न स्तरों में विभाजन**—यहाँ पर समाज को विभिन्न स्तरों में अलग—अलग कर दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर हिन्दू समाज का चार वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र) अथवा अलग—अलग जातियों में विभाजन या पश्चिमी देशों का पूंजीपति एवं सर्वहारा वर्ग में विभाजन सामाजिक स्तरीकरण के ही उदाहरण हैं।

4. **स्थायित्व**–इसके अंतर्गत किया गया स्तरीकरण स्थायी होता है। जब तक स्तरीकरण इकाईयों में स्थिरता न आ जाए, तब तक उसे स्तरीकरण की संज्ञा नही दी जा सकती।
5. **उच्चता एवं निम्नता की भावना**–हमेशा समाज उच्च व निम्न सामाजिक इकाईयों में विभाजित होता है। यह उच्चयता एवं निम्नता कही–कही स्पष्ट एवं कही कही अस्पष्ट भी हो सकती है। वास्तव में समाज में पाई जाने वाली ऊंच–नीच की व्यवस्था का दूसरा नाम ही सामाजिक स्तरीकरण है।
6. **सामाजिक स्तरीकरण या विषमताः**–प्राचीनकाल में काली मार्क्स के अनुसार आज तक के समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है, हरेक समाज में दो वर्ग हमेशा से ही रहे हैं। यह वर्तमान सभ्यता की देन नहीं है। प्रत्येक काल में किसी न किसी रूप में मौजूद रहा है।

3.5 सामाजिक वर्गीकरण एवं असमानताएंः–सामाजिक वर्गीकरण की प्रकृति एवं विशेषताएं सामाजिक वर्गीकरण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त परिभाषी असमानता के मानदंडों को अलग–अलग लेखकों द्वारा अलग–अलग व्याख्या की गई है।

ऐतिहासिक रूप से सामाजिक वर्गीकरण का गठन समाज के जन्म के साथ ही किया गया है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं क्षूद्र यह चारों वर्ण हिन्दू समाज के चार स्तंभ हैं जिन पर समाज की आधार शिला टिकी हुई है। सभी वर्णो के कार्य क्षेत्र का भी महत्व बराबर ही है। जो अशिक्षित संस्कारहीन हो, और पाँच यम तथा पाँच नियम का पालन नहीं करते हो, उन्हें ही शूद्र की श्रेणी में रखा गया है। सभी शूद्र अपने पुरूषार्थ से ज्ञान प्राप्त करके ही अपने कर्मो से उच्चतर वर्णो में प्रवेश पा सकते हैं।

पुरातन समय में व्यवसायिक आधार पर बने सामाजिक वर्गीकरण में वैचारिक तथा आर्थिक वर्गीकरण भी समा गया था, जिसका असर रीति–रिवाजों पर भी पड़ा और समाज में पारिवारिक संबंध वर्णो तथा जातियों में सीमित होते गये। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के अन्य क्षेत्रों में भी असर हुआ, इसके अपवाद प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं।

कर्मानुसार जीवन शैलीः—आधुनिक विशेषतः जिन तथ्यों को अपनी कार्यप्रणाली में शामिल करते हैं, उन्हें जॉव डिसक्रिमिनेशन तथा जॉव Specification कहते हैं। यह सब हिन्दू वर्ण व्यवस्था में पहले से ही था। कार्यशैली व जीवन पद्धति के अनुसार ब्राह्मणों के लिए जीवन पर्यन्त धर्म नियम पालन के साथ—साथ साधारण और सात्विक जीवन शैली निश्चित की गई थी। जहॉ उन लोगों के लिए मॉस मदिरा से रहित स्वादिष्ट भोजन निर्धारित किया गया, वही शूद्र वर्ग के लिए तामासिक भोजन को पर्याप्त माना, कारण इस वर्ग को परिश्रम अधिक करना पड़ता था एवं अधिक एवं अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती थी।

सामाजिक असमानताएंः प्रकृति एवं विशेषताएंः—प्रत्येक समाज में चाहें वह प्राचीन सरल समाज हो, या आधुनिक समाज किसी न किसी प्रकार की सामाजिक असमानताएं अवश्य पाई जाती हैं। प्रत्येक समाज में विभिन्न समूहों, व्यक्तियों के मध्य शक्ति प्रतिष्ठा एवं संपत्ति का समान वितरण का नहीं होना है। वितरण की असमानता ही सामाजिक असमानता को जन्म देती है।

विभिन्न कालों से विद्वान सामाजिक असमानता पर विचार करते आएं हैं, असमानता के अध्ययन की शुरूआत यूनानी दार्शनिक प्लेटों, अरस्तू से मानी जा सकती है। प्लेटों ने समाज की अवधारणा और वर्ग विभाजन का तथ्य सामने रखा, उनके अनुसार किसी व्यक्ति की हैसियत का निर्धारण उसकी प्राकृतिक योग्यता उनकी कुशलता, बुद्धिमता और शारीरिक शक्ति पर निर्भर करता है। हालांकि प्लेटों और अरस्तु ने सामाजिक असमानता की नहीं, अपितु प्राकृतिक असमानता की बात अधिक की है। किसी भी समाज में जाति, वर्ग, प्रजाति और लिंग को सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। ये सभी समाजों में एक रूप से प्रभावकारी, नहीं होते हैं चूंकि प्रकृति की संरचना ही असमान है, अतः समाज भी पूर्णरूपेण समान नहीं हो सकता। असमानता के दो आधार हैं—

1. जैविक असमानता—प्रजाति, लिंग, आयु आदि ।
2. सामाजिक असमानता—धन, संपत्ति, शक्ति इत्यादि।

अधिकतर जैविक असमानता के लिए विभेदीकरण एवं सामाजिक असमानता के लिए स्तरीकरण की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। एक प्रक्रिया के रूप में वैश्वीकरण ने व्यवसायिक संरचनाओं को बदला है, और व्यवसायिक संरचनाओं में हुए परिवर्तनों ने असमानता के पारंपरिक आधारों को प्रभावित किया है।

सामाजिक असमानताएं सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करती हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जो सामाजिक संसाधनों, व्यवसायों व अवसर की उपलब्धता को लोगों की विभिन्न श्रेणियों में असमान रूप से बांटती है।

एलेक्स इंकेल्स (1965) ने असमानताओं के संदर्भ में कहा है कि समाज में व्यक्तियों को किसी एक पैमाने पर उच्च या निम्न स्थान पर रखना ही स्तरीकरण है। प्रत्येक समाज में कुछ लोगों के पास धन सम्पदा शिक्षा स्वास्थ्य एवं शक्ति जैसे मूल्यवान संसाधनों का अधिक बड़ा हिस्सा होता है।

इकाई सारांशः–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने, सोचने, समझने की क्षमता होने के कारण अन्य प्राणियों से भिन्न माना गया है। प्रत्यक्षतः समाज केवल एक स्थान विशेष में व्यक्तियों की संख्या को दर्शाने वाला एक सामूहिक शब्द नहीं है, बल्कि लोगों का एक संगठित समूह है जिसके व्यक्तिगत सदस्यों के जीवन की समानता जैसे उनकी वेशभूषा, जीवनपद्धति, चिंतन व्यवहार तथा पारस्परिक संबंध है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य होने के साथ–साथ यहाँ सभी धर्मो के लोग रहते हैं, वे अपने–अपने धर्मो को पूजते हैं। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का संबंध सामाजिक संबंध कहलाता है। समाज के अंतर्गत पाये जाने वाले विभिन्न समूहों का ऊंच–नीच या छोटे बड़ों के आधार पर विभिन्न स्तरों में बांटना सामाजिक स्तरीकरण कहलाता है। सामाजिक वर्गीकरण लोगों की सामाजिक और प्राकृतिक असमानता पर आधारित है, पौराणिक रूप से सामाजिक वर्गीकरण का गठन समाज के जन्म के साथ ही किया गया है। प्रत्येक समाज में चाहे वह प्राचीन सरल समाज हो या आधुनिक समाज किसी न किसी प्रकार की सामाजिक असमानताएं अवश्य पाई जाती है। प्रत्येक समाज में विभिन्न समूहों, व्यक्तियों के मध्य प्रतिष्ठा एवं सम्पत्ति का समान वितरण नहीं होता है। इनके वितरण की असमानता ही सामाजिक असमानताओं को जन्म देती है।

3.7 अपनी प्रगति की जाँच कीजिए ?

1. भारतीय समाज के अर्थ को समझाइये?
2. समाजिक स्तरीकरण को कैसे बताऐगें?
3. जातिप्रथा के कार्यो को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाएं?
4. सामाजिक वर्गीकरण एवं सामाजिक असमानताएं लिखिए?
5. यदि एक दूरदराज के गाँव में आपकी नियुक्ति एक अध्यापक के रूप में हो जाऐ तो आप जाति व्यवस्था को किस रूप में देखेंगे? विस्तार से लिखिएं?

3.8 नियत कार्य / गतिविधियाँ

समाजिक वर्गीकरण में शिक्षा की क्या भूमिका है? लिखिएं?

3.9 चर्चा के लिए बिन्दु / स्पष्टीकरण

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप किन्हीं बिन्दुओं पर आगे चर्चा या कुछ बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहेंगे। उन्हें नीचे लिखिए?

3.9.1 चर्चा के लिए बिन्दु

....

....

....

3.9.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

3.10 संदर्भ / अतिरिक्त पठन सामग्री

1. डॉ. सत्यपाल रूहेलाः भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र (राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी)
2. शशिभूषण सिंहः सामाजिक नियंत्रण

3. डॉ. डी. एस. बघेलः भारतीय समाज एवं संस्कृति
4. शशिभूषण सिंहः भारतीय समाज की रूपरेखा
5. मैकिओनिम, जोन जे. (चतुर्थ संपादन 1998) सोसायटी, दि बेसिक्स, प्रेंटिस हॉल, न्यूजर्सी यू. एस. ए.
6. मिचेल, जी. डी. (एडिर) ए. डिक्शनरी ऑफ सोशोलॉजी1968 (सटलेज एंड केगन पॉल)
7. जोनसन, एच. एम. सोशियोलॉजीः ए. सिस्टेमैटिक इंटरोडक्शन, 1961 (रूटलेज एंड केगन पॉल)

D.E.L E.d. 02

Education in contemporary Indian Sociaty

समकालीन भारतीय समाज में शिक्षा

Block –I Understanding about Indian

ब्लॉक –1 भारत के विषम में समझ

Unit –IV

India as cultural Identity

भारत सांस्कृतिक पहचान के रूप में

(सांस्कृतिक पहचान के रूप में भारत)

4. 1 प्रस्तावना (Introduction)

4. 2 अधिगम के उद्देश्य (Learning objective)

4. 3 भारत का बहुभाषिक परिदृश्यि

4. 4 भारत की विभिन्न भाषाएँ (Various Languages in India)

4. 5 भारत की भाषाओं के सम्बन्ध में संविधान

4 .6 भारत में हिन्दी भाषा का स्थान (Place of hindi language in India)

4. 7 सांस्कृतिक विविधता का अर्थ (Meaning of Cultural Diversity)

4. 1 प्रस्तावना(**Introduction**)

भारत की सभ्यता सबसे पुरानी है जिसमें कदम –कदम पर विविधताएँ देखने को मिलती है फिर भी यह समूह सांसकृतिक विरासत वाला देश है। भारत में सांस्कृतिक एकता के अनेको उदाहरण देखने को मिल जाते है। यहाँ के निवासी और उनकी जीवन शैलियां ,उनके नृत्य और संगीत ,शैलियां कलाएं और हस्तकला इत्यादि अनेको तत्व भारतीय संस्कृति और विरासत का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं भारत की संस्कृति गतिशील है यह मानव सभ्यता की शुरूआत से है। भारत के इतिहास को खगाला जाए तो अनेक संस्कृतियों के लोग आपस में मिलजुल कर रहते रहे है। भारत के विभिन्न हिस्सों में अलग–अलग भाषाएँ बोली जाती है। भारतीय समाज स्वभावतः बहुभाषी है। सम्पूर्ण भारत में घेरलू सामाजिक और सार्वजनिक जीवन की विभिन्न छवियों में बहुभाषी प्रकृति का आसानी से अहसास होता है। देश में पाँच भाषा परिवारों (भारतीय दव्रिण आस्ट्रक तिब्बती –चीनी और अंडमानी भाषा परिवार की भाषाएँ बरती जाती है।

भारत में सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है। विभिन्न संस्कृति के लोग भारत में एक साथ मिल जुलकर रहते है। संस्कृति में विविधता होने के बाद भी आपस में कोई मतभेद नहीं होता । भारतीय संस्कृति की विविधताओं से आकर्षित होकर अनेकों लेखकों ने इसके विभिन्न पक्षों एंव अवधारणाओं का वर्णन किया है।

भारत में भाषायी एक सांस्कृतिक विभिन्नता के साथ–साथ धार्मिक विविधता धर्मो के लोग एक साथ मिलजुल कर रहते है। एक साथ धार्मिक अनुष्ठान करते है। विभिन्न राज्यों ,नगरों ,शहरों, गांवों में रोजाना मनाएं जाने वाले हजारों उत्सव भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की जीवंतता और विविधता को दर्शाते हैं कई, परंपराए, मान्यताएं और रीति –रिवाज सदियों पुराने है, लेकिन जरूरी नहीं हैं कि वे अपने मूल रूप में मनाए जाते हैं । भारत एक समग्र संस्कृति का उदाहरण हैं भारतीय जन–जीवन में धर्म की महव्ता अपंरपार है। भारत देश में कई धर्मों को मानने वाले हैं जैसे हिन्दू ,मुस्लिम ,सिख, इसाई ,जैन ,बौद्ध ,पारसी तथा यहूदी आदि ।

दुनिया में भारत ही ऐसा देश है जहां सबसे अधिक धर्मो को मानने वाले लोग रहते है। यह भारत की गंगा–जमुना तहजीब का ही नतीजा है कि सब धर्मों को मानने वाले लोग अपने –अपने धर्म को मानते हुए इस देश में भाईचारे की भावना के साथ सदियों से रहते चले आ रहे है।

4.2 अधिगम के उद्देश्य :–(**Learning Objective**) इस इकाई के अध्ययन उपरांत आप

- भारत के बहुभाषिक परिदृश्य को समझ पाएंगे।
- भारत में विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाने वाली भाषाओं का विश्लेषण कर पाएगें।
- भारत की भाषाओं के विषय में संविधान के प्रावधानों की चर्चा कर सकेंगे।
- भारत में हिन्दी भाषा का स्थान बता सकेगे।
- सांस्कृतिक विविधता का अर्थ बता सकेगे।
- सांस्कृतिक समुदाय एंव राष्ट्र राज्य की चर्चा कर पाएगे।
- सांस्कृतिक विविधता एंव भारतीय राष्ट्र –राज्य में सम्बंध की व्याख्या कर पायेंगे।
- धार्मिक बहुलता को परिभाषित कर पाएंगे।
- धार्मिक बहुलता की मूल्य के रूप में समझ पाऐंगे।

4. 3 भारत का बहुभाषिक परिदृश्य :– 'विविधता मे एकता' हमने कई बार सुना होगा। भारत के लिए यह वाक्य एक दम सही है। क्योंकि यहाँ विभिन्न तरह की विविधताएं पाई जाती है। जैसे खान–पान, वेशभूषा , रीति–रिवाज एंव रहन– सहन सम्बंधी । भारत में लगभग 1600 भाषाएँ बोली जाती है इन भाषिक बहुलता के कारण ही भारत एक

बहुभाषिक प्रदेश हैं हमारे संविधान की आठवीं सूची में 22 भाषाएं दर्ज है जो कि बहुभाषिकता का साक्षात प्रमाण है। पहले इस सूची में केवल 14 भाषाएं थी। हमारे यहाँ अखबार ,फिल्में, किताबें ,टी.बी. , रेडियों, शिक्षा ,दफ्तर ,कचहरी आदि कर कामकाज कई भाषाओं मे एक साथ होता हैं इस तरह से भारतीय बहुभाषिकता भारत की संपदा है। आप जिस , विद्यालय में शिक्षण कार्य करते है। वहाँ कक्षा में आपकों विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले छात्र –छात्राएँ मिलते होगे।

भारत में कुछ भाषाएँ लुप्त होने की कतार पर है एंव आदिवासी भाषाओं को बोलने वाले लोगों की संख्या सीमित होती जा रही है। जैसे पांडिचेरी में एक आदिवासी भाषा को बोलने वाले लोग 100 से भी कम बचे है।

भाषा विविधता को बनाए रखने में भाषा के प्रति हमारा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। शिक्षक होने के नाते यदि आप कक्षा में विद्यार्थियों को विभिन्न भाषाओं को बोलने के लिए प्रोत्साहित करेगे तो हम अपनी भाषाओं को जीवित रख सकते है। हमे सभी भाषाओं के प्रति स्वस्थ और सकारात्कम दृष्टिकोण रखना चाहिए।

4. 4 भारत की विभिन्न भाषाएँ (**Various Language in India**) : – भारत में बहुभाषिक परिदृश्य का अवलोकन हम कर चुके है। समान विशेषताओं एवं समान प्रकृति वाली भाषाएँ मिलकर एक परिवार बनाती है।

मुख्यतः चार प्रकार के भाषा परिवार है।

1. आर्य भाषा परिवार (इंडोआर्यन)
2. द्रविड भाषा परिवार (द्रविडियन)
3. तिब्बती– बर्मन भाषा परिवार
4. ऑस्ट्रो एशियाब्कि या मुंडा भाषा परिवार

इन परिवारों की मुख्य भाषाएं इस प्रकार हैं।

आर्य भाषा परिवार– हिन्दी ,उर्दू ,बांगला, पंजाबी, मराठी, कोंकणी ,नेपाली, उब्यिा, कश्मीरी आदि। (उत्तर भारत)

द्रविड भाषा परिवार– तमिल तिलग, कन्नड कुडुख आदि। (दक्षिण भारत)

तिब्बतो बर्मन – महिपुरी, अगामी, ब्रोडो, गारो ,त्रिपुरी, तपसा, मिजो. आदि। (सात उत्तर पूर्वी ,राज्यों)

मुंडा परिवारः– मुंडा, मुंडारी हो संथाली, गुप्त सबरा आदि।(पं. बंगाल, उड़ीसा , झारखण्ड , एवं असम) उपर्युक्त भाषाओं के होते हुए भी भारत में भाषायी एकता पाई जाती हैं। इन सभी भाषाओं को बोलने वाले लोग एक साथ भाईचारे के रहते है।

भाषाओं के आपसी आदान –प्रदान के उदाहरण

प्रतिध्वनि शब्द– सभी भारतीय भाषाओं में प्रतिध्वनि शब्दों का प्रयोग होता है। प्रतिध्वनि शब्दों में दूसरा शब्द अतिरिक्त होता है। तथा अपने आप में इसका कोई अर्थ नहीं होता । निरर्थक होता है। जैसेः–

हिन्दी	**तेलुगु**
खाना– वाना	इलि–गिली
पानी – वानी	बाद्य –वाद्य
चाय– वाय	अन्नय–विन्नय

पुनरूक्त शब्द – सभी भारतीय भाषाओं में संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण की एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति की जाती है। पुनरूक्त का अर्थ प्रत्येक से है **जैसे – संज्ञा**

हिन्दी	**उड़िसा**	**तेलुगु**
घर– घर	घौरे– घौरे	पेजि – पेजि
पन्ना –पन्ना	पृष्ठा –पृष्ठा	इष्टि–इष्टि

क्रियाविशेषण

धीरे–धीरे	धीरे– धीरे	नेम्मदि– नेम्मदि गा

सर्वनाम

अपना– अपना	निजौ–निजौ	तना–तना

पद के स्तर पर –

सभी भारतीय भाषाओं में कारक चिन्ह मूल शब्द के बाद ही अति है। जैसे–

हिन्दी – राम का, घर में

तमिल– रामोड़ ,रामक्कु

मुण्डारी – होड़ा रे (घर में)

ध्वनि के स्तर पर – सभी भारतीय भाषाओं में किसी भी मूल शब्द का आरम्भ स, ण,ा ड़ नासिक्य ध्वनियों से नहीं होता।

4.5 भारत की भाषाओं के सम्बंध में संविधानः– संविधान निर्माताओं ने भाषा को महत्वपूर्ण मानते हुए संविधान के भाग –17 में भाषा संबंधी प्रावधानों को बताया। संविधान से 12 भाषाओं को रखा गया। संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार देवनागरी लिपी लिखी 'हिन्दी' को भारत की राजभाषा व अंग्रेजी को सह–राजभाषा का दर्जा दिया गया।

शुरूआत में अंग्रेजी को यह 15 वर्षों के लिये दिया गया बाद में 1963 के official Language Act के माध्यम से अंग्रेजी को हमेशा के लिए सह–राजभाषा का दर्जा दे दिया गया।

अनुच्छेद 345 में उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार ,राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली की राजभाषा हिन्दी घोषित की गई। पंजाब में पंजाबी, महाराष्ट्र में मराठी तथा गुजरात में गुजराती भाषा को राजभाषा घोषित किया गया।
तमिलनाडु में तमिल, आंध्रप्रदेश में तेलेगु, कर्नाटक में कन्नड़ , केरल में मलियालम , उड़ीसा में उडिया, असम में असमिया और पश्चिम बंगाल में बांग्ला को अपनी–अपनी राजभाषा बनाया गया। सिक्किम ने नेपाली, लेपचा, लिंबू और भूटिया को अपनी राजभाषाएँ घोषित किया है। नागालैंड में अंग्रेजी राजभाषा है। इसी प्रकार अरूणाचल प्रदेश मिजोरम तथा मेघालय ने किसी भी भाषा को अपनी राजभाषा नहीं बनाया जबकि सरकारी कामकाज की भाषा अंग्रेजी है।

4. 6 भारत में हिन्दी भाषा का स्थान (**Place of Hindi Language in India**) : – भारत में हिन्दी को साहित्यिक भाषा के रूप में लिया गया है । ब्रजभाषा, भैथिली और अवधी हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक भाषाएँ है। ब्रजभाषा का साहित्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक तेजी से लिखा जाता रहा हैं और अब भी काफी बडे भू– भाग की भाषा हैं। ठेठ हिन्दी भाषा का वह रूप है जिसमें अन्य बोलियों का समावेश नहीं होता, तुलसीदास ने कुल बारह प्रामाणिक ग्रंथ लिखे है जिनमें प्रमुख हैं– रामचरित मानस कवितावली, गीतावली, निनयपत्रिका आदि। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं को ब्रज और अवधी दोनों में लिखा।

हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता ने भी हिन्दी के स्वरूप को स्थिर करने में अहम भूमिका निभायी। 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित प्रथम हिन्दी समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड 'तथा बंगदूत प्रमुख है।

4.7 सांस्कृतिक विविधता का अर्थ (**Meaning of cultural Diversity**):– विविधता' शब्द असमानताओं के बजाय अतरों को इंगित करता है। सांस्कृतिक विविधता का तात्पर्य है कि यहाँ अनेक प्रकार के सामाजिक समूह एंव समुदाय निवास करते है। यह समुदाय सांस्कृतिक चिन्हों जैसे भाषा, धर्म , पथ, प्रजाति या जाति द्वारा पारिभाषित किए जाते हैं। अलग– अलग संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं।

भौगोलिक दृष्टि से भी भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू–भाग जिसकी सीमा पूर्व में ब्रहापुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक फैला हुआ हैं। इसके साथ ही गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण का वनों से आच्छादित पठारी भू–भाग , पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिदृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। इस भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पाई जाती हैं । इस इकाई के प्रारम्भ में हम भाषायी विविधता की चर्चा कर चुके है, भाषा भी संस्कृति का ही अंग है।

सांस्कृतिक विविधता एंव भारतीय राष्ट्र राज्य (Cultural Diversity& Indian Nation States):– भारतीय राष्ट्र –राज्य सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक विविधता देशों में ये एक जनगणना के तदर्थ आँकडो के अनुसार यह 121.0 करोड़ है। जनसंख्या की दृष्टि से विश्वभर में इसका दूसरा स्थान है और आने वाले समय में शायद पहले स्थान पर हो जाए। यहाँ लगभग 1632 भाषाओं और बोलियों को बोलते है। यहाँ लगभग 80.5

आबादी हिन्दुओं की 13.4 प्रतिशत आबादी ,मुसलमानों की, इसाई लगभग (2.3प्रति.), सिख (1.9प्रति.) , बौद्ध (0.8प्रति.) और जैन (0.4 प्रति. है।)

भारत को राष्ट्र राज्य का एक अच्छा उदाहरण माना जा सकता है।

संस्कृति और विरासत (Culture & Heritage):– हमारे देश के बहु–सांस्कृतिक भण्डार और विश्वविख्यात विरासत के सतत अनुस्मारक के रूप में भारतीय इतिहास के तीन हजार से अधिक वर्ष की जानकारी और अनेक सभ्यताओं के विषय में यहां बताया गया है। यहा के निवासी और उनकी जीवन शैलिया, उनके नृत्य और संगीत शैलियों ,कला और हस्तकला जैसे अन्य अनेक –अनेक तत्व भारतीय संस्कृति और विरासत के विभिनन वर्ण प्रस्तुत किए गये है।

प्रमुख स्मारक जो कि भारत की अमिट पहचान है।

आगरे का किला :– ताजमहल के उद्यानों के पास महत्वपूण्र 16 वीं शताब्दी का मगल स्मारक है यह सैंड स्टोन से बना 2.5 किलामीटर लम्बी दीवार से घिरा हुआ है। आगरे का किला मुगल वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है , यह भारत में यूनेस्को के विश्व विरासत सिलों में से एक है।

अजंता और ऐललोरा गुफाएंः– महाराष्ट्र में औरंगाबाद शहर से लगभग 107 किमी दूरी पर स्थित अंजता की गुफाए पहाड़ को काट कर विशाल घोड़े की नाल के आकार में 29 गुफालाओं का एक सेट बौद्ध वास्तुकला और करूणामयी भावनाओं से भरी हुई शिल्पकला पाई जाती है। एलोरा में गुफाओं के मंदिर और मठ पहाड़ के ऊर्ध्वाधर भाग का काट कर बनाई गई है।

बहाई मंदिर – नई दिल्ली में स्थित कमल की आकृति की इमारत शहर के निवासियों का चेतना पर उकेरी गई है। इसे लोटस टेम्पल के नाम से भी जाना जाता है।

सांची के बौद्ध स्पूतः– सांची के बौद्ध स्तूप मध्यप्रदेश के रायसेन जिले में स्थित है। सम्राट अशोक ने इनका निर्माण तीसरी शताब्दी में करवाया है। इस स्तूप की ऊँचाई 16.46 मी. तथा व्यास 36.6 मी. है। महात्मा बुद्ध को यहां मानव से परे आकृतियों में सांकेतिक रूप से

दर्शाया गया है। वर्तमान में , यूनेस्को की एक परियोजना के तहत सांची तथा एक अन्य बौद्ध स्थल सतधारा की आगे खुदाई , संरक्षण तथा पर्यावरण का विकास किया जा रहा है।

हुमायूं का मकबराः— राजधानी नई दिल्ली में स्थित हुमायूं का मकबरा महान मुगल वास्तुकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। सन् 1570 में निर्मित यह मकबरा विशेष रूप, से सांस्कृ तिक महत्व रखता है। 1857 में स्वतंत्र के प्रथम संग्राम के दौरान इसी मकबरे में आश्रय लिया था। मुगल राजवंशों के अनेक शासकों को यही दफनाया गया है। हुमायूं की पत्नी को भी यही दफनाया गया था। यूनेस्को ने इस इमारत को विश्व विरासत घोषित किया है।

कुतुब मीनारः— गुलाम राजवंश के कुतुबउद्दीन ऐबक ने ए.डी. 1199 में मीनार की नींव रखी थी और यह नमाज अदा करने के लिए बनाई गई थी। 13 वीं शताब्दी में निर्मित है इमारत नई दिल्ली में स्थित है, इसका व्यास आधार पर 14.32 मीटर और 72.5 मीटर की ऊँचाई पर शीर्ष के पास लगभग 2.75 मीटर है। यह प्राचीन भारत की वास्तुकला का एक नमीना है।

भारत की संस्कृति बहुआयामी है जिसमें भारत का महान इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई, भारत में सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण स्थान है एवं उनका संरक्षण आवश्यक है।

भारत की जीवन शैली, मूल्य और मान्यताएं() :— भारत एक विविध संस्कृति वाला देश है। भारतीय संस्कृति में आज भी मिलती है जो लगभग पाँच हजार वर्ष पुरानी है।भारत की संस्कृ ति में सबकुछ हैं जैस अमूल्य विचार, लोगों की विभिन्न जीवन शैलियों ,मान्यताएं , रीति, रिवाज, मूल्य—आदतें, विनम्रता, पालन ,पोषण और ज्ञान । पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी संस्कृति की नयी पीढ़ी को सौंपते है। जैसे बच्चों को व्यवहार और संस्कृति का समझ माता—पिता, दादा—दादी, नाना—नानी से मिलती हें हम भारतीय संस्कृति विविधता की झलक सभी चीजों में देख सकते हे। जैसे नृत्य संगीत कला व्यवहार, सामाजिक , नियम, वेशभूषा एवं हस्तशिला इत्यादि। हमारे देश में अतिथियों का सम्मान किया जाता है'' अतिथि देवों भव'' जैसे सद्वाक्य भारत देश में ही हो सकता है । धार्मिक बहुलता का अर्थ

(**Meaning of Religions Plurality**) :— धार्मिक बहुलवाद आम तौर पर दो या दो से अधिक धार्मिक साक्षात्कारों में समान रूप से मान्य होन के लिए विश्वास को उत्पन्न करता है। धार्मिक बहुलवाद समाज में सह—विधमान धार्मिक विश्वास प्रणालियों की विविधता के संबंध में एक दृष्टिकोण है। भारत के सभी धर्मों से कुछ न कुछ अच्छा सीखने को मिलते है।

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं में से एक विशेषता धर्म की प्रधानता है अनेकानेक शताब्दियों के अन्तराल में भारत का मूलभूत आदर्श यहाँ का धर्म रहा है। आर्यों ने धर्म को अपने जीवन में इस प्रकार उतारा मानो कि वह उनकी आत्मा है। हमारे सभी कर्म धर्म पर आधारित होते है। धर्म के अभाव में कोई कर्म सार्थक नहीं माना जाता। धार्मिक बहुलता वाला देश संसार में प्रसिद्ध है। इस धार्मिक बहुलता के कारण हमारी संस्कृति व देश की रक्षा होती है। हमारे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में भी धर्म पर प्रकाश डाला है।

आर्यों के अनुसार ''देश –धर्म है और धर्म ही देश है।''

भारत और धर्म को उन्होंने एकात्म माना है आर्यों की यह धारणा थी कि इतिहास के उतार–चढ़ाव के बावजूद न तो धर्म का नाश होता है। और न देश का आपने अपने आस–पास कोई न कोई उत्सव होता हुआ देखा होगा। विभिन्न धर्मों के लोगों को एक साथ उत्सव मनाते हुये देखा होगा। विभिन्न राज्यों, नगरों, शहरों एंव गांवों मे अलग–अलग समुदाय के लोगो द्वारा रोजाना मनाए जोन वाले हजारों उत्सव भारत की समूह सांस्कृतिक विरासत की जीवतता और विविधता को दर्शाते हैं संस्कृति के व्यापक विस्तार के भीतर हम कई उपसंस्कृतियों के भी साक्षी है। किसी एक जगह जो विचार, परंपरा, रिवाज वगैरह प्रमुख होते है, वे मात्र सौ किलोमीटर की दूरी पर नहीं होते। जैसे भारत में समय –समय पर कुंभ मेले का आयोजन किया जाता है जो कि सांस्कृतिक एंव धार्मिक बहुलता को विराट कैनवास पर प्रस्तुत करना हैं भारत में प्रत्येक जीवित संस्कृति विकसित होती है यह कुछ नए प्रभावों को स्वीकार करती है और पुराने को त्याग देती है। कई परंपराएं मान्यताएं और रीति–रिवाज सदियों पुराने है , लेकिन जरूरी नहीं है कि वे अपने मूल रूप में मनाए जाते हैं । सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत समस्त संस्कृति का उदाहरण है सांस्कृतिक विविधता एंव धार्मिक बहुलता एक ही गुलदस्तें में विभिन्न रंगों और खुशबुओं के फूलों के समान है।

यह विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों को साथ–साथ रहने और फलने –फूलने की अनुमति देता है, यही गुण भारतीय संस्कृति को बेहद समृद्ध और आकर्षक बनाता है।

एक जीवन संस्कृति दूसरी अन्य संस्कृतियों को प्रभावित करती है और खुद भी प्रभावित होती है।

हिन्दू सनातन धर्म की विचारधारा एंव मूल संस्कृति ''वसुधैव कुटुम्बकम'' में छिपा हुआ है। इसका तात्पर्य है कि सम्पूण्र जगत या पृथ्वी पर रहने वाले लोग एक परिवार है।'' यह वाक्य भारतीयों संसद के प्रवेश कक्ष में भी अंकित है।

भारत के विभिन्न धर्म(Different Religion of India) :– भारतीय जन–जीवन में धर्म की महत्वा अपरंपार है । भारत देश में कई धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं –यहाँ हिन्दू, मुस्लिम , सिख,, इसाई , जैन, बौद्ध एवं पारसी आदि।

दुनिया में संभवतः भारत ही ऐसा देश है जाहं सबसे अधिक धर्मों को मानने वाले लोग रहते है। यह भारत की गंगा–जमुना तहजीब का ही नतीजा है कि सब धर्मों को मानने वाले

ओग अपने –अपने धर्म को मानते हुए इस देश में भाईचारें की भावना के साथ सदियों से रहते चले आ रहे है। चार पुरूषार्थों की कल्पना भारत में ही की गई एंव धर्म , अर्थ, काम व मोक्ष इन्हें जीवन का मूल तत्व कहा गया। इन्हें समय के अनुसार प्राप्त करता ही जीवन की उपलब्ध कहीं जा सकती है।

हिन्दू धर्म– आज से 3 हजार वर्ष पहले कश्मीर से कन्याकुमारी तक व अफगानिस्तान की हिंदकुश पर्वतमाला से लेकर बांग्ला देश की खाड़ी तक सिर्फ हिन्दू धर्म था।

इस्लाम धर्म –अरब व्यापारियों के माध्यम से इस्लाम धर्म 7 वीं शताब्दी में दक्षिण भारत में आया। अफगानी ,ईरानी और मुगल साम्राज्य के दौर में इस्लाम धर्म दो तरीके से फेला–प्रथम सूफी संतो के प्रचार–प्रसार द्वारा तथा द्वितीय मुगल शासकों द्वारा किए गए दमन चक्र से ।

सिख – इस धर्म के संस्थापक गुरू नानक देवजी ने 15 वीं शताब्दी में एक ईश्वर और भाईचारे पर बल दिया था। पंजाब में इस धर्म की उत्पत्ति हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बदले वैमनस्म को कम करने के लिये सिख धर्म की उत्पत्ति हुईं आज गुरूद्वारों में सभी धर्मों के लोगों को देखा जा सकता है।
ईसाई धर्मः– ईसाई धर्म प्राचीन यहदी परंपरा से निकला एकेश्व खादी धर्म हैं इसकी शुरूआत प्रथम सदी ई. में फलिस्तीन में हुई, जिसके अनुयायी ईसाई कहलाते है। यह धर्म ईसा मसीह की शिक्षाओं पर आधारित हैं । ईसाइयों में मुख्यता तीन समुदाय है, केथोलिक, प्रोटेस्टेंट और आर्थोडॉक्स तथा इनका धर्मग्रंथ बाईबल है।

जैन धर्म– जैन धर्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भगवान महावीर स्वामी ने जैन धर्म का प्रचार–प्रसार किया था। इसके फलस्वरूप बहुत से हात्रिय और ब्राह्मण जैन बन गए। उन्होने तप, संयम और अहिंसा का संदेश दिया। उनका प्रिय महावाक्य था–'जीयो और जीने दो।'

बौद्ध धर्म– ईसा पूर्व 6 वीं शताब्दी में गौतम बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म की सिपना हुई है। बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व में लंबिनी, नेपाल में हुआ बुद्ध ने अपने अनुयायियों को चार आर्य सत्य –दुःख , दुःख का कारण, दुःख का कारण, दुःख निरोध एंव दुःख निरोध का मार्ग बताया तथा तृष्णा से मुक्ति अष्टांगिक मार्ग के अनुसार जीने से पाई जा सकती है। गौतम बुद्ध कहहते थे कि चार आर्य सत्य की सत्यता का निश्चय करने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। (1) सम्यक दृष्टि (2) सम्यक संकल्प (3) सम्यक वाक (4) सम्यक कर्म (5) सम्यक जीविका (6) सम्यक प्रयास (7) सम्यक स्मृति (8)सम्यक समाधि ।

पारसी धर्म :– यह धर्म ईरान का प्राचीन धर्म है। ईरान पर इस्लामी विजय के बाद अनेक पारसियों को इस्लाम कबूल करना पड़ा था। कई पारसियों ने अपना गृहदेश छोड़कर भारत में शरण ली थी। सबसे पहले पारसियों का समूह 766 ईसा पूर्व उमन और दीव पहुंचा था।

इस प्रकार सभी धर्मो का अवलोकन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि अनेक धर्मो के लोग अलग–अलग देशों से आए और यहीं के होकर रह गए।

इकाई का सांराश (Summary of the Unit):– इस इकाई में हमने भाषायी विविधता सांस्कृतिक विविधता एक धार्मिक बहुलवाद की चर्चा की।

भारत में भाषायी विविधता होने के उपरांत धर्म एकता पाई जाती है। भाषायी विविधता के उदाहरण आप अपने आस–पास देख सकते है।

भारत की विभिन्न भाषाओं को चार भाषा परिवारों में बाँटा गया है। भारत के संविधान में 22 भाषाओं को रखा गया है। देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को भारत की राजभाषा का दर्जा हिया गया है। संस्कृति का तात्पर्य समस्त विचार मूल्य परम्परा विश्वास , ज्ञान, एवं अन्य भौतिक तथा अभौतिक वस्तुएं संस्कृति का भाग होता है । भारत एक संस्कृति विविधता पूर्ण देश है। यहां विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र विभिन्न धर्म, जाति, भाषा, संस्कृतिया विद्यमान है फिर भी देश ने सभी को एकता के सूत्र में बांध रखा है। भारत के सभी धर्म हमें अपने कर्त्तव्यों के पालन करने पर बल देते है। यहाँ धर्म का तात्पर्य कर्त्तव्यों के पालन मात्र से हैं। भारतीय संस्कृति में लचीलापन है, कोई कठोर सांस्कृतिक नियम नहीं हे। इसलिए यहाँ अन्य संस्कृतियों भी अपने अस्थित के साथ अस्तित्व बनाए हुए हैं। भारतीय संस्कृति अपने पराग की भावना न रखकर–मानव कल्याण की भावना से प्रेरित है। भारत के विभिन्न धर्मों एंव सम्प्रदायों में बाहय विभिन्नता भले ही देखने को मिले लेकिन सभी धर्मों से एक ही आदर्श सीखने को मिलता है। नानक ,तुलसी ,बुद्ध, महावीर सभी के लिए पूज्यनीय है। ए.पी.ज. अब्दुल कलाम, होमी जहाँगीर भाभा सभी के लिए आदरणीय हैं । मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, मजार पर एकता के दर्शन होते है।

भारतीय संस्कृति की धनी संस्कृति (Rich Culture) भी कहा जाता है। क्योंकि यह लक्ष्य प्राप्त उपलब्ध करने के एक से अधिक साधन उपलब्ध करानी है। मौलिकता से लेकर धर्म, सम्प्रदाय भाषा आदि की विभिन्नता के रूप में इसे समझा जा सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच (**Check your Progress**)

1 भारतीय संस्कृति के परिदृश्य की विवेचना कीजिए?

2 बहुभाषिक परिदृश्य से आप क्या समझते हैं?

3 भारत के विभिन्न भाषा परिवारों का वर्णन कीजिए?

4 भारत की भाषाओं के विषय में संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा कीजिए।

5 भारत में हिंदी भाषा का क्या स्थान है?

निहित कार्य (**Assignments**)

1 सांस्कृतिक विविधता का क्या अर्थ है?

2 भारत की सांस्कृतिक विरासत की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए?

3 धार्मिक बहुलता का अर्थ स्पष्ट कीजिए एंव '' भारत एक धार्मिक बहुलता का देश है। '' को स्पष्ट कीजिए।

संदर्भ (**References**)

- शर्मा, हरिशंकर (2002), भारतीय संस्कृति के आधार मलिक एण्ड कम्पनी जयपुर
- www.knowindia. gov.in
- https//mea.gov.in
- m-hindi.webdunia.com
- www.nios.ac.in
- www.ncert.nic.in
- www.rajbhasha.nic.in

D.El.Ed. 02

Block II – India Under Colonialism

खण्ड – 2 उपनिवेशवाद के तहत भारत

Unit – 1 India Under British Rule

इकाई – 1 ब्रिटिश शासन के तहत भारत

संरचना

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 औपनिवेशिक शासन की शुरूआत : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय (Beginging of Colonial Rule : A brief historical account)

1.3.1 व्यापार से कंपनी की सत्ता स्थापित होना तथा ब्रिटिश साम्राज्य का आरम्भ

1.3.2 पूर्व से ईस्ट इंडिया कंपनी का आना

1.3.3 ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार शुरूआत बंगाल से

1.3.4 व्यापार से युद्धों तक

1.3.5 कंपनी का फैलता शासन

1.3.6 सर्वोच्चता का दावा

1.3.7 विलय नीति

1.3.8 नए शासन की स्थापना

1.4 उपनिवेशवाद का भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा नीतियों पर प्रभाव ; (Impact of Colonialism on Indian Society, Economics and Policies)

1.4.1 भारतीय समाज पर उपनिवेशवाद का प्रभाव

1.4.2 भारतीय अर्थव्यवस्था पर उपनिवेशवाद का प्रभाव

1.4.3 भारतीय नीतियों पर उपनिवेशवाद का प्रभाव

1.5 ब्रिटिश शासन की रचनात्मक एवं विनाशकारी भूमिका : एक आलोचनात्मक समझ।

1.6 इकाई सारांश

1.7 नियत कार्य

1.8 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिंदु

1.9 संदर्भ

1.1 परिचयः—

सन् 1707 में आखिरी शक्तिशाली मुगल बादशाह औरंगज़ेब के मृत्यु के बाद बहुत सारे मुगल सूबेदारों और ज़मींदारों ने अपनी क्षेत्रीय रियासतें कायम कर ली। दिल्ली अब केन्द्र के रूप में प्रभावी नहीं रह सकी। अठारहवी सदी के उत्तरार्ध तक रानीतिक क्षितिज अंग्रेजों के रूप में एक नयी ताकत बन उभरने लगा था। यह अंग्रेज एक छोटी—सी व्यापारिक कंपनी के रूप में भारत आए थे।

1.2 उद्देश्यः—

इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न बिंदुओं को जान पायेंगे—

- भारत में ब्रिटिश/अंग्रेजों के आने का कारण की विवेचना कर पायेंगे।
- भारत में उपनिवेश करने के लिए अंग्रेजों द्वारा अपनाएँ गये विभिन्न तरीकों को पहचान पांएगे।
- भारतीय समाज एवं संस्कृति पर उपनिवेशवाद के प्रभाव का विवरण दे पायेंगे।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर उपनिवेशवाद का प्रभाव का अध्ययन कर पायेंगे।
- ब्रिटिश शासन की सकारात्मक एवं नकारात्मक भूमिका का विशलेषण कर पायेंगे।

1.3 औपनिवेशिक शासन की शुरूआत : एक संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय **Beginging of Colonial Rule : A brief historical account)**

1.3.1 व्यापार से कंपनी की सत्ता स्थापित होना तथा ब्रिटिश साम्राज्य का आरम्भ

ब्रिटिश राज 1858 से 1947 के बीच भारतीय उपमहाद्वीप पर ब्रिटिश द्वारा भारतियों पर शासन था। यह भारतीय क्षेत्र पूरी तरह ब्रिटिश के नियंत्रण में था, जिसे आम तौर पर समकालीन उपयोग में ''इडिया '' कहा जाता थां इसमें वो ़क्षेत्र शामिल थे जिन पर ब्रिटेन का सीधा प्रशासन था, तथा वो रियासतें जिन पर व्यक्तिगत शासक राज करते थे पर उन पर ब्रिटिश क्राउन की सर्वोपरिता थी, शासन की प्रणाली 1858 में स्थापित की गई थी। ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन ''क्राउन'' अर्थात् क्वीन विक्टोरिया को सीािंनातरित कर दिया गया था तथा उन्हें भारत की महारानी घोषित किया गया था। अधिकांश भारतीय उपमहाद्वीप 1857 से 1947 तक ब्रिटिश शासन के अधीन था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी से बढ़ते—बढ़ते एक भौगोलिक औपनिवेशक शक्ति बन गई।

1.3.2 पूर्व से ईस्ट इंडिया कंपनी का आना–

सन् 1600 से ईस्ट इंडिया कंपनी ने इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम से इजाजतनामा (चार्टर) हासिल कर, कंपनी को पूरब में व्यापार करने का एकाधिकार मिल गया, इस चार्टर के तहत कंपनी समुद्र पार, नए इलाकों में जाकर, सस्ती कीमत पर वस्तुएँ ख़रीद, उन्हें यूरोप में ऊँचे दामों पर बेच सकती थी। परन्तु यह शाही दस्तावेज दूसरी यूरोपीय ताकतों की पूर्व के बाज़ारों में आने से नहीं रोक सकता था। भारत में पुर्तगालियों डच एवं फ्रांसीसी भी व्यापार की संभावनाएँ तलाश रहे थे। समस्या यह थी कि सारी कंपनियाँ एक जैसी चीज़े ही ख़रीदना चाहती थी। यूरोप के बाज़ारों में भारत के बने बारीक सूती कपड़े और रेशम, काली मिर्च, लौंग, इलायची और चीनी की जबरदस्त माँग थी। यूरोपीय कंपनियों के बीच इस बढ़ती प्रतिस्पर्धा से भारतीय बाजारों में इन चीजों की कीमतें बढ़ने लगी और उनसे मिलने वाला मुनाफा गिरने लगा।

1.3.3 ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार शुरूआत बंगाल से–
(East India Company Starts Trade from Bengal)

पहली इंग्लिश फैक्टरी 1651 में हुगली नदी के किनारे शुरू हुई। व्यापार फैला कंपनी ने सौदागरों और व्यापारियों की फैक्टरी के आस–पास बसाना शुरू कर दियां 1696 तक कंपनी ने इस आबादी के चारों तरफ एक किला बनाना शुरू कर दिया। दो साल में कंपनी ने मुगल अफसरों को रिश्वत देकर तीन गावों की जमींदारी खरीद ली। इनमें से एक गाँव, कालीकाता कहा भी था जो बाद में कलकत्ता, तथा वर्तमान में कोलकाता कहा जाता है।

कंपनी ने मुग़ल सम्राट औरंगजेब को इस बात के लिए भी तैयार कर लिया कि वह कंपनी को बिना शुल्क चुकाएँ व्यापार करने का शाही आदेश था फ़रमान जारी कर दे। इस तरह कंपनी रियास्ते राजस्व वसूली बहुत कम हो गई। इस कारण बंगाल के नवाबों एवं कंपनी में टकराव बढ़ गया। अठारहवीं सदी की शुरूआत तक यह टकराव काफी बढ़ गया था।

1.3.4 व्यापार से युद्धों तक–

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद बंगाल के नवाब अपनी ताकत दिखाने लगे थे। मुर्शिद कुली खान के बाद अली वर्दी खान और उसके बाद सिराजुद्दौला बंगाल के नवाब बने। ये सभी शक्तिशाली शासक थे। उन्होंने कंपनी की रियासतें देने से मना कर दिया। 1756 में अली वर्दी खान की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला बंगाल के नवाब बने। सिराजुद्दौला ने हुक्म दिया कि कंपनी अपने राज्य के राजनीतिक मामलों में दखल न दे, किलेबंदी रोके तथा राजस्व चुकाएँ, ऐसा न होने पर नवाब ने अपने 30,000 सिपाहियों के साथ नवाब ने फैक्टरी पर हमला कर, गोदामों पर ताले लगवा दिये तथा हथियार छीन लिए तथा अंग्रेज़ जहाजों को

घेरे में ले लिया। यह युद्ध प्लासी के युद्ध के रूप में परिणीत हुआ। यह कलकत्ता के हाथ से निकल जाने की खबर सुनने पर मद्रास में तैनात कंपनी के अफसरों ने भी रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में सेनाओं को खाना कर दिया। 1757 में रॉबर्ट क्लाइव ने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के खिलाफ कंपनी की सेना का नेतृत्व कियां जिसमें नवाब सिराजुद्दौला की हार हुई तथा भारत में कंपनी की पहली बड़ी जीत थी। इस हार के परिणाम स्वरूप नवाबों को बाध्य कर दिया गया कि वे कंपनी को तोहफे के तौर पर ज़मीन तथा पैसा दें।

1.3.5 कंपनी का फैलता शासन–

1757 से 1857 के बीच ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा भारतीय राज्यों पर प्रक्रिया पूरी कर ली भारतीय रियासतों का अधिग्रहण करने से पहले विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक तथा कूटनीतिक साधनों का उपयोग किया।

बक्सर की लड़ाई (1765) के बाद कंपनी ने भारतीय रियासतों में रज़िडेंट तैनात कर दिये। ये कंपनी के राजनीतिक या व्यावसायिक प्रतिनिधि होते थे। उनका काम कंपनी के हितों की रक्षा करना और उन्हें आगे बढ़ाना था। रज़िडेंट के माध्यम से कंपनी के अधिकारी भारतीय राज्यों के भीतरी मामलों में भी दखल देने लगे थे। जब रिचर्ड वेलेज़्ली गवर्नर –जनरल (1798–1805) था, उस समय अवध के नवाब को 1801 में अपना आधा इलाका कंपनी कों सौंपने के लिए जमबूर किया गया क्योंकि नवाब “सहायक सेना” के लिए पैसा अदा करने में चूक गये थे। इसी आधार पर हैदराबाद के भी कई इलाके छीन लिए गए।

टीपू सुल्तान– जब कंपनी को अपने राजनीतिक एवं आर्थिक हितों पर खतरा दिखाई दिया तो कंपनी ने प्रत्यक्ष सैनिक टकराव का रास्ता भी अपनाया। दक्षिण भारतीय राज्य मैसूर से यह बात समझी जा सकती है। हैदर अली शासनकाल (1761–1782) और उनके विख्यात पुत्र टीपू सुल्तान शासन काल (1782–1799) मैंसूर के शासक थे। मालाबार पर होने वाला व्यापार, मैसूर रियासत के नियंत्रण था, यहाँ से कंपनी काली मिर्च और इलायची खरीदती थी। 1785 में टीपू सुल्तान ने अपनी रियासत में पड़ने वाले बंदरगाहों से चंदन की लकड़ी, काली मिर्च और इलायची का निर्यात रोक दिया। फलस्वरूप मैसूर के साथ अंग्रेजों की चार बार जंग हुई (1767–69, 1780–84, 1790–92 और 1799) श्रीरंगपट्म की आखिरी जंग में कंपनी को सफलता मिली। टीपू सुल्तान के शहीद होने पर मैसूर पर भी सहायक संधि थोप दी गई।

मराठों की लड़ाई–

18वीं शताब्दी के अंत में कंपनी मराठों की ताकत को भी काबू और खत्म करने की कोशिशे करने लगी। महाद्जी सिंधिया एवं नाना फड़नीस इस सदी के प्रसिद्ध मराठा योद्धा एवं राजनीतिज्ञ थे। यहाँ के राज्यों की बाडाडोर सिंधिया, होलकर, गायकवाड़ एवं भोंसले, जैसे राजवंशों के हाथों में थी, ये सारे सरदार एक पेशवा (सर्वोच्च मंत्री) के अंतर्गत एक राज्यमंण्डल के सदस्य थे। कंपनी के मराठों के साथ भी कई युद्ध हुए, (1782, 1803–05) अंततः 1817–19 के तीसरे अंग्रेज–मराठा युद्ध में मराठों की ताकत की पूरी तरह कुचल दिया गया। अब विध्यं के दक्षिण में स्थित पूरे भूभाग पर कंपनी का नियंत्रण हो चुका था।

1.3.6 सर्वोच्चता का दावा

लॉर्ड हॉस्टंग्स (1813 से 1823 तक गवर्नर जनरल) के नेतृत्व में "सर्वोच्चता" की एक नयी नीति शुरू हो गई। कंपनी का दावा था कि उसकी सत्ता सर्वोच्च है, इसीलिए वह भारतीय राज्यों से ऊपर है।

सन् 1838 से 1842 के बीच अफ़गानिस्तान के साथ एक लंबी लड़ाई लड़ी और वहाँ अप्रत्यक्ष कंपनी शासन स्थापित कर लिया। 1843 में सिंध भी कब्जे में आ गया। इसके बाद 1839 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब की बारी थी। इस रियासत के साथ दो लंबी लड़ाईयाँ हुई और आखिरकार 1849 में अंग्रेजों ने पंजाब का भी अधिग्रहरण कर लिया।

1.3.7 विलय नीतिः–

अधिग्रहण की आखिरी लहर 1848 से 1856 के बीच गवर्नर जनरल बने लॉर्ड डलहौजी के शासन काल में हुई। यहां एक नई विलय नीति अपनाई। इस सिद्धांत के अनुसार यदि किसी शासक में मृत्यु उपरांत कोई पुरूष वारिस नही होने पर, तो वह रियासत कंपनी के भूभाग का हिस्सा बन जायेगी, इसी नीति की वजह से सतारा (1848),संबलपुर (1850), उदयपुर (1852), नागपुर (1853) और झाँसी (1854) रियासतें अंग्रेजों के हाथ में चली गई। 1856 में अवध को भी कब्जे में कर लिया गया।

1.3.8 नए शासन की स्थापना–

इस नए शासन, यानि कि ब्रिटिश हूकूमत के इलाके, प्रशासकीय इकाइयों में बाह दिये गये। इन्हें प्रेज़िडेसी कहा गया– बंगाल, मद्रास तथा बम्बई। इसका शासन गवर्नर के पास होता था। सबसे ऊपर गवर्नर–जनरल होता था। उस समय वॉरेन हेस्टिंग्स को यह पद सौंपा गया। इस तरह भारत में अंग्रेजों ने अपनी सत्ता फैला दी।

नई न्याय व्यवस्था स्थापित कर ली गई। अदालतों को कलेक्टर (Collector) की निगरानी में काम किया करती थी। कलेक्टर का पद अंग्रेजों को ही दिया जाता था। इसका मुख्य काम लगान और कर इकट्ठा करना तथा न्यायाधीशों, पुलिस अधिकारियों एवं दरोगा की सहता से जिले में कानून–व्यवस्था बनाए रखना होता था। उसका कार्यालय–कलेक्टरेट–सत्ता एवं संरक्षण का नया केंन्द्र बन गया था, जिसने पुराने सत्ता केन्द्रों को भी इसी हाशिये पर ढ़केल दिया।

इसी के साथ कंपनी अपनी फौज/सैनिक ताकत बढ़ाने में लग गई, उन्नीसवीं सदी के शुरूआत में अग्रेज़ एक समरूप सैनिक संस्कृति विकसित करने लगे। सिपाहियों को यूरोपीय ढंग का प्रशिक्षण, अभ्यास और अनुशासन सिखाया जाने लगा। इस सब में अंग्रेज जाति तथा समुदाय की भावनाओं को भी नज़र अंदाज कर देते थे। भारतीय इन धार्मिक भावनाओं को नहीं छोड़ सकते थे। 1857 का विद्रोह का सबसे बड़ा कारण भी यही बना। कंपनी के सेना के सैनिक भारतीय होने के कारण इन बदलावों को ग्रहण नहीं कर सके और सन् 1857 के महान विद्रोह में शामिल हो गए। सैनिक विद्रोह जनविद्रोह बन गया। कंपनी ने अपनी पूरी ताकत लगा कर विद्रोह को कुचल दिय। सितंबर 1857 में दिल्ली दोबारा अंग्रेजों के कब्जे में आ गई।

बंगाल में अंग्रेजों की जीत के बाद कलकत्ता एक छोटे से गाँव से बड़े शहर के यूरोपीय तथा भारतीय निवासियों को संस्कृति, शिल्प तथा जीवन पर कई बदलाव आए। इस प्रकार 1857 के बाद इतिहास का एक नया चरण शुरू हुआ।

1.4 उपनिवेशवाद का भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा नीतियों पर प्रभाव **(Impact of Colonialism on Indian Society, Economics and Policies)**

कोलोनियलिज्म ;ब्वसवदपंसपेउद्ध शब्द लैटिन भाषा के 'कोलोनिया' ;ब्वसवदपंद्ध शब्द से बना है, जिसका अर्थ है– एक ऐसी संपत्ति जिसे योजनाबद्ध ढंग से विदेशियों द्वारा कायम किया गया हो। प्रभुत्व स्थापित करने का एक ऐसा तरीका, जिसमें किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के व्यक्तियों द्वारा अन्य किसी भौगोलिक क्षेत्र में इस उद्देश्य के साथ उपनिवेश (कॉलोनी) स्थापित किया जाता है। इसे उपनिवेशवाद कहते है। इसमें उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था व सामाजिक प्रणाली का निर्धारण एवं नियमन उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी देश की अर्थव्यवस्था व पूँजीवादी वर्ग की आवश्यकताओं की दृष्टि में रखकर किया जाता था।

सन् 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई में सिराजउद–दौला की हार को औपनिवेशिक शासन का आरंभ माना जाता है। 1765 में बक्सर की लड़ाई के बाद बंगाल की दीवानी ब्रिटिश हाथों में चली गई। ईस्ट इंण्डिया कम्पनी को भारत समेत पूर्व के साथ

व्यापार का एकाधिकार, ब्रिटिश संसद द्वारा दे दिया गया। इन युद्धों के बाद उन्होंने विजित राज्य क्षेत्रों से भू–राजस्व एकत्रित करेन की अनन्य नियंत्रण शक्ति भी अर्जित कर ली।

प्रसिद्ध इतिहासकार 'विपिनचन्द्र' ने उपनिवेशवाद को एक सामाजिक संगठन के रूप में व्याख्यायित किया है, जिसमें सामंतवाद, दास–प्रथा, बंधुआ मजदूरी, लघु स्तर पर उत्पादन, व्यापार, सूदरवोरी के कार्य एवं औद्योगिक एवं वित्तीय पूँजीवादी एक साथ उत्पादन के ये विभिन्न तरीके मौजूद रहते है एवं इनके माध्यम से सामाजिक अधिशेष का उपभोग उपनिवेशवादी ताकत के हितों की पूर्ति के लिए किया जाता है।

1.4.1 भारतीय समाज पर उपनिवेशवाद का प्रभाव

(1) जाति व्यवस्था (Caste System)

भारत में आज की मौजूद जाति व्यवस्था ब्रिटिश औपनिवेशक शासन के दौरान के विकास का परिणाम है, जिसने जाति संगठन को प्रशासन का एक केन्द्रीय तंत्र बना दिया। इसके लिए ब्रिटिश सरकार ने 'ट्राइब्स' शब्द का इस्तेमाल किया, जिसमें जातियाँ शामिल थी, 1871 में ब्रिटिश सरकार ने आपराधिक जनजाति अधिनियम बनाया था, इसे अहीर, गुर्जर एवं जाट शामिल थे। 19वीं शताब्दी में इसमें विस्तार कर अछीत, पहाड़ी जनजातियाँ और संन्यासी के साथ–साथ औपनिवेशिक कानूनों का विद्रोह करने और भारत के लिए स्व–शासन की माँग करने वाले जातियों, पूर्वशासक परिवारों कल्लार और दक्षिण भारत में मारवाड़, आदि शामिल किए गए।

ब्रिटिश सरकार ने रेलवे, प्रेस, शिक्षा की पश्चिमी प्रणाली, क्लबों और संघों को पेश किया।

भारत में अंग्रेजों के आने के बाद कई बदलाव भारतीय समाज में आये। 19वी सदी में कन्या भ्रूण हत्या, बहुविवाह, बाल विवाह, सती प्रथा तथा कठोर जाति व्यवस्था जैसी सामाजिक प्रथाएँ अधिक प्रचलित थी। ये मानवीय गरिमा एवं मूल्यों के खिलाफ थी। महिलाओं को जीवन के सभी चरणों में भेदभाव किया गया था और वह समाज का वंचित वर्ग था। उनकी स्थिति में सुधार के लिए विकास के किसी भी अवसर तक उनकी पहुँच नहीं थी। शिक्षा उच्च जाति के मुट्ठी भर पुरूषों तक सीमित थी। ब्राह्मणों की वेदों तक पहुँच थी जो संस्कृत में लिखे गये थे। जन्म या मृत्यु के बाद महंतो अनुष्ठान, बलिदान और प्रथाओं को पुरोहित वर्ग द्वारा उल्लेखित किया गया था।

ज्ब अंग्रेज भारत आये, तो वह अपने साथ स्वतंत्रता, समानता एवं मानवाधिकार के नये विचारों के साथ लाये थे। वे यूरोप में होने वाले विभिन्न क्रांतियों, रिफार्मेशन मूवमेंट और पुनर्जागरण काल से नये विचार लाये थे, इन विचारों ने भारतीय समाज के कुछ वर्गों ने प्रोत्साहित हो देश के विभिन्न हिस्सों में कई सुधार आंदोलनों को जन्म दिया। इन आंदोलनों में सबसे अग्रसर एवं दूरदर्शी भारतीय शामिल थे, जैसे राजाराममोहन राय, सर सैयद अहमद खान, अरूणा आसिफ अली और पंडिता रामाबाई । इन आंदोलनों ने सामाजिक की तलाश जारी रखी तथा स्वंतत्रता ,समानता और बंधुत्व की दिशा में प्रयास करते रहे । महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए

कई कानूनी उपाय शुरू किए गए। उदाहरण के तौर पर सती–प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यह प्रतिबंध लॉड बेनटिक ने 1829 में लागू किया, जो उस समय गर्वनर जनरल थे। 1856 में पारित कानून द्वारा विधवा पुनर्विवाह को अनुमति दी गई थी । 1872 में पारित कानून के द्वारा अंतरजातीय विवाह को मंजूरी दी। शारदा अधिनियम, 1929 में बाल विवाह रोकने के लिए पारित किया गया था। सभी आंदोलनों ने जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता प्रथा की कड़ी निन्दा की। महिलाओं को नये शैक्षिक अवसर प्राप्त होने लगे तथा वह घरों से बाहर निकल सार्वजनिक रोजगार के नए व्यवसायों का चयन करने लगी। इसका उदाहरण हम स्वतन्त्र । संग्रम में महिलाओं की भूमिका एवं महत्वपूण्र योगदान में देखते है। इनमें के पटन लक्ष्मी सहगल, सरोजनी नायडू, अरूणा असिफ अली आदि।

परन्तु ब्रिटिश भारत में भारी मुनाफा/लाभ कमाने आये थे। वे सिर्फ चाहते थे कि भारतीय उनके सामान का उपयोग करने के लिए शिक्षित और आधुनिक हो, लेकिन इस हद तक नहीं कि यह ब्रिटिश हित के लिए हानिकारक हो। इसी कारण ब्रिटिश सरकार भारत में तेजी से आधुनिकरण के लिए सतर्क थी। वे सिर्फ अपने शासन के नियम लागू करना चाहते थे। इसलिए उन्होने सुधार लाने की बात की, लेकिन वास्तव में बहुत कम उपाए किए गए थे। और वह भी आधे–अधूरे थे।

इसी तरह उपनिवेश नागरिकों को अपने मनोनुकुल उपयोगी बनाने हेतु शिक्षा –स्वरूप एवं सांस्कृतिक ढ़ाँचे में भी तोड़–मरोड़ किया गया। ऐसी शिक्षा व्यवस्था के निर्माण का प्रयास किया गया, जिससे भारतीयों का ऐसा नवीन वर्ग तैयार किया जा सके, जो रंग–रूप से तो भारतीय हो परन्तु मद–मस्तिष्क से अंग्रजियत की भक्ति करने वाला हो। अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करने के साथ ही पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति भारतीयों में आकर्षण पैदा करने के भरपूर प्रयास किए गए। इसके कई दूरगामी प्रभाव पड़े, जिसने एक नये सामाजिक ढ़ाँचे , नये सामाजिक वर्गी, नई प्रशासन पद्धति तथा एक नई राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया जिसका भारतीय समाज पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनो रूपों से प्रभाव पड़ा।

1.4.2 भारतीय अर्थव्यवस्था पर, उपनिवेशवाद का प्रभाव :–

उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के तहत वैश्विक पूँजी बाजार एवं साम्राज्यवादी प्रमुख के अन्तर्गत उपनिवेशों के कई निष्क्रिय क्षेत्र भी सक्रिय होकर, केन्द्रीय वैश्विक अर्थव्यवस्था से जुड़ जाते है। परन्तु अधिकांश उपनिवेश इस प्रक्रिया में कच्चे मालों का उत्पादनकर्त्ता बन जाते है, जबकि उच्चतर प्रौद्योगिकी एवं उच्चतर उत्पादक क्षमता के बलबूते साम्राज्यवादी देश विनिर्मित माले का उत्पादन करते थे। विनिमित मालों की पूर्ति के लिए साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी सत्ता लाद लेते थे एवं अपने हितों की पूर्ति के लिए सीमित स्तर पर आर्थिक विकास ,पर बल देते थे। भारत में राजनीतिक अधिपत्य की स्थापना के बाद अंग्रेजों ने मनमानी

शोषण करने का माध्यम बन गया। ब्रिटिशों ने अर्थव्यवस्था को सीधे नियंत्रण में लाने के लिए अपनी राजनैतिक शक्ति का प्रयोग किया । भारतीय अर्थव्यवस्था की दिशा ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के हितों की पूर्ति हेतु बदल दी गई भारतीय उपनिवेश मूलतः आर्थिक संदोहन को स्त्रोत बना। अंग्रेजों का लक्ष्य आर्थिक विकास करना नहीं था वरन भारत के आर्थिक ढ़ाँचे में वह सभी परिवर्तन करना था, जिनके द्वारा वे भारत का भरपूर संदोहन कर सके। जिससे सिर्फ अंग्रेजों के हितों की पूर्ति हो सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव निम्नलिखित क्षेत्रों पर पड़ाः–

1. कपड़ा एवं हस्तशिल्प उद्योग एवं व्यापार :– पहले, भारतीय हथकरघा उद्योग एंव हस्तशिल्प का यूरोप में बड़ा बाजार था। यह उद्योग सारे संसार में विदित था, भारतीय कपड़ा जैसे कि सूती, रेशमी लिनन कपड़ा तथा गर्म (ऊनी) शालें एवं गलीचों का एशिया तथा अफ्रीका में बहुत माँग थी तथा वह बहुत बड़ा बाजार था। सोन, चांदी तथा अन्य धातुओं के बने आभूषण, बर्तन,शस्त्र, लजपोत, हाथी–दांत की बनी वस्तुएं आदि बहुत प्रसिद्ध थे। भारत को सोने तथा चांदी का घर कहा जाता था।

इंग्लैंड में औद्योगीकरण के कारण, कपड़ा उद्योग ने वहाँ के लिए महत्वपूण्र हो गया, इससे ब्रिटेन और भारत के बीच कपड़ा व्यापार की दिशा में विपरीत प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी कारखानों से लेकर भारतीय बाजारों में बड़े पैमाने पर मशीन से बने कपडे का बड़ा आयात होता था। इससे भारतीय हस्तकला एंव हतकरघा उद्योग के लिए खतरा। बढ़ गया क्योंकि ब्रिटिश माल बहुत सस्ती कीमत पर बेचा जाने लगा। अंग्रेजों ने भारतीय जुलाहों को इतना कम मूल्य देना आरम्भ कर दिया कि उन्होंन बढ़िया कपड़ा ही बनाना बन्द कर दिया, अतः कुटीर, उद्योगों के हास में अंगेजी औद्योगिक क्रान्ति की मुख्य भेमिका थी। मशीनी सामान सस्ता और बढ़िया होता था, अतएव हरकरघा एंव कुटीर उद्योग ठपप हो गया । इससे बहुत सारे जुलाहे बेरोजगार हो गए।

इस से पता चलता है कि अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य भारत को ब्रिटिश सामानों के उपभोक्ता में बदलना थां इस के परिणाम स्वरूप कपड़ा उद्योग ,धातु कला, कागज एंव इलास उद्योगों का काम ठपप हो गया । भारतीय हस्तकला ने घरेलू एंव विदेशों बाजार दोनों को खो दिया।

2. भारतीय कृषि पर प्रभाव – भारत में ब्रिटिश नीतियों का प्रमुख आर्थिक प्रभाव बड़ी संख्या में व्यावसायिक फसलों की शुरूआत या चाय, कॉफी , नील, अफीम , कपास , जूट, गन्ना,तथा तिलहन जैसे फसलों की खेती करना अनिवार्य कर दिया गया। सभी किसानों को नील की खेती करने पर मजबूर कर दिया गया ,इससे कुद ही वर्षों में उपजाऊ भूमि बंजर हो गई इस कारण किसानइसे उगाने में अनिच्छक थे। इसी कारण अनाज का उत्पादन कम हो गया।

भूमि अधिग्रहण की पद्धतियां भी बदल दी गई, रैयतवाड़ी तथा महलवाड़ी पद्धतियां बेहद बोझल थी । कृषक स्थानीय साहूकार के ऋण के नीचे दबा रहता था।

3. परिवहन एवं संचार :– उस समय भार में परिवहन के साधन बैलगाड़ी ऊँट तथा घोड़े। अग्रेजो का कच्चा माल की आवाजाही के लिए रेल मार्ग की आवश्यकता थी। अतः रेलवे की शुरूआत भारत के 19 वीं सदी के अंत में कर दी गई । रेलवे ब्रिटिश पूंजीवादीयों को दो तरह से लाभान्वित करता थां पहला, इसमें वस्तुओं का व्यापार करना बहुत आसान एंव लाभदायक बना दिया, इसने आंतरिक बाजारों और बंदरगाहों को जोड़ दिया, दूसरा ,रेल के इंजन ,कोच तथा रेल लाइनों के निर्माण के लिए पूंजी निवेश ब्रिटेन से ही आये थे।

अतः आर्थिक कारण मुख्य रूप से भारत को सबसे ज्यादा हानिप्रद था। भारत उपनिवेशवाद शासन में अविकसित देश रह गया, जिसमें भुखमरी, निर्धनता तथा थोड़ी राष्ट्रीय आय थी।

1.4.3 भारतीय नीतियों पर प्रभाव

1. वित्तीय और कर प्रशासन :– अंग्रेजों को अपने वर्चस्व बनाए रखने के लिए सेना की आवश्यकता थी। इस के लिए धन की कमी थी, इसके लिए उन्होंने भारत का पूर्ण एवं विधिवत आर्थिक शोषण किया। भूमि कर तथा ही राजस्व का मुख्य स्त्रोत था। इसके अतिरिक्त सीमा शुल्क आबकारी शुल्क अफीम तथा नमक कर, भारत के राजाओं द्वारा अंशदान ,प्रांतों से मिला धन, स्आम्प शुल्क आदि राजस्व के अन्य स्त्रोत बने।

2. भूमि कर नीतिः– भूमि की मलकियत की नवीन धारणाओं के साथ अंग्रेजों ने पटट्दारी के नए कानून बनाए और भूमिकर की मांग अधिक करने का प्रयास किया। तीन प्रकार की भूमि पटट्दारी लागू की गई ।

1. जमीदारी व्यवस्था
2. महलवाड़ी पद्धति
3. रैयतवाड़ी पद्धति

इनमें से महलवाड़ी पद्धति का विकास हुआ। इसके अनुसार राज्य का भूकर 10 से 40 वर्ष तक की अवधि के लिए निश्चित किया जाता था।

रैयतवाड़ी पद्धति के अनुसार भूमि के पंजीकृत स्वामी के साथ एक निश्चित राशि भूमि–कर के रूप में देने की संविदा की जाती थी। उसे यह राशि सरकार को देनी होती थी, इसमे किसी की मध्यस्था की जरूरत नहीं थी। अंग्रेजो द्वारा भूमि कर प्रणाली के मुख्य पक्ष निम्नलिखित हैः–

1. अध्याधिक कर की माँग
2. संग्रहण में कठोरता
3. एक दिन की देरी भी क्षमा योग्य नहीं होती थी।
4. बाढ़ /सूखा से प्रभावित क्षेत्रों में भी कर में कोई कमी नहीं की जाती थी।

5. भ्रष्ट न्यायिक तथा प्रशासनिक ढांचे ने समग्र भारतीय अर्थव्यव्स्था को गड़बड़ा दिया था।

कुलमिला के सबसे खराब स्थिति किसानों की थी। उनकी परिस्थिति बिगड़ती चली गई और निर्धनता , पिछड़ापन तथा अल्पविकसित अर्थव्यवस्था अंग्रेजी नीतियों की मुख्य देन थी।

3. नमक कर :– ईस्ट इण्डिया कम्पनी को नमक के व्यापार पर एकाधिकार था। उस से कम्पनी को पर्याप्त लाभ मिलता था। कम्पनी के प्रदेशों में नमक बनाने वालों से अत्यधिक कर मिलता था। इसके अतिरिक्त अधीनस्थ भारतीय राजाओं के प्रदेशों में बने नमक का भी आयात करने पर मोटा आयात कर लगता था। चोल –मण्डल तथा मालाबार तटों पर समुद्री जल को धूप से सुखाकर नमक बनाते थे। नमक के तालाबों के स्वामी सरकार से लाईसंसे अथवा अनुज्ञाफा लेकर नमक बनाते थे। वे लोग नमक सरकार को निश्चित किए भाव पर बेच देते थी। नमक पर कई, करों में सबसे अधिक था क्योकि नमक सब के लिए आवश्यक तत्व था तय निर्धन लोगों को भी इसे सहन करना पड़ता था, सन् 1858 में कम्पनी को अपने राजस्व का 7 प्रतिशत नमक के कर से मिला था।

4. अफीम से आय :– कम्पनी ने 1958 में, अपनी कुल आय का 17 प्रतिशत अफीम, पर लगे एकाधिकार कर से कमाया। अफीम बनारस एवं पटना के अतिरिक्त कुछ भारतीय रियासतों में भी उगाई जाती थी कम्पनी यही अफीम 200 प्रतिशत से भी अधिक के लाभ पर बेचती थी। सरकार पारगमन की सुविधा प्रदान करने के लिए भी बहुत सा धम कमाती थी। अफीम के व्यापार का सब से घिनौना पक्ष यह था कि जब चीन ने अफीम का व्यापार को बन्द करने के प्रत्यन स्वरूप कम्पनी ने चीन से अफीम को अफीम खरीदने के लिए बाध्य किया।

5. न्यायिक व्यवस्था :– बंगाल की पराजय के बाद कम्पनी बंगाल के सभी दीवानी कार्य के लए उत्तरदायी बन गई, इसमें दीवानी न्याय भी शामिल था। उस समय मुगल प्रशासन में प्रान्तों का भार दो लोगों के पास ही होता था– सूबेदार और दीवान। दूसरी और निजामते अर्थात् कानून और व्यवस्था बंगाल के नवाब के पास ही थी।

परन्तु सत्ता प्राप्त करते ही कम्पनी दीवानी और फौजदारी न्याय भी देती थी फौजदारी न्याय में धार्मिक सहिष्णुता और ज्यूरी द्वारा फेसला करने की पद्धति अपनाई ,जैसे कि इंग्लैण्उ में प्रथा थी। एक न्याय का प्रधिकरण स्थापित किया गया। 1718 में ज्यूरी प्रथा समाप्त कर अपील की व्यवस्था बनाई गई। गवर्नर तथा उसकी परिषद यह अपील सुनते थे। इसमें एक हिन्दु, एक मुसलमान, एक पारसी नयायाधीश एक पूर्तगाली तय एक कम्पनी का प्रतिनिधि भी होता था। कलकत्ता मद्रास तथा बम्बई में 09 वृद्धों वाली महापौर की अदालतें स्थापित की गई, इन का मुख्य कार्य इन तीनों नगरों में रहने वाले यूरोपीय लोगों में न्याय करना था।

लार्ड कॉर्नवालिस ने विधिवत दीवानी तथा फौजदारी अदालतों की श्रृखलाबद्ध रूप से स्थापना की।

6. शिक्षा नीति :– अंग्रेजों ने भारत में अंग्रेजी भाषा की शुरूआत सिर्फ कम वेतन पर क्लर्क के रूप में काम करने के लिए तैयार की थी। इसमें भारत में एक वर्ग तैयार करने की थी। इसमें भारत में एक वर्ग तैयार करने की रणनीति थी जो अंग्रेजो के प्रति वफादार रहे इस वर्ग को अंग्रेजी की संस्कृति को जनता में फेलाएंगे तथा इसकी सराहना करना सिखाया जाएगा। अंग्रेज देश में अपने राजनीतिक अधिकार को मजबूत करने के लिए शिक्षा का उपयोग करना चाहते थे। अतः उन्होंने सिर्फ उन्हीं भारतीयों को नौकरी दी तो अंग्रेजी जानते थे। इस प्रकार उन्होंने कई भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिए मतबूर कर दिया शिक्षा जल्द ही अमीरों का तथा शहरवासियों का एक अधिकार बन गया।

ब्रिटिश संसद ने 1813 का चार्टर एक्ट जारी किया। जिसके द्वारा एक लाख रूपय की राशि भारत में पश्चिमी शिक्षा की बढ़ावा देने के लिए स्वीकृत किया गया, परंतु इस पर भी विवाद उठ गया,जिसे आंग्ल –प्राच्य भाषा विवाद कहा जाता है। पहला प्राच्य भाषा समर्थक दल अर्थात् वह दल जो यह चाहता था कि विस्तार के लिए किया जाए और दूसरा वह दल जो अंग्रेजी भाषा के द्वारा पश्चिमी विज्ञान तथा साहित्य के प्रसार के लिए इस धन का प्रयोग करना चाहिए इस समस्या के निदान के लिए समकालीन गर्वनर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने जी.बी.मैकाले को इस समिति को अध्यक्ष नियुक्त किया। मैकाले ने अपने स्मरण पत्र में अंग्रेजी भाषा समर्थक दल का पक्ष लिया सरकार ने भी प्रस्ताव पारित कर अंग्रेंजी भाषा के ही माध्यम से यूरोपीय साहित्य और शिक्षा के प्रसार का माध्यम चुना।

बुड डिस्पैच 1854 में सर चार्ल्स वुड जो बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष थे और प्रथम भारत सचिव नियुक्त किए गए थे शिक्षा पर एक समाविष्ट आदेश पत्र भारत सरकार को भेजा जिसमें उन्होंने समस्त अंग्रेजो के अधीन भारत के लिए ''प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालय स्तर के लिए एक सुस्पष्ट की हुई शिक्षा नीति'' का सुझाव दिया।

इस का मुख्य उद्देश्य था–

1. भारत में शिक्षा का उद्देश्य यूरोपीय भाषाओं का प्रसार।
2. जिसके लिए माध्यम अंग्रेजी तथा भारतीय भाषा और अंग्रेजी हो और कालिज तथा विश्वविद्यालय स्तर पर केवल अंग्रेंजी हो।

इस में यही भी सुझाव था कि लण्डन विश्वविद्यालय के नमूने पर कलकत्ता ,मद्रास तथा बम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए।

1.5 ब्रिटिश शासन की रचनात्मक एवे विनाशकारी भूमिका :– एक आलोचनात्मक समझ

सकारात्मक भूमिकाः– सकारात्मकता इस रूप में दिखाई पडी कि औपनिवेशिक शासन–काल में अंग्रेजी शिक्षा एवं संस्कृति के संसग के फलस्वरूप एक आधुनिक वर्गा उभरा जिनमें उद्योगपति ,औद्योगिक श्रमिक एक शिक्षित वर्ग शामिल थे। इस वर्ग ने उस शासन के खिलाफ आन्दोलन खड़ा कर दिया तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में देश के सभी क्षेत्रों व धर्मों के लोगों ने एक टोकर इस आन्दोलन में माग लिया। इस आन्दोलन ने लोगों को भारतीयता की अवधारणा से परिचित करवाया और जातिगत व लैंगिक रिश्तों को बदला, जातिगत व लैंगिक बदलाव लाने में ज्योतिराव फुले, भीमराव अम्बेडकर व पेरियार रामास्वामी नाईकर की महत्वपूर्ण भूमिका थी। सावित्रीबाई फूले ने लड़कियों के लिए शिक्षा के द्वार खोले राष्ट्रीय आन्दोलन अम्बेडकर जैसे नेताओं ने भारत की निर्माण धीन राष्ट'' बनाया ।

अंग्रेजो द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर एक समरूप शिक्षा –प्रणाली लागू करने का लाभ मिला। अंग्रेजी आधारित उच्च करने का लाभ मिला । अंग्रेजी आधारित उच्च शिक्षा ने भारत में बुद्धिजीवियों का एक ऐसा वर्ग ।

नकारात्मक भूमिकाः– औपनिवेशिक अंग्रेजी शिक्षा के नकारात्मक परिणाम भी निकले। इस अंग्रेजी शिक्षा ने शिक्षित एंव आम लोगों के बीच बहुत बड़ी खाई पैदा कर दी, जो स्वतन्त्रता के बाद भी भारत में एक बड़ी समस्या बन के उभरी, साथ ही अंग्रेजी पर बल देने के कारण भारतीय भाषाओं का संपूर्ण विकास नहीं हो पाया और स्थानीय भाषाएँ बुरी हालत में आ गयी, जिसने जनता में शिक्षा के प्रसार को बाधित किया तथा अंग्रेजी शिक्षा ने मौलिकता, को दबाकर ग्रन्थों को याद करने की प्रवृति को बढ़ावा दिया, 19वीं सदी के अन्तिम दिनों में ही शिक्षा को अर्थव्यवस्था और संस्कृति के विकास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मान लिया गया था परन्तु भारतीय जनता के अधिकतर हिस्से के पास शिक्षा तक पहुँच का रास्ता खुला ही नहीं था, इस प्रकार औपनिवेशक शिक्षा पद्धति की एक बड़ी कमजोरी जन शिक्षा व्यवस्था का अभाव था। वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा भी बहुत पिछडी हुई थी। अतः दो सासै वर्षों के उपनिवेशवादी शोषण ने भारतीय समाज को पिछड़ेपन का पर्याय बना डाला।

औपनिवेशक शासन तंत्र भारतीयों की परस्पर एकता, अखंडता, भाई चारे की भावना को अपने प्रभुत्व की प्रमुख बाधा मानकर, उसे तोड़ने के उद्देश्य से 'फूट डालो राज करो' , की नीति के तहत भारत की सांस्कृतिक –एकता को खंड–खंड करने के लिए भारतीय जनता के एक हिस्से को दूसरे से लड़ाना प्रारम्भ कियां उन्होंने जाति के विरूद्ध वर्ग तैयार किया जो समरूप चिन्तन के कारण उपनिवेशक की समरूप आलोचना तक पहुँच सके। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में इस शिक्षा का उपनिवेशवाद विरोधी स्वर तेज होने लगे।

भारत एक जाति आधारित समाज या, उस समय राष्ट्रीय भावना संकीण्र मानसिकता के कारण रियासते एवं राष्ट्र अंग्रेजों के हाथों में चला गया, परन्तु नये शिक्षा तंत्र ने नये प्रकार के

मूल्यों, मान्यताओं को पैदा करके जाति, धर्म एंव राष्ट्र सम्बन्धी ओछी भावना के बंधन के तोड़कर ,उसे एक व्यापक मनोधरातल पर प्रतिष्ठापित किया, अंग्रेजी भाषा विद्या का ज्ञान रखने वाले शिक्षित वर्गों में से कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त करने इंग्लेण्ड चले गये और उन्होंने आना कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र में संस्थाएँ कैसे कार्य करती है। विदेशों से पढ़कर आये भारतीयों ने प्रबुद्ध वर्ग के साथ मिलकर, माध्यवर्गीय प्रबुद्ध समाज का निर्माण किया। इस प्रबुद्ध वर्ग ने भारतीय संस्कृति एवं समाज में प्रचलित रूढ़, अस्वस्थ मान्यताओं, परंपराओं एवं कुरीतियों को तोड़कर समाप्त करने का प्रयास किया तथा अशिक्षित पिछड़ी सोच के लोगों का जागरूक करने के लिए सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आन्दोलनों का सहारा लिया एंव समस्त भारतीयों में ज्ञान की ज्योति जगाने का सफल प्रयास किया गया।

जाति, प्रांत, वर्ग के विरूद्ध वग्र, एक –दूसरे के विरूद्ध हिन्दू और मुसलमान वर्ग तथा रजवाडों और जमींदारों को राष्ट्रीय आन्दोलन के विरूद्ध खड़ा करना शुरू किया। उन्होंने भारतीय समाज की हर विभिन्नता का उपयोग भारतीय जनता के बीच आपसी दूरी बढ़ाने के लिए किया, इसमें उन्हें सफलता भी मिलती रही और अंततः वे इस देश को छोड़ने से पहले दो हिस्से में बाँट गये।

उपनिवेशवाद ने भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के मूल में प्रवेश कर आन्तरिक घात द्वारा उसकी मौलिकता, विशिष्टता को नष्ट करने का प्रयास किया परन्तु भारतीय संस्कृति ही एकमात्र ऐसी संस्कृति है, जिसमें समस्त संस्कृतियों को आत्मसात् करने की क्षमता है न कि उनके संसर्ग में आकर अपनी विशिष्टता खोने की।

1.6 इकाई सारांश :–

- ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी से बढ़ते –बढ़ते एक भौगोलिक औपनिवेशिक शक्ति बन गईं 19वीं सदी की शुरूआत में नयी भाप तकनीक के अपने से यह प्रक्रिया और तेज हुईं तब तक समुद्र मार्ग से भारत पहुँचने का समय घट जाने से ज्यादा से ज्यादा अंग्रेज और उनके परिवार भारत में आने लगे। 1857 तक भारतीय उपमहाद्वीप के 63 प्रतिशत भूभाग और 78 प्रतिशत आबादी पर कंपनी का सीधा शासन स्थापित हो चुका था, देश के शेष भूभाग और आबादी पर कंपनी का अप्रत्यक्ष प्रभाव था। इस प्रकार, व्यावहारिक स्तर पर ईस्ट इंडिया कंपनी पूरे भारत को अपने नियंत्रण में ले चुकी थी।
- ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय सामाजिक परिवेश एंव जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंग्रेजी शासन के दूर–गामी परिणाम रहे, इसने भारत की पारंपरिक अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया तथा भारत के धन को ब्रिटेन में भेज दिया, अंग्रेजी की आर्थिक नीतियों ने किसानों और कारीगरों के वर्ग को भी बहुत प्रभावित किया।
- उपनिवेशवाद ने भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के मूल प्रवेश कर आन्तरिक घात द्वारा उसकी मौलिकता एंव विशिष्टता को नष्ट कर, भारतीय संस्कृति को अत्यन्त हानि पहुंचाई।

1.7 नियत कार्य

1. भारत में ब्रिटिश रेलवे द्वारा, निर्मित तथा व्यापक नेटवर्क प्रमुख कारण बताईयें
2. ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप जो सामाजिक, सांस्कृतिक एवं कानूनी परिवर्तन हुए है।, वे आज भी भारतीय जीवन को कैसे प्रभावित कर रहे हैं । विवेचना कीजिए।

1.8 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

इकाई के समुचित अध्ययन के पश्चात् आप कुछ बिन्दुओं पर विवेचना तथा अन्य पर स्पष्टीकरण चाहेंगे। इन बिन्दुओं को निम्न स्थान पर लिखिए

1.8.1 चर्चा के बिन्दु

____

____

____

1.8.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

____

____

____

1.9 सन्दर्भ

1. ग्रेवर, यशपाल, मेहता (2005) : आधुनिक भारत का इतिहास : एस चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
2. प्रियंका, (2008): उपनिवेशवाद का भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति पर प्रभाव : इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशनल रिसर्च Vol. (3) बिहार।
3. एन.सी.ई.आर.टी. (2008) :सामाजिक विज्ञान –हमारे अतीत, 3 (भाग 1) कक्षा 8 ,एन.सी.आर.टी., नई दिल्ली।
4. www . education journal.org

D.El.Ed. 02

खण्ड : 2 उपनिवेशवाद के अधीन भारत
इकाई : 2 उपनिवेशवाद के अधीन शिक्षा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ब्रिटिश कालीन शिक्षा और उसके प्रभाव

2.4 मैकाले मिनिट 1835

2.5 वुड का घोषणा पत्र

2.6 इकाई सारांश/याद रखने योग्य बातें

2.7 अपनी प्रगति की जाँच करें

2.8. नियत कार्य/गतिविधियाँ

2.9 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची/अन्य पठनीय सामग्री

डॉ. याचना सक्सेना
सहा. प्राध्यापक डी. एम. ई.
मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) वि.वि,भोपाल

2.1 प्रस्तावना

'शिक्षा के क्षेत्र में भारत विश्व का सिरमौर रहा है। हालांकि विश्व ने कई प्राचीन सभ्यताओं को जन्म दिया है पर उनमें सर्वाधिक प्राचीन तथा आज तक अक्षुण्ण सभ्यता भारतीय सभ्यता ही है। अतएव यह शिक्षा रूपी सरिता कई सभ्यताओं के अनुरूप अनुकूलन करते हुए सतत् शाश्वत गति से प्रवाहित होती रही, मानव कल्याण तथा विश्व कल्याण की भावनाओं को अपने में समेटे रही।

हम सिर्फ आत्माभिमान में ही ऐसा नहीं मान बैठे हैं वरन् कई अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप को इस तरह उकरने का प्रयत्न किया है जिससे कि इसके गौरवान्वित अतीत की पुष्टि होती है।

एफ.डब्ल्यू. थॉमस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द हिस्ट्री एंड प्रोस्पेक्टस ऑफ ब्रिटिश एजुकेशन इन इंडिय' में अपने विचारों को उद्धृत करते हुए लिखा है–

"भारत में शिक्षा कोई नवीन प्रत्यय नहीं है। ऐसा कोई भी विश्व का देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय से शुरू हुआ हो अथवा जिसने इतना सहज, स्थायी तथा शक्तिशाली प्रभाव अपनी आगामी पीढ़ियों पर छोड़ा हो।"

यह चिर–संरक्षित शैक्षिक संस्कृति तथा अपनी अस्मिता को इसलिए बचा पायी क्योंकि यह धर्म से अनुप्राणित थी, सांसारिक कष्टों के शमन हेतु नहीं, बल्कि पारलौकिक कष्टों के निदान का माध्यम थी। यह मात्र मानव निर्माण में नहीं 'महामानव' की संकल्पना से विभूषित थी। इसके उद्देश्य व्यक्ति, समाज, राष्ट्रोत्थान की संकीर्णता से ऊपर उठकर विश्व कल्याण एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम' के महाबोध से प्रतिध्वन्ति होते थे।

2.2 उद्देश्य

समकालीन भारतीय समाज में शिक्षाकी इकाई को पढ़ने के पश्चात् छात्र निम्न जानकारियों को प्राप्त कर सकेगें।

1. ब्रिटिश कालीन शिक्षा 1801–1882 को शिक्षा नीति को समझ सकेगें।

2. साथ ही ब्रिटिश काल में 1882–1947 हण्टर कमीशन के निर्माण के मुख्य उद्देश्यों को समझ सकेगें।

3. 1904 की शिक्षा नीति सम्बन्धी प्रस्ताव के बारे में जानकारी हासिल कर सकेगें।

4. छात्र ये भी जान सकेगें कि मैकाले का ऐतिहासिक दस्तावेज भारतीय शिक्षा को महापत्र क्यों कहा जाता है।

5. छात्र वुड के घोषणा पत्र के बारे में भी जानकारी व वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता को समझ सकेगें।

2.3 ब्रिटिश कालीन शिक्षा और उसके प्रभाव

बिटिश -काल में सन् 1801 से 1882 तक गैर सरकार संगठनों ने शिक्षक प्रशिक्षण के लिए श्लाघनीय कार्य किया। परन्तु उनका यह कार्य प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षको के प्रशिक्षण तक ही सीमिति था।

सन् 1815 में बम्बई की 'देशी शिक्षा परिषद (Native Education Society) ने 24 शिक्षको को प्रशिक्षण दिया और उनको प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण -स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्राप्त के विभिन्न भागो में प्रबंधकों (Organisers) के रूप में भेजा।

सन् 1819 से बंगाल में 'कलकत्ता -विद्यालय -परिषद् (Calcutta School Society) का निर्माण हुआ। इस 'परिषद्' ने छात्राध्यापक -पद्धति के अनुसार शिक्षक-प्रशिक्षण कार्य आरम्भ किया। सन् 1825 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालको ने 'परिषद्' के कार्य को बल-प्रदान करने के लिए 500 रू. मासिक सहायता अनुदान देने की घोषणा की।

सन् 1826 में मद्रास के गर्वनर, सर टॉमस मुनरो (Sir Thomas Munro) के प्रस्ताव के अनुसार, मद्रास नगर में शिक्षको के प्रशिक्षण के लिनए 'केन्द्रीय स्कूल' (Central School) की स्थापना की।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी शिक्षको के प्रशिक्षण की दिशा में कुछ कदम उठाए। उदाहरणार्थ-बम्बई में शिक्षको को प्रशिक्षण देने के लिए 'नार्मल स्कूल' स्थापित किया गया और अगले 10 वर्षो में बंगाल के विभिन्न भागो में नार्मल स्कूलो का शिलान्यास किया गया। उत्तरी- पशिचमी प्रान्त में आगरा, मेरठ और बनारस में क्रमश : सन् 1852,1856 और 1857 में नॉर्मल स्कूलो की स्थापना की गई।

सन् 1854 के 'वुड के आदेश -पत्र' (Wood's Despatch) ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक प्राप्त में शिक्षको के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूलो औ कक्षाओ का शीघ्र ही शिलान्यास किया जाये। 'आदेश -पत्र' में कम्पनी संचालाको ने यह इच्छा व्यक्त की कि छात्रो को प्रशिक्षण -काल में छात्रवृत्त्यिॉ एवं शिक्षको को उत्तम वेतन देकर, शिक्षा के व्यवसाय को आकर्षण बनोने की चेष्टा की जाये।

लार्ड स्टैनले ने अपने 'आदेश -पत्र' में शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधाओ का विस्तार करने ओैर प्रशिक्षण -संस्थाओ को सहायता -अनुदान दिये जाने का आदेश दिया। अतः उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षक की सुविधाओ का विस्तार करने में अदम्य उत्साह का परिचय

दिया। फलस्वरूप, सन 1881-82 तक सम्पूर्ण देश में 106 नॉर्मल स्कूलो की स्थापना हो गई। इन स्कूलो में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले पुरूषो एवं स्त्रियों की संख्या 3,886 थी और इनका वार्षिक व्यय लगभग 4 लाख रूपये था।

इन प्रशिक्षण -संस्थाओ में छात्रो को प्रशिक्षण देने के लिए प्रारंभ में 'कक्षा-नायकीय पद्धति' अथवा 'छात्राध्यापक पऋति' का प्रयोग किया। किन्तु कुछ समय के प्श्चात 'शिष्यता -पद्धति (System of Apprenticeship) का अनुसरण किया जाने लगा। इस पद्धति में डात्र को एक निश्चित अवधि के लिए किसी अनुभवी शिक्षक का शिष्य बना दिया जाता था। बम्बई प्रान्त में यह अवधि 3 वर्ष की थी और इस अवधि में प्रत्येक छात्र को 3 रू. से 5 रू. तक मासिक छात्रावृत्ति मिलती थी। इस अवधि मे शिक्षण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के प्श्चात छात्रों को कुछ समय तक 'जिला ट्रेनिंग कॉलेज' (District Training College) में प्रशिक्षण दिया जाता था। उसके प्श्चात ही उनको पूर्ण रूप प्रशिक्षित माना जाता था और उनको प्राथमिक विद्यालयो में प्रशिक्षित शिक्षको के रू‍ में नियुक्त होने का अधिकार प्प्राप्त हो जाता था।

जहॉ तक माध्यमिक स्कूलो के लिए शिक्षको के प्रशिक्षण का संबध था, इस और अति अल्प ध्यान दिया गया। सन् 1882 तक सम्पूर्ण देश में केवल दो प्रशिक्षण संस्थाओ का शिलान्यास हुआ- सन् 1856 में मद्रास में 'गर्वमेण्ट नॉर्मल स्कूल' का और सन 1877 में 'लाहौर ट्रेनिंग स्कूल' का। इन संस्थाओ में स्नातको और उपस्नातकों दोनो को एक ही कक्षा में प्रवेश दिया जाता था। इनमें प्रदान किया जाने वाला प्रशिक्षण निम्न कोटि का था, क्योकि छात्राध्यापकों को शिक्षण के अभ्यास एवं सिद्धातो से अवगत नही कराया जाता था। कुछ समय के उपरान्त मद्रास के नॉर्मल स्कूल में प्रशिक्षण के अभ्यास का प्रबंध कर दिया गया थ।

ब्रिटिश-काल में शिक्षक -प्रशिक्षण, 1882-1947

(1) **हण्टर कमीशन, 1882-** 'हण्टर कमीशन' अथवा 'भारतीय शिक्षा आयोग ' ने प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयो के शिक्षको के प्रशिक्षण के विषय में अग्रलिखित सुझाव दिए ।

1. प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको प्रशिक्षण के लिये नॉर्मल स्कूलो की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश के प्राथमिक विद्यालयो की मॉग की पूर्ति कर सके।
2. प्रत्येक विद्यालय निरीक्षक के क्षेत्र में कम से कम एक नॉर्मल स्कूल का निर्माण किया जाय।
3. नॉर्मल स्कूलो को सफल बनाने के लिए विद्यालय निरीक्षको द्वारा उनमें रूचि ली जाय और उनके कुशल संचालक का प्रबंध किया जाय।

4. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये ट्रेनिंग स्कूलो और ट्रेनिंग कॉलेजो की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश में फैल जाय।

5. स्नातको एवं उपस्नातकों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण एवं पाठ्यक्रमां की व्यवस्था की जाय।

'हण्टर कमीशन' के सुझावो के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त तक 133 नॉर्मल स्कूलों, 50 ट्रेनिंग स्कूलो और 6 ट्रेनिंग कॉलेजो (मद्रास, लाहौर, कुरसांग,जबलपुर,इलाहाबादऔर राजमुन्दरी) की स्थापना की गई।

(2) शिक्षा–नीति संबधी सरकारी प्रस्ताव, 1904– इस प्रस्ताव ने शिक्षक–प्रशिक्षण के समस्त पक्षो की समुचित व्यवस्था पर बल दिया और निम्नाकिंत सिद्धातो का प्रतिपादन किया –

1. भारतीय शिक्षा सेवा (Indian Education Service) में योग्य, अनुभवी एवं उच्च प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियो की ही नियुक्ति की जाय।

2. माध्यमिक स्कूलो के शिक्षको को प्रशिक्षण देने वाले ट्रेनिंग कॉलेजो की साज–सज्जा को कला–महाविद्यालयो (Art Colleges) की साज –सज्जा से कम महत्व न दिया जाय।

3. स्नातको एवं उपस्नातको के लिए प्रशिक्षण की अवधि क्रमशः 1 वर्ष औ 2 वर्ष निश्चित की जाय।

4. प्रशिक्षण के सैद्धान्तिक एवं व्याचहारिक पक्षो में निकट संबध स्थापित किया जाय।

5. प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज से एक उत्तम 'अभ्यासात्मक स्कूल' (Practising School) सम्बद्ध किया जाय।

6. ट्रेनिंग कॉलेजो और माध्यमिक स्कूलो में संबध स्थापित किया जाय, ताकि प्रशिक्षित शिक्षक सीखी हुई विधियो का व्यावहारिक प्रयोग कर सके।

उपरिवर्णित सिद्धातां ने शिक्षक –प्रशिक्षण आन्दोलन में नवीन शक्ति का संचार कर दिया और उनको मूर्त रूप दिये जाने पर चार महत्वपूर्ण परिणाम दृष्टिगोचर हुए – (1) प्रशिक्षण –संस्थाओ की संख्या में वृद्धि, (2) स्नातको एवं उपस्नातकों के लिए पृथक पाठ्यक्रमों का आयोजन, (3) स्नातकों एवं उपस्नातको के प्रशिक्षण के लिए क्रमशः 1 वर्ष 2 वर्ष का कार्यक्रम और (4) प्रत्येक प्रशिक्षण संस्था में अभ्यासात्मक स्कूल की संलग्नता।

(3) **लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति –** विद्या प्रेमी लार्ड कर्जन ने शिक्षा के प्रसार के लिए प्रान्तीय सरकारो को सहायता अुदान देने की प्रथा आरंभ की। इस प्रथ के फलस्वरूप 5 वर्ष की अवधि में ट्रेनिंग कॉलेजो का शिलान्यास हुआ, यथा –(1) एस.टी.कॉलेज, बम्बई, 1906 (2) डेविड डेयर ट्रेनिंग कॉलेज, कलकत्ता 1908 (3) पटना ट्रेनिंग कॉलेज 1908 (4) ढाका ट्रेनिंग कॉलेज ,1910 और (5) स्पेन्स ट्रेनिंग कॉलेज जबलपुर 1911।

(4) **शिक्षा–नीति संबधी सरकारी प्रस्ताव 1913–** इस 'प्रस्ताव– ने अग्रंकित नीति निर्धारण करके, शिक्षक,प्रशिक्षण के विकास में अतिशय योग दिया –" **शिक्षा की आधुनिक**

प्रणाली में किसी भी शिक्षक का उस समय तक शिक्षण –कार्य करने की अनुमति प्रदान न की जाय, जब जक कि उसके पास तत्संबधी प्रमाण–पत्र न हो। ‘‘

(5) **सैडलर कमीशन 1919** –‘‘सैडलर कमीशन‘‘ अथवा ‘कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ‘ ने शिक्षक–प्रशिक्षण के विषय में निम्नलिखित सुझाव देकर, उसकी विकास प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की –

1 प्रशिक्षित शिक्षको की संख्या में वृद्धि की जाए।

2 प्रशिक्षित संबधी शोध कार्य की व्यवस्था की जाए।

3 प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा विभाग की स्थापना की जाए।

4 इण्टर और बी.ए.के पाठ्यक्रमां में शिक्षा विषय को सम्मिलित किया जाए।

5 प्रयोगात्मक कार्य के लिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज से ‘प्रदर्शन स्कूल‘ सम्बद्ध किया जाए।

(6) **हर्टाग समिति, 1929** – इस समिति में प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षको के प्रशिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक उपयोग सुझाव दिए यथा–

1 शिक्षको की सामान्य शिक्षा के स्तर का उन्न्यन किया जाय।

2 शिक्षक –प्रशिक्षण की अवधि में वृद्धि की जाय।

3 प्रशिक्षण –संस्थाओ में योग्य एवं कुशल शिक्षको की नियुक्ति की जाय और उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जाय।

4 विद्यालयो में कार्य करने वाले शिक्षको के लिए शिक्षा सम्मेलनो एवं अभिनवन पाठ्यक्रमों के कार्यक्रम आरभ किए जाय।

5 योग्य व्यक्तियों को शिक्षण कार्य के प्रति आकर्षित करने के लिए शिक्षको की कार्य करने की दशाओ में सुधार किया जाय।

उपरिलिखित आयोगो प्रस्तावो और समिति के सुझावो के परिणामस्वरूप शिक्षक –प्रशिक्षण की दशा एवं सुविधाओ में क्रमशः उन्नति होती चाली गई। सन् 1947 में अर्थात स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में तीन प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाएँ थी यथा–

(1) **नॉर्मल स्कूल** (**Normal School**)– इनमे प्राथमिक विद्यालयो के लिए शिक्षको को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की थी और मिडिल पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में पुरूष एवं महिला नॉर्मल स्कूलो की क्रमशः 22,435 एवं 8896 थी।

(2) **माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालय** (**Secondary Training Schools**)– इनमें से मिडिल स्कूलो के लिए शिक्षको को प्रशिक्षण दिया जाता था । इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 या 2 वर्ष की थी और हाई स्कूल एवं इण्टर पास व्यक्तियो को प्रवेश दिया जाता था। सन 1947 में ट्रेनिंग स्कूलो एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रो की संख्या क्रमशः 649 एवं 38,773 थी।

(3) **प्रशिक्षण महाविद्यालय** (**Training Colleges**)–इनमे हाईस्कूलो के लिए शिक्षको को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की थी और स्नातको एवं परास्नातको को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में ट्रेनिंग कॉलजो एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रो की संख्या क्रमशः 15 एवं 3,262 थी।

2.4 मैकाले मिनिट 1835

सन् 1813 के चार्टर एक्ट की 43वीं धारा में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया और भारतीय शिक्षा की व्यवस्था के लिए दस हजार पौण्ड अर्थात् एक लाख रुपये की धनराशि स्वीकृत की गई। इस एक्ट में भारतीय शिक्षा की नीति का निर्धारण करते समय केवल उद्देश्यों का ही उल्लेख किया गया था। इन उद्देश्यों में प्रमुखतः 'साहित्य का पुनरुत्थान एवं विकास', 'विद्वान भारतीयों को प्रोत्साहन', 'अंग्रेजी हुकूमत के अधीनस्थ भारतीयों में विज्ञान का प्रसार' का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। परन्तु चार्टर एक्ट में इन उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु कौन से प्रयास या किन विधियों का अवलम्बन करना चाहिए, इसकी ओर कोई संकेत न था। परिणामतः सन् 1813 के चार्टर एक्ट के पारित होने के पश्चात् लगभग 40 वर्ष तक यह एक तीव्र मतभेद का विषय बना रहा। इस विवादास्पद विषय के चार पहलू थे– (1) भारतीय शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिए? (2) शिक्षा देने वाली संस्थाओं का संगठन किन साधनों द्वारा होना चाहिए? (3) सामान्य जनता में शिक्षा का प्रसार करने के लिए किन विधियों का अवलम्बन करना चाहिए? और (4) शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए?

शिक्षा उद्देश्य का मतभेद एक्ट में दर्शाये गये विभिन्न उद्देश्यों में से किस उद्देश्य पर कितना जोर दिया जाना चाहिये – इस सम्बन्ध में था किन्तु उसमें तीव्रता न थी। कुछ लोगों की राय में भारतीय शिक्षा का उद्देश्य–प्रमुखतः भारतीय संस्कृति एवं साहित्य को सुरक्षित रखना तथा उसका प्रसार करना था, तो कुछ लोगों के मत में भारत में पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार करना– शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था, कुछ अन्य लोगों का कहना था कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य–भारतीयों को कम्पनी की नौकरी के योग्य बनाने तक ही सीमित रखना चाहिए।

कुछ लोगों की राय में शिक्षा–व्यवस्था करने का कार्य मिशनरी लोगों के जिम्मे छोड़ देना अधिक उचित माना जाता था। कुछ लोग इस सुझाव पर धार्मिक निष्पक्षता एवं राजनैतिक औचित्य की दृष्टि से आक्षेप करते हुए, भारतीय संस्कृति का पक्ष लेने वाली देशीय संस्थाओं द्वारा संचालित शालाओं में ही शिक्षा देने के पक्ष में थे। कुछ अन्य लोगों के मत में भारतीयों द्वारा संचालित शालायें अव्यवस्थित होने के कारण कम्पनी के द्वारा संचालित नई शालाओं में ही शिक्षा दिया जाना उचित समझा था।

एक पक्ष का मत था कि शिक्षा का प्रसार ऊपरी स्तर से नीचे के स्तर की ओर होना चाहिए। अतः कम्पनी केवल कुछ उच्च स्तर के लोगों को ही शिक्षित करने का प्रयास करे तथा जन-साधारण की शिक्षा का कार्य इन उच्च-स्तरीय शिक्षित लोगों के जिम्मे छोड़ दिया जाये। इसके विपरीत, कुछ लोगों का मत था कि शिक्षा के प्रसार का यह 'स्यंदन सिद्धान्त' (फिल्ट्रेशन थ्योरी) उस समय में भारत के लिए उपयुक्त न था। अतः जनसाधानण की शिक्षा का कार्य कम्पनी स्वयं प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले।

परन्तु सबसे अधिक एवं तीव्र मतभेद का विषय तो शिक्षा के माध्यम का था। इस सम्बन्ध में तीन मत प्रतिपादित किये जाते थे। पहला था कम्पनी के अनुभवी एवं पुराने अफसरों का मत, जो वारेन हेस्टिंग्ज तथा मिन्टो द्वार समर्थित शिक्षा की नीति थी। इसके अनुसार संस्कृत एवं अरबी के अध्ययन को प्रोत्साहन देना श्रेयस्कर था और इन्हीं भाषाओं के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार करना भी उचित था। दूसरा मुनरो एवं एलफिन्सटन द्वारा प्रतिपादित पक्ष वालों का मत था, जो अर्वाचीन भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना अधिक औचित्यपूर्ण समझता था। तीसरे पक्ष के लोग पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा करने पर जोर देते थे।

इस प्रकार के मतभेद न केवल सामान्य भारतीयों में या कम्पनी के अफसरों में थे, किन्तु सन् 1823 ई. में बंगाल के गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त की गई लोक शिक्षण की सामान्य समिति के सदस्यों में भी तीव्र रूप से विद्यमान थे। इस समिति में 10 सदस्य थे, जिनमें से पाँच सदस्य, जिनका नेतृत्व श्री एच. टी. प्रिन्सेप, जो कि बंगाल सरकार के शिक्षा-विभाग के सचिव थे, कर रहे थे। वे भारतीय साहित्य और भाषाओं के प्रसार के पक्ष में थे। इस पक्ष को 'प्राच्यवादी' (ओरिएण्टलिस्ट) पक्ष कहा जाता था। शेष पाँच सदस्य भारत में अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान के प्रसार के पक्ष में थे। इन्हें 'पाश्चात्यवादी' (एंग्लिसिस्ट) पक्ष कहते थे। इसी पक्ष के एक प्रबल नेता थे राजा राममोहन राय। विधि की विडम्बना देखिए कि प्राच्य ज्ञान का समर्थन अंग्रेज कर रहे थे और पाश्चात्य ज्ञान का समर्थन एक भारतीय कर रहा था।

सन् 1834 ई. में मैकॉले ने जब इस समिति के सभापतित्व का भार सम्हाला उस समय ये मतभेद बड़े तीव्र रूप में थे। परिणामतः समिति के कार्य का सुचारू रूप से संचालन करना बड़ा कठिन हो गया था। ऐसी परिस्थिति में दोनों पक्षों ने अपने-अपने पक्ष का समर्थन करने वाले विचार गवर्नर जनरल के समक्ष निर्णय देने के लिए प्रस्तुत करने का निश्चय किया। यद्यपि मैकॉले ने समिति की बैठकों में किसी भी पक्ष का समर्थन नहीं किया, फिर भी गवर्नर जनरल के सामने निर्णयार्थ भेजे जाने वाले कागजातों पर टिप्पणी **'मैकॉलेज मिनिट'** के नाम से प्रसिद्ध है। यह 2 फरवरी, सन् 1835 को लिखा गया था और भारतीय शिक्षा की नीति-निर्धारण की दृष्टि से भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख माना जाता है।

मैकॉले मिनिट की मुख्य विशेषताएँ
(CHIEF CHARACTERISTICS OF MACAULAY MINUTE)

अपने मिनिट में मैकॉले ने सर्वप्रथम 1813 के चार्टर एक्ट की 43वीं धारा के अर्थ का स्पष्टकरण करते हुए यह प्रस्तुत की कि इस धारा के अन्तर्गत आने वाले साहित्य शब्द का संकेत **'अंग्रेजी साहित्य'** की ओर एवं **'विद्वान भारतीय'** का संकेत 'आंग्ल साहित्य' का ज्ञान रखने वाले भारतीयों की ओर भी हो सकता है। साथ ही 'विज्ञान का ज्ञान' यह केवल अंग्रेजी के माध्यम से दिया जा सकता है। **मैकॉले** का यह तर्क पूर्ण रूप से सही नहीं माना जा सकता। शायद मैकॉले को अपने इस तर्क के थोथेपन की जानकारी थी। अतएव उन्होंने आगे यह भी लिखा कि यदि इस प्रकार का स्पष्टीकरण मान्य न किया गया तो वे एक्ट की 43वीं धारा को अवैध बताने के हेतु एक नया बिल भी प्रस्तुत करने के लिए तैयार है। भारतीय शिक्षा संस्थाओं के कायम रखने के विरूद्ध मैकॉले ने अपना मत देते हुए, यह तर्क प्रस्तुत किया कि ये संस्थाएँ किसी प्रकार का ठोस कार्य नहीं कर रही हैं। अतएव एक्ट के अनुसार जो निधि शिक्षा के प्रसार के लिए सुरक्षित रखी गई थी, उसका विनियम इन संस्थाओं के कायम रखने के लिए न किया जाए।

शिक्षा के माध्यम पर विचार करते हुए, मैकॉले ने इस समस्या का हल वांछनीयता एवं औचित्य की दृष्टि से करना ठीक समझा। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया कि–"सभी पक्षों का यह कथन है कि भारत में विद्यमान विभिन्न भाषाओं में न तो साहित्य का अंश है और न उनमें किसी प्रकार के विज्ञान का ही समावेश है। साथ ही जब तक इन भाषाओं का विकास नहीं होता तब तक अन्य किसी विधि से अंग्रेजी भाषा में लिखित मूल्यवान ग्रन्थों का भाषान्तर किया जाना सम्भव नहीं। अतः ऐसे लोगों के बौद्धिक विकास के लिए जिनके पास ऊँचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करने के साधन हैं, प्रचलित भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देना सम्भव नहीं। इसके लिए किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता है।"

संस्कृत अथवा अरबी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने कि विरूद्ध अपना मत देते हुए मैकॉले ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि–"अच्छे यूरोपीय साहित्य की अलमारी का एक खण्ड ही भारतवर्ष और अरब के सारे देशीय साहित्य के बराबर मूल्यवान है।"

इसके विपरीत, अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में मैकॉले ने अपना मत देते हुए यह बताया कि यह राजभाषा होने के कारण, पूर्वीय देशों में वाणिज्य–व्यवसाय इसी भाषा के माध्यम से होने के कारण तथा भाषा में अनेक भारतीय पारंगत होने के कारण, इसे ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाना अधिक औचित्यपूर्ण होगा।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीयों के मन में सन्देह उत्पन्न होने की बात पर मैकॉले ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि अंग्रेज शासकों का कर्त्तव्य है कि वे भारतीयों को ऐसी शिक्षा दें जो उनके 'स्वास्थ्य' के लिए हितकर हो, न कि ऐसी शिक्षा जो कि भारतीय को 'स्वादिष्ट' लगे। यदि रुचि का ही ध्यान रखा जाय तो यह प्रमाणित होता है कि समिति के तत्वाधान में तैयार ही हुई संस्कृत एवं अरबी भाषा में लिखी पुस्तकों की खपत उतनी नहीं, जितनी कि अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों की, जिनसे बड़ी मात्रा में लाभ प्राप्त हो रहा था। साथ ही मैकॉले ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि संस्कृत तथा अरबी कॉलेजों में विद्यार्थियों के दाखिल होने के लिए जहाँ छात्रवृत्तियों का प्रलोभन आवश्यक था, वहाँ अंग्रेजी शालाओं में विद्यार्थी शुल्क देकर भी भरती होने के लिए उत्सुक थे।

इस तर्क के विरूद्ध कि **हिन्दू धर्म तथा कानू की शिक्षा** के लिए तो संस्कृत साहित्य का जानना आवश्यक है, मैकॉले ने यह युक्ति प्रतिपादित की कि हिन्दू के धार्मिक कानूनों को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके उसके माध्यम से शिक्षा देना अधिक मितव्ययता होगी, बजाय इसके कि उनका अध्ययन करने के लिए संस्कृत शालाओं को चलाया जाय।

मैकॉले ने विश्वास व्यक्त किया कि– "इस शिक्षा द्वारा ऐसा समाज तैयार होगा जो हमारे तथा हमारी करोड़ों प्रजा के बीच विचार–वाहक बनेगा। इससे एक ऐसे वर्ग का निर्माण होगा– जो रंग और रक्त में भारतीय परन्तु विचारों, नैतिकता तथा बुद्धि में अंग्रेज होगा।"

इस प्रकार मैकॉल ने मिनिट में अपनी वाक्पटुता से इस बात का प्रबल समर्थन किया कि भारत में शिक्षा का उद्देश्य–पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञान का प्रसार अंग्रेजी भाषा के माध्यम से करना है। उन्होंने इस बात की भी सलाह दी कि पूर्वीय साहित्य की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ तुरन्त बन्द कर दी जाएँ तथा जो निधि इस प्रकार से बचे, उसे अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार हेतु खर्च किया जाए।

मैकॉले के शिक्षा–कार्य का मूल्यांकन
(EVALUATION OF MACAULAY'S EDUCATIONAL WORK)

भारतीय शिक्षा के इतिहास में मैकॉल के कार्य का मूल्यांकन अलग–अलग ढंग से किया जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार मैकॉले का कार्य भारतीय शिक्षा की व्यवस्था को प्रगति के पथ पर आरूढ़ करने में मौलिक था, तो कुछ लोग भारत के राजनैतिक पतन तथा आधुनिक शिक्षा में उपस्थित मूलभूत समस्याओं का सारा दोष मैकॉले पर ही लादते हैं। कुछ लोग भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं धर्म के सम्बन्ध में मैकॉल के गहरे अज्ञान की भर्त्सना करते हैं, जो अन्य कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं का शिक्षा में दुर्लक्ष्य होने का सारा दोष मैकॉले पर मढ़ते हैं।

वास्तव में इन सभी मतों में अतिशयोक्ति हो सकती है। मैकॉले को पूर्ण श्रेय देने के पूर्व, इस बात का ध्यान रखना होगा कि मैकॉले ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीयों में किसी प्रकार अभिरुचि उत्पन्न नहीं की। इस शिक्षा से होने वाले लाभों ने ही भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा की ओर उत्प्रेरित किया। मैकॉले का पाश्चात्यवादी दल के संगठन में कोई हाथ न था, वह तो मैकॉले के भारत आगमन के पूर्व ही भारत आगमन के पूर्व ही भारत में बन चुका था। भारतीय लोग अंग्रेजी शिक्षा के उत्सुक थे और कम्पनी के द्वारा उस शिखा के संचालन के अभाव में मिशनरी शालाओं में प्रवेश लेकर उसे ग्रहण कर रहे थे। कम्पनी के नये और तरूण अंग्रेज अफसर पाश्चात्यवादी मत के प्रणेता थे। केवल पुराने अफसर ही लॉर्ड हैस्टिंग्ज और मिन्टो की शिक्षा सम्बन्धी नीति के समर्थक थे। ऐसे अवसर पर मैकॉले का भारत में आगमन हुआ था। इतनी बात अवश्य है कि मैकॉले की केम्ब्रिज विश्वविद्यालयीन शिक्षा ने, जिसमें पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन का बड़ा अंश था, उसको पाश्चात्यवादी मत की ओर आकर्षित करने में प्रभावित किया। साथ ही मैकॉले की प्रतिभा तथा वाक्पटुता ने उसे अपने पक्ष का जोरदार समर्थन करने में सहायता दी। मैकॉले तो पहले से ही विद्यमान विवादास्पद विषय पर एक विशिष्ट निर्णय देने के लिये कारण मात्र था।

इसी प्रकार मैकॉले पर दोषारोपण करने वालों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस पक्ष का भी मैकॉले ने प्रतिपादन किया, उसके पीछे कोई दूर्भावना अथवा कुत्सित विचार न था। मैकॉले को अधिक दोषी इसी बात के लिये ठहराया जा सकता है कि प्राच्य साहित्य एवं धर्म से वह पूर्णरूपेण अनभिज्ञ था तथा उसमें अनुभव और दार्शनिक दृष्टिकोण का अभाव था। वह साम्राज्यवाद में विश्वास करता था और 'श्वेतांग–भार' के सिद्धांत का भी कायल था, जिसके अनुसार श्वेत जातियों का यह उत्तरदायित्व समझा जाता था कि वे अश्वेत जातियों को पाश्चात्य संस्कृति और विज्ञान द्वारा सुसंस्कृत तथा परिष्कृत करें। इस प्रकार के पूर्वाग्रहों ने उस पर प्रभाव डाला हो, इसकी सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

भारतीय भाषाओं का विरोध करने के लिये मैकॉले को दोषी ठहराना, यह पूर्णतः न्याय संगत न होगा। मैकॉले को भारतीय भाषाओं के शिक्षा में महत्त्व का अनुमान था। परन्तु उसे तत्कालीन राजनीति में भाग लेने वाले भारतीयों ने सलाह दी कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं का होना व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव नहीं। राजा राममोहन राय द्वारा लॉर्ड एम्हर्स्ट को लिखा पत्र इसका प्रमाण है। इस सम्बन्ध में सन् 1836 की लोक–शिक्षण की सामान्य समिति के एक प्रस्ताव का उल्लेख करना अनुचित न होगा। ध्यान रहे कि इस समिति के सभापति का स्थान मैकॉले ने ग्रहण किया था। "भारतीय भाषाओं के विकास एवं प्रोत्साहन सम्बन्धी महत्त्व का हमें पूर्ण ख्याल है। हमें इसका बोध नहीं कि 7 मार्च के आदेश द्वारा भारतीय भाषाओं के विकास एवं प्रोत्साहन पर कोई

विशेष अवरोध लागू होता हो.........। हमें इस बात का ध्यान है कि भारतीय भाषाओं के निर्माण एवं विकास का उद्देश्य ही हमारे प्रयासों का लक्ष्य है.......।”

यद्यपि मैकॉले द्वारा तथा अन्य अधिकारियों द्वारा समय–समय पर भारतीय भाषाओं के विकास के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया परन्तु शिक्षा के अधिकारियों द्वारा इसकी उपेक्षा ही होती रही। अतः इसके लिये मैकॉले को दोषी ठहराना उचित न होगा।

2.5 वुड का घोषणा पत्र (WOOD's DESPATCH)

भारतीय शिक्षा के प्रवर्तकों में प्रायः ऐसे लोग आते हैं, जिन्होंने भारतवर्ष में रहकर तथा यहाँ की शैक्षिक परिस्थितियों और आवश्यकताओं की न्यनाधिक जानकारी प्राप्त कर अपने विचारों या कार्यों से उसके विकास में योगदान दिया । किन्तु उसके प्रवर्तकों में एक ऐसा भी व्यक्ति था, जिसने भारत भूमि से सहस्त्रों को दूर इंग्लैण्ड में बैठकर भारतीय शिक्षा– प्रणाली को व्यवस्था दी। यह व्यक्ति था सर चार्ल्स वुड जो किसी समय ईस्ट–इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष रह चुका था। भारतवर्ष की स्थिति और आवश्यकताओं का उसका अध्ययन इतना विस्तृत तथा गहन था कि जब कभी इस देश की सैनिक, प्रशासनिक, न्यायिक तथा अन्य क्षेत्रों में व्यवस्था का प्रारूप प्रस्तुत करने का काम उसी के मत्थे पडा।

वस्तुस्थिति यह थी कि समय–समय पर दिये गये विभिन्न आदेशों और आज्ञा– पत्रों द्वारा शिक्षा का उत्तरदायित्व लेने की सिफारिशें की गई थीं। किन्तु कम्पनी शासन उन्हें पूर्णतःवहन करने के लिए स्वच्छन्दता से तत्पर न हो सका। अतएव इस बात की आवश्यकता थी कि उस समय तक के लिए सभी निर्णयों और प्रयासों को दृष्टि में रखते हुए ऐसी सम्पूर्ण शिक्षा – योजना बनाई जाये जो भारतीय शिखा को दृढता एवं स्थिरता दे सके। यद्यपि वुड को इस सम्बन्ध में कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं थे, किन्तु सन् 1853 के चार्टर एक्ट के लिए पॉर्लियामेन्टरी कमेटी के सम्मुख दी गई साक्षियों थ अन्य प्रतिवेदनों और टिप्पणियों ने उनके कार्य के लिए पयार्प्त सामग्री प्रस्तुत कर दी। इस पृष्ठभूमि में वुड ने अपना प्रेषण लिखकर भारतीय शिक्षा को व्यवस्थित ढाँचे में रखने का प्रयास किया

यह प्रेषण क्रमांक 49, दिनांक 19 जुलाई, 1854 को ईस्ट– इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर्स की ओर से भारत के गर्वनर–इन –कोसिल को भेजा गया था। इसके अन्त में जिन दस व्यक्तियों के हस्तांक्षर हैं उनमें चार्ल्स वुड का नाम नहीं, ओर ऐसी शंका व्यक्त की जाती हे कि इसका मूल रचियता कम्पनी के इंग्लैण्ड स्थित कार्यालय में लेखक का कार्य करने वाला जान स्टुअर्ट मिल था। किन्तु किसी प्रकार वुड का नाम इस प्रेषण से

जुड गया, जिससे वह वुड का 'शैक्षणिक घोषणा पत्र ' प्रसिद्ध हुआ। हो सकता है कि प्रथम प्रारूप तैयार करने में एक या अनेक लोगों का हाथ रहा हो, किन्तु उसकी अन्तिम रूप देने का श्रेय चार्ल्स वुड को ही हो, जो कम्पनी के बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष था। तत्कालीन भारत की परिस्थितयों का जो ज्ञान और उसके समाधान की जो प्रतिभा उसने अन्य विभागों के व्यवस्थीकरण में प्रदर्शित की, वह इसमें भी विद्यमान है। यह प्रेषण इतना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है कि इसे भारत में “अंग्रेजी शिक्षा का मैग्ना चार्टा” की संज्ञा दी जाती है।

वुड के शिक्षा घोषणा–पत्र 1854 की विशेषताएँ

इस घोषणा पत्र में सर्वप्रथम अनेक विवादग्रस्त पहलुओं पर विचार किया गया था, और बाद में अनेक सुझावात्मक सिफारिशें की थीं। इस घोषणा–पत्र में शिक्षा का कर्त्तव्य कम्पनी का एक प्रमुख कर्त्तव्य बतलाया गया और कहा कि शिक्षा प्रचार तथा प्रसार करना कम्पनी का एक पुनीत कार्य है।

किन्तु इस पुनीत कार्य के पीछ एक कूटनीति छिपी हुई थी। इस शिक्षा के द्वारा भारतीयों को केवल इंग्लैण्ड की उच्च कला, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य का ही ज्ञान कराना था।

प्राच्य–पाश्चात्य विवाद पर अपना विचार रखते हुए घोषणा–पत्र प्राच्य भाषाओं ने साधारण ज्ञान को अच्छा समझता है किन्तु “इम जोरदार शब्दों में घोषणा करते हैं कि जिस शिक्षा का हम भारत में प्रसार करना चाहते हैं, उसका उद्देश्य यूरोपीय उच्च कला, विज्ञान, दर्शन तथा साहित्य अर्थात् संक्षेप में यूरोपीय ज्ञान है।”

माध्यम के प्रश्न पर घोषणा–पत्र प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों की भाषाओं को 'भारतीय शिक्षालयों में फलना–फूलना' देखना चाहता है।

घोषणा–पत्र में 100 अनुच्छेउ हैं और शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त करने के उपरान्त घोषणा–पत्र में निम्नांकित सिफारिशें की गई–

1. **शिक्षा का उद्देश्य–** घोषणा–पत्र में शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करते समय अंग्रेजों के स्वार्थों का पूरा–पूरा ध्यान रखा गया है। शिक्षा के द्वारा ऐसे व्यक्ति उत्पन्न किये जायेंगे जो ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए भिन्न–भिन्न पदों पर विश्वास के साथ नियुक्त किये जा सकें

2. **शिक्षा का विषय–** पाठ्य–विषयों की दृष्टि से आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा प्राच्य भाषाओं को अत्यन्त दोषपूर्ण बताया गया है तथा पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अध्ययन भारतीयों के लिए उपयुक्त कहा गया है।

3. **शिक्षा का माध्यम–** शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रजी भाषा के उपयोग उन्हीं व्यक्तियों के लिए किया जायेगा जो इसका समुचित ज्ञान रखते हैं। शेष लोगों के लिए

शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ ही रहेंगी, परन्तु भारतीय भाषाओं के द्वारा जो शिक्षा प्रदान की जायेगी, वह यूरोपीय विज्ञान तथा साहित्य से सम्बन्धित होगी।

4. विश्वविद्यालयों की स्थापना– घोषणा–पत्र में सुझाव दिया गया कि बम्बई तथा कलकत्ता में और आवश्यकता पड़ने पर मद्रास तथा अन्य स्थानों पर विश्वविद्यालय स्थापित किये जायें। विश्वविद्यालयों के सामने लन्दन विश्वविद्यालय आदर्श के रूप में रहेगा।

विश्वविद्यालयों के कार्य रहेंगे–

(i) शिक्षण संस्थाओं को सम्बद्ध करना,

(ii) आधुनिक भारतीय भाषाओं, प्राच्य भाषाओं, विधि, अभियान्त्रिकी आदि की शिक्षा का प्रबन्ध करना,

(iii) सम्बद्ध संस्थाओं को निरीक्षण करना।

5. क्रमबद्ध विद्यालयों की स्थापना– उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए घोषणा–पत्र में क्रमबद्ध विद्यालयों की आवश्यकता पर बल दिया गया। शिक्षा का क्रम इस प्रकार से निर्धारित किया गया–

विश्वविद्यालय
|
कॉलेज या महाविद्यालय
|
हाई स्कूल
|
मिडिल स्कूल
(जिन्हें आज जूनियर हाई स्कूल कहा जाता है)
|
प्राथमिक पाठशाला

6. शिक्षा विभाग– प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग स्थापित किया जाय तथा उसका अध्यक्ष जन शिक्षा संचालक हो।

7. जन–साधारण की शिक्षा– घोषणा–पत्र में जनसाधारण की शिक्षा के प्रसार के लिए व्यवस्था की गई। दिशा शिक्षा के महत्व को स्वीकार करने के अलावा यह भी स्वीकार

किया गया कि अब तक इस शिक्षा की पूर्ण अवहेलना की गई है। इस प्रकार, निस्यन्दन सिद्धान्त का त्याग कर दिया गया। घोषणा–पत्र ने हायर सेकण्डरी स्तर पर भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया।

8.**सहायता अनुदान–** घोषणा–पत्र सहायता अनुदान की व्यवस्था करने की सिफारिश की गई और सहायता–अनुदान प्राप्त करने के लिए शिक्षालयों के लिए निम्नांकित नियम बना दिये–

(अ) शिक्षालय पक्षपात रहित धर्म–निरपेक्ष प्रदान करता हो।

(आ) संचालन में स्थानीय व्यक्तियों का हाथ हो।

(इ) छात्र निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते हों।

(ई) संचालकगण सरकारी निरीक्षण तथा सहायता–अनुदान के अन्य नियमों का पालन करते हों।

9. **शिक्षक प्रशिक्षण–** घोषण–पत्र में प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु स्कूल स्थापित करने की सिफारिशें की गई। प्रतिक्षण कला में अध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ भी देने की बात पत्र में कही गयी थी।

10. **स्त्री–शिक्षा–** घोषणा–पत्र में स्त्री–शिक्षा की प्रगति करने के लिए सुझाव दिये गये। यह भी कहा गया कि लड़कियों के विद्यालयों को उदारतापूर्वक अनुदान दिये जायें।

11. **व्यावसायिक शिक्षा–** घोषणा–पत्र में भारतीय जनत की व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से भारत में औघोगिक कॉलेजों तथा ऐसे स्कूलों की स्थापना की सिफारिश की गई जिनमें कारखाने के कार्य सिखलाये जायें। इसके अतिरिक्त, शिक्षित व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार सरकारी सेवाएँ प्रदान करने के लिए भी सिफारिश की गई।

12. **मुसलमानों की शिक्षा–** घोषणा–पत्र में कहा गया कि मुसलमान लोग शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़े हुए हैं, अतः उन्हें शिक्षा देने के लिए विशेष प्रयास तथा व्यवस्था की जाये।

चार्ल्स वुड का जीवन– वृत्त (**LIFE- SKETCH OF CHARLES WOOD**)

सर चार्ल्स वुड, जो लार्ड हैलीफैक्स के नाम से विख्यात हुए, सर फेंसिल लिण्डले वुड के ज्येष्ठ पुत्र थे। चार्ल्स वुड का जन्म 20 दिसम्बर, सन् 1800 ई. को हुआ। इनकी शिक्षा ईटन और ओरियल कॉलेज ऑक्सफोर्ड में सम्पन्न हुई, जहाँ से उन्होंन बी. ए. और एम. ए. की उपाधियाँ प्राप्त की। वें 26 वर्ष की आयु में उदार दल के सदस्य के रूप में

ग्रिम्सबी से प्रथम बार ब्रिटिश संसद के लिये चुने गये। 1831 में वे वेरहेन से संसद के लिए फिर चुने गये। इस बीच ब्रिटिश संसद में चार्ल्स वुड का कोई विशेष योगदान नहीं रहा। 1832 में वे हैलीफैक्स से चुने गये ओर 32 वर्षों तक वे यहीं से संसद के सदस्य रहे ।

सर चार्ल्स वुड का संसदीय जीवन उतार और चढाव का जीवन रहा हैं। उनका संसदीय जीवन उतना सफल नहीं कहा जा सकता जितना कि उनका प्रशासकीय जीवन। चार्ल्स वुड का प्रशासकीय जीवन अगस्त 1832 से प्रारम्भ होता है, जब वे खजाने के संयुक्त सचिव नियुक्त हुए। इस पर वे नवम्बर 1834 तक रहे। अप्रैल 1835 में वे एडमिरैल्टी के सचिव नियुक्त हुए। इस पद से सितम्बर 1839 में उन्होंने त्याग– पत्र दे दिया। इस काल में वे संसदीय वाद– विवादों में बहुधा भाग लिया करते थे। लेकिन वे एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण संसद– सदस्य के रूप में उभर कर नहीं आ सके। जुलाई 1846 को वे एक्सचेकर के चांसलर बने और इसी वर्ष वे प्रिवी–कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गयें इस वर्ष पिता की मृत्यु के पश्चात् 31 दिसम्बर को चार्ल्स वुड पिता की बेरोनेट्सी के उत्तराधिकारी बने। चार्ल्स वुड का वित्तीय प्रशासन बहुत अधिक सफल नहीं कहा जा सकताः किन्तु जिन वित्तीय कठिनायों से यह काल गुजरा, उनको देखते हुए चार्ल्स वुड के प्रयास सफल माने जा सकते हैं। वे सामान्य रूप से नये करों और खर्चो के कडे विरोधी थे और यही कारण था कि वे लोकप्रिय नहीं हो सके। किन्तु यह बात स्मरणीय हे कि 1852 में जब कन्त्रिमण्डलीय संकट आने पर मन्त्रिमण्डल का विघटन हुआ, तक भी चार्ल्स वुड अपने प पर बने रहे ।

भारतीय मामलों की गहन और विस्तृत जानकारी रखने के कारण दिसम्बर , 1852 में चार्ल्स वुड को बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष नियुक्त किया गया । उसके एक वर्ष बाद ही भारतीय चार्टर पारित हुआ। सन् 1855 में लार्ड पामर्स्टन की मन्त्रि– परिषद में वे एडमिरैल्टी के प्रथम लार्ड के रूप में सम्मिलित हुए। इस पद से वे एडमिरैल्टी की प्रमुख समस्याओं को हल करने में सफल हुए । 19 जून, 1856 को उन्हें ''नाइट '' (जी. सी. वी.) की पदवी से विभूषित किया गया। फरवरी, 1858 में अपने पद को त्याग कर वे जून, 1859 में भारत सचिव बने। चहीं से चार्ल्स वुड के सफल प्रशासकीय जीवन का आरम्भ होता है। भारत में 1857 की जनक्रान्ति के बाद जो प्रशासकीय परिवर्तन हुए उनका सूत्रपात चार्ल्स वुड ने किया। ईस्ट– इण्डिया कम्पनी के विघटन के बाद भारत का शासन– प्रबन्ध जब ब्रिटिश –संसद के आधीन हुआ, तब अनेक प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधार उन्होंने सम्पन्न कराये। यही काल चार्ल्स वुड के प्रशासनिक जीवन का उतकृष्ट काल कहा जा सकता है। भारत की इन परिवर्तित परिस्थितियों में चार्ल्स वुड ने अनेक कानून बनवाये जैसे – 1859 में भारत में योरोपीय सेनाओं की संख्या का सीमांकन, 1860 में

भारतीय सेना का पुनर्गठन , 1861 में विधान परिषद् एवं उच्च न्यायालयों का नियमन , प्रशासनिक सेवाशर्तों में सुधार इत्यादि। इस बीच उन्होंने एक संकटकालीन स्थिति का भी सामना किया। भारत की अर्थ–व्यवस्था अस्तवयस्त हो रही थी और भारतीय रैलों के विस्तार के लिए चार्ल्स वुड को अधिक ऋण लेना पडा ओर इस बढते हुए भारतीय ऋण के प्रकरण पर भारतीय वित्त– मन्त्री एस. लैन्ग को 1862 में त्याग – पत्र भी देना पडा। इन सबके लिए चार्ल्स वुड की कटु आलोचना की गई और उन्हें दोषी भी ठहराया गया, जो कि न्याय संगत प्रतीत नहीं होता। लेकिन इसके बाद लगातार तीन वर्ष तक आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ और चार्ल्स वुड बजट में व्यय और ऋण के प्रावधानों को कम करने में सफल हुए।

1865 में हैलीफैक्स से वे चुनाव हार गये, लेकिन रिफन से चुनाव जीतकर पुनः संसद के सदस्य बने। दुर्भाग्यवंश इसी समय वे शिकार में वे गम्भीर रूप से दुर्घटनाग्रस्त हो गये, जिसके कारण उन्हें अपना परिश्रमिक प्रशासनिक कार्य छोडने को बाध्य होना पडा। 16 फरवरी,1866 को चार्ल्स वुड ने भारत सचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया। उसी वर्ष चार्ल्स वुड को मॉन्क ब्रेटन का वायकाउन्ट हैलीफैक्स बना दिया गया और वे लार्ड हैलीफैक्स के नाम से ब्रिटिश संसद के हाउस ऑफ लार्ड्स के सदस्य बने। चार वर्षों के बाद उन्हें प्रीवी –काउन्सिल का सदस्य नियुक्त किया गया। पुनः वे सक्रिय रूप से प्रशासनिक जीवन में प्रविष्ठ हुए और इस पद पर वे 21 फरवरी, 1874 तक रहे। 8 अगस्त, 1885 को 84 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

सर चार्ल्स वुड प्रशासनिक क्षेत्रों में एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। समकालीन राजनैयिकों में वे प्रशंसा के पात्र न होते हुए भी एक प्रभावशाली एवं सम्मानित व्यक्ति थे। परामर्शदाता के रूप मे चार्ल्स वुड सशक्त एवं सक्षम व्यक्ति माने जाते थे, क्योंकि उनकी विषयों की जानकारी विस्तृत और गहरी थी एवं वे सूझ– बूझ के धनी थे। वे परिश्रमी एवं समय के पाबन्द थे। उनकी कार्य–कुशलता से सभी कायल थे। यही कारण था कि चार्ल्स वुड विभागीय प्रशासक के रूप में सक्षम एवं योग्य व्यक्ति माने जाते थे। प्रशासनिक नीतियों के निर्माण में उनके सुझाव सदा मूल्यवान होते थे। वे बहुत समझ–बूझकर निर्णय लेते थे। हालांकि स्वर– दोष होने के कारण वक्ता के रूप में वे उतने प्रभावशाली नहीं थे, लेकिन प्रशासनिक मामलों की बारीक जानकारी होने के कारण ब्रिटिश संसद के लोक–सदन में उनका प्रभाव अत्यधिक था।

भारत शिक्षा के वुड का योगदान
(**CONTRIBUTION OF WOOD TO INDIAN EDUCATION**)

1853 में ईस्ट–इण्डिया कम्पनी के लिए जब नवीन चार्टर का निर्माण हो रहा था, उस समय भारतीय शिक्षा में उठे विवादों और असन्तोष के कारण ब्रिटिश –संसद से सदस्यों ने यह अनुभव किया कि अब भरतीय शिक्षा की उपेक्षा नहीं की जा सकती ओर उसकी जाँच– पडताल कर स्पष्ट नीति निर्धारित की जानी चाहिए। अतः ब्रिटिश लोक–सभा ने एक विशेष संसदीय समिति नियुक्त की । समिति ने 1853 तक हुई भारतीय शिक्षा की प्रगति का अध्ययन किया और भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में चले आ रहे विवादों के दोनों पक्षों के विचारों की जानकारी प्राप्त की। समिति के समक्ष अनेक साक्षियाँ प्रस्तुत की गई और कई स्मरण–पत्र भेजे गये। अनेक शिक्षा –मर्मज्ञों ने, जो भारत में शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय रूप से कार्य कर रहे थे, समिति के समक्ष अपने विचार व्यक्त किये। इनमें प्रमुख थे– ट्रैवेलियन, पैरी, मार्शमैन, विल्सन, हैलीडे, एलेक्जेण्डर डफ इत्यादि। इस जाँच ने समिति को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि भारत में अंग्रेजी शासन को सुदृढ बनाने के लिए राजनैतिक प्रशासन के साथ–साथ, शिक्षा को भी महत्व दिया जाना चाहिए। ''शिक्षित– भारतीय शासन के लिए खतरा न होकर शक्ति के स्त्रोत बनेंगे। '' समिति के सुझावों के आधार पर कम्पनी के संचालकों ने भारतीय शिक्षा के लिए अपनी नीति का निर्धारण कर 19 जुलाई, 1854 को घोषणा–पत्र प्रेषित किया। तत्कालीन बोर्ड ऑफ आयरेक्टर्स के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड के नाम से यह घोषणा– पत्र सम्बद्ध किया गया और यह भारतीय शिक्षा के इतिहास में 'वुड का शिक्षा–प्रेषण या घोषणा पत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुछ इतिहासकारों ने इसे 'भारत का बौद्धिक चार्टर'' कहा। कुछ इतिहासकार इसे प्रसिद्ध अंग्रेज विचारक एवं दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिल की लेखनी का चमत्कार मानते हैं, जो उस समय इण्डिया आफिस में एक लिपिक मात्र था। कुछ इसे लार्ड नार्थबुक द्वारा लिखा हुआ मानते हें। लेकिन भारतीय शिक्षा के इतिहास में यह वुड का घोषणा– पत्र के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ, जबकि सर चार्ल्स वुड 10 सदस्यों की उस समिति के न अध्यक्ष थे, न सदस्य ही ; और न 19 जुलाई 1854 को गवर्नर जनरल के नाम प्रेषित उस प्रेषण में वुड के हस्ताक्षर ही हैं । जिन 10 सदस्यों के प्रेषण में हस्ताक्षर हैं, उनके नाम हैं– जे ओलिफन्ट, मैकनेटेन, सी, मिल्स, आर. एलिस, टी. डब्ल्यू. हॉग, डब्ल्यू, जे. ईस्टविक, आर.डी. मैथ्ग्ल्स, जे. पी. विलोबी, जे. एच. ऐस्टैल एवं एफ. करी। सर चाल्र्स वुड का प्रभाव और योग इस शिक्षा –निर्देश में स्पष्टतः प्रतीत होता है। इस प्रेषण के निर्माण में सर चार्ल्स वुड की विशेष प्रेरणा, सूझ–बूझ, प्रशासनिक दृढता एवं उदारपन्थी समनवयवादी विचारधारा प्रमुख स्त्रोत प्रतीत होती है। इसी से उनका नाम इससे सम्बद्ध है।

शिक्षा – नीति (POLICY OF EDUCATION)

शिक्षा – नीति को स्पष्ट करते हुए प्रेषण में कहा गया है कि ''शिक्षा से बढकर कोई भी महत्वपूर्ण विषय नहीं, जो इस समय हमारा ध्यान आकर्षित करे। इंग्लैण्ड के सम्पर्क में आने के कारण भारत में जो उपयोगी ज्ञान का संचार हुआ हे, उसके नैतिक एवं भौलिक लाभों को भारतीयों को प्रदान करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। '' शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है कि ''शिक्षा का उद्देश्य केवल उच्च– स्तरीय बौद्धिक योग्यता उत्पन्न करना न होकर, शिक्षा का लाभ उठाने वाले व्यक्तियों का नैतिक चरित्र ऊूंचा उठाना होना चाहिए और कम्पनी की सेवाओं के लिए ऐसे निष्ठावान लोग तैयार करना, जिन्हें विभिन्न पदों पर विश्वास के साथ नियुक्त किया जा सके, क्योंकि भारत में जनता के लोक–कल्याण और खुशहाली का राज्य के प्रत्येक विभाग में कार्यरत अधिकारियों की योग्यता एवं सत्यनिष्ठा से घनिष्ठ सम्बन्ध है।''

प्रेषण के निर्माताओं का विश्वास था कि योरोपीय ज्ञान एक ओर भारतीयों को श्रम और पूॅंजी के उपयोग से भारत के आर्थिक स्त्रोतों के विकास में सहायक होकर वाणिज्य एवं सम्पदा की वृद्धि करेगा, तो दूसरी और अंग्रेजी उद्योग के निर्माण की अनेक वस्तुओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक भी होगा। अतएव कम्पनी की सरकार को भारत में शिक्षा के उत्त्तरदायित्व को वाहन करते हुए यूरोप के साहित्य ,विज्ञान, दर्शन और कला– अर्थात् यूरोपीय ज्ञान का प्रसार करना चाहिये। दलील प्रस्तुत करते हुए प्रेषण में कहा गया कि प्राच्य साहित्य, दर्शन और विज्ञान अपने आप में लब्ध– प्रतिष्ठा होते हुए भी तत्कालीन आधुनिक खोज और सुधार हेतु उसने समक्ष नहीं हैं कि वे भारतीय शिक्षा–योजना के पर्याप्त आधार बन सकें। वे सहयोगी एवं सहायक बन सकते हैं ।

शिक्षा का माध्यम (MEDIUM OF INSTRUCTION)

प्रेषण में शिक्षा माध्यम के सम्बन्ध में कहा गया कि ''अंग्रेजी भाषा की भारतीय भाषाओं के स्वप्न पर प्रतिष्ठित करना– न हमारा उद्देश्य रहा , न यह हमारी इच्छा ही रही है। हमने हमेशा ऐसी भाषा के उपयोग के महत्व को स्वीकार किया है, जा अधिकांश जन – साधारण के द्वारा समझी जाती है । न्यायिक प्रशासन, प्रशासक और जनता के बीच सम्पर्क –भाषा हेतु फारसी के स्थान पर अंग्रेजी भाषा को प्रतिष्ठित नहीं किया गया। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी भी सामान्य शिक्षा– प्रणाली में जनसाधारण से अंग्रेजी भाषा के आधिकारिक ज्ञान की अपेक्षा नहीं की जा सकती । अतएव प्रेषण में सुझाव दिया गया कि ''अंग्रेजी भाषा वहीं पढाई जायें, जहॉं उसकी मॉंग हो। लेकिन शिक्षण बहुत सावधानी से जिले की भारतीय भाषा के अध्ययन के सम्बद्ध इस प्रकार किया जाये कि वह उस भारतीय भाषा के माध्यम से दिया जा सके। जिन लोगों ने अंग्रेजी भाषा का इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि वे उसे भाषा के माध्यम से शिक्षा

प्राप्त कर सकते हैं, उनके लिए अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहे। लेकिन अधिकांश लोग जो अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ है या जिन्हें उसका पर्याप्त ज्ञान नहीं है, उनके लिए भारतीय भाषाओं को उपयोग किया जाये।''

इस कठिन कार्य के लिए प्रेषण अध्यापकों से अपेक्षा की कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से स्वयं पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर, अपने देशवासियों को उस ज्ञान को उनकी मातृभाषा के माध्यम से प्रदान करें। प्रेषण ने यह भी इच्छा व्यक्त की कि जैसे–जैसे शिक्षण में भारतीय भाषाओं का महत्व बढेगा, वैसे– वैसे इन भाषाओं का साहित्य भी यूरोपीय पुस्तकों के अनुवादों से और उन लेखकों की मौलिक रचनाओ से जो यूरोपीय ज्ञान को आत्मसात् कर चुके हैं, समृद्ध होगा और इस प्रकार यूरोपीय ज्ञान भारतीय भाषाओं के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँच सकेगा।

प्रेषण में कहा गया कि'' हम अंग्रेजी भाषा एवं भारतीय भाषाओं –दोनों को, यूरोपीय ज्ञान के प्रसारण का माध्यम मानते है और यह हमारी इच्छा है कि भारतीय विद्यालयों में दोनों पर्याप्त रूप से विकसित होकर उच्च स्तर प्राप्त करें।''

शैक्षिक प्रशासन (EDUCATIONAL ADMINISTRATION)

वैसे तो पहले से ही बंगाल, मद्रास एवं बम्बई प्रान्तों में 'शैक्षिक प्रशासन' की शुरूआत हो चुकी थी। शिक्षा–मण्डल ' और 'शिक्ष–समिति के माध्यम से जो कार्य हो रहा था, प्रेषण में उसकी सराहना की गई। उन यूरोपीय एवं भारतीय महानुभावों की प्रशंसा करते हुए अनके प्रति प्रेषण में कृतज्ञता व्यक्त की गई जिन्होंने इस कार्य को बडी लगन, ईमानदारी और योग्यता से बिना कोई अतिरिक्त वेतन लिये किया। प्रेषण में पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर टामेसन के इस दिशा में किये गये प्रयासों का विशेष उल्लेख किया गया। शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में किये गये इन प्रयासों से प्रभावित होकर प्रेषण के निर्माताओं ने एक नियमित शैक्षिक प्रशासनिक संघटन की आवश्यकता अनुभव करते हुए कहा कि – ''शैक्षिक पर्यवेक्षण एवं निर्देशन को नियमित और अधिक सक्षम बनाने कि लिए प्रान्तों में हम शासन के अभिन्न अंग के रूप में एक शिक्षा–विभाग स्थापित करने के लिए दृढ संकल्प है और कार्य हेतु प्रत्येक प्रान्त में एक अधिकारी की नियुक्ति की अनुशंसा करते है। '' यह अधिकारी प्रान्त में शिक्षा की व्यवस्था एवं प्रशासन के लिए सरकार के प्रति उत्त्रदायी होगा। प्रेषण में आशा व्यक्त की गई कि इस प्रकार नियमित एवं यथेष्ठ निरीक्षण पद्धति का जन्म होगा और वह भारतीय शिक्षा–प्रणाली का अनिवार्य अंग बन जायेगी।

प्रेषण में सिफारिश की गई कि निरीक्षण कार्य हेतु पर्याप्त संख्या में योग्य व्यक्तियों को निरीक्षक नियुक्त किया जाय । ये समय–समय पर स्कूलों और कॉलेजों का निरीक्षण कर सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करें। इनका कार्य छात्रों की परीक्षा लेना भी होगा। ये निरीक्षक अपनी सलाह से संस्थाओं के व्यवस्थापकों एवं आध्यापकों को स्कूलों ओर कॉलेजों के संचालन में भी सहायता करेंगे। संस्थाओं के प्रकार एवं स्तरों के अनुकूल ये निरीक्षक भी विभिन्न श्रेणियों के होंगे।

प्रेषण में निरीक्षकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में उनकी योग्यता और चरित्र पर अधिक बल दिया गया। प्रेषण ने सुझााव दिया कि निरीक्षण कार्य को प्रभावशाली एवं सक्षम बनाने के लिए योग्य, चरित्रवान एवं भारतीयों के विश्वासपात्र बनने की क्षमता रखने वाले व्यक्तियों को निरीक्षक चुना जाये। शिक्षा–विभाग के प्रमुख अधिकारी और उच्च–स्तरीय निरीक्षकों के चुनाव के सम्बन्ध में प्रेषण में सुझाव दिया गया कि आरम्भ में इन पदों पर सिविल सर्विस के सदस्यों को नियुक्त किया जाए। इससे यह प्रतीत होगा कि प्रेषण शिक्षा को कितना महत्व देता है ओर जन –साधारण और प्रशासनिक दृष्टि से भी शिक्षा–विभाग का महत्व एवं सम्मान और पद की प्रतिष्ठा बढेगी। प्रेषण के मतानुसार सिविल सर्विस से शिक्षा– विभाग को कर्त्तव्य –निर्वाह की दृष्टि से योग्यतम निष्ठावान अधिकारी प्राप्त हो सकेंगे। साथ ही प्रेषण ने यह भी सुझाव दिया कि यह आवश्यक नहीं कि सिविल सर्विस से ही वे अधिकारी चुन जाये। कोई अन्य योग्य यूरोपीय या भारतीय यदि उपलब्ध होता है तो उसे पद की प्रतिष्ठा के अनुकूल अधिक वेतन देकर भी नियुक्त किया जाये।

विश्वविद्यालयों की स्थापना (ESTABLISHMENT OF UNIVERSITIES)

वुड के शिक्षा –प्रेषण ने भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना का सूत्रपात किया ।1845 में शिक्षा –समिति ने कलकत्ता में विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव किया था, किन्तु उस समय कम्पनी के संचालकों ने उसे अस्वीकार कर दिया था। वुड के प्रेषण ने भारत में हुई शिक्षा के प्रगति और उठते हुए स्तर को देखकर कलकत्ता और मुम्बई में विश्वविद्यालयों की स्थापना की सिफारिश की और प्रस्ताव किया कि यदि मद्रास में पर्याप्त संख्या में संस्थाएँ और छात्र हों तो वहाँ भी विश्वविद्यालय की स्थापना की जा सकती है।

विश्वविद्यालयों के स्वरूप एवं संगठन हेतु प्रेषण ने लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानने की सिफारिश के स्वरूप मुख्य कार्य–परीक्षा लेना, उपाधियाँ बाँटना तया उच्च शिक्षा की संस्थानों को मान्यता प्रदान करना था। विश्वविद्यालय शिक्षा की धर्म–निरपेक्षता पर प्रेषण ने बल दिया। कानून और इंजीनियरिंग को विश्वविद्यालय शिक्षा के विषय बनाने की सिफारिश की। भारतीय भाषाओं और संस्कृत के उच्च अध्ययन पर भी बल दिया। विश्वविद्यालयों की आन्तरिक व्यवस्था हेतु प्रेषण ने सीनेट का प्रावधान किया, जिसके

सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत 'फेलो' होंगे। प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक चान्सलर और एक बाइस –चान्सलर की नियुक्ति का भी प्रावधान रखा।

क्रमबद्ध विद्यालयों की श्रृंखला (CHAIN OF SCHOOLS)

प्रेषण के निर्माताओं की यह अभिलाषा थी कि सारे भारत में क्रमबद्ध रूप से शिक्षण संस्थाओं का विकास हो और शिक्षा प्राप्त करने वाला प्राथमिक विद्यालय से शिक्षारम्भ कर विश्वविद्यालय तक क्रमबद्ध रूप से विकसित पाठ्यक्रम के आधार पर शिक्षा प्राप्त कर सके। सारे भारत में ऐसे विद्यालयों का एक जाल –सा बिछाने की योजना पर प्रकाश डाला गया। इन क्रमबद्ध विद्यालयों के एक छोर पर प्राथमिक विद्यालय हो, फिर मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों दूसरे छोर पर ।

प्रेषण में इस बात पर असंतोष व्यक्त किया गया कि अधिक धनराशि महाविद्यालया की स्थापना पर व्यय की गई, जिनमें कुछ चुने हुए लोग शिक्षा पा सकते थे और जन–साधारण में शिक्षा के प्रसार की उपेक्षा की गई। प्रेषण ने सरकार द्वारा शिक्षा में अब तक अपनाये गये 'स्यन्दन सिद्धान्त' की आलोचना की और व्यवस्था दी कि जनसाधारण को व्यावहारिक एवं लाभदायक शिक्षा दी जाय, जो कि स्वयं शिक्षा पाने में असमर्थ है। अतएव प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने की अनुशंसा प्रेषणा में की गई तथा निर्धन किन्तु योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देने की भी देशी विद्यालयों को प्रोत्साहित कर देशी प्राथमिक विद्यालयोंको भारतीय शिक्षा ढॉँचे का आधार मानने की सिफाशि की गई।

सहायक अनुदान प्रणाली (GRANT-IN-AID SYSTEM)

वुड के प्रेषण ने एक और जहॉँ जन–साधारण में शिक्षा के प्रसार हेतु विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की सिफारिश की, वहॉँ दूसरी और इसके परिणाम स्वरूप बढने वाले आर्थिक बोझ को सन्तुलित करने के लिए सहायक अनुदान प्रणाली की व्यवस्था कर भारतीय शिक्षा में एक नवीन साहसिक एवं व्यावहारिक नीति का सूत्रपात किया। यह प्रणाली इंग्लैण्ड में सफल हो चुकी थी और भारत में यह अनौपचारिक एवं अनियमित रूप से आरम्भ हो चुकी थी।''सहायक अनुदान प्रणाली से शासकीय सहायता के अतिरिक्त शिक्षा की तीव्र प्रगति के लिये स्थानीय स्त्रोतों का सहयोग मिलने की विश्वसनीय आशा की गई।'' प्रेषण में सुझाव दिया गया कि प्रत्येक प्रान्तीय सरकार सहायक अनुदान सम्बन्धी नियम बनाकर उन्हीं शिक्षण संस्थाओं को अनुदान दे, जो निम्नलिखित शर्ते पूरी करें–

(1) विद्यालय बिना किसी भेदभाव के अच्छी और धर्म –निरपेक्ष शिक्षा प्रदान करे।

(2) विद्यालयों का स्थानीय प्रबन्ध पर्याप्त एवं अच्छा हो तथा प्रबन्धकारिणी समिति का संगठन स्थानीय व्यक्तियों, जैसे–निजी संरक्षक,दानदाताओं या निसर्गप्रदाय के ट्रस्टी इत्यादि से किया जाये जो व्यवस्था कुछ इस प्रकार करें कि विद्यालय को स्थायित्व मिल सके।

(3) विद्यालय, जो छात्रों से शुल्क के रूप में कुछ राशि लेते है। इस प्रथा से छात्र अपनी शिक्षा में रूचि लेंगे और नियमित रूप से कक्षा में उपस्थित रहेंगे, क्योंकि उनके अभिभावकों को यह अनुभव होगा कि वे अपने पाल्य की शिक्षा पर व्यय कर रहे हैं, इसलिए वे उसकी शिक्षा में रूचि लेंगे।

(4) विद्यालय, जो अनुदान सम्बन्धी नियमों का पालन करें और सरकारी निरीक्षण को स्वीकार करें।

सहायक अनुदान प्रणाली का स्पष्टीकरण करते हुए प्रेषण में कहा गया कि प्रान्तीय सरकारें नियम बनाते समय इंग्लैण्ड में प्रचलित अनुदान प्रणाली का अनुसरण करें। अध्यापकों के वेतन, छात्रवृत्ति, पुस्तकालय, विज्ञान प्रयोगशाला, कलाकक्ष, शालाभवन निर्माण इत्यादि के लिए अनुदान के प्रावधान किया जाये। सहायक अनुदान बिना किसी भेदभाव के सभी प्रकार के विद्यालयों को दिया जाय। लेकिन अनुदान देने के पहले विद्यालयों को नियमित एवं सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय और धार्मिक तटस्थता से सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जाय। आवश्यकता पडने पर जिले और विद्यालय की विशेष परिस्थिति को देखते हुए विशेष अनुदान भी दिया जा सकता है। प्रेषण के निर्माताओं ने यह आशा व्यक्त की कि इस अनुदान प्रणाली से ऐसा समय भी आ सकता है, जब सभी विद्यालय निजी क्षेत्र में चलने लगे और सरकार को अपने विद्यालय भी स्थानीय प्रबन्ध को सौंपने पड जायें।

शिक्षक प्रशिक्षण (TEACHER TRAINING)

प्रेषण में व्यावसायिक शिक्षा– कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग और विशेषकर शिक्षक प्रशिक्षण पर बल दिया गया। विद्यालयों की बढती हुई संख्या को देखते हुए उस अनुपात में प्रशिक्षित शिक्षकों का उपलब्ध होना एवं बडी कठिनाई है। ऐस परिस्थिति में प्रेषण ने इंग्लैण्ड उदाहरण देते हुए सुझाव दिया कि प्रशिक्षण विद्यालय और शिक्षकों के लिए विशेष कक्षाएँ खोली जायें और शिक्षकों को छात्रवृत्ति देकर प्रशिक्षित कराया जाए। इन विशेष कक्षाओं में शिक्षकों को विद्यालय के काल खण्डों के बाद प्रशिक्षण हेतु तैयार किया जाए और यहद वे उपयुक्त पाये जाएँ तो नॉर्मल स्कूलों में प्रशिक्षणार्थ सीानान्तरित कर दिया जाए। प्रशिक्षण समाप्ति पर प्रमाण–पत्र दिया जाए और पर्याप्त वेतन देकर विद्यालयों में नियुक्त किया जाए।

अन्य सिफारिशें (OTHER RECOMMENDATIONS)

प्रेषण ने जितना महत्व शिक्षक– प्रशिक्षण को दिया, उतना ही महत्व स्कूलों के लिए पाठ्य–पुस्तकों के निर्माण पर दिया , जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से यूरोपीय ज्ञान छात्रों को प्रदान करेंगी। इस कार्य हेतु प्रेषण में एलफिन्सटन एवं एडम की सिफारिशें एवं प्रयासों की सराहना करते हुए, भारतीय भाषाओं में मौलिक रूप से रचित और अनुवादित पुस्तकों में भी भाषागत मौलिकता एवं स्थानीय शैली, विचार एवं भावनाओं को स्थान मिले ताकि ये पुस्तकें स्कूलों के लिए उपयोगी एवं आकर्षक बन सकें।

स्त्री–शिक्षा हेतु दान देने वाले उदार महानुभावों की प्रशंसा करते हुए प्रेषण में स्वीकार किया गया कि स्त्री–शिक्षा से जन–साधारण के शैक्षणिक एवं नैतिक स्तर मे विकास हेतु अधिक मात्रा में प्रेरणा प्राप्त होगी। प्रेषण ने यह सुझाव दिया कि भारतीय शासन को देशज बालिका–शालाओं को उपयुक्त प्रोत्साहन देना चाहिए। इस तरह के सहानुभूतिपूर्ण प्रोत्साहन से स्त्री–शिक्षा का प्रचार और प्रसार सम्भव हो सकेगा।

चिकित्सा तथा सिविल इन्जीनियरिंग की शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रेषण ने सुझाव दिये। प्रेषण ने यह स्पष्ट किया कि, ''हमने हमेशा ही इन संस्थाओं को विशेष सम्मान से देखा है, जो भारतीयों को निश्चित व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित करती हैं, ताकि वे निजी जीवन के उपयुक्त हो सकें और साथ ही सार्वजनिक जीवन में उपयोगी सिद्ध हों।'' बम्बई और कलकत्ता के समान ही अन्य प्रमुख नगरों में मेडिकल कॉलेज की स्थापना का आग्रह प्रेषण में किया गया।

चिकित्सा शिक्षा की तरह ही सिविल इन्जीनिंयरिंग की शिक्षा को भी प्रेषण ने आवश्यक माना। यान्त्रिकी ज्ञान व कौशल की पूर्ति हेतु रूडकी यांत्रिकी महाविद्यालय की तरह की मद्रास और अन्य प्रेसीडेन्सियों में यांत्रिकी महाविद्यालयों की स्थापना का सुझाव दिया।

औद्योगिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रेषण ने मानता दी कि औद्योगिक शालाओं को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। मद्रास में डॉ. हैटर द्वारा आरम्भ की गई शाला की प्रशंसा करते हुए बम्बई में श्री जमशेद जी द्वारा औद्योगिक शाला खोलने की योजना को आर्थिक सहायता देने की सिफारिश प्रेषण ने की। औद्योगिक शालाओं से औद्योगिक, कृषि तकनीकी एवं चिकित्सा की शिक्षा के प्रसार, प्रोत्साहन व सहायता के लिए अनुशंसा की गई।

धार्मिक शिक्षा के सम्बन्ध में प्रेषण ने स्पष्टतः शासन की शिक्षा में धर्म–निरपेक्षता की नीति को स्वीकार किया। प्रेषण में कहा गया, ''ये (शासकीय) संस्थाएँ भारतीय जनता

की भलाई के लिये सीातिप की गई हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है कि इन संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा पूर्णतः धर्म–निरपेक्ष हो।''

देशज–विद्यालयों के स्तर में सुधार हेतु श्री टामेसन की योजना की प्रशंसा करते हुए प्रेषण ने यह मत प्रकट किया कि सभी प्रेसीडिन्सियों में वैसे ही प्रयास आरम्भ किये जाएँ। शासन द्वारा ऐंग्लों–वरनाकुलर स्कुलों की स्थापना को और बढ़ावा देने का प्रेषण ने परामर्श दिया।

वुड के कार्य का मूल्यांकन (EVALUATION OF WOOD'S WORK)

1854 के वुड के प्रेषण ने भारतीय शिक्षा के बिखरा को संग्रहीत कर, उभरी हुई समस्याओं का हल निरूपित कर, वर्षो से चले आ रहे अनेक विवादों को समाप्त कर, उसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया और एक योजना दी। लार्ड डलहौजी के मतानुसार– ''इस प्रकार की व्यापक एवं विस्तृत योजना की रूपरेखा प्रान्ती या केन्द्रीय सरकार द्वारा कदापि प्रस्तुत नहीं की जा सकती थी।'' एच.आर.जेम्स के मतानुसार– ''1854 के घोषणा–पत्र का भारतीय शिक्षा के इतिहास में सर्वोत्कृष्ट स्थान है। जो कुछ इसके पूर्व भारतीय शिक्षा में हुआ, वह इसकी ओर इंगित करता है, और जो कुछ इसके बाद हुआ, वह इसी से प्रवाहित होता है।'' वुड के प्रेषण आधुनिक भारतीय शिक्षा का मुख्या आधार बना और आधुनिक शिक्षा–प्रणाली का सूत्रपात इसी ने किया। जेम्स महोदय ने इसे भारत में अंग्रेजी शिक्षा का 'मेगाकार्टा' कहा है।

प्रेषण के संबंध में कहा जाता है कि उसने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में चले आ रहे एक शताब्दी के विवादों को लगभग समाप्त कर दिया। इसका एक कारण सर चार्ल्स वुड की उदार पंथी समन्वयवादी एवं मध्यममार्गी नीति ही रही होगी। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष एवं बाद में सेक्रेटिरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया के पदों पर करीब 15 वर्षा तक रहने के कारण सर चार्ल्स वुड ने भारतीय शिक्षा की समस्याओं एवं विवादों का बारीकी से अध्ययन किया होगा। और उनके निराकरण हेतु साहस एवं प्रशासनिक दृंढ़ता का परिचय दिया जो प्रेषण के निर्देशों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। परिणामस्वरूप भारतीयों को शिक्षित करने का सरकार का दायित्व, पाश्चात्य साहित्य के साथ–साथ भारतीय साहित्य एवं भाषाओं का अध्ययन विश्वविद्यालयों की स्थापना, आर्थिक अवरोधी की समाप्ति हेतु सहायक–अनुदान–प्रणाली को आरम्भ करने और शिक्षा को निश्चित स्वरूप एवं योजनाबद्ध करने वाले महत्त्वपूर्ण निर्देशों को प्रेषण में स्थान मिला। इसीलिये भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1854 का प्रेषण 'वुड के घोषणा पत्र' के नाम से विख्यात हुआ।

यद्यपि वुड का प्रेषण एक महत्वपूर्ण अधिकारिक निर्देश था, जिसका शब्दशः पालन भारतीय शासन को करना अनिवार्य था, किन्तु प्रेषण की सभी अनुसंशाओं को शासन ने उसी रूप में कार्यान्वित नहीं किया। किन्हीं महत्त्वपूर्ण अध्यायों को छोड़कर अन्य आदेशों की ओर उत्साहहीन प्रयास किये गये। इन निरूत्साहित अंशों में स्त्री-शिक्षा, तकनीकी, कृषि एवं चिकित्सा एवं औद्योगिक शिक्षा प्रधान थे। साथ ही प्रेषण में जनता की पहल (इनीशिएटिव) को जो प्रधानता दी गई थी, उसका उपयोग शासन ने उसी उत्साह और प्रोत्साहन से नहीं किया। शिक्षा के प्रसार और प्रचार हेतु जनता की पहल, उत्साह और साहसिक कार्य को शासन द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान करने में उत्साह नहीं दिखाया। फलस्वरूप जनसाधारण की शिक्षा का प्रसार जैसा कि प्रेषण की शब्दशः कार्यान्विति पर अपेक्षित था, न हो पाया।

इन सब कमियों के बाद भी वुड का प्रेषण एक महत्वपूर्ण पत्र था, जिसने आधुनिक शिक्षा को स्वरूप व दिशा देने का प्रशंसनीय कार्य किया।

2.6 इकाई सारांश/याद रखने योग्य बातें

ब्रिटिश कालीन शिक्षा को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया-

1. 1801-1882 जिसमें श्लाघनीय कार्य किया गया।

2. 1882-1947 जिसे हण्टर कमीशन के नाम से जानते हैं जिसमें प्राथमिक व माध्यमिक विद्यालयों के लिए कार्य किया।

3. 1904 इसे शिक्षा नीति सम्बन्धी उपयोगी सरकारी प्रस्ताव कहा जाता हैं।

4. 1908 में लार्ड कर्जन की शिक्षा नीति आई

5. 1913 की शिक्षा प्रणाली को आधुनिक शिक्षा प्रणाली के नाम से जानते है।

6. 1919 में सैडलर कमीशन का गठन हुआ

7. 1929 में हर्टाज समिति प्राथमिक विद्यालयों हेतु कार्य किया

मैकाले मिनिट 1835 बना इसमें शिक्षा के माध्यम पर विचार किया गया। इसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखा गया।

वुड का घोषणा पत्र शिक्षा के क्षेत्र में अहम भूमिका रखता है। वुड का घोषणा पत्र प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयीन शिक्षा में सुधार लाने का प्रयास था।

2.7 अपनी प्रगति की जाँच करें

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. ब्रिटिश शिक्षा की विभाजित किया जाता है
(अ) तीनों कालों में
(ब) चारों कालों में
(स) दोनों कालों में
(द) एक काल में

2. उच्च वर्गो की शिक्षा को महत्व दिया
(अ) बैटिक ने
(ब) एडम्स ने
(स) मैकाले ने
(द) किसी ने नहीं

3. वुड घोषणा पत्र ने सुझाव दिये
(अ) माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु
(ब) प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु
(स) विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार हेतु
(द) उपरोक्त सभी

4. वुड एक्ट समिति का कार्य क्षेत्र था
(अ) व्यवसायिक शिक्षा
(ब) तकनीकी शिक्षा
(स) उपरोक्त दोनो ही
(द) कोई भी नहीं

5. वुड ने शिक्षा में महत्व नहीं दिया
(अ) भारतीय भाषाओं को
(ब) अंग्रजी भाषा को
(स) धर्म की शिक्षा को
(द) उच्च शिक्षा को

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ब्रिटिश काल में शिक्षा के स्वरूप को समझाइए।

2. मैकाले के समय में भारत की शैक्षिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

3. वुड की शिक्षा नीति क्या थी?

2.8. नियत कार्य/गतिविधियाँ

ब्रिटिश कालीन शिक्षा, मैकाले की शिक्षा और वुड की शिक्षा नीति का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इसको चार्ट के रूप में प्रस्तुत करें।

2.9 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में वुड के घोषणा पत्र की प्रासंगिकता पर चर्चा कीजिए।

चर्चा के बिन्दु

....
....
....
....
....
....
....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....
....
....
....
....
....
....

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची/अन्य पठनीय सामग्री

डॉ. सिंह जय, (2014). भारतीय शैक्षिक व्यवस्था का विकास, शिवा प्रकाशन मंदिर आगरा।

अग्रवाल जे.सी., (2013). भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, आर.एस.ए. इन्टरनेशनल आगरा।

त्यागी गुरसरन, (2010). भारत में शिक्षा का विकास अग्रवाल, पब्लिकेशन्स आगरा।

D.El.Ed. 02

खण्ड–2 उपनिवेशवाद के तहत भारत

इकाई–3 : भारत–आजादी की लड़ाई से उद्भव

संरचना

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 ब्रिटिश शासन के दौरान आजादी : उनकी विविधता और प्रकृति
3.4 धार्मिक सुधार आंदोलन
- 3.4.1 राजाराम मोहन रॉय एवं ब्रम्ह समाज
- 3.4.2 केशवचन्द्र सेन और प्रार्थना समाज
- 3.4.3 दयानंद सरस्वती
- 3.4.4 स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण मिशन
- 3.4.5 एनीबेसेंट और थियोसोफिकल सोसायटी
- 3.4.6 मुस्लिम सुधार आंदोलन
- 3.4.7 अलीगढ आंदोलन
- 3.4.8 देवबंद आंदोलन
- 3.4.9 सिख सुधार आंदोलन

3.5 जाति विरोधी आंदोलन
- 3.5.1 जाति प्रथा का विनाश
- 3.5.2 द्रविड़ आंदोलन
- 3.5.3 प्रार्थना समाज
- 3.5.4 ब्रह्म समाज
- 3.5.5 आर्य समाज
- 3.5.6 आत्म सम्मान आंदोलन
- 3.5.7 वारकरी सम्प्रदाय
- 3.5.8 भक्ति आंदोलन

3.6 राष्ट्रीय आंदोलन : विभिन्न धाराएँ – एक संक्षिप्त परिचय
3.7 इकाई सारांश : याद रखने योग्य तथ्य
3.8 नियत कार्य
3.9 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिंदु
3.10 संदर्भ/प्रस्तावित साहित्य

3.1 परिचय–

राष्ट्रीय आंदोलन शब्द के कई अर्थ हो सकते है। इसका उपयोग किसी भी ऐसे राष्ट्रव्यापी संघर्ष के लिए किया जा सकता है। जिसको जनसाधारण देश के कल्याण के हित में आवश्यक समझे। राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्यो के द्वारा जन जीवन में सुधार करना है। परंतु व्यवहार में उपनिवेशों में राष्ट्रीय आंदोलन का अर्थ था विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष। अतः यह एक राजनीतिक प्रक्रिया थी। इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन प्रायः साम्राज्यवाद–विरोधी अथवा विदेशी शासन विरोधी था। उनका मूल ध्येय उपनिवेशों की पूर्ण स्वतंत्रता तथा स्वराज्य था।

राष्ट्रीय आंदोलनों का उद्देश्य एक ही था, फिर भी सभी उपनिवेशों में उनका रूप एक जैसा नहीं था। आंदोलन के प्रकार एवं रूप का निर्धारण भी होता था जिस विदेशी प्रभुत्व के विरूद्ध उन्होंने संघर्ष करना था उसकी प्रकृति कैसी थी। इसी कारण अंग्रेजी साम्रराज्यवाद के विरूद्ध स्वतंत्रता के लिए भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उपाय हालैण्ड के विरूद्ध इंडोनेशिया, अथवा फ्रांस के विरूद्ध हिन्द–चीन के साधनों से भिन्न थे।

3.2 उद्देश्य–

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- राष्ट्रीय आंदोलन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय आंदोलनों की विचारधाराओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- ब्रिटिश शासन के दौरान आजादी, उसकी विविधता और प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे।
- धार्मिक सुधार आंदोलनों की समीक्षा कर सकेंगे।
- जाति विरोधी आंदोलन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय आंदोलन के सामाजिक आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय आंदोलनों के कार्यक्रमों का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 ब्रिटिश शासन के दौरान आजादी : उनकी विविधता और प्रकृति –

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, अपने औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार की तलाश में भारत आई थी। बाद में उसने एक–एक करके देश के लगभग सभी राजाओं को पराजित कर दिया और पूरे भारतीय उपमहाद्वीप पर अपना शासन स्थापित कर लिया। भारत, ब्रिटेन के उपनिवेशों का सरताज बन गया क्योंकि भारत में प्रचुर मात्रा में कच्चा माल और अन्य संसाधन उपलब्ध थे और ब्रिटेन को समृद्ध बनाने के लिए इनका जमकर दोहन किया जाने लगा।

भारत को वे बेहतर ढंग से लूट सके, इसलिए अंग्रेजों ने यहाँ रेल्वे लाईने डाली, संचार को नेटवर्क–जिसमें डाक, टेलिग्राफ व टेलीफोन शामिल था स्थापित किया और आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था की नींव रखी। उन्होंने भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार भी किया ताकि अंग्रेज अधिकारियों को काबिल सहायक मिल सके।

ब्रिटेन का मूल और एकमात्र लक्ष्य भारत को लूटकर इंग्लैण्ड को धनी बनाना था और कानून का शासन व नई संस्थाओं की स्थापना इस प्रयास के सहउत्पाद थे। बाद में अंग्रेजों ने भारत की कुछ भयावह सामाजिक कुप्रथाओं का उन्मूलन करने का प्रयास भी किया, जिनमें सतीप्रथा शामिल थी। ब्रिटेन ने भारत में समाजसुधार की प्रक्रिया को प्रोस्ताहित किया।

औपनिवेशिक – साम्राज्यवादी शासकों द्वारा देश में फूट डालों और राज करों की नीति के बीज बोए गए। इन नीति को उन्होंने पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में लागू किया। सन् 1857 के विद्रोह ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की नींव हिला दी। इस विद्रोह में हिंदुओं और मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया था। अंग्रेजों की समझ में यह आ गया कि अगर उन्हें भारत में अपने शासन को स्थायित्व देना है तो उन्हें हिंदुओं और मुसलमानों के बीच खाई खोदनी होगी।

जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' में भारत के इतिहास को सांप्रदायिक आधार पर तीन कालों में बाँटा– प्राचीन हिंदू काल, मध्यकालीन मुस्लिम काल व आधुनिक ब्रिटिश काल।

इलिएट और डोसन ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाय हर हिस्टोरियन्स' द्वारा इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण को और पुष्ट किया। उन्होंने इतिहास को राजाओं और उनके दरबारियों द्वारा उनके गुणगान तक सीमित कर दिया। इस नीति ने इतिहास को सांप्रदायिक नजरिए से देखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया।

सामाजिक स्तर पर ब्रिटिश शासनकाल में कुछ आधुनिक वर्ग उभरे जिनमें उद्योगपति, औद्योगिक श्रमिक व आधुनिक शिक्षित वर्ग शामिल थे। पुराने सामंती, जमींदारों और राज़ाओं का प्रभाव भी बना रहा यद्यपि उसमें काफी कमी आई। आधुनिक वर्गो ने औपनिवेशिक शासन के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया और गाँधी के नेतृत्व में देश के सभी क्षेत्रों व धर्मों के पुरूषों व महिलाओं ने एक होकर इस आंदोलन में भागीदारी की। इसी आंदोलन ने, औद्योगिकरण व आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देकर, आधुनिक भारत की नींव डाली।

इस आंदोलन ने लोगों को भारतीयता की अवधारणा से परिचित करवाया और जातिगत व लैंगिक रिश्तों को बदला। जातिगत व लैंगिक रिश्तों में बदलाव लाने में ज्योतिराव फुले, भीमराव अंबेडकर व पेरियार रामासामी नाईकर की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

सावित्री बाई फुले ने लड़कियों के लिए शिक्षा के द्वार खोले। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन व अंबेडकर जैसे नेताओं ने भारत को 'निर्माणाधीन राष्ट्र' बनाया।

दूसरी ओर, जमीदारों और राजाओं चाहे वे मुसलमान हो या हिंदु के अस्त होते वर्गों को इन आधुनिक परिवर्तनों से खतरा महसूस होने लगा। लब इन्हें लगा कि जो लोग कभी उनके गुलाम थे, वे उनके चंगुल से बाहर निकलते जा रहे है तो उन्होंने धर्म का झंडा उठा लिया। उन्होंने अंग्रेजों के इतिहास के सांप्रदायिक संस्करण को वैध ठहराना शुरू कर दिया। मुस्लिम श्रेष्ठ वर्ग ने मुस्लिम लीग का गठन कर लिया। मुस्लिम लींग ने 'इस्लाम खतरे में है' का नारा बुलंद करना शुरू कर दिया। उनका कहना था कि आठवीं सदी में सिंघ के हिंदू राजा दाहेर का मोहम्मद-बिन-कासिम द्वारा पराजित किए जाने के साथ ही भारत, मुस्लिम राष्ट्र बनाए रखने के लिए अब उन्हें काम करना है। इसलिए वे स्वाधीनता संग्राम से दूर रहे, जिसका उद्देश्य धर्मनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक भारत का निर्माण था।

हिंदू जमींदारों और राजाओं ने पहले हिंदू महासभा और बाद में आर एस एस का गठन किया। उनका कहना था कि भारत हमेशा से हिंदू राष्ट्र था व मुसलमान व ईसाई विदेशी आक्रांता है। हिंदू महासभा और आर एस एस की स्वाधीनता आंदोलन से दूर रहे और उन्होंने हिंदू राष्ट्र की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाया। वे भी राष्ट्रीय आंदोलन के धर्मनिरपेक्ष प्रजातांत्रिक भारत के निर्माण के लक्ष्य से सहमत नहीं थे। उन्होंने इतिहास के अपने संस्करण का प्रचार करना शुरू कर दिया जिसमें हिंदू राजाओं के शासन काल का महिमामंडन किया गया और मुस्लिम शासकों को विरोधी के रूप में प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे वे हिंदू समाज की सभी बुराईयों के लिए मुस्लिम आक्रांताओं को दोषी ठहराया।

जहाँ राष्ट्रीय आंदोलन ने सभी क्षेत्रों, धर्मो और जातियों की स्त्रियों और पुरूषो को एक किया वहीं सांप्रदायिक धाराएँ, अंग्रेजों द्वारा बोए गए सांप्रदायिकता के पौधे को पालने पोंसने में जुटे रहे। इसी के नतीजे में सांप्रदायिक हिंसा शुरू हुई और बाद में देश का विभाजन हुआ। कुछ देश के नेताओं को विभाजन के लिए दोषी ठहराते है। जबकि विभाजन ब्रिटेन की भारतीय उपमहाद्वीप में अपने हितों को सलामत बनाए रखने के प्रयास का नतीजा था।

ब्रिटिश शासन ने भारत में जो समस्याएँ खड़ी की उनमें से सबसे बड़ी थी, औद्योगिकरण - आधुनिक शिक्षा के कारण बदलते हुए परिदृश्य में भी सामंती वर्गो का वर्चस्व बना रहना। यही कारण है कि जहाँ एक ओर भारतीय उप-महाद्वीप में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों का उदय हुआ, वही जातिगत व लैंगिक पदक्रम की सामंती विचारधारा वाले थे मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा व आर. एस. एस. जैसे संगठन। देश के अस्त होते वर्गो और इन संगठनों ने धर्म आधारित राष्ट्र राज्य की विचारधारा का निर्माण किया जो कि सामंती मूल्यों और राष्ट्र राज्य की आधुनिक अवधारणा का मिश्रण था।

यद्यपि साम्प्रदायिक, राजनीति एक आधुनिक परिघटना है तथापि वह अपनी जड़ों को प्राचीनकाल में तलाश करती है। न तो हिंदू, न ईसाई और ना ही मुसलमान राजा 'धार्मिक राष्ट्रवादी' थे। वे तो केवल कमर तोड़ मेहनत करने वाले किसानों और कारीगरों का खून चूसकर अपनी खजाना भरते है। वे केवल सत्ता और संपदा के पुजारी थे परंतु अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए वे धर्मयुद्ध, जिहाद या क्रूसेड़ का मुखौटा पहन लेते थे।

इस प्रकार स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दो धाराएँ समनांतर रूप से चलती रही। एक ओर थी भारत की निर्माणधीन राष्ट्र की अवधारणा जिसमें औद्योगिकरण, शिक्षा का प्रसार व परिवहन के साधनों और प्रशासन का आधुनिकीकरण शामिल था। दूसरी ओर, मुस्लिम लीग कहती थी कि भारत आठवीं सदी में मुस्लिम राष्ट्र है और हिंदू महासभा और आर एस एस का कहना था कि यह देश हमेशा से हिंदू राष्ट्र है। मुस्लिम लीग के लिए जहाँ वक्त, बादशाओं और नवाबों के जमाने में रूक गया था वही हिंदू महासभा और आर एस एस की राष्ट्र की अवधारणा उस काल से जुड़ी थी जब धुमन्तु पशुपालन समाज, कृषि आधारित समाज में बदल रहा था। इन दोनों ही श्रेणीयों के सांप्रदायिक संगठनों के लिए औद्योगिकरण और आधुनिक शिक्षा का मानों कोई महत्व ही नहीं था।

सांप्रदायिक संगठन अपने अपने धर्मो के राजाओं का महिमामंडन करते नहीं थकते। परंतु यह दिलचस्प है कि इतिहास में कभी किसी राजा ने अपने धर्म के प्रसार के लिए काम किया था।

इसका एकमात्र अपवाद सम्राट अशोक थे, जिन्होंने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए सघन प्रयास किए। आज यह कहना असंभव है कि अगर भारत पर अंग्रेजों ने शासन न किया होता तो उसके इतिहास की धारा किस ओर मुडती परंतु हम यह कह सकते है कि अगर अंग्रेज भारत न आए होते तो आज साम्प्रदायिक राजनीति और राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए धार्मिक पहचान का इस्तेमाल जैसी समस्याओं से हम नहीं जूझ रहे होते।

3.4 धार्मिक सुधार आंदोलन–

3.4.1 राजा राम मोहन रॉय एवं ब्रह्म समाजः– राजा राम मोहन रॉय को भारतीय नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। इनका जन्म 22 मई 1772 को बंगाल के हुगली जिले में स्थित राधानगर में हुआ था।

राजा राम मोहन रॉय पहले भारतीय थे जिन्होंने सर्व प्रथम भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक बुराईयाँ को दूर करने के लिए आंदोलन किया।

- राजा राम मोहन राय मानवतावादी थे, उनकी विश्व बंधुत्व में घोर आस्था थी। ये जीवन की स्वतंत्रता तथा संपति ग्रहण करने के लिए प्राकृतिक अधिकारों के समर्थक थे।

- राजा राम मोहन रॉय ने 1815 में कलकत्ता में आत्मीय सभा की स्थापना करके हिंदू धर्म की बुराईयों पर प्रहार किया। राजा राम मोहन रॉय एकेश्वरवादी थे। उन्होंने इस संस्था के माध्यम से एकेश्वरवाद का प्रचार प्रसार किया।
- सन् 1828 में राजा राम मोहन रॉय ने कोलकाता में ब्रह्म सभा नामक एक संस्था की स्थापना की जिसे बाद में ब्रह्म समाज का नाम दे दिया गया। उन्होंने अपने संगठन ब्रह्म समाज के माध्यम से हिंदू समाज में व्याप्त सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वेश्यागमन, जातिप्रथा आदि बुराईयों के विरोध में संघर्ष किया। विधवा पुनर्विवाह का इन्होंने समर्थन किया। ब्रह्म समाज ने जाति प्रथा पर प्रहार किया तथा स्त्री पुरुष समानता पर बल दिया। धार्मिक क्षेत्र में इन्होंने मूर्तिपूजा की आलोचना करते हुए अपने पक्ष को वेदोक्तियों के माध्यम से सिद्ध करने का प्रयास किया। इनका मुख्य उद्देश्य भारतीयों को वेदांत के सत्य का दर्शन कराना था। राजा राम मोहन रॉय के विचारों से प्रभावित होकर देवेन्द्रनाथ टैगोर ने 1843 में ब्रह्म समाज की सदस्थता ग्रहण की। ब्रह्म समाज में शामिल होने से पूर्व देवेन्द्र नाथ टैगोर ने तत्वबोधिनी सभा (1839) का गठन किया था। 1857 में केशवचंद्र सेन ब्रह्म समाज के आचार्य नियुक्त किए गए। केशवचन्द्र सेन के प्रयत्नों से ब्रह्म समाज में एक अखिल भारतीय आंदोलन का रूप ले लिया। राजा राम मोहन राय ने संवाद कौमुदी और निरात उल अखबार प्रकाशित कर भारत में पत्रकारिता की नींव डाली।

संवाद कौमुदी शायद भारतीयों द्वारा संपादित, प्रकाशित तथा संकलित प्रथम भारतीय समाज पत्र था। राजा राम मोहन रॉय ने ईसाई धर्म का अध्ययन करके ईसाई धर्म पर एक पुस्तक की रचना की, जिसका नाम प्रिसेप्ट ऑफ जीसस था। राजा राम मोहन राय ने धर्म, समाज, शिक्षा आदि के क्षेत्र में सुधार के साथ ही राजनीतिक जागरण, शिक्षा, आदि के क्षेत्र में सुधार के साथ ही राजनीतिक जागरण का भी प्रयास किया। उनका कहना था कि स्वतंत्रता मनुष्य का अमूल्य धन है। वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ राजनीतिक स्वतंत्रता के भी हिमायती थे।

3.4.2 केशवचंद्र सेन और प्रार्थना समाज– केशवचंद्र सेन की प्रेरणा से मुंबई में 1867 में आत्माराम पांडुरंग ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। प्रार्थना समाज ने बाल विवाह, विधवा विवाह का निषेध, जातिगत संकीर्णता के आधार पर सजातीय विवाह, स्त्रियों की उपेक्षा, विदेशी यात्रा का निषेध किया।

3.4.3 दयानंद सरस्वती और आर्य समाज – आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती थे, इन्होंने 1875 में बंबई में आर्य समाज की स्थापना की तथा वैदिक समाज

से बहुत प्रभावित थे एक ईश्वर में विश्वास करते थे। मूर्तिपूजा पुरोहितवाद तथा कर्मकांडों का विरोध करते थे, इसलिए उन्होंने वेदों की ओर लौटों का नारा दिया। दयानंद सरस्वती ने जाति व्यवस्था, बाल विवाह, समुद्री यात्रा निषेध के विरूद्ध आवाज बुलंद की तथा स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह आदि को प्रोत्साहित किया। स्वामी दयानंद ने शुद्धि आंदोलन चलाया। इस आंदोलन ने उन लोगों के लिए हिंदू धर्म के दरवाजे खोल दिए जिन्होंने हिंदू धर्म का परित्याग कर दूसरे धर्मों को अपना लिया था।

आर्य समाज की स्थापना का मूल उद्देश्य देश में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक बुराइयाँ को दूर कर वैदिक धर्म की पुनः स्थापना कर भारत को सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक रूप से एक सूत्र में बाँधना था। स्वामी दयानंद ने शूद्रों तथा स्त्रियों को वेद पढ़ने, ऊँची शिक्षा प्राप्त करने तथा यज्ञोपवीत धारण करने के पक्ष में आंदोलन किया।

3.4.4 स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण मिशन– स्वामी विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना 1897 में अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में की थी। रामकृष्ण मूर्तिपूजा में विश्वास रखते थे और उसे शाश्वत, सर्वशक्तिमान ईश्वर को प्राप्त करने का साधन मानते थे। सितंबर 1893 में अमेरिका के शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानंद ने भारत का नेतृत्व किया। सुभाष चंद्र बोस ने स्वामी विवेकानंद को आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन का आध्यात्मिक पिता कहा था। विवेकानंद ने कोई राजनीतिक संदेश नहीं दिया था। परंतु फिर भी उन्होंने अपने लेखो तथा भाषणों के द्वारा नई पीढ़ी में राष्ट्रीयता और आत्मगौरव की भावना का संचार किया। वलेंटाइन शिरोल ने विवेकानंद के उद्देश्यों को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख कारण माना।

3.4.5 एनी बेसेंट और थियोसोफिकल सोसायटी– थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना 1875 में मैडम एच.पी ब्लावेट्स्की और हेनरी स्टील आलकॉट द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका में की गई थी। इस सोसाइटी ने हिंदू धर्म को विश्व का सर्वाधिक आध्यात्मिक धर्म माना।

प्रमुख धार्मिक संस्थाएँ और आंदोलन–

- शिवदयाल साहिब ने 1861 में आगरा में राधा स्वामी आंदोलन चलाया।
- 1887 में शिव नारायण अग्निहोत्री ने लाहौर में देव समाज की स्थापना की।
- भारतीय सेवा समाज की स्थापना 1851 में समाज सुधार के उद्देश्य से गोपाल कृ ष्ण गोखले ने की।
- श्री नारायण गुरू के नेतृत्व में केरल के बायकोम मंदिर में अधूतों के प्रवेश हेतु एक आंदोलन हुआ था।

- बी.आर. अंबेड़कर ने 1924 में अखिल भारतीय दलित वर्ग की स्थापना की तथा 1927 में बहिष्कृत भारत नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया।
- महात्मा गाँधी ने छुआछूत के विरोध के लिए 1932 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना की।
- अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की स्थापना बी.आर. अंबेडकर ने 1942 में की।

3.4.6 मुस्लिम सुधार आंदोलन– अहमदिया आंदोलन

अहमदिया आंदोलन का आरंभ 1889–90 में मिर्जा गुलाम अहमद ने फरीदकोट में किया। गुलाम अहमद हिंदू सुधार आंदोलन थियोसोफी और पश्चिमी उदारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित तथा सभी धर्मों पर आधारित एक अंतर्राष्ट्रीय धर्म की स्थापना की कल्पना करते थे। अहमदिया आंदोलन का उद्देश्य मुसलमानों में आधुनिक बौद्धिक विकास का प्रचार करना था। मिर्जा गुलाम अहमद ने हिंदु देवता कृष्ण और ईसा मसीह का अवतार होने का दावा किया।

3.4.7 अलीगढ़ आंदोलन–

सर सैय्यद अहमद द्वारा चलाए गए आंदोलन को अलीगढ़ आंदोलन के नाम से जाना जाता है। सर सैयद अहमद मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 1865 में अलीगढ़ में मोहम्मडन एंग्लो–ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की जो 1890 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बन गया। अलीगढ़ आंदोलन ने मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रसार किया तथा कुरान की उदार व्याख्या की। इस आंदोलन के माध्यम से सर सैयद अहमद ने मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया।

3.4.8 देवबंद आंदोलन

यह रूढ़िवादी मुस्लिम नेताओं द्वारा चलाया गया आंदोलन था, जिसका उद्देश्य विदेशी शासन का विरोध तथा मुसलमानों में कुरान की शिक्षाओं का प्रचार करना था। मोहम्मद कासिम ननौतवी तथा रशीद अहमद गंगोही ने 1867 में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर में इस आंदोलन की स्थापना की। यह अलीगढ़ आंदोलन का विरोधी था। देवबंद आंदोलन ने नेताओं में शिवलीनुमानी, फारसी और अरबी के प्रसिद्ध विद्वान व लेखक थे। शिबलीनुमानी ने लखनऊ में नदवतल उलेमा तथा दार–उल–उलूम की स्थापना की। देवबंद के नेता भारत

में अंग्रेजी शासन के विरोधी थे। यह आंदोलन पाश्चात्य और अंग्रेजी शिक्षा का भी विरोध करता था।

3.4.9 सिख सुधार आंदोलन

हिंदू और मुसलमानों की तरह सिक्खों में भी सुधार आंदोलन हुए। सिक्खों के प्रबुद्ध लोगों पर पश्चिम के विकासशील और तर्कसंगत विचारों का प्रभाव पड़ा। 19वीं सदी में सिक्खों की संस्था सरीन सभा की स्थापना हुई। पंजाब का कूका आंदोलन सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों से संबंधित था।

जवाहर मल और रामसिंह ने कूका आंदोलन का नेतृत्व किया। अमुतसर में सिंह सभा आंदोलन चलाया गया। अकाली आंदोलन द्वारा 1921 में गुरूद्वारों के महंतों के विरूद्ध अहिंसात्मक आंदोलन का सूत्रपात्र हुआ। इस आंदोलन में सिख गुरूद्वारा अधिनियम पारित किया गया, जो आज तक कार्यरत है।

3.5 जाति विरोधी आंदोलन

3.5.1 जाति प्रथा का विनाश – डॉ भीमराव आंबेडकर द्वारा लिखे गये श्रेष्ठतम एवं प्रसिद्ध ग्रंथों में एक है। इसका प्रकाशन वर्ष 1936 में हुआ। इसमें तत्कालीन जाति व्यवस्था का घोर विरोध किया एवं उस समय के धार्मिक नेताओं का भी विरोध किया गया। यह एक ऐसा भाषण है जिसको सार्वजनिक रूप से पढ़ने का मौका उन्हें नहीं मिला।

भाषण लाहौर के जात पात तोड़क मंडल की ओर से उनकी वार्षिक कान्फ्रेंस में उनकों मुख्य भाषण करने के लिए न्यौता मिलने के बाद लिखा गया था। जब डॉक्टर साहब ने अपने प्रस्तावित भाषण को लिखकर भेजा तो ब्राह्यणों के प्रभुत्व वाले जात पात तोड़क मंडल के कर्ताधर्ता, काफी बहस के बाद भी यह भाषण सुनने को तैयार नहीं हुए। शर्त लगा दी कि भाषण में आयोजकों की मर्जी के हिसाब से बदलाव किया जाए। अम्बेड़कर ने भाषण बदलने से मना कर दिया और उस सामग्री को पुस्तक के रूप में मई 1936 को खुद छपवा दिया।

3.5.2 द्रविड़ आंदोलन– द्रविड़ आंदोलन की शुरूआत 1916 में मद्रास में जस्टिस पार्टी की स्थापना से हुई मानी जाती है। जस्टिस पार्टी अथवा दक्षिण भारतीय लिबरल फेडरेशन के नाम से जानी जाने वाली इस पार्टी के संस्थापक टी.एम. नायर और पी. व्यागराज चेट्टि थे। 1939 में ई वी के रामास्वामी 'पेरियार' इस दल के अध्यक्ष बने और 1944 में उन्होंने इसे द्रविड़ कज़गम नाम देकर चुनावों से अलग कर लिया और सामाजिक

आंदोलन का रूप दिया। बाद में पेरियार के सहयोगी सीएन अन्नादुरै ने इस दल से अलग होकर 17 सितंबर 1949 में द्रविड़ मुनेत्र कडगम (डीएमके) की स्थापना की।

3.5.3 प्रार्थना समाज– प्रार्थना समाज भारतीय नवजागरण के दौर में धार्मिक और सामाजिक सुधारों के लिए स्थापित समुदाय है। इसकी स्थापना आत्माराम पांडुरंग तथा महादेव गोविन्द रानाडे ने बंबई में 31 मार्च 1867 को की।

प्रार्थना समाज के मुख्य नियम और सिद्धांत निम्नलिखित हैः–

- ईश्वर ही इस ब्रह्यांड का रचयिता है।
- ईश्वर की आराधना से ही संसार और दूसरे संसार में सुख प्राप्त हो सकता है।
- ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा, उसमें अनन्य आस्था–प्रेम, श्रद्धा और आस्था की भावनाओं सहित आध्यात्मिक रूप से उसकी प्रार्थना और उसका कीर्तन, ईश्वर को अच्छे लगने वाले कार्यो को करना – यह ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। मूर्तियों अथवा अन्य मानव सृजित वस्तुओं की पूजा करना, ईश्वर की आराधना का सच्चा मार्ग नहीं है।
- ईश्वर अवतार नहीं लेता और कोई भी एक पुस्तक ऐसी नहीं है, जिसे स्वयं ईश्वर ने रचा अथवा प्रकाशित किया हो अथवा जो पूर्णतः दोष–रहित हो।

विचार धारा– प्रार्थना समाज का उद्देश्य प्रार्थना और सेवा द्वारा ईश्वर की पूजा करना था। ब्रह्य समाज की भाँति उपनिषदों और भगवद गीता की शिक्षाएँ उद्देश्य के आधार है किंतु एक बात में यह ब्रह्य समाज से भिन्न है, इसमें भारत के, विशेषतः महाराष्ट्र के, मध्यकालीन संतो–ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम की शिक्षाओं को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इतिहास– प्रार्थना समाज की पृष्ठभूमि 19वीं शताब्दी के प्रारंभ अथवा उससे भी पहले 18वीं शताब्दी में हुई कई घटनाओं से बन चुकी थी। अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश और ईसाई मिशनरियों के कार्य ये दो घटनाएँ उस पृष्ठभूमि के निर्माण में विशेष सहायक बने। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से शिक्षित भारतीयो में अपने सामाजिक और आर्थिक विश्वासों तथा रीति रिवाजों के दोषों और त्रुटियों के प्रति चेतना जगी। ईसाई मिशनरियों ने अनेकानेक लोग जिनमें विशेष रूप से हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करके उन्हें ईसाई बना लिया। इससे भी लोगों की आँखे खुल गई। फिर मिशनरियों ने अपनी कठोर प्रहारी आलोचना द्वारा भी धर्म परिवर्तन के अनिच्छुक लोगों के विचारों में बड़ा परिवर्तन ला दिया। हिंदू दर्शन के उन नेताओं ने जो इन तत्वों के प्रभाव का अनुभव कर रहे थे और

नवीन ज्ञान से भी परिचित हो रहे थे, सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर हिंदू समाज के बौद्धिक और आध्यात्मिक पुनरूत्थान के कार्य का आरंभ किया। हिंदू विचारधारा के इन्ही नेताओं में से कुछ ने प्रार्थना समाज की स्थापना प्रार्थना समाज के आंदोलन ने राजा राम मोहन राय द्वारा बंगाल में स्थापित ब्रह्मसमाज (1828) से प्रेरणा ग्रहण की और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के स्वस्थ्य सुधार के लिए अपनी सारी शक्ति धार्मिक शिक्षा के प्रचार में अर्पित कर दी। बंबई के पश्चात् धीरे-धीरे इसका विस्तार पुणे, अहमदाबाद, सतारा और अहमदनगर आदि स्थानों में भी हुआ।

प्रार्थना समाज के प्रमुख प्रकाश स्तंभों में आत्माराम पांडुरंग, वासुदेव बाबाजी नौरंगे, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, महादेव गोविन्द रानडे, वामन अबाजी मोदक और नारायण गणेश चंदावरकर थे। प्रार्थना समाज के आचोलकों द्वारा किए गए असत्य प्रचार को मिटाने के लिए इन नेताओं को बहुत संघर्ष करना पड़ा। असत्य प्रचार के अंतर्गत यह कहा जाता था कि प्रार्थना समाज ईसाई धर्म के अनुकरण पर आधारित है और यह देश के प्राचीन धर्म के विरूद्ध है।

कार्य- प्रार्थना समाज ने रानाडे के नेतृत्व में जाति प्रथा, बाल विवाह, मूर्ति पूजा तथा हिंदू समाज की अन्य कुरीतियों के विरूद्ध आंदोलन किया। उसने 19वीं शताब्दी के नवे दशक में नारी जागरण की योजनाओं का आरंभ किया। आर्य महिला समाज की स्थापना (1882) उन्हीं योजनाओं का फल है।

1878 में प्रार्थना समाज द्वारा स्थापित पहला रात्रि विद्यालय जनशिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में अग्रेणी रहा। वासुदेव बाबाजी नौरंगे बालकाश्रम की स्थापना लालशंकर उमाशंकर द्वारा पंढ़रपुर में 1875 में हुई। यह बालकाश्रम में प्रार्थना समाज के संरक्षण में आ गया। यह अपने ढंग की सर्वाधिक प्राचीन और बड़ी संस्था है और यह 1975 में अपनी शताब्दी पूरी कर चुकी है। प्रार्थना समाज के संरक्षण में दो बालकाश्रम और चलते है- एक विले पार्ले (बंबई) में डी.एन. सिरूर होम और दूसरा सतारा जिले के वाई नामक स्थान में है।

"दि डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी ऑफ इंडिया" नाम की संस्था, जो अधूतोद्धार के लिए प्रसिद्ध है, प्रार्थना समाज के एक कार्यकर्ता विठ्ठल रामजी शिंदे द्वारा स्थापित हुई।

1917 में प्रार्थना समाज ने राम मोहन अंग्रेजी विद्यालय की स्थापना की। अब इसके संरक्षण में दस से अधिक विद्यालय बंबई और उसके आस पास चल रहे थे।

3.5.4 ब्रह्म समाज- भारत का एक सामाजिक-धार्मिक आंदोलन था जिसने बंगाल के पुनर्जागरण युग को प्रभावित किया। इसके प्रवर्तक, राजा राम मोहन राय, अपने समय के विशिष्ट समाज सुधारक थे। 1828 में ब्रह्म समाज के नाम से जाना गया। देवेन्द्रनाथ

ठाकुर ने उसे आगे बढ़ाया। बाद में केशवचंद्र सेन जुड़े। उन दोनों के बीच मतभेद के कारण केशवचंद्र सेन ने सन् 1866 "भारत वर्षीय ब्रह्म समाज" नाम की संस्था की स्थापना की।

सिद्धांत–

- ईश्वर एक है और वह संसार का निर्माणकर्त्ता है।
- आत्मा अमर है।
- मनुष्य को अहिंसा अपनाना चाहिए।
- सभी मानव समान है।

उद्देश्य–

- हिंदू धर्म की कुरीतियों को दूर करते हुए, बौद्धिक एवं तार्किक जीवन पर बल देना।
- एकेश्वरवाद पर बल।
- सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करना।

कार्य–

- उपनिषद एवं वेदों की महत्ता को सबके सामने लाया।
- समाज में व्याप्त सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह के विरोध में जोरदार संघर्ष।
- किसानों, मजदूरों, श्रमिकों के हित में बोलना।
- पाश्चात्य दर्शन के बेहतरीन तत्वों को अपनाने की कोशिश करना।

उपलब्धि–

- 1829 में विलियम बेंटिक ने कानून बनाकर सती प्रथा को अवैध घोषित किया।
- समाज में काफी हद तक सुधार आया।
- समाज में जाति, धर्म इत्यादि पर आधारित भेदभाव पर काफी हद तक कमी आई।

3.5.5 आर्य समाज (वैदिक समाज)–

आर्य समाज एक हिन्दू सुधार आंदोलन है जिसकी स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 में बंबई में मथुरा के स्वामी विरजानंद की प्रेरणा से की थी। यह आंदोलन पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदू धर्म में सुधार के लिए प्रारंभ हुआ था। आर्य

समाज में शुद्ध वैदिक परंपरा में विश्वास करते थे तथा मूर्ति पूजा, अवतारवाद, बलि, झूठे कर्मकाण्ड व अंधविश्वासों को अस्वीकार करते थे। इसमें छुआछूत व जातिगत भेदभाव का विरोध किया तथा स्त्रियों व शूद्रो को भी यज्ञोपवीत धारण करने व वेद पढ़ने का अधिकार दिया था। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा रचित सत्यार्थ प्रकाश नामक ग्रंथ आर्य समाज का मूल ग्रंथ है। आर्य समाज का आदर्श वाक्य है : कृण्वन्तो विश्वमार्यम् जिसका अर्थ है- विश्व को आर्य बनाते चलो।

आर्य समाज के संस्थापक - स्वामी दयानंद सरस्वती

आर्य समाज का सिद्धांत - आर्य शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ और प्रगतिशील। अतः आर्य समाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ और प्रगतिशीलों का समाज, जो वेदों के अनुकूल चलने का प्रयास करते है। दूसरों का उस पर चलने को प्रेरित करते है। आर्य समाजियों के आदर्श मर्यादा पुरूषोत्तम राम और योगिराज कृष्ण है। महर्षि दयानंद ने उसी वेद मत को फिर से स्थापित करने के लिए आर्य समाज की नींव रखी। आर्य समाज के सब सिद्धांत और नियम वेदों पर आधारित है। आर्य समाज की मान्यताओं के अनुसार फलित ज्योतिष, जादू-टोना, जन्मपत्री, श्राद्ध, तर्पण, व्रत, भूत-प्रेत, देवी जागरण, मूर्ति पूजा और तीर्थ यात्रा मनगढ़ंत है, वेद विरूद्ध है। आर्य समाज सच्चे ईश्वर की पूजा करने को कहता है, यह ईश्वर वायु और आकाश की तरह सर्वव्यापी है, वह अवतार नही लेता, वह सब मनुष्यों को उनके कर्मानुसार फल देता है, अगला जन्म देता है, उसका ध्यान घर में किसी भी एकांत में हो सकता हैं

इसके अनुसार दैनिक यज्ञ करना हर आर्य का कर्त्तव्य है। परमाणुओं को न कोई बना सकता है, न उसके टुकड़े ही हो सकते है। यानी वह अनादि काल से है। उसी तरह एक परमात्मा और हम जीवात्माएँ भी अनादि काल से है। परमात्मा परमाणुओं को गति दे कर सृष्टि रचता है। आत्माओं को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। फिर चार ऋषियों के मन में 20,378 वेदमंत्रों का अर्थ सहित ज्ञान और अपना परिचय देता है।

सत्यार्थ प्रकाश आर्य समाज का मूल ग्रंथ है। अन्य माननीय ग्रंथ है- वेद, उपनिषद, षड्दर्शन, गीता व वाल्मीकी रामायण इत्यादि। महर्षि दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में इन सबका सार दे दिया है। 18 घंटे समाधि में रहने वाले योगिराज दयानंद ने लगभग आठ हजार किताबों का मंथन कर अद्भुत और क्रांतिकारी सत्यार्थ प्रकाश की रचना की।

मान्यताएँ - ईश्वर का सर्वोत्तम और निज नाम ओम् है। उसमें अनंत गुण होने के कारण उसके ब्रह्मा, महेश, विष्णु, गणेश, देवी, अग्नि, शनि वगैरह अनंत नाम है। इनकी अलग-अलग नामों से मूर्ति पूजा ठीक नहीं है। आर्य समाज वर्ण व्यवस्था यानी ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र को कर्म से मानता है, जन्म से नहीं। आर्य समाज स्वदेशी, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वधर्म का पोषाक है।

आर्य समाज सृष्टि की उत्पत्ति का समय चार अरब 32 करोड़ वर्ष और इतना ही समय प्रलय काल का मानता है। योग से प्राप्त मुक्ति का समय वेदों के अनुसार 31नील 10 खरब 40 अरब यानी एक परांत काल मानता है। आर्य समाज वसुवैध कुटुंबकम् को मानता है। लेकिन भूमंडलीकरण को देश, समाज और संस्कृत के लिए घातक मानता है। आर्य समाज वैदिक समाज रचना के निर्माण व आर्य चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। इस समाज में मांस, अंडे, बीडी, सिगरेट, शराब, चाय, मिर्च-मसाले वगैरह वेद विरुद्ध होते है।

आर्य समाज के दस नियम

(1) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(2) ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करने योग्य है।

(3) वेब सब सत्यविधाओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।

(4) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(5) सब काम धर्मानुसार, अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

(6) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(9) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(10) सब मनुष्यों को सामाजिक 'सर्वहितकारी' नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में स्वतंत्र रहे।

शिक्षा का प्रसार

स्वामी दयानंद के मूलमंत्र था कि जनता का विकास और प्रगति सुनिश्चित करने और उसके अस्तित्व की रक्षा करने का सर्वोत्तम साधन शिक्षा है। इसी मंत्र को गाँठ में बाँध कर आर्य समाज ने कार्य किया। आर्य समाज ने इस तथ्य को आत्मसात कर लिया था कि शिक्षा की जड़े राष्ट्रीय भावना और परंपरा में गहरी जमी होनी चाहिए। हम एक

प्राचीन और श्रेष्ठ परंपरा के उत्तराधिकारी है। हमारी शिक्षा में भारतीय नीतिशास्त्र और दर्शन को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होगा। शिक्षा के क्षेत्र में गुरूकुल व डीएवी कॉलेज स्थापित कर शिक्षा जगत में आर्य समाज ने अग्रणी भूमिका निभाई। स्त्री शिक्षा में आर्य समाज का उल्लेखनीय योगदान रहा। 1885 के प्रारंभ तक आर्य समाज की अमृतसर शाखा ने दो महिला विद्यालयों की स्थापना की घोषणा की थी तथा तीसरा कटरा डुला में प्रस्तावित था। 1880 के दौरान लाहौर आर्य समाज महिला शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी बना हुआ था। 1889 ई में फिरोजपुर आर्य समाज ने एक कन्या विद्यालय स्थापित किया था।

3.5.6 आत्म सम्मान आंदोलन–

यह वर्ष 1920 में ई.वी. रामास्वामी नायकर द्वारा दक्षिण भारत में प्रारंभ किया गया था।

ई.वी. रामास्वामी नायकर जो कि 'पेरियार' के नाम से प्रसिद्ध थे, ने इसकी शुरूआत की थी। इन्होंने हरिजनों को सहयोग दिया और वायकोम सत्याग्रह का नेतृत्व किया।

रामास्वामी नायकर ने मनु धर्म शास्त्रों और रामायण को जलाने की वकालत की। हिन्दू रूढ़िवादिता का खण्डन किया। वर्ष 1925 में नायकर में अपना एक समाचार पत्र 'कुदी–अरासु' निकाला और एक उग्र समाज सुधारक के रूप में जाने गए। नायकर पेरियार ने धर्म के साथ–साथ ब्राह्मणों के आधिपत्य और जाति प्रथा पर भी आक्रमण किया। विधवा विवाह जैस मुद्दों पर बल दिया।

'आत्म सम्मान लीग' सन् 1944 में 'जस्टिस' पार्टी के साथ मिलकर 'द्रविड़कड़गम' बनी।

आर्य समाज और भारत का नवजागरण

आर्य समाज ने भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसके अनुयायियों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़–चढ़ कर भाग लिया।

आर्य समाज के प्रभाव से ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर स्वदेशी आंदोलन आरंभ हुआ था। स्वामीजी आधुनिक भारत के धार्मिक नेताओं में प्रथम महापुरूष थे जिन्होंने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया।

आर्य समाज ने हिन्दू धर्म में एक नयी चेतना का आरंभ किया था। स्वतंत्रता पूर्व काल में हिंदू समाज के नवजागरण और पुनरूत्थान आंदोलन के रूप में आर्य समाज सर्वाधिक शक्तिशाली आंदोलन था। यह पूरे पश्चिम और उत्तर भारत में सक्रिय था तथा सुप्त हिंदू जाति को जागृत करने में संलग्न था। यहाँ तक कि आर्य समाजी प्रचारक

फिजी, मारीशस, गयाना, ट्रिनिडाड, दक्षिण अफ्रीका में भी हिंदूओं को संगठित करने के उद्देश्य से पहुँच रहे थे। आर्य समाजियों ने सबसे बड़ा कार्य जाति व्यवस्था को तोड़ने और सभी हिंदुओं में समानता का भाव जागृत करने का किया।

समाज सुधार

भारत को जिस तरह ब्रिटिश सरकार का आर्थिक उपनिवेश और बाद में राजनीतिक उपनिवेश बना दिया गया था, उसके विरूद्ध भारतीयों की ओर से तीव्र प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। चूँकि भारत धीरे–धीरे पश्चिमी विचारों की ओर बढ़ने लगा था, अतः प्रतिक्रिया सामाजिक क्षेत्र से आना स्वभाविक कार्य थी। यह प्रतिक्रिया 19वीं शताब्दी में उठ खड़े हुए सामाजिक सुधार आंदोलनों के रूप में सामने आई।

ऐसे ही समाज सुधार आंदोलन में आर्य समाज का नाम आता है। आर्य समाज ने विदेशी जुआ उतार फेंकने के लिए, समाज में स्वयं आंतरिक सुधार करके अपना कार्य किया। इसने आधुनिक भारत में प्रारंभ हुए पुर्नजागरण को नई दिशा दी। साथ ही भारतीयों में भारतीयता को अपनाने, प्राचीन संस्कृति को मौलिक रूप में स्वीकार करने, पश्चिमी प्रभाव को विशुद्ध भारतीयता यानी “वेदों की और लौटो” के नारे के साथ समाप्त करने तथा सभी भारतीयों को एकताबद्ध करने के लिए प्रेरित किया।

3.5.7 वारकरी सम्प्रदाय–

वारकरी हिन्दु धर्म की अध्यात्मिक परंपरा है, महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक जैसी भारतीय राज्यों से जुड़ा हुआ है।

भगवान श्री विट्ठल के भक्त को वारकरी कहते है तथा इस संप्रदाय को वारकरी सम्प्रदाय कहा जाता है।

‘वारकरी’ शब्द में ‘वारी’ शब्द अंतर्भूत है। वारी का अर्थ है यात्रा करना, फेरे लगाना। जो अपने आस्था स्थान की भक्तिपूर्ण यात्रा पुनः पुनः करता है, उसे वारकरी कहते है। सामान्यतः उनकी वेशभूषा इस प्रकार होती हैः धोती, अंगरखा, उपरना तथा टोपी। इसी के साथ कंधे पर भगवा रंग का ध्वजा, गले में तुलसी की माला, हाथ में वीणा तथा मुख में हरि का नाम लेते हुए वह वारी के लिए निकलता है। वारकरी मस्तक, गले, छाती, छाती के दोनों ओर, दोनों भुजाएँ, कान एवं पेट पर चन्दन लगाता है।

वारकरी संप्रदाय का उद्भव दक्षिण भारत के ‘पंढ़रपुर’ नामक स्थान पर विक्रम संवत की तेरहवी शताब्दी में हुआ था।

वारकरी का अर्थ है कि 'वारी' तथा 'केरी' अर्थात 'परिक्रमा करने वाला'। इस संप्रदाय के प्रवर्तकों में संत ज्ञानेश्वर का स्थान महत्वपूर्ण है। उन्होंने ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव नाम के दो महत्वपूर्ण ग्रंथो की रचना कर वारकरी संप्रदाय के सिद्धांतों को स्पष्ट कर दिया था। इस संप्रदाय में 'पंचदेवों' की पूजा की जाती है।

संत परंपरा– ऐसा माना जाता है कि ज्ञानेश्वर 'कश्मीरी शैव सम्प्रदाय' के 'शिवसूत्र' से प्रत्यक्षतः प्रभावित थे। उनकी योग–साधना का प्रभाव भी संत ज्ञानेश्वर पर पड़ा था। संभवतः इसी कारण उन्होंने शंकराचार्य के 'मायावाद' का खण्डन भी किया। ज्ञानेश्वर ने निराकार परमात्मा की भक्ति का प्रतिपादन उद्वैतवाद की भावना के अनुसार किया। उनके शिष्यों में संत नामदेव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनकी अनेक रचनाएँ हिन्दी भाषा में भी उपलब्ध है और जिन्होंने ज्ञानेश्वर की तीर्थ यात्राओं का वर्णन 'तर्थावली' में किया है। इस संप्रदाय में संत एकनाथ तथा संत तुकाराम जैसे संत भी हुए है। इन्होंने संतों ने इस मत का प्रचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। आगे चलकर यह संप्रदाय 'चैतन्य सम्प्रदाय','स्वरूप सम्प्रदाय', 'आनन्द सम्प्रदाय तथा 'प्रकाश सम्प्रदाय' जैसी शाखाओं के माध्यम से अपने सिद्धांतों का प्रचार करने लगा।

इष्टदेव – वारकरी सम्प्रदाय में पंचदेवों की पूजा का विधान है, किन्तु इनके प्रधान इष्टदेव 'विट्ठल' भगवान है, जो श्रीकृष्ण के प्रतीक है। यद्यपि इस सम्प्रदाय में ब्रह्या को निर्गुण माना गया है, निर्गुण की अद्वैत भक्ति के लिए इसके अनुयायी ब्रह्या के सगुण रूप को भी एक साधन मानते है।

3.5.8 भक्ति आंदोलन – भक्ति आंदोलन मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक–धार्मिक सुधारकों की धारा द्वारा समाज विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार प्रसार किया गया। यह एक मौन क्रान्ति थी।

यह अभियान सिक्खों के पहले गुरू बाबा नानक द्वारा भारतीय उप महाद्वीप में भगवान की पूजा के साथ जुड़े रीति रिवाजों के लिए उत्तरदायी था। गुरूद्वारे में गुरूबानी का गायन, ये सभी मध्यकालीन इतिहास में (800–1700) भारतीय भक्ति आंदोलन से उत्पन्न हुए है।

प्रभाव –

- भक्ति आंदोलन के द्वारा हिन्दू धर्म में इस्लाम के प्रचार, जोर जबरजस्ती एवं राजनैतिक हस्तक्षेप का कड़ा मुकाबला किया।
- इसका इस्लाम पर भी प्रभाव पड़ा।

भक्ति आंदोलन की कुछ विशेषताएँ –

- यह आंदोलन न्यूनाधिक पूरे दक्षिणी एशिया (भारतीय उपमहाद्वीप) में फैला हुआ था।
- यह लंबे काल तक चला।
- इसमें समाज के सभी वर्गों (निम्न जातियाँ, उच्च जातियाँ, स्त्री–पुरुष, सनातनी, सिख, मुसलमान आदि) का प्रतिनिधित्व रहा।

3.6 राष्ट्रीय आंदोलन : विभिन्न धाराएँ – विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलन की कोई न कोई विचारधारा होती है, कुछ कार्यक्रम होते है, तथा स्पष्ट सामाजिक आधार होता है।

राष्ट्रीय आंदोलन की उत्पत्ति के कारण–

उपनिवेशों में पश्चिमी शासक देशों के लोगों को लोक प्रशंसनीय सेवाओं और व्यापार में श्रेष्ठ एवं उच्च वेतन वाले पद प्राप्त हुए थे, जबकि शिक्षित स्थानीय व्यक्तियों को निम्नस्तरीय पद ही प्राप्त होते थे। कभी–कभी तो वे नौकरियों से वंचित भी रह जाते थे। विशाल मुनाफे की धन राशि स्थानीय विकास के लिए व्यय नहीं की जाती थी। वह तो शासक देशो तथा उनकी कम्पनियों के पास चला जाता था। बहुधा विदेशी शोषण कर्त्ता स्थानीय भूमि को बहुत ही सस्ते दामों में खरीद लेते थे, या फिर उन पर स्थानीय कृ षकों से मुफ्त में खेती करवाते थे। इस सबका अर्थ यह था कि उपनिवेशों के स्थानीय लोगो का जीवन स्तर बहुत ही नीचा था, चाहे वह पहले से बेहतर भले ही हो। यदि औपनिवेशिक शासक चाहते तो यह जीवन स्तर काफी ऊँचा हो सकता है। अधिकांश एशियाई और अफ्रीका लोग निर्धन थे। उनमें से अनेक तो प्रायः भुखमरी के शिकार हो जाते थे। इसका एक परिणाम यह भी हुआ था कि उपनिवेशों के लोग, यूरोपवासियों की तुलना में अधिक बीमार रहते थे, तथा अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो जाती थी। संभव था कि स्थानीय लोगों को अपनी दुर्दशा का ज्ञान न हो कि उनका जीवन बर्बर तथा अलपकालीन था। इसीलिए बहुधा उन्होंने विद्रोह नहीं किए। परंतु, उनकी आँखों के सामने यूरोपीय उदाहरण थे, तथा धीरे–धीरे अधिकाधिक लोगों को यह अनुभव होने लगा कि उनके साथ कितना अन्याय हो रहा था। उन्होंने भी सुंदर और सुखद जीवन के स्वप्न देखने आरंभ कर दिए।

3.6.1 हीनता की भावना–

पश्चिमी शासक देशों के लोग एशिया एवं अफ्रिका के निवासियों को बराबर यह जताते थे कि वे हीन थे, क्योकि वे अश्वेत वर्ग के थे, उनकी जाति तथा सभ्यता भी हीन थी।

ऐसी भावना विशेषकर अफ्रीका के कृष्ण वर्ग के लोगों में उत्पन्न की गई थी। उनमें से अनेक लोगों के पूर्वजों को विदेशियों ने पकड़कर गुलाम बना लिया था। दासत्व ने हीनता को गहरा धब्बा लगा दिया था। उसी प्रकार एशिया के पीले और गेंहुआ वर्ण के लोगों को भी पिछड़ा हुआ माना जाता था। ऐसा प्रचार किया जाता था कि न तो उनकी योग्यता में सुधार हो सकता है और न वे अपना शासन चलाने में सक्षम थे। उनको अच्छे नौकर या श्रमिक अवश्य माना जाता था परंतु प्रचार यह भी किया जाता था कि न तो स्थानीय मूल निवासियों में बुद्धिमत्ता थी, न चरित्र और न ही इच्छा शक्ति।

3.6.2 पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका–

औपनिवेशिक शासक, उनके अधिकारी तथा धर्म प्रचारक कहते थे कि वे शिक्षा तथा धर्म के द्वारा पिछड़े हुए लोगों को अच्छे नैतिक जीवन तथा स्वराज्य के लिए तैयार कर रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ उपनिवेशों में शासकों ने इस दिशा में कुछ सफल प्रयास किए भी। उन्होंने पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति लागू की तथा सफाई व्यवस्था सुधारने के प्रयास किए। उन्होंने स्थानीय बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा, तथा कुछ थोड़े से वर्ग के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी की।

कुछ स्थानीय युवकों ने अवश्य फ्रांस, ब्रिटेन, अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त की। कुछ में स्वदेश में भी अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के प्रयास किए। कुछ चीनी युवाओं ने जापान में उच्च शिक्षा ग्रहण की। यह एशियाई तथा अफ्रीकी शिक्षित व्यक्तियों ने पाश्चात्य प्रौद्योगिकी, विचारों एवं आदर्शों को ग्रहण करके सफल राष्ट्रवादियों के रूप में उभरे, तथा उन्होंने यूरोपीय औपनिवेशिक शासन का खुलकर विरोध किया। ऐसे शिक्षित व्यक्ति, जिनकों उनकी अपेक्षा के अनुसार पद तथा अवसर नहीं मिले, प्रमुख रूप से राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय हुए।

3.6.3 धर्म प्रचारकों की भूमिका–

अनेक उपनिवेशों में ईसाई धर्म प्रचारकों ने स्थानीय लोगों का धर्म–परिवर्तन करवाया। जहाँ एक ओर ईसाई प्रचारकों तक उनके धर्मावलम्बी अधिकारियों ने अनेक स्थानीय लोगों को अपना अनुयायी तथा आज्ञाकारी बनाया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने राष्ट्रवाद की भावना एवं आशा को जन्म दिया। इस राष्ट्रीय भावना ने प्रतिफल के रूप में पाश्चात्य जीवन और आचार के विरूद्ध विरोध को जन्म भी दिया। यह विरोध उस समय शत्रुता के रूप में परिवर्तित हो गया जब साम्राज्यवादी सरकारों ने उसका पक्षपात करना

आरंभ किया जो कि धर्म परिवर्तित ईसाई हो गए थे, तथा अन्य स्थानीय लोगों के विरूद्ध नीतियाँ अपनाकर उनके साथ दुर्व्यहार किया। भारत अथवा मोरक्कों जैसे देशों में बड़ी संख्या में लोगों ने अपने मूल धर्मो के प्रति आस्था बनाए रखी, तथा उनकी रक्षा करने के लिए हर संभव उपाय किए। हिंदुओं तथा मुसलमानों के बड़े समूहों ने अपने धर्म को राष्ट्रीय भावना का मूल आधार बनाया। विदेशी धर्म का विरोध भी राष्ट्रवाद का एक कारण बना।

धर्म प्रचारकों द्वारा ईसाई धार्मिक शिक्षा ने प्राचीन धार्मिक विश्वासों और जीवन शैली को चुनौती थी। हाँ, कुछ आशा को भी जन्म दिया गया। इन आशाओं और चुनौतियों के संदर्भ में एशिया और अफ्रीका में हुई प्रतिक्रिया ने राष्ट्रवाद के मार्ग प्रशस्त किए। एक प्रतिक्रिया स्वरूप कॉगो में एक ऐसा धार्मिक विश्वास उत्पन्न हुआ, जो राष्ट्रवाद का मार्गदर्शक बना। एक अन्य प्रतिक्रिया यह हुई कि पारम्परिक धर्म विश्वास और भी सशक्त हो गए। ऐसा सुसंचालित धार्मिक–सामाजिक आंदोलनों के फलस्वरूप संभव हो सका।इनमें प्रमुख थे भारत में ब्रम्ह समाज तथा आर्य समाज। इनका उदय उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में हुआ। उसी प्रकार, मोरकों में सलीफिया आंदोलन का विकास हुआ। इन आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विश्वासों एवं परंपराओं पर आधारित अपने देशों का, राजनीतिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण करना और नवजीवन प्रदान करना था।

भारत में राष्ट्रवाद के महान प्रतीक स्वामी विवेकानंद जो संत भी थे और देशभक्त भी, ने राष्ट्रवाद को आध्यात्मिकता तथा हिंदू धर्म के प्राचीन गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया।

राष्ट्रीय आंदोलनों की विचारधारा–

राष्ट्रीय आंदोलनों की सदा मूल विचारधारा राष्ट्रवाद होती है। यह राष्ट्रवाद अपने में एक उग्र विचारधारा है यह तब और भी उग्र हो जाती है जब राष्ट्रवाद में मार्क्सवाद–लेनिनवाद जैसी विचारधारा भी समाहित हो जाए।

विचारधारा ऐसा महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक और भावात्मक आधार होता है जिससे व्यक्ति विशेष परिवर्तनशील समाज में अपनी भागीदारी के महत्व को समझ सकता है। अतः विचारधारा ऐसी संरचना कही जा सकती है जिसमें विभिन्न व्यक्ति मिलकर भावात्मक समूह का निर्माण कर सकते है। सामान्य उद्देश्य की ख़ोज में विभिन्न व्यक्ति ऐसे संबंधों और निष्ठा का विकास करते है जिससे पारंपरिक व्यवस्था में उत्पन्न किसी अभाव को भरा जा सके। जिस विचारधारा को सामान्यतया स्वीकार किया जाता ळै वह सामान्यजनों तथा अभिजनों के मध्य सांझे विश्वास उत्पन्न करने का कार्य करती है। इसके द्वारा समाज के विविध वर्ग एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते है। इसका मूल विश्वास

यह है कि पारम्परिक व्यवस्था की अपेक्षा व्यक्तियों और समाज के लिए बेहतर जीवन संभव है।

राष्ट्रीय आंदोलनों की विभिन्न विचारधाराओं में राष्ट्रवाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा व्यापक है। सभी राष्ट्रीय आंदोलनों के इतिहास का संकेत हैकि राष्ट्रवाद के पीछे विचार यह होता है विदेशी राजनीतिक और आर्थिक शोषण तथा जातीय भेदभाव या असमानता के विरूद्ध विद्रोह का सूचक है।

राष्ट्रीय आंदोलनों के सामाजिक आधार–

लगभग सभी उपनिवेशों में राष्ट्रीय आंदोलनों का आरंभ लोगों के छोटे छोटे समूहों द्वारा असंगठित विरोध प्रदर्शन के रूप में हुआ। परंतु शीघ्र ही उन्होंने जन आंदोलनों का रूप ले लिया। राष्ट्रीय आंदोलनों की प्रगति में समाज के सभी वर्गो की कुछ न कुछ भूमिका रही।

आरंभ में आंदोलनों की अगवाई कुछ नेताओं तथा बुद्धि जीवियों ने की। उन्होंने जनसाधारण को संगठित किया। उन्होंने आम जनता को स्वतंत्रता का अर्थ और उसकी आवश्यकता समझाई। लोगों ने उनका साथ दिया क्योंकि वे समय की आवश्यकता की अभिव्यक्ति कर रहे थे। धीरे–धीरे राष्ट्रीय आंदोलनों के साधन के रूप में राजनीतिक दलों और समूहों का विकास हुआ। किसानों, श्रमिकों तथा महिलाओं ने भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए अपने आंदोलनों को संगठित किया।

समय–समय पर तथा विभिन्न तरीकों से अधिकाधिक लोगों को यह विश्वास होता गया जब स्वाधीनता का स्वप्न पूरा होगा तब सब कुछ ठीक हो जायेगा। अतः अधिकाधिक लोग इन आंदोलनों में शामिल हुए और उनकी भागीदारी ने इन अभियानों को राष्ट्रीय संघर्ष का रूप दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने अपनी कठिनाईयों की और अधिक अवगति हुई। जब उन्हें शिकायतों का आभास हुआ तब जनसाधारण का विरोध बढ़ने लगा, तथा उन्होंने अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त किया। जब जनता की शिकायते बढ़ती गई, उनका विरोध प्रदर्शन और भागीदारी अधिक हुई तब राष्ट्रीय जागृति भी उत्पन्न हुई और स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलनों को नए आयाम मिले।

एशिया तथा अफ्रिका के लोगों को पाश्चात्य व्यक्तियों, विशेषकर ईसाई धर्म–प्रचारकों तथा आशावादी बुद्धिजीवियों ने यह सिखाया कि उन्हें आशावान रहना चाहिए। कुछ थोडे से एशियाई और अफ्रीकी युवाओं ने पश्चिमी देश में शिक्षा भी प्राप्त की। 1920 के दशक में और उसके पश्चात् उनके अपने देशों के नेताओं ने, पहले समाचारपत्रों और फिर रेडियों के माध्यम से, तथा उभरते राजनीतिक दलो, सहायता समितियों और श्रमिक संगठनों के द्वारा यह समझाया कि भविष्य में उनकी स्वतंत्रता, न्याय और प्रचुरता की उपलब्धि उनके अपने राष्ट्रीय प्रयासों से ही हो सकती थी। एशिया–अफ्रीका लोगों ने पहले

राष्ट्र संघ और फिर संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की घोषणाओं में "मौलिक मानव अधिकारों", मानव के सम्मान और मूल्यों तथा धर्म और जाति के भेदभाव के बिना, सभी के लिए मौलिक स्वतंत्रताओं के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की। उन्होंने इन उद्घोषणाओं में विश्वास करते हुए, यह आशा व्यक्त की कि उनको भी यह सभी अधिकार एवं स्वतंत्रताएँ मिलनी चाहिए।

राष्ट्रीय आंदोलनों के नेताओं के प्रेरणा स्त्रोत उतने ही विविध थे जितने कि उनकी जनता तथा उनके अपने व्यक्तित्व। वे आशावादी थे, वे भयभीत भी थे, तथा वे अपने और अपने लोगों के लिए महत्वकांक्षी भी थे। निश्चय ही कुछ ऐसे भी नेता थे जो अपनी व्यक्तिगत शक्तियों में वृद्धि के साथ–साथ अपने लिए उच्च वेतन तथा अन्य सुख सुविधाओं के अभिलाषी थे। ऐसे नेता भी थे (जैसे भारत में नेहरू, बर्मा के आँग सान, तन्जानिया में नायरेरे और सेनेगल में सेंघर) जो चाहे व्यक्तिगत महत्वकांक्षाओं से मुक्त नहीं थे, फिर भी वे उच्च आदर्शवादी होने के साथ–साथ देशहित को सदा व्यक्तिगत लाभ ऊपर रखते थे जैसे कि सभी के साथ होता है, उनके प्रेरक तत्व मिले जुले थे, तथा उनमें परिवर्तन होते रहते थे। परंतु यह भी सत्य है कि उनमें से अनेक नेताओं को बहुत दुखद अनुभव हुए, जिनमें उनके राष्ट्रवाद को और भी गंभीर तथा गतिशील बना दिया। जब इन नेताओं ने अपना राजनीतिक जीवन आरंभ किया था, तब वे मात्र सुधारक थे। उन्हीं की संतुष्टी के लिए सुधार पर्याप्त थे, यदि स्वराज्य की दिशा में प्रगति की कोई आशा दिखाई देती हो तो वे औपनिवेशिक व्यवस्था में रहते हुए कार्य करने को तैयार थे। परंतु जैसे–जैसे उन्होंने अधिक सुधारों की माँग की, तथा उसके लिए कार्य किया, वैसे–वैसे इनका जीवन संकटमय हो गया, उन्हें धमकियाँ दी गई, उनमें से कुछ को देश से निष्कासित तक होना पड़ा। कुछ को बंदी बनाया गया तथा कभी कभी बुरी तरह से पीटा भी गया। कुछ नेताओं एवं युवा कार्यकर्त्ताओं को फांसी पर भी लटका दिया गया। इस प्रकार के शहीद होकर राष्ट्रवाद के प्रमुख प्रतीक बन गए। जो जीवित रहे उन्होंने विरोध और भी उग्र कर दिया। परिणामस्वरूप उनकों और अधिक यातनाएँ सहनी पड़ी। वे अपने देशों की राष्ट्रीय पार्टियों के प्रमुख नेताओं के रूप में उभरे। कुछ का उदय श्रमिक एवं किसान आंदोलनों तथा संगठित विरोध प्रदर्शनों एवं हड़तालों से भी हुआ। उन्होंने राष्ट्रवाद को विकसित किया। उनकी गिरफ्तारियों ने जनता में राष्ट्रीय उन्माद को जन्म दिया, जिसके कारण राजनीतिक दल समूह तथा स्वयं राष्ट्रीय आंदोलनों को बल और शक्ति प्राप्त हुई। भारत में गाँधी, नेहरू, तिलक, पटेल, मौलाना आजाद इत्यादि को जेल भेजा गया।

अफ्रीका के विभिन्न भागों में बांदा, बुर्गीबा, कौन्ड़ा, डॉ नेलसन मंडेला, सैम नजूमा तथा सिथौले इत्यादि के साथ भी ऐसा ही हुआ। वे सभी जेलों से बाहर आकर और उग्र राष्ट्रवादी हो गए। उनके देशवासियों ने उनको अपने हीरो का दर्जा प्रदान किया। राष्ट्रीय

भावनाओं को न तो जेल की सजा कम कर सकी, न यातनाएँ उन्हें दबा सकी और न ही दमन के किसी अन्य उपाय से राष्ट्रवाद का नाश किया जा सका। व्यवहार में राष्ट्रवाद और भी सशक्त होता गया।

राष्ट्रीय आंदोलनों के कार्यक्रम

प्रारंभिक चरणों में राष्ट्रीय आंदोलन प्रायः आकस्मिक एवं असंगठित रहे। वे कुछ व्यक्तियों के स्थानीय विरोध प्रदर्शन मात्र थे। फिर भी वे इस ओर संकेत करते थे कि उपनिवेशों में सर्वव्यापी क्रोध बढ़ रहा था। उपनिवेशवाद से त्रस्त लोगों का प्रथम विरोध प्रदर्शन राष्ट्रवादी विरोध का प्रतीक सिद्ध हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा इनको बर्बरता और हिंसा से दबा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी नेताओं को सोचना पड़ा कि औपनिवेशिक शक्तियों का विरोध करने के लिए उनको कौन से साधन अपनाने चाहिए।

जब प्रारंभिक विद्रोह दबा दिए गए तब कुछ समय के लिए उपनिवेशों की जनता को विदेशी शासन के सम्मुख झुकना ही पड़ा। ऐसा 1857 के भारत के प्रथम विद्रोह के बाद हुआ। इसी प्रकार के परिणाम अन्य अनेक देशों में भी पाए गए। उस समय पराजय की भावना से विदेशी शासन को कोई विकल्प सामने न होने के कारण, स्वीकार कर लिया। आक्रामकों (विदेशी शासको) की सैनिक शक्ति, तकनीकी ज्ञान एवं सांस्कृतिक वरिष्ठता को भी स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार श्वेत व्यक्ति की श्रेष्ठता के सिद्धांत का विकास हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार के साथ तथा बड़ी संख्या में स्थानीय निवासियों का प्रशासन तथा पाश्चात्य वाणिज्य और उद्यमों में प्रवेश इस बात का सूचक होने लगा कि उन्होंने भी वह सामर्थ्य प्राप्त कर लिया था जो कि श्वेत विदेशियों की श्रेष्ठता के लिए उत्तरदायी थी। अतः अब श्वेत शासकों के द्वारा एशिया-अफ्रीका के देशों पर अपने प्रभुत्व को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं रह गया था। विदेशीशासक अब उनके भाग्य विधाता बने नहीं रह सकते थे। अतः राजनीतिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए पराधीन लोगों में भी राष्ट्रीय जागरण भरपूर मात्रा में पाया जाने लगा।

यह राष्ट्रीय चेतना विदेशी शासन के विरूद्ध प्रतिरोध की मूल प्रवृत्ति का परिणाम मात्र नहीं थी, परंतु यह सम्बद्ध समुदाय की अलग विशेष पहचान का एक जानबूझ कर दिया गया दावा था। भारत, इन्डोनेशिया, बर्मा, श्रीलंका तथा अन्य देशों में जहाँ लोगों में विदेशी शासन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह एक नई प्रवृत्ति थी, क्योंकि पहले तो केवल वर्गों की अथवा क्षेत्रीय निष्ठा पाई जाती थी। परंतु अब देशभक्ति की देश व्यापी निष्ठा की उत्पत्ति हुई।

भारत में 1857 में राष्ट्रवाद की नवोदित भावना के दर्शन हुए। इसके पश्चात् पूना, सार्वजनिक सभा (1870) तथा इंडियन एसोसिएशन (1878) जैसी संस्थाओं ने इस भावना को एक राजनीतिक संगठनों का स्वरूप प्रदान किया। साथ ही इनमें पश्चात्य

विचारों का प्रवेश हुआ, और वे राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के पूर्वगामी सिद्ध हुए।

प्रत्येक देश के राष्ट्रीय आंदोलन के साधन, उसकी गति तथा शक्ति में स्थानीय परिस्थितियों और शासन व्यवस्था के अनुसार स्पष्ट भिन्नता पाई गई। ब्रिटिश भारत, बर्मा, डच ईस्ट इंडीज (इंडोनेशिया) और फ्रांसीसी हिन्द चीन के अन्नाम एवं तोकिन प्रदेशों में राष्ट्रीय आंदोलन का तेजी से विकास हुआ क्योंकि इन देशों की पराधीन जनता का साम्राज्यवादियों द्वारा प्रत्यक्ष शोषण हो रहा था। भारत में पहले उदार और बाद में साम्राज्यवाद वे विरूद्ध क्रांतिकारी आंदोलन चलाए गए। परंतु, ब्रिटिश सरकार के दमन के समक्ष इन आंदोलनों के स्पष्ट परिणाम दिखाई नहीं दिए। परंतु जब राष्ट्रीय आंदोलन महात्मा गाँधी के हाथों में आया तब उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष के लिए सत्य, प्रेम और अहिंसा पर आधारित असहयोग जैसे अनोखे आंदोलन के मार्ग को अपनाया। उनके सत्याग्रह को आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई।

प्रथम विश्वयुद्ध ने राष्ट्रीय आंदोलनों को काफी प्रोत्साहन दिया। कुछ अंश में यह राष्ट्रीयता के सिद्धांत पर चलाए गए। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने युद्ध के उद्देश्यों के संबंध में घोषणा की कि राष्ट्रीय अभिलाषाओं का सम्मान किया जायगा, तथा आत्म निर्णय का अधिकार इसका एक प्रमुख सिद्धांत होगा। इस घोषणा के आधार पर लोगों ने अपने आत्म-निर्णय के अधिकार पर जोर दिया। इस प्रकार यह सिद्धांत राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख लक्ष्य बन गया।

कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रथम विश्व युद्ध को आधुनिक एशियाई राष्ट्रवाद के आरंभ का काल कहा जा सकता है। स्वतंत्रता के लक्ष्य की ओर राष्ट्रवाद, जैसे दो पैरो पर चलने लगा। एक या विदेशी शासन के विरूद्ध विरोध प्रदर्शन और विदेशी प्रभुत्व का विरोध तथा दूसरा राष्ट्रीय औद्योगीकरण के प्रयास। इस प्रकार का राष्ट्रवाद चीन और भारत में सबसे शक्तिशाली था जहाँ "राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलनों का समर्थन किया तथा अपने अपने देश की आर्थिक व्यवस्था से विदेशी पूँजीपतियों के निष्कासन का विद्रोह के नेता के रूप में उभरे। उधर अरब राष्ट्रवाद भी विकसित होने लगा। ऐसा टर्की के आटोमन साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् ही हुआ। साथ ही प्रथम विश्व युद्ध में पराजित होने के पश्चात् स्वयं टर्की के राष्ट्रवाद के पश्चिमी देशों को चुनौती दे डाली। टर्की का स्तर विश्व में ऊँचा उठ गया जब वहाँ एक गणतंत्र की स्थापना हो गई।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन अपने शिखर पर पहुँच गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि जितने सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन युद्धकाल में हुए, उससे पूर्व कभी उतने नहीं थे। जिस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, राष्ट्रपति विल्सन ने आत्म-निर्णय के सिद्धांत की घोषणा की थी, उसी प्रकार 1941 में राष्ट्रपति फ्रैंक्लिन रूजवेल्ट तथा

ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल को अटलांटिक चार्टर का भी एक सिद्धांत आत्म निर्णय का अधिकार था। अतः इसमें व्यवस्था थी कि वे सभी लोगों के इस अधिकार का सम्मान करते है कि उनको उस सरकार के रूप का चयन करने का अधिकार हो जिसके अधीन वे निवास करेंगे तथा वे यह भी चाहते है कि जिन से स्वशासन का अधिकार छीन लिया गया है उनको यह संप्रभु अधिकार वापस दिया जाए। उपनिवेशों की जो जनता आत्म निर्णय के लिए संघर्ष कर रही थी, उसने खुद के पश्चात् यह माँग की कि पाश्चात्य् देश अटलांटिक चार्टर की भावना के अनुसार उन्हें स्वाधीनता प्रदान करे, ताकि लोग स्वेच्छा से अपनी सरकारों का गठन कर सके। स्वभाविक था कि पाश्चात्य् देश ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थे। परंतु, साथ ही कई वर्षों तक शत्रु से युद्ध करके वे शक्तिहीन भी हो गए थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन की स्वतंत्रता की सशक्त लहर को अधिक देर तक टाल नहीं सकते थे।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि शक्तिशाली विरोध, शांतिपूर्ण सत्याग्रह के द्वारा, क्रांति के द्वारा, गृह युद्ध के द्वारा अथवा औपनिवेशिक युद्ध सन् 1945 के पश्चात् पचास से अधिक एशियाई अफ्रीकी देशों को स्वतंत्रता प्राप्त हो गई।

3.7 सारांश–

इस ईकाई में राष्ट्रीय आंदोलनों के विभिन्न पक्षो, जैसे उनकी विचारधारा, उनके सामाजिक आधार तथा उनके कार्यक्रमों के विषय में पढ़ा। राष्ट्रीय आंदोलनों की विचारधारा मूल रूप से क्रांतिकारी रही। उपनिवेशों की शोषित जनता द्वारा प्रायः जब भी हिंसा का सहारा लिया गया, वह शासकों द्वारा प्रयुक्त हिंसा के उत्तर के रूप में ही था। वह तो शोषण का प्रत्योत्तर था। अनेक लोगों के लिए साधन एवं साध्य की एकता नितांत आवश्यक नहीं थी। यह सत्य है कि गाँधीजी जैसे नेताओं ने साध्य और साधन की एकता पर बल देते हुए कहा था कि वे केवल अहिंसात्मक साधन प्रयोग करके ही अहिंसात्मक समाज एवं उत्तम और कुलीन साध्य की प्राप्ति हो सके।

सभी राष्ट्रीय आंदोलनों को जनसाधारण का समर्थन प्राप्त था। परंतु उनका आरंभ एवं नेतृत्व सामान्यताया थोडे से नेताओं और क्रांतिकारियों ने किया था। उनके बलिदानों के फलस्वरूप न केवल उनके देशों वरन् विदेशों में भी उनके अनुयायियों ने उनके मार्ग पर चलने की चेष्टा की। अतः किसी न किसी प्रकार सभी राष्ट्रीय आंदोलन एक दूसरे से सम्बद्ध हो गये थे। उन्हें सफल विरोध प्रदर्शन से प्रेरणा मिली थी।

इन आंदोलनों का कोई पूर्व निश्चित कार्यक्रम तो था नहीं, यद्यपि इनके नेताओं, दलों तथा बुद्धिजीवियों ने किसी ने किसी रूप में एकीकृत कार्यक्रम को प्रस्तुत किया जो कि जनसाधारण की अंतिम स्वीकृति पर आधारित था। मूल उद्देश्य तो सभी का यह था कि साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा किया जा रहा शोषण समाप्त हो।

3.8 निहित कार्य–

- राष्ट्रीय आंदोलनों के उत्पत्ति के कारणों का वर्णन कीजिए ?
- राष्ट्रीय आंदोलनों में पाश्चात्य शिक्षा की क्या भूमिका रही ?

3.9 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिंदु–

3.9.1 चर्चा के बिन्दु

____

____

____

3.9.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

____

____

____

3.10 संदर्भ ग्रंथ–

1. एन.सी.ई.आर.टी. (2006) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन I, कक्षा–VI , पाठ्यपुस्तक ईकाई 2,3
2. एन.सी.ई.आर.टी. (2007) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन II, कक्षा–VII , पाठ्यपुस्तक ईकाई 1,2
3. एन.सी.ई.आर.टी. (2008) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन III, कक्षा–VIII , पाठ्यपुस्तक ईकाई 1,2,4
4. इग्नू, ईकाई 10 – भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ब्लॉक 3, आजाद भारत का उद्भव (एफ.एच.एस)

DELED 02

खण्ड–2 उपनिवेशवाद के तहत भारत

इकाई–4 : आजादी की लड़ाई और भारत का दृष्टिकोण

संरचना

4.1 परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 उपनिवेषिक विरोधी संघर्ष और स्वतंत्र भारत के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण

4.3.1 उपनिवेशवाद : विरोध की व्याख्या

4.3.2 उपनिवेशों की स्वतंत्रता की इच्छा

4.3.3 उपनिवेशवाद – विरोधी संघर्ष के प्रतिमान

4.3.3.1 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन

4.3.3.2 राष्ट्रीय स्वतंत्रता (मुक्ति) आंदोलन

4.4 भारतीय राष्ट्र राज्य की संस्थागत ढ़ाचे : उपनिवेशिक तंत्र के साथ निरंतरता एवं रूकावटे

4.4.1 राष्ट्रराज्य

4.4.2 राष्ट्रवाद

4.4.3 भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

4.4.4 भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण

4.4.4.1 उपनिवेशवाद का प्रथम चरण : वाणिज्यिक चरण

4.4.4.2 उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण : औद्योगिक मुक्त व्यापार

4.4.4.3 उपनिवेशवाद का तृतीय चरण : वित्तीय पूँजीवाद

4.5 इकाई सारांश

4.6 अपनी प्रगति की जाँच करें

4.7 निहित कार्य

4.8 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिंदु

4.9 संदर्भ

4.1 परिचय

किसी एक भौगोलिक क्षेत्र के लोगों द्वारा किसी दूसरे भौगोलिक क्षेत्र में उपनिवेश (कॉलोनी) स्थापित करना और यह मान्यता रखना कि यह एक अच्छा काम है, उपनिवेशवाद कहलाता है।

इतिहास में प्रायः पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक उपनिवेशवाद का काल रहा। इस काल में यूरोप के लोगों ने विश्व के विभिन्न भागों में उपनिवेश बनाये। इस काल में उपनिवेशवाद में विश्वास का मुख्य कारण थे –लाभ कमाने की लालसा, मातृदेश की शक्ति बढ़ाना, मातृ देश में सजा से बचना, स्थानीय लोगों का धर्म बदलवाकर उन्हें उपनिवेशी के धर्म में शामिल करना।

कुछ उपनिवेशी यह भी सोचते थे कि स्थानीय लोगों को इसाई बनाकर तथा उन्हें "सभ्यता" का दर्शन कराकर वे उनकी सहायता कर रहे है। किन्तु वास्तविकता में उपनिवेशवाद का अर्थ था – आधिपत्य, विस्थापन एवं मृत्यु। उपनिवेश, मातृदेश के साम्राज्य का भाग होता था, अतः उपनिवेशवाद का साम्राज्यवाद से घनिष्ठ संबंध है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको उन कारणों से अवगत करवाना है जो उपनिवेषिक विरोधी संघर्ष के लिए उत्तरदायी है। इस इाकई में आप भारतीय राष्ट्रराज्य, राष्ट्रवाद के उदय व उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप

- उपनिवेशवाद की व्याख्या कर सकेंगे।
- उपनिवेशवाद की विरोध की व्याख्या कर सकेंगे।
- उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के प्रतिमान को समझ सकेंगे एवं राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन व राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को समझ सकेंगे।
- राष्ट्रराज्य, और राष्ट्रवाद को समझेंगे।
- भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारण ज्ञात कर सकेंगे एवं भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरणों का वर्णन कर सकेंगे।

उपनिवेशवाद का आरंभ–

1453 ई. में तुर्को द्वारा कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लेने के पश्चात् स्थल मार्ग से यूरोप का एशियायी देशों के साथ व्यापार बंद हो गया। अतः अपने व्यापार को निर्बाध रूप से चलाने हेतु नये समुद्री मार्गो की खोज प्रारंभ हुई।

कुतुबनुमा, गतिमापक यंत्र, वेद्य यंत्रों की सहायता से कोलम्बस, मैगलन एवं वास्कोडिगामा आदि साहसी नाविकों ने नवीन समुद्री मार्गो के साथ साथ कुछ नवीन देशों अमेरिका आदि को खोज निकाला। इन भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप यूरोपीय व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। धन की बहुलता एवं स्वतंत्र राज्यों के उदय ने उद्योगों को बढ़ावा दिया। कई नवीन उद्योग शुरू हुए। स्पेन को अमेरिका रूपी एक ऐसी धन की कुंजी मिली कि वह समृद्धि के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया।

ईसाई धर्म प्रचारक भी धर्म प्रचारक भी धर्म प्रचार हेतु नये खोजे हुए देशों में जाने लगे। इस प्रकार अपने व्यापारिक हितों को साधने एवं धर्म प्रचार आदि के लिए यूरोपीय देश उपनिवेशों की स्थापना की ओर अग्रसर हुए और इस प्रकार यूरोप में उपनिवेश का आरंभ हुआ।

उपनिवेशवाद का अर्थ–

किसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किन्तु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का शक्ति के बल पर उपयोग करना। उपनिवेशवाद में उपनिवेश की जनता एक विदेशी राष्ट्र द्वारा शासित होती है, उसे शासन में कोई राजनीतिक अधिकार नहीं होता।

आर्गन्सकी के अनुसार, वे सभी क्षेत्र उपनिवेशों के तहत आते है जो विदेशी सत्ता द्वारा शासित है एवं जिनके निवासियों को पूरे राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं है।

वस्तुतः हम किसी शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा निहित स्वार्थवश किसी निर्बल राष्ट्र के शोषण को उपनिवेशवाद कह सकते है।

लैटिन भाषा के शब्द 'कोलोनिया' का मतलब है एक ऐसा राज जिसे योजनाबद्ध ढंग से विदेशियों के बीच कायम किया गया है। भूमध्यसागरीय क्षेत्र और मध्ययुगीन यूरोप में इस तरह का उपनिवेशीकरण एक आम परिघटना थी।

इसका उदाहरण मध्ययुग और आधुनिक युग की शुरूआती अवधि में इंग्लैण्ड की हुकूमत द्वारा वेल्स और आयरलैण्ड को उपनिवेश बनाने के रूप में दिया जाता है। लेकिन, जिस आधुनिक उपनिवेशवाद की यहाँ चर्चा की जा रही है, उसका मतलब है यूरोपीय और अमेरिकी ताकतों द्वारा गैर-पश्चिमी संस्कृतियों और राष्ट्रों पर ज़बरन कब्ज़ा करके वहाँ के राजकाज, प्रशासन, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, भाषा, धर्म, व्यवस्था और जीवन-शैली पर अपने विजातीय मूल्यों और संरचनाओं को थापने की दीर्घकालीन प्रक्रिया। इस तरह के उपनिवेशवाद का एक स्त्रोत कोलम्बस और वास्कोडिगामा की यात्राओं को भी माना जाता है। उपनिवेशवाद के इतिहासकारों ने पन्द्रहवी सदी यूरोपीय शक्तियों द्वारा किये साम्राज्यवादी विस्तार की परिघटना के विकास की शिनाख्त अट्ठारहवी और उन्नीसवी सदी में उपनिवेशवाद के रूप में की है।

औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए हालात ने उपनिवेशवादी दोहन को अपने चरम पर पहुँचाया। यह सिलसिला बीसवीं सदी के मध्य तक चला जब वि–उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया के तहत राष्ट्रीय मुक्ति संग्रामों और क्रांतियों की लहर ने इसका अंत कर दिया। इस परिघटना की वैचारिक जड़े वणिकवादी पूँजीवाद के विस्तार और उसके साथ–साथ विकसित हुई उदारतावादी व्यक्तिवाद की विचारधारा में देखी जा सकती है। किसी दूसरी धरती को अपना उपनिवेश बना लेने और स्वामित्व के भूखे व्यक्तिवाद में एक ही तरह की मूल प्रवृत्तियाँ निहित होती है। नस्लवाद, युरोकेंद्रियता और विदेशी–द्वेष जैसी विकृतियाँ उपनिवेशवाद की ही देन है।

उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद होते हुए भी काफी कुछ परस्परव्यापी और परस्पर निर्भर पद है। साम्राज्यवाद के लिए जरूरी नहीं है कि किसी देश पर कब्ज़ा किया जाए और वहाँ कब्ज़ा करने वाले अपने लोगों को भेज कर अपना प्रशासन कायम करें। इसके बिना भी साम्राज्यवादी केन्द्र के प्रति अधीनस्थता के संबंध कायम किये जा सकते है। पर, उपनिवेशवाद के लिए जरूरी है कि विजित देश में अपनी कॉलोनी बसाई जाए, आक्रामक की विजितों बहुसंख्या प्रत्यक्ष के ज़रिये खुद को श्रेष्ठ मानते हुए अपने कानून और फैसले आरोपित करें। ऐसा करने के लिए साम्राज्यवादी विस्तार को एक खास विचारधारा का तर्क हासिल करना आवश्यक था। यह भूमिका सत्रहवी सदी में प्रतिपादित जॉन लॉक के दर्शन ने निभाई। लॉक की स्थापनाओं में ब्रिटेन द्वारा भेजे गये आधिवासियों द्वारा अमेरिका की धरती पर कब्जा कर लेने की कार्यवाही को न्यायसंगत ठहराने की दलीले मौजूद थी। उनकी रचना 'टू ट्रीटाइज़ ऑन सिविल गवर्नमेंट (1690) की दूसरी थीसिस 'प्रकृत अवस्था' में व्यक्ति द्वारा अपने अधिकारों की दावेदारी के बारे में है। वे ऐसी जगहों पर नागरिक शासन स्थापित करने और व्यक्तिगत प्रयास द्वारा हथियाई गयी सम्पदा को अपने लाभ के लिए विकसित करने को जायज़ करार देते है। यही थीसिस आगे चल कर धरती के असमान स्वामित्व को उचित मानने का आधार बनी। लॉक की मान्यता थी कि अमेरिका में अनापशनाप ज़मीन बेकार पड़ी हुई है और वहाँ के मूलवासी यानी इण्डियन इस धरती का सदुपयोग करने की योग्यता से वंचित है। लॉक ने हिसाब लगाया कि यूरोप की एक एकड़ जमीन अगर अपने स्वामी को पाँच शिलिंग प्रति वर्ष का मुनाफा देती है, तो उसके मुकाबले अमेरिकी की ज़मीन से उस पर बसे इण्डियन को होने वाला कुल मुनाफ़ा एक पेनी से भी बहुत कम है। चूँकि अमेरिकी इण्डियन बाकी मानवता में प्रचलित धन–आधारित विनिमय–प्रणाली अपनाने में नाकाम रहे है, इसलिए 'सम्पत्ति के अधिकार' के मुताबिक उनकी धरती को अधिग्रहीत करके उस पर मानवीय श्रम का निवेश किया जाना चाहिए। लॉक की इसी थीसिस में एशियाई और अमेरिकी महाद्वीप की सभ्यता और संस्कृति का युरोपीय श्रेष्ठता की ग्रंथी के बीज थे जिसके आधार पर आगे चल कर उपनिवेशवादी संरचनाओं का शीराज़ा खड़ा किया गया।

उपनिवेशों मुख्यतः दो किस्मे थी। एक तरफ अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जैसे थे जिनकी जलवायु युरोपियनों के लिए सुविधाजनक थी। इन इलाकों में सफेद चमड़ी के लोग बहुत बड़े पैमाने पर बसाये गये। उन्होंने वहाँ की स्थानीय आबादी के संहार और दमन की भीषण परियोजनाएँ चला कर वहाँ न केवल पूरी तरह अपना कब्जा जमा लिया, बल्कि वे देश उनके अपने 'स्वदेश' में बदल गये। जन संहार से बच गयी देशज जनता को उन्होंने अलग थलग पड़े इलाकों में धकेल दिया। दूसरी तरफ वे उपनिवेश थे जिनका हवा–पानी यूरोपीयनों के लिए प्रतिकूल था। (जैसे भारत और नाइजीरिया)। इन देशों पर कब्जा करने के बाद यूरोपियन थोड़ी संख्या में ही वहाँ बसे और मुख्यतः आर्थिक शोषण और दोहन के लिए उन धरतियों का इस्तेमाल किया।

न्यू इंग्लैण्ड सरीखे थोड़े बहुत ऐसे उपनिवेश भी थे जिनकी स्थापना यूरोपीय इसाईयों ने धार्मिक आजादी की खोज में की।

4.3 उपनिवेषिक विरोधी संघर्ष और स्वतंत्र भारत के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण

4.3.1 उपनिवेशवाद विरोध की व्याख्या – संयुक्त राष्ट्र के वर्तमान सदस्यों में से बड़ी संख्या में ऐसे देश थे जो कि दीर्घकाल तक विदेशी शासन तथा शोषण का शिकार रहे थे। उनको द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् संप्रभुता एवं पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। एशिया एवं अफ्रीका के विशाल प्रदेशों पर, अठारहवीं तथा उन्नीसवी शताब्दी में, यूरोप के कुछ सम्पन्न एवं शक्तिशाली देशों ने अपना आर्थिक प्रभुत्व तथा राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लिया था। लगभग पूरा अफ्रीका महाद्वीप तथा एशिया का एक बड़ा भाग किसी न किसी यूरोपीय देश के औपनिवेशिक शासन का शिकार हुआ। यह उपनिवेश ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, जर्मनी, पुर्तगाल, बेल्जियम तथा नीदरलैण्डस ने स्थापित किए। उपनिवेशों की जनता को विदेशी शासकों के विरूद्ध संघर्ष करने पड़े। इन आन्दोलनों को उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के नाम से जाना गया, तथा उनको अलग–अलग उपायों से चलाया गया। उपनिवेशवाद – विरोधी संघर्ष की सफलता, तथा स्वतंत्रता प्राप्ति को उपनिवेशवाद उन्मूलन की संज्ञा दी गई।

उपनिवेशवाद– उस प्रक्रिया को कहते है जिसके द्वारा यूरोप के विकसित एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न देशों के द्वारा एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के निर्धन, पिछड़े हुए एवं अविकसित देशों को अपने अधीन करके आर्थिक और राजनीतिक शोषण किया गया। अतः यूरोपीय देशों के द्वारा एशिया और अफ्रीका के देशों का शोषण उपनिवेशवाद का सार है। साम्राज्यवाद का अभिप्राय है एक देश का किसी अन्य देश पर राजनीतिक नियंत्रण। साम्राज्यवादी शक्तियों ने एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के अनेक देशों को राजनीतिक नियंत्रण के द्वारा अपने अधीन कर लियां अतः जहाँ उपनिवेशवाद आर्थिक

शोषण का स्वरूप है, वही साम्राज्यवाद राजनीतिक नियंत्रण का प्रतीक है। दोनों ही साथ–साथ चले। अधिकांश देशों में आर्थिक शोषण पहले आरंभ हुआ और राजनीतिक शोषण बाद में। उपनिवेशों का दुरूपयोग सस्ते कच्चे माल तथा मजदूरों की प्राप्ति के लिए किया गया। साथ ही, औपनिवेशिक देशों के द्वारा अपने निर्मित सामान को उपनिवेशों के बाजारों में बेचने का कार्य भी किया गया। उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद दोनों की प्रकृति शोषण करने एवं लोकतंत्र–विरोधी है।

शोषण की व्यवस्था के समर्थन में औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने तर्क दिए गए। उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के समर्थकों ने 'श्वेत व्यक्ति का बोझ' के सिद्धांत का सहारा लिया। उनका तर्क था कि यह तो विकसित देशों का कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व था कि 'पिछडे हुए' देशों के लोगों की सहायता करें, उन्हें 'सभ्य बनाएँ', तथा उनका 'ईसाईकरण' करें। साथ ही वे उन्हें श्रम की प्रतिष्ठा (सम्मान) से शिक्षित करना, तथा अपने कानूनों और नियमों के सौन्दर्य से उन्हें अवगत करवाना भी था।

पामर एवं पार्किन्स के अनुसार, उन्होंने यह तर्क दिया था कि उपनिवेशवाद तो संसार के अधिकांश मुक्त एंव स्वतंत्र राज्यों के उदय, तथा एशिया और अफ्रीका में बीसवी शताब्दी की जागृति की प्रस्तावना था।

उपनिवेशवाद के समर्थकों के इन तर्को का इसके आलोचकों द्वारा खंडन किया गया। उन्होंने उपनिवेशवाद एवं उसके उपायों के लिए पाशविक, शोषण, घृणा, दुर्गति एवं अवनति जैसे शब्दों का प्रयोग किया। आलोचको का कहना है कि साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से और अधिक साम्राज्य स्थापित करने के लोभ उत्पन्न होता है। साम्राज्य बनाने के लोभ का कोई अंत ही नहीं था। उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद की आधारशिला थी।

पुर्तगाल तथा स्पेन ने सबसे पहले अपने उपनिवेश स्थापित किए थे। उसके तुरंत बाद ब्रिटेन, फ्रांस, नीदरलैण्डस तथा जर्मनी ने उनका अनुकरण किया। सबसे पहले अपने उपनिवेशों से हाथ धो बैठने वाले थे जर्मनी और टर्की, जिन्हें प्रथम विश्व युद्ध में उनकी पराजय के पश्चात् उनके सभी उपनिवेशों से वंचित कर दिया गया। जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका भी उपनिवेशवाद की होड़ में शामिल हो गए थे। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अफ्रीका महाद्वीप में केवल चार देश स्वतंत्र थे। शेष महाद्वीप किसी न किसी यूरोपीय देश के औपनिवेशिक शासन के अधीन थे। एक समय ब्रिटिश साम्राज्य इतना विशाल था कि उसमें कभी भी सूर्य अस्त नहीं होता था। वह संसार के पूर्वी छोर से पश्चिमी किनारे तक फैला हुआ था। उत्तरी अमेरिका के 13 ब्रिटिश उपनिवेशों ने 1770 के दशक में सबसे पहले स्वयं को स्वतंत्र घोषित करके 1780 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका नामक संप्रभु देश के रूप में संगठित किया। लैटिन अमेरिका के पुर्तगाली तथा स्पेनिश उपनिवेश उसके पश्चात् स्वतंत्र होने वाले देश थे। एशिया और अफ्रीका के देश लंबे संघर्ष के पश्चात् द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही धीरे–धीरे स्वतंत्र हुए।

4.3.2 उपनिवेशों की स्वतंत्रता की इच्छा

उपनिवेशों के निवासी दीर्घ काल तक अपने यूरोपीय शासको के शोषण के शिकार होते रहे थे। उन्हें अपने मूल अधिकारों तथा स्वतंत्रता से वंचित रखा गया था। उन्हें अपनी शासन व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण भूमिका प्राप्त नहीं थी। उपनिवेश केवल कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले देश बन गए थे। उन्हें न केवल औद्योगीकरण तथा विकास से वंचित रखा गया, वरन् स्वशासन से भी दूर रखा गया था। उपनिवेशवाद के समर्थकों, जैसे कि जे.ए. हॉबसन ने उपनिवेशवाद की व्याख्या इस प्रकार की थी। "यह राष्ट्रीयता का स्वाभाविक प्रवाह था, इसका आशय था औपनिवेशिक शासकों (Colonists) की वह शक्ति जिसके द्वारा वे अपनी सभ्यता को उस नए प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश में रोपण कर सके जिसमें वे स्वयं को पाते थे। उपनिवेशों की जनता को सभ्य बनाने की तथाकथित प्रक्रिया ऐसा नक़ाब था। जिसके पीछे यूरोपीय शासक उपनिवेशों का शोषण कर रहे थे। जैसे – जैसे भारत जैसे कुछ उपनिवेशों के कुछ लोगों को पाश्चात्य देश में जाने वाले और वहाँ अध्ययन करने के सीमित अवसर प्राप्त हुए, वैसे-वैसे यह अनुभव हुआ कि किस प्रकार उनका शोषण किया जा रहा था। उन्हें इसका भी आभास हुआ कि यूरोपवासियों को प्राप्त स्वतंत्रता का क्या मूल्य और महत्व था। इन्हें उपनिवेशों की शिक्षित जनता को इन बात की प्रेरणा दी कि वे अपने देशवासियों को साम्राज्यवाद की वास्तविकताओं से जागरूक करें तथा उन्हें अपने स्वाधीनता एवं स्वशासन की माँग करने के लिए तैयार करें।

सन् 1955 में बांडुंग में आयोजित अफ्रीकी-एशियाई देशों के सम्मेलन में इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने कहा था कि, उपनिवेशवाद ने आर्थिक नियंत्रण, बुद्धिजीवी नियंत्रण एवं एक छोटे विदेशी समुदाय के द्वारा वास्तविक भौगोलिक नियंत्रण का आधुनिक परिधान पहना हुआ है।" अतः सम्मेलन में यह तर्क दिया गया कि "उपनिवेशवाद की सभी प्रकार से अभिव्यक्ति एक ऐसी बुराई है जिसका तेजी से अंत किया जाए। बांडुंग सम्मेलन आयोजित किए जाने तक अफ्रीकी एशियाई देशों के लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच गए थे कि उपनिवेशवाद 'उत्कृष्ट' हीन सम्बन्धों (Superior – inferior relations) पर आधारित था। इन परिस्थितियों में एशिया-अफ्रीका के करोड़ों लोगों ने अपनी 'हीन' अवस्था से मुक्ति पाने तथा सभी देशों की जनता के साथ अपनी समानता का दावा करने का निर्णय किया।

अतः द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद उपनिवेशवाद -विरोधी संघर्ष तथा उपनिवेशवाद उन्मूलन की प्रक्रिया के आरंभ होने के साथ स्वतंत्रता, मुक्ति एवं स्वशासन की इच्छा बलवती हुई। साथ ही 1950 के दशक और उसके पश्चात् शोषण – प्रक्रिया को पराजित करने के लिए उपनिवेशों की जनता सक्रिय हो गई।

4.3.3 उपनिवेशवाद–विरोधी संघर्ष के प्रतिमान–

अधिकांश उपनिवेशों को यूरोपीय शक्तियों के विरूद्ध अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना पड़ा था। परंतु, इन सभी स्वतंत्रता आंदोलनों का स्वरूप एक जैसा नहीं था। उन उपनिवेशों द्वारा संघर्ष के साधन तथा उपाय एक समान नहीं थे और न ही सब उपनिवेशों के संघर्ष की अवधि एक जैसी थी। उनकी प्रकृति में गहरे अंतर थे, तथा आंदोलनों की सफलता के लिए जो समय लगा वह इस बात पर निर्भर था कि स्थानीय नेतृत्व किस प्रकार का था, उनको जन साधारण का कितना समर्थन प्राप्त था, तथा उनके प्रति सम्बद्ध औपनिवेशिक देशों का दृष्टिकोण कैसा था। कुछ देशों में शासक औपनिवेशिक देशों के प्रति विरोध उस समय से ही था जब उन्होंने उपनिवेश स्थापित किए थे। दूसरी ओर, गोल्ड कोस्ट (घाना), नाईजीरिया, काँगो एवं अंगोला, जैसे कुछ उपनिवेश ऐसे भी थे जिनमें संघर्ष एशियाई देशों के स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् आरंभ हुए।

4.3.3.1

निम्नलिखित दो प्रतिमानों को प्रायः वामपंथी लेखकों ने उजागर किया–

(1) **राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन–** भारत सहित, अनेक देशों ने जिस प्रकार के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष अपनाएँ उन्हें राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन कहा गया। इन आंदोलनों का उद्देश्य विदेशी शासन का अंत करना तथा राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि स्वाधीनता आंदोलनों के नेताओं का मुख्य लक्ष्य औपनिवेशिक स्वामियों से राजनीतिक सत्ता को उपनिवेशों की जनता के हाथों में हस्तांतरित करवाना था।

उनका उद्देश्य विदेशी सरकारें के स्थान पर स्वदेशी सरकारों की स्थापना करवाना, तथा सशक्त एवं स्वतंत्र राज्यों की स्थापना करवाना था। आलोचको का कहना था कि इसका परिणाम केवल शासकों का परिवर्तन करना मात्र था। उदाहरण के लिए, भारत, श्रीलंका, नाइजीरिया, धाना तथा कीनिया इत्यादि में उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश शासन का अंत कर दिया जाए तथा स्थानीय विशिष्ट वर्गों के हाथों में सत्ता आ जाए। इन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों का उद्देश्य औपनिवेशिक समाज की तुरंत पुनर्सरचना करना नहीं था। वामपंथी विद्वानों ने इस प्रकार के संघर्ष को राजनीतिक परिवर्तन के लिए पूँजीवादी व्यवसायिक तथा नौकरशाही आंदोलन की संज्ञा दी।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों ने इस बात के प्रयास नहीं किए कि सामाजिक अथवा आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन किया जाए। उदाहरण के लिए भारतीय उपमहाद्वीप भारत और पाकिस्तान में सामाजिक व्यवस्था में जाति का प्रभाव पूर्ववत् बना रहा। इस

कारण सामाजिक अन्याय पहले जैसा ही रहा। आर्थिक क्षेत्र में पूँजीपति तथा ज़मींदार पहले की तरह श्रमिकों और कृषकों का शोषण करते रहे। औद्योगिक प्रबंधन शोषण पर आधारित बना रहा।

प्रबंधन में श्रमिकों को कोई भागीदारी प्राप्त नहीं हुई। न केवल यह, आवास और कार्य करने की परिस्थितियाँ एवं उनका वातावरण न तो स्वास्थ्य कर था और न कुशल जीवन के अनुकूल। ग्रामीण क्षेत्रों में किसान बड़े कृषकों और जमींदारों की दया पर निर्भर बने रहे। संक्षेप में यहा कहा जा सकता है कि केवल राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण हुआ, जबकि सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था पहले जैसी ही रही।

स्वाधीनता आंदोलन का संचालन उन राजनीतिक दलों और नेताओं ने किया जिनका मुख्य उद्देश्य राजनीतिक सत्ता परिवर्तन था। अधिकांश नेताओं ने ब्रिटेन, अथवा अन्य यूरोपीय देशों, में शिक्षा प्राप्त की थी। अधिकतर देशों में यह पाश्चात्य रूप धारण किए हुए नेतागण जन-नेता नहीं बन सके। इन आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि इस प्रतिमान में नेतृत्व को सत्ता प्राप्त करने के अवसर तो मिलें, परंतु जनसाधारण को अपनी कठिनाइयाँ दूर करने में कोई सहायता नहीं मिली।

4.3.3.2 राष्ट्रीय स्वतंत्रता (मुक्ति) आंदोलन-

इस प्रकार के आंदोलन देर से आरंभ हुए। कुछ थोडे से ही उपनिवेश ऐसे थे जिनमें ऐसे मुक्ति आंदोलन चलाए गए जिनके दो उद्देश्य थे। इन उपनिवेशवाद - विरोधी आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य था कि जनसाधारण को शोषण एवं अन्याय से मुक्त किया जा सके। साथ ही वे विदेशी शासन को पराजित करके जनता के लिए सत्ता का हस्तांतरण करवाना चाहते थे, विशिष्ट वर्ग या अभिजन (elite) के लिए नहीं। परंतु, इसमें संदेह है कि इन आंदोलनों के फलस्वरूप सचमुच जनसाधारण को अधिक लाभ प्राप्त हुआ हो। सत्ता हस्तांतरित होकर नेताओं के हाथों में ही गई। स्वतंत्रता (मुक्ति) संघर्ष का एक उत्तम उदाहरण वियतनाम है। हो ची मिन्ह के नेतृत्व में वियतनाम की कम्युनिस्ट पार्टी को लंबा संघर्ष करना पड़ा था। यह संघर्ष पहले तो फ्रांस के विरूद्ध हुआ जो अपना औपनिवेशिक अंकुश बनाए रखना चाहता था। वह ऐसा द्वितीय विश्व युद्ध में जापान की पराजय के पश्चात् पुनः हिन्द-चीन को अपने साम्राज्य में रखने का प्रयत्न कर रहा था। उसके बाद संयुक्त राज्य अमेरिका ने दक्षिण वियतनाम के पक्ष में हस्तक्षेप किया जहाँ एक दक्षिण पंथी सरकार स्थापित हो गई थी। उत्तरी वियतनाम हो ची मिन्ह की वामपंथी सरकार के शासन में था। अतः हो ची मिन्ह को दक्षिणी वियतनाम और उसके संरक्षक, अमेरिका के विरूद्ध संघर्ष करना पड़ा। परंतु, साथ ही वियतनाम के इस संघर्ष का लक्ष्य निर्धनता, निरक्षरता तथा शोषण इन सबका अंत करना था।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, या मुक्ति संघर्ष का उद्देश्य वियतनाम, काँगो तथा अंगोला जैसे देशों में यह था कि विदेशी शासन और हस्तक्षेप का अंत करके सामाजिक–आर्थिक संरचना में आमूल्य परिवर्तन किया जाए। इसका उद्देश्य सामाजिक–आर्थिक न्याय के साथ साथ जनता के हाथों में सत्ता सुनिश्चित करना था। यद्यपि पाश्चात्य आलोचकों ने इस प्रक्रिया को केवल साम्यवादी प्रभुत्व का नाम दिया, फिर भी आंदोलन के नेताओं का दावा था कि यह जनता के अधिकारों तथा उनकी स्वतंत्रता के लिए जन संघर्ष था, साथ ही यह विदेशी शासन, प्रभुत्व एवं हस्तक्षेप की समाप्ति के अतिरिक्त उस आंतरिक अन्याय का अंत भी करना चाहता था जिसके लिए थोडे से जमींदार और सम्पत्ति के स्वामी (पूँजीवादी) उत्तरदायी थे।

उपनिवेशवाद – विरोधी संघर्ष के दोनों प्रतिमान एक समान थे। दोनों प्रकार के आंदोलनों का उद्देश्य विदेशी उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद को उखाड़ फेकना तो था ही। अतः इनका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन से भारत, बर्मा (म्याँमार), श्रीलंका, कीनिया, नाईजीरिया, धाना इत्यादि फ्रांसीसी शासन से अल्जीरिया, आईवरी कोस्ट तथा हिन्द–चीन (लाओस, कम्बोडिया एवं वियतनाम) को, बैल्जियम से काँगो को, नीदरलैण्ड से इन्डोनेशिया को तथा पुर्तगाल से अंगोला एवं मुज़ाम्बीक को स्वतंत्र करवाना था। जहाँ यह उद्देश्य एक समान था, वहाँ स्वाधीनता आंदोलन तथा मुक्ति आंदोलन में अंतर यह था कि जहाँ स्वाधीनता संघर्ष का ध्येय विदेशी शासन से स्वतंत्रता अर्थात् स्वराज्य प्राप्त करना था, वहाँ स्वतंत्रता या मुक्ति संघर्ष शोषण के सभी रूपों को नष्ट करके सामाजिक और आर्थिक न्याय भी सुनिश्चित करना चाहते थे। मार्क्सवाद–लेनिनवाद से प्रेरित मुक्ति संघर्ष राजनीतिक स्वाधीनता के साथ–साथ सामाजिक क्रांति भी लाना चाहते थे।

4.4 भारतीय राष्ट्र राज्य की संस्थागत ढ़ाचे : उपनिवेशिक तंत्र के साथ निरंतरता और रूकावटेः– किसी राजनीतिक या समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से, राष्ट्रवाद के उद्भमों और आधारों को समझने के लिए लगभग तीन मुख्य रूपावलियाँ है। पहली, जो वैकल्पिक रूप से आदिमवाद या स्थायित्ववाद जानी जाती है, एक दृष्टिकोण है जो राष्ट्रवाद को एक प्राकृतिक दृग्विषय के रूप में वर्णित करता है। इस मत की यह धारणा है कि यद्यपि राष्ट्रत्व अवधारणा का औपचारिक ग्रंथन आधुनिक हो, पर राष्ट्र हमेशा से अस्तित्व में रहे है। दूसरी रूपावली संजातिप्रतीकवाद की है जो एक जटिल दृष्टिकोण है जो राष्ट्रवाद को पूरे इतिहास में एक गत्यात्मक, उत्क्रांतिकारी दृग्विषय के रूप में प्रसंगीकृत करके, और एक सामूहिक राष्ट्र के, ऐतिहासिक अर्थ से ओतप्रोत राष्ट्रीय प्रतीको से, व्यक्तिपरक संबंधों के एक परिणाम के रूप में राष्ट्रवाद की ताकत का आगे परिक्षण करके, राष्ट्रवाद को समझाने का प्रयास करता है। तीसरी, और सबसे हावी रूपावली है आधुनिकतावाद, जो

राष्ट्रवाद को एक हाल के दृग्विषय के रूप में वर्णित करती है, जिसे अस्तित्व के लिए आधुनिक समाज की संरचनात्मक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है।

क्या गठित करता है एक राष्ट्र को, इसके लिए कई परिभाषाएँ है, हालाँकि, जो राष्ट्रवाद की अनेक विभिन्न किस्मों की ओर ले जाती है। यह वह आस्था हो सकती है कि एक राज्य में नागरिकता किसी एक संजातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक या पहचान समूह तक सीमित होनी चाहिए, या वह हो सकती है कि किसी अकेले राज्य में बहुराष्ट्रीयता में आवश्यक रूप से अल्पसंख्यकों द्वारा भी राष्ट्रीय पहचान को अभिव्यक्त रूप से अल्पसंख्यकों द्वारा भी राष्ट्रीय पहचान को अभिव्यक्त करने और प्रयोग करने का अधिकार सम्मिलित होना चाहिए।

राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान और राष्ट्रीय पहचान के अन्य प्रतीक राष्ट्रीय समुदाय के उच्च रूप से महत्वपूर्ण प्रतीक आम तौर पर माने जाते है।

भारतीय राष्ट्रवाद–

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है जो कि एक भौगोलिक सीमाओं में एक निश्चित देश में रहता हो, समान परम्परा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्वकांक्षाएँ पाई जाती है। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्वों में राष्ट्रीयता की भावना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पायी जाने वाली सामुदायिक भावना है जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में राष्ट्रीयता की भावना का विशेषरूप से विकास हुआ, इस विकास में विशिष्ट बौद्धिक वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से एक ऐसे विशिष्ट वर्ग का निर्माण हुआ जो स्वतंत्रता को मूल अधिकार समझता था जिसमें अपने देश को अन्य पाश्चात्य देशों के समकक्ष लाने की प्रेरणा थी। पाश्चात्य देशों का इतिहास पढ़कर उसमें राष्ट्रवादी भावना का विकास हुआ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत के प्राचीन इतिहास से नई पीढ़ी को राष्ट्रवादी प्रेरणा नहीं मिली है किन्तु आधुनिक काल में नवोदित राष्ट्रवाद अधिकतर अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम है। देश में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए हुए नवोदित विशिष्ट वर्ग ने ही राष्ट्रीयता का झण्डा उठाया।

4.4.1 राष्ट्र राज्य :– उस राज्य (State) को कहते है जो राज्य की राजनैतिक सत्ता (entity) को उसकी सांस्कृतिक सत्ता से मिला देती है।

4.4.2 राष्ट्रवादः– राष्ट्रवाद एक जटिल, बहुआयामी अवधारणा है, जिसमें अपने राष्ट्र से एक साझी साम्प्रदायिक पहचान समावेशित है। यह एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में अभिव्यक्त होता है, जो किसी समूह के लिए ऐतिहासिक महत्व वाले किसी क्षेत्र पर साम्प्रदायिक स्वायत्तता, और कभी–कभी सम्प्रभुता हासिल करने और बनाए रखने की ओर उन्मुख है। इसके अतिरिक्त, साझी विशेषताओं, जिनमें आम तौर पर संस्कृति भाषा, धर्म राजनीतिक लक्ष्य और/अथवा आम पितरावली में एक आस्था सम्मिलित है, पर आधारित एक आम साम्प्रदायिक पहचान के विकास और रखरखाव की ओर यह और उन्मुख है। एक व्यक्ति की राष्ट्र के भीतर सदस्यता और संबंधित राष्ट्रवाद का उसका समर्थन, उसके सहगामी राष्ट्रीय पहचान द्वारा चित्रित होता है।

4.4.3 भारतीय राष्ट्रवाद का उदयः– भारतीय राष्ट्रवाद एक आधुनिक तत्व है। इस राष्ट्रवाद का अध्ययन अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। राष्ट्रवाद के उदय की प्रक्रिया अत्यंत जटिल और बहुमुखी रही है। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले देश में ऐसी सामाजिक संरचना थी जो कि संसार के किसी भी अन्य देश में शायद ही कही पाई जाती हो। वह पूर्व मध्यकालीन यूरोपीय समाजों से आर्थिक दृष्टि से भिन्न थी। भारत विविध भाषा–भाषी और अनेक धर्मों के अनुयायियों वाले विशाल जनसंख्या का देश है।

सामाजिक दृष्टि से हिन्दू समाज जो कि देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग है, विभिन्न जातियों और उपजातियों में विभाजित रहा है। स्वयं हिंदू धर्म में किसी विशिष्ट पूजा पद्धति का नाम नहीं है। बल्कि उसमें कितने ही प्रकार के दर्शन और पूजा पद्धतियाँ सम्मिलित है। इस प्रकार हिन्दू समाज अनेक सामाजिक और धार्मिक विभागों में बँटा हुआ है। भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना तथा विशाल आकार के कारण यहाँ पर राष्ट्रीयता का उदय अन्य देशों की तुलना में अधिक कठिनाई से हुआ है। शायद ही विश्व के किसी अन्य देश में इस प्रकार की प्रकट भूमि में राष्ट्रवाद का उदय हुआ हो। सर जॉन स्ट्रेची ने भारत की विभिन्नताओं के विषय में कहा है कि “भारत वर्ष के विषय में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण जानने योग्य बात यह है कि भारतवर्ष न कभी राष्ट्र था, और न है और न उसमें यूरोपीय विचारों के अनुसार किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक एकता थी, न कोई भारतीय राष्ट्र और न कोई भारतीय ही था जिसके विषय में हम बहुत अधिक सुनते है। इसी संबंध में सर जॉन शिले का कहना है कि “यह विचार की भारतवर्ष एक राष्ट्र है, उस मूल पर आधारित है जिसको राजनीति शास्त्र स्वीकार नहीं करता और दूर करने का प्रयत्न करता है। भारतवर्ष एक राजनीतिक नाम नहीं है वरन् एक भौगोलिक नाम है जिस प्रकार यूरोप या अफ्रीका।

उपरोक्त विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता प्रदान करने के स्थान पर

बाधाएँ पैदा करती है। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की विभिन्नताओं में मौलिक एकता
सदैव विद्यमान रही है और समय-समय पर राजनीतिक एकता की भावना भी उदय होती रही है।

भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक नीति एवं उसका प्रभाव-

भारतीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश प्रभाव मुगल शासक औरंगजेब की मृत्यु के बाद सहज ही परिलक्षित होने लगा था। मुगल शासकों द्वारा तत्कालीन यूरोपीय को दी गयी उदारतापूर्वक रियायतों ने स्वदेशी व्यापारियों के हितों को नुकसान पहुँचाया। साथ ही, व्यापार और वाणिज्यिक व्यवस्था भी कमजोर पड़ती गयी। ऐसी स्थिति में यहाँ की घरेजू अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

अंग्रेजों ने प्लासी (1757 ई) और बक्सर (1764 ई) के युद्धों के बाद बंगाल की समृद्धि पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। फलतः भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष तथा आत्मनिर्भरता मूलक अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। प्लासी के युद्ध के बाद से बंगाल के अंर्तदेशीय व्यापार में अंग्रेजों की भागीदारी बढ़ गयी। कंपनी के कर्मचारियों ने व्यापार के लिए प्रतिबंधित वस्तुओं जैसे नमक, सुपारी और तंबाकू के व्यापार पर भी अधिकार कर लिया। बंगाल विजय से पूर्व, अंगेजी सरकार ने अपने कपड़ा उद्योग के संरक्षण के लिए विविध प्रयास किए। इनमें भारत से आने वाले रंगीन तथा छपे हुए वस्त्रों के प्रयोग पर इंग्लैण्ड में प्रतिबंध आदि प्रमुख है। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य अपने उद्योगों के लिए अच्छा व सस्ता माल प्राप्त करना और अपने उत्पादों को भारतीय बाजार में ऊँची कीमतों पर बेचना था।

4.4.4 भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण-
(Different Stages of British Colonialism in India)

उपनिवेशवाद एक ऐसी संरचना होती है, जिसके माध्यम से किसी भी देश का आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न होती है। इस संरचना के अंतर्गत कई प्रकार के विचार, व्यक्तित्वों और नीतियों का समावेश किया जा सकता है। यही वास्तव में उपनिवेशवादी नीति का निर्णायक तत्व होता है। उपनिवेशवाद का मूल तत्व "आर्थिक शोषण" में निहित होता है, लेकिन किसी उपनिवेश पर राजनीतिक कब्जा बनाए रखने की दृष्टि से इसका भी अपना महत्व होता है।

कार्ल मार्क्स के भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद और आर्थिक शोषण के जिन तीन चरणों वाले सिद्धांत को आधार बनाया है, वे निम्नवत है-

1. वाणिज्यिक चरण : 1757 ई से 1813 ई.
2. औद्योगिक मुक्त व्यापार : 1813 ई से 1860 ई.
3. वित्तीय पूँजीवाद : 1860 ई के बाद की व्यवस्था

4.4.4.1 उपनिवेशवाद का प्रथम चरण : वाणिज्यिक चरण : 1757 ई से 1813 ई. –

(First Stage of Colonialism : Commercial phase)

इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कंपनी ने प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इसी समय से भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना मानी जाती है अर्थात् 1757 ई से 18वीं शताब्दी के आरंभ तक जब कि मुगल का पतन हो रहा है। इधर ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी कि साम्राज्यवादी मानसिकता स्पष्टतः पारिलक्षित होने लगी थी। उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में अंग्रेजों का ध्यान 'आर्थिक लूट' पर ही केन्द्रित रहा। कंपनी भारत के साथ व्यापार पर अपना वर्चस्व चाहती थी। जिससे कि उसके साथ प्रतिस्पर्धा करने वाला कोई अन्य ब्रिटिश अथवा यूरोपीय व्यापारी या व्यापारिक से दूर रखने के लिए कंपनी को फ्रांसीसियों तथा डचों के साथ भीषण लड़ाईयाँ लड़नी पड़ी। आरंभ में बंबई, कलकत्ता और मद्रास के जिन समुद्री क्षेत्रों पर कंपनी का नियंत्रण था, वहाँ की जनता पर कंपनी ने स्थानीय कर लगाने शुरू कर दिए और अपने खजाने को बढ़ाने की कोशिश की। शीघ्र ही कंपनी की यह अभिलाषा पूर्ण हो गई और प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल, बिहार और दक्षिण भारत के कुछ हिस्से कंपनी के अधीन आ गए। परिणामतः जीते गए क्षेत्रों की सरकारी आय पर कंपनी का पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। जमींदारों, नवाबों और स्थानीय शासकों कि जमा पूँजी हड़पने में यह नियंत्रण अत्याधिक कारगर सिद्ध हुआ।

4.4.4.2 उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण : औद्योगिक मुक्त व्यापार : 1813–60 ई .–

(Second stage of Colonialism : Industrial Free Trade – 1813-60)

सन् 1813 से भारत के व्यापार से कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया और यही से औद्योगिक पूँजीवाद द्वारा भारत के शाषणों का नया रूप सामने आया। यही कारण है कि भारत के साम्राज्यवादी शोषण के इतिहास में 1813 ई. के वर्ष को महत्वपूर्ण माना जाता है। ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् कई समस्याएँ उठ खड़ी हुई। इनमें

सब से प्रमुख समस्या थी कारखानों में बने माल के लिए बाजार खोजने की। सस्ती लागत पर तैयार ब्रिटेन के कपड़ों को भारतीय बाजारों में भेजा जाने लगा। ये कपड़े मिल में तैयार होते थे, इसलिए हाथ से बने भारतीय कपड़ों से सस्ते होते थे। परिणाम स्वरूप, अंग्रेजी कपड़ों की सस्ती कीमतों के आगे भारतीय कपड़े टिक नहीं सके। फलतः भारतीय वस्त्र उद्योग को जबर्दस्त धक्का पहुँचा। ब्रिटेन को आवश्यकानुसार कच्चा माल उपलब्ध करवाने की दृष्टि से उपनिवेशवाद कि इस अवस्था का अपना अलग ही महत्व था। इसका लक्ष्य भारत को ब्रिटेन के एक अधीनस्थ बाजार के रूप में विकसित करना था जिससे इसका आसानी से शोषण किया जा सके। भारत को औद्योगिक पूँजीवाद के अनुकूल बनाने के लिए स्थानीय शिल्प उद्योगों को नष्ट कर एक कृषि प्रधान देश के रूप में परिवर्तन करना अंग्रेजों की एक सोची समझी कार्यनीति का हिस्सा था।

4.4.4.3 उपनिवेशवाद का तृतीय चरण : वित्तीय पूँजीवाद (1860 ई के पश्चात) (Third stage of Colonialism : Financial Capitalion – After 1860)

औद्योगिक विकास एवं औपनिवेशिक बाजारों के शोषण के परिणामस्वरूप ब्रिटेन में बड़ी पूँजी जमा हो गई। उद्योगपतियों की बढ़ती हुई संपत्ति के फलस्वरूप मजदूर वर्ग को संगठित होने कि प्रेरणा मिली। इंग्लैण्ड में और अधिक औद्योगिकरण का अर्थ था मजदूरों की सौदेबाजी में वृद्धि होना तथा पूँजीपतियों के मुनाफे पर विपरीत असर पड़ना क्योंकि यह वहीं समय था जब मार्क्स एवं एंजिल्स का ‘द कम्पयुनिस्ट मैनीफेस्टा अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो चुका था। अतः पूँजी को भारत में निवेश करना उचित समझा गया। इसी स्थिति को पूँजीवाद के तृतीय चरण के आरंभ के रूप में माना जाता है।

अपनी व्यवसायिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार रेल लाइनों का विकास आवश्यक मानती थी। रेल निर्माण कि दिशा में भारत में प्रथम प्रयास 1846 ई में लॉर्ड डलहौजी ने किया। प्रथम रेल्वे लाइन 1853 ई में बंबई तथा थाणे के बीच बिछाई गयी। वैसे भारत में रेल्वे लाइन का सर्वाधिक विस्तार लॉर्ड कर्जन के समय में हुआ। अंग्रेजों द्वारा वाणिज्यिक और सामरिक उद्देश्यों से भारत में विधायी गई रेल का कार्ल मार्क्स ‘आधुनिक युग के अग्रदूत’ की संज्ञा दी। रेल निर्माण के क्षेत्र में विनियोजित पूँजी वित्त प्रणाली कि विशेषता को दर्शाती है, जिसे गारंटी प्रणाली कहा गया। अंग्रेजों ने सूती मिलों एवं इस्पात की फैक्ट्रियों में पूँजी का विनियोग नहीं किया। वे अपने देश के उद्योगों के साथ प्रतियोगिता में नहीं आना चाहते थे। रेल निर्माण के बाद जिनके विकास को सर्वाधिक पूँजी लगी, वे थे – चाय, कॉफी, रबर, नील आदि के बागान। भारत के विशाल बाज़ार पर कब्जा करने के लिए भारत में ही उद्योगों की स्थापना के महत्व से उद्योगपति परिचित थे। ऋण की राशि 1857 ई. में जहाँ 7 करोड़ पाउण्ड थी, 1939 ई.

में बढ़कर 88 करोड़ 42 लाख पाउण्ड हो गई थी। इस पर ब्याज तथा लाभांश भी भारत को ही देना पड़ता था।

4.5 इकाई सारांश–

उपनिवेशवाद में यूरोपीय शक्तियों ने एशियाई–अफ्रीकी देशों को आर्थिक शोषण हेतु अपने उपनिवेशों में बदल लिया था। यह उपनिवेश केवल कच्चे माल की आपूर्ति के साधन तथा शासकों के उत्पादित माल के बाजार बनकर रह गए थे। राजनीतिक तौर पर सम्बद्ध यूरोपीय देश उन पर शासन करने लगे। अतः वे यूरोपीय शक्तियों जैसे ब्रिटेन, फ्रांस, पुर्तगााल जर्मनी, स्पेन, बेल्जियम तथा हॉलैण्ड के औपनिवेशिक एवं साम्राज्यवादी नियंत्रण में आ गए। जर्मनी को प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अपने सभी उपनिवेशों को त्याग देना पड़ा था। सभी उपनिवेशों के लोगों को धीरे–धीरे यह विश्वास हो गया था कि जब तक वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तब तक उनका सामाजिक आर्थिक राजनीतिक शोषण होता रहेगा।

उपनिवेशों की जनता द्वारा अपनी मुक्ति के लिए उपनिवेशवाद–विरोधी संघर्ष किए गए। अपने संघर्ष में सभी उपनिवेशों में न तो कोई एक समान प्रतिमान उपनाए गए और न कोई एक जैसे साधन या उपाय प्रयोग किए गए। सामान्यतया, दो प्रमुख प्रतिमान अपनाए गए। वे थे (1) राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन तथा (2) राष्ट्रीय स्वतंत्रता (मुक्ति) आंदोलन।

भारत, कीनिया, धाना, बर्मा इत्यादि देशों में स्वाधीनता आंदोलन हुए। इन आंदोलनों का उद्देश्य औपनिवेशिक शक्तियों की पराजय तथा यूरोपीय शासकों से स्थानीय जनता को राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण। राष्ट्रीय स्वतंत्रता (मुक्ति) आंदोलन के दो उद्देश्य थे। वे राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन भी चाहते थे। यह आंदोलन सामाजिक–आर्थिक पुनर्निर्माण में विश्वास रखते थे।

4.6 अपनी प्रगति की जाँच करें–

Q.1) राष्ट्रवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

Q.2) उपनिवेशवादी विरोधी संघर्ष के प्रतिमानों की व्याख्या कीजिए ?

4.7 निहित कार्य–

Q.1) एक आधुनिक तत्व के रूप में भारतीय राष्ट्रवाद के उदय को समझाइए ?

4.8 चर्चा / स्पष्टीकरण के बिंदु–

4.8.1 चर्चा के बिन्दु

____

4.8.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

____

4.9 संदर्भ ग्रंथ–

5. एन.सी.ई.आर.टी. (2006) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन I, कक्षा–VI , पाठ्यपुस्तक ईकाई 2,3
6. एन.सी.ई.आर.टी. (2007) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन II, कक्षा–VII , पाठ्यपुस्तक ईकाई 1,2
7. एन.सी.ई.आर.टी. (2008) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन III, कक्षा–VIII , पाठ्यपुस्तक ईकाई 1,2,4
8. इग्नू, ईकाई 10 – भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ब्लॉक 3, आजाद भारत का उद्भव (एफ.एच.एस)

D.El.Ed. 02

खण्ड – 3

इकाई–1 :भारतीय संविधान का निर्माण

(Making of the Constitution of India)

संरचना

1.1 परिचय (Introduction)

1.2 उद्देश्य (Objectives)

1.3 मानव समाजः प्रमाणिक संबंध (Human Society: Normative Relations)

1.4 भारतीय समाजः विभिन्न प्रमाणिक संरचनाएँ– एक समालोचनात्मक समझ (Indian Society : Multiple Normative Frameworks – A Critical Understanding)

1.5 आधुनिक भारतीय समाजः संवैधानिक मानक संरचना (Modern Indian Society: Constitutional Normative Frameworks)

1.6 संविधानः अभिप्राय और कार्य (Constitution: Meaning and Functions)

1.7 संविधान सभा का निर्माणः प्रकृति (स्वरूप) और कार्य (Fornation of Constitution Assemble: Nature and Functions)

1.8 ईकाई सांराश (Unit Summary)

1.9 अपने प्रगति की जांच करें (Check your Progress)

1.10 सत्रगत कार्य / गतिविधियाँ (Assignment /Activities)

1.11 चर्चा के बिन्दु (Points to be Discussion)

1.12 संदर्भ (References)

1.1 परिचय (Introduction)-

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को अपने भाग्य के निर्माण का अवसर मिला। उसे अपने सामाजिक आदर्श स्थापित करने का उत्तरदायित्व प्राप्त हुआ। अपनी शासन व्यवस्था अपने संकल्पों के अनुरूप चलाने का भार भारतीयों के अपने कन्धो पर आया। भारतीयों ने अपना संविधान बनाया जो भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में शासन तथा राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है। संविधान एक ऐसा दस्तावेज है जिसके अनुसार भारत ही नहीं किसी भी देश की सरकार का कार्य चलाया जाता है। संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों के आपसी संबंधों तथा सरकार एवं नागरिकों के संबंधों को वर्णन रहता है। इसमें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के उत्तरदायित्वों का ब्यौरा होता है। संविधान में राष्ट्रीय उद्देश्यों का भी उल्लेख किया जाता है। भारतीय संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। संविधान को बनाने में 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिन लगे। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान को पूरी तरह संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया तथा 24 जनवरी, 1950 को सभी सदस्यों के इस पर हस्ताक्षर हो गए और 26 जनवरी 1950 से सम्पूर्ण देश में इसे लागू कर दिया गया। संविधान में सामाजिक न्याय को अपना आदर्श माना गया है। भारत में भारतीय संविधान के अनुसार कार्य किया जा रहा है। प्रस्तुत इकाई में मानव समाज, भारतीय समाज, आधुनिक भारतीय समाज तथा संविधान की अवधारणा एवं संविधान सभा के बारे में उल्लेख किया गया है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- मानव समाज के बारे में समझ सकेंगे।
- भारतीय समाज की जानकारी हो सकेगी।
- आधुनिक भारतीय समाज के बारे में समझ सकेंगें।
- संविधान निर्माण के बारे में समझ सकेंगें।
- संविधान की अवधारणा एवं कार्य जानकर बच्चों को समझा सकेंगें।
- संविधान सभा का निर्माण, उसकी प्रकृति एवं कार्य के बारे से जान सकेंगें।

1.3 मानव समाजः प्रमाणिक संबंध (Human Society: Normative Relations)

समाज मनुष्यों का एक महान सामूहिक एकत्रीकरण है जिसमें एक सामान्य संस्कृति रीतिरिवाज और संचार तथा संप्रेषण का एक माध्यम होता है। इसकी निरन्तरता तथा समय के साथ वृद्धि विवाह बन्धन से तथा समाज द्वारा मान्य पद्धतियों का सहारा लेकर सुनिश्चित किया जाता है। यह मनुष्यों की एक संगठित स्वतंत्र इकाई है जिनकी रूचियाँ समान हैं, जो एक जैसी ही ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विरासत की सहभागिता करते हैं, एक समान पंरपराओं तथा रीतिरिवाजों का पालन करते हैं, अपने मानकों के अनुसार जीते हैं तथा ऐसी विधियों का सहारा लेते हैं जो लोगों के कल्याण तथा प्रगति के लिए आवश्यक हों। ये एक जैसी प्रवृत्तियाँ, एकता की भावना का पोषण करती हैं तथा समाज में सम्बद्धता का सृजन कर एक समान आकांक्षाओं की सृष्टि करती हैं।

समाज के सदस्यों के बीच लगातार पारस्परिक संसर्ग चलता रहता है। वे एक दूसरे से बातचीत करते हैं तथा सामान्य सामाजिक घटनाओं तथा समान हित के मुद्दों पर विचार विमर्श करते रहते हैं। यह सामाजिक जीवन की अवधारणा का जन्म देता है। इस प्रकार के सामाजिक जीवन की प्रकृति समाज के सदस्यों के बीच होने वाले पारस्परिक वार्तालाप तथा क्रिया–प्रतिक्रिया की प्रकृति पर निर्भर करता है। मुक्त समाजों का मुक्त सामाजिक जीवन उनके सदस्यों के बीच चलने वाले स्वतंत्र व स्पष्ट क्रिया–प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है।

अतः मानव समाज की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ होती हैं:

- सामान्य क्षेत्र
- सामान्य ऐतिहासिक तथा सांसकृतिक विरासत
- संप्रेषण कुशलता, भाषा
- घनिष्ट अन्योन्य क्रिया
- सामान्य रीति रिवाज
- एकता तथा आपसी प्रेम
- सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक जीवन की आचार संहिता
- सामान्य आकांक्षाएँ

मानव और समाज का व्यवस्थित अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाता है जो एक अकादमिक विषय है। यह सभ्यता तथा संस्कृति की धारा को समझने तथा उसे निर्धारित करने का प्रयास करता है। भौतिकीय मानव विज्ञानी, अन्य समाज विज्ञानी तथा सामाजिक मनौवैज्ञानिक अप्राप्त कड़ियों का अध्ययन करने तथा उनकों स्पष्ट चित्र का सजृन करते हैं।

समाज शास्त्र का मुख्य क्षेत्र है ‘सामाजिक संगठन’। इसके अंतर्गत छोटे से छोटे परिवार से लेकर अति जटिल राष्ट्र जिसमें धार्मिक, शैक्षिक, औघोगिक तथा राजनीतिक संस्थाएँ तथा सार्वभौमिक मानवता का समावेश है, के मानव समूहों की संपूर्ण श्रेणी समाहित होती है।

सामाजिक स्तरीकरण मानव समाज की एक चारित्रिक विशेषता है। ये विशेषताएं निम्नांकित द्वारा निर्धारित होती हैं:

- यह केवल व्यक्तिगत विभिन्नताओं का कृत्य नहीं है
- यह पीढ़ियों तक स्थायी रहता है, समाज से उत्पन्न होता हैः
- यह सार्वभौमिक है परन्तु एक समान नहींः
- इसमें न केवल असमानता बल्कि मान्यताओं का भी समावेश होता है।

मानव समाज जातियों में संगठित है। एक विशुद्ध जाति बद्ध होती है। जाति प्रथा, सामान्यतया कृषि आधारित समाजों की विशिष्टता होती है। मनुष्य कई हजार जाति समूहों में से एक में जन्म लेते हैं। मनुष्यों के जीवन का रूप इस बात से काफी हद तक प्रभावित होता है कि वे किस जाति में जन्म लेते हैं।

- एक जाति के परिवार सामान्यतया पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कार्य को ही करते रहते हैं। एक कृषि प्रधान समाज में, सामान्यतया, कुछ व्यवसाय जैसी खेती सबके लिए खुला हो सकता है। परन्तु साधारणतया जातियों को उनके सदस्यों द्वारा किये जाने वाले कार्यों से ही जाना जाता है (नाई, लुहार, सुनार, बढ़ई, चर्मकार, कुम्हार, धोबी, पुजारी, आदि।)

- लोग अपनी जाति के भीतर ही विवाह करते हैं।
- लोग सामान्यतः यह विश्वास करते हैं कि उन्हें स्वतः ही जो कर्त्तव्य मिले हैं उनका निष्ठापूर्वक निर्वाह कर के ही वे अपने जीवन की आशाओं तथा आकांक्षाओं की भलीभाँति पूर्ति कर सकते हैं।
- लोग अपनी जाति से गर्व महसूस करते हैं तथा कुल परंपरा को विगत के किसी संत अथवा ऋषि से जोड़ते हैं तथा वे जिन मूल्यों के कारण प्रसिद्ध हुए इनका अनुसरण करने की चेष्टा करते हैं।
- लोगों का मानना है कि किसी भी जाति विशेष के अंतर्गत उनका जन्म चार पुरूषार्थों यथा धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष, की प्राप्ति में किसी भी ऊँचाई तक जाने में बाधक सिद्ध नहीं होता।

यातायात के साधनों तथा अधिक गतिशीलता, नये आर्थिक अवसरों, नए कौशलों को अर्जित करने के नए–नए अवसर आदि के फलस्परूप भारत के ग्रामीण अंचलों में पारंपरिक धंधों की पकड़ ढीली पड़ती जा रही है जिसके कारण लोग नए अवसरों की खोज में शहरी इलाकों की ओर पलायन कर रहे हैं। इस प्रकार धंधों और सामाजिक स्थिति के संदर्भ में आज जाति प्रथा ने अपने अर्थ को खो दिया है।

1.4 भारतीय समाजः विभिन्न प्रमाणिक संरचनाएँ– एक समालोचनात्मक समझ (Indian Society:Multiple Normative Frameworks – A Critical Understanding)

वैदिक युग में परिवार का प्रमुख पिता होता था। कई परिवारों के समूह का भी वर्णन मिलता है। आर्य अपने को 'पंचयन' कहते थे। 'पंचयन' के अतिरिक्त ग्राम एवं नगर का भी वर्णन मिलता है। आर्यो के व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन विशेष रूप से थे। समाज में सम्मान की दृष्टि से गायों की संख्या का विशेष महत्व था। खेती–बाड़ी के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी प्रचलित थे। आर्य लोगों में ताँबे एवं सोने की वस्तु–विनिमय का प्रयोग होता था। स्त्रियों को सम्मान का स्थान प्राप्त था। व्यापार में भी आर्य चतुर थे। स्त्री–शिक्षा भी थी। लगभग इसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था उपनिषद् काल एवं बौद्धकाल में भी थी। मौर्य राजाओं के शासन काल में सन्यासी जीवन सार्वजनिक रूप से स्वीकृत था। भारतीय समाज चार वर्णो में विभक्त था ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। चार आश्रमों के अनुसार लोग जीवनयापन करते थे। दासों के साथ दयालुता का व्यवहार था। अशोक ने लंका, ब्रह्मा आदि के देशों को धर्मदूत भेजे थे। इससे स्पष्ट होता है कि समुद्री यात्रा का भी प्रचलन था। अशोक ने अनेक शिलालेख एवं स्तम्भलेखों से शिल्पकला की श्रेष्ठता का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

भारतीय समाजिक विचारों का आधार मनुष्य और उसकी अमर आत्मा, मानव धर्म और मानव सेवा, राष्ट्र के उत्थान की आवश्यकता, भारत और विश्व एक–दूसरे के पूरक, अध्यात्म और विज्ञान तथा पूर्व और पश्चिम में समन्वय जैसे बिन्दु हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति विशेषकर हिन्दुत्व की दृष्टि से जो श्रेष्ठ तत्व हैं, उनका मूल्य शाश्वत है और इन जीवन मूल्यों को अपनाकर ही विश्व में भारत का स्थान ऊँचा है। दूसरे देश के लोग भी भारत के नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर भारत से प्रेम करने लगे हैं।

मध्ययुग में शासन–व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए। मुगलों के समय में शासन में पर्याप्त स्थिरता आयी। मध्ययुग के समाज को हम सामन्तिक आधार पर संगठित पाते हैं। बादशाह एवं सामन्तों के दरबार बड़े आकर्षक होते थे। उनमें अनेक प्रकार के विद्वान् रहते थे। राज्यश्रित व्यक्तियों का जीवन–स्तर उच्च कोटि का था। किन्तु साधारण जनता अपने जातीय व्यवसायों में लगी रहती थी। जनता का जीवन स्तर साधारण था। दरबारों की सजधज एवं विलासिता की नकल कुछ उच्च कोटि के लोग कर रहे थे। कादम्ब एवं कामिनी की ओर आकर्षण बढ़ रहा था। ऐसे ही समय डच. एवं पूर्तगाली व्यापारी भारत में आये। इस समय समाज में बाल–विवाह एवं सती प्रथा जैसी कुरीतियाँ व्याप्त थी। हिन्दु एवं मुसलमान दोनों ही ज्योतिष में विश्वास रखते थें दहेज प्रथा भी प्रचलित थी। हिन्दु एवं मुसलमान दोनों में पर्दा प्रथा प्रचलित थीं इस प्रकार के समाज का जर्जर होना स्वभाविक था। अंग्रेज व्यापार करने के लिए जब आये तब उन्होंने यहाँ की कमजोरियों को भाँप लिया। धीरे–धीरे उन्होंने शासन पर अपना अधिकार कर लिया।

अंग्रेजों ने कुछ समय तक समाज की प्रथाओं की ओर ध्यान नहीं दिया। वे समाज–सुधारकों को सहायता प्रदान करते रहे। अनेक समाज–सुधारकों ने समाज की बुराइयों को पहचाना। राजा राममोहन राय ने सती–प्रथा को समाप्त करने के लिए विशेष कार्य किया। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह की नियमित स्वीकृति प्राप्त की। श्री केशवचन्द्र सेन ने शराबबन्दी एवं अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। ब्रह्म समाज ने हिन्दू समाज के आध्यात्मिक पक्ष पर बल दिया। यह सब कार्य उन सुधारवादियों द्वारा किया जा रहा था जिन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की थी। अंग्रेजी शिक्षा पर ब्रिटिश सरकार ने बड़ा बल दिया। कुछ समय तक तो ब्रिटिश सरकार की भाषा संबंधी नीति अस्पष्ट थी किन्तु मैकाले के प्रयत्नों के परिणामस्परूप अंग्रेजी की ओर ही सरकार अभिमुख हुई। मैकाले अंग्रेजी के माध्यम से एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता था जिसके सदस्य रंग रूप से तो भारतीय हों किन्तु विचारों से युरोपिय। ब्रिटिश शासन काल में निस्सन्देह ऐसे अनेक व्यक्तियों का निर्माण हुआ। जहाँ तक इस समय की देनों का संबंध है, हम स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि मजदूरों की दास्ता की स्थिति से ऊपर उठाने के कार्य में, समाज में प्रभावशाली मध्यम वर्ग के विकास में, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के सुधार में, जाति–प्रथा के खण्डन में तथा पूँजीपति वर्ग के उत्थान में ब्रिटिश शासन एवं अंग्रेजी भाषा ने विशेष योगदान दिया है। किन्तु इस समय समाज में अन्य कुरीतियाँ आने लगी थीं। लोग अपनी संस्कृति को भूल रहे थे। अपनी भाषा की अवनति पर उन्हें क्षोभ नहीं था। इस ओर आर्य समाज ने विशेष ध्यान दिया।

स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहनराय एवं महात्मा गाँधी आदि भारतीय महापुरूषों ने भारतीय समाज के उत्थान के लिए अथक प्रयास किये और समाज के उन्नयन हेतु समाज का मार्गदर्शन किया लेकिन यह तभी सम्भव है जबकि प्रत्येक भारतवासी में निम्नलिखित तीन बातें हों–

1. सदाचार की शक्ति में विश्वास।
2. ईर्ष्या और संदेह का परित्याग।
3. जो सत्कर्म करना चाहते हैं या कर रहे हैं, उनकी सहायता करना।

जब किसी समाज के सदस्य सदाचार का पालन करते हैं, तब एक विशेष प्रकार की सामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है और यह सामाजिक एकता को मजबूत बनाती हैं। दूसरी ओर ईर्ष्या और सन्देह के सामाजिक दोष है। इन दोषों को हमें छोड़ना होगा।

भारतीय समाज के सामाजिक उद्देश्य

जनतांत्रिक आदर्शों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा के निम्नलिखित सामाजिक उद्देश्य हैं।

- प्रजातान्त्रिक नागरिकता का विकास
  - ➢ स्पष्ट
  - ➢ स्पष्ट सूझ–बूझ
  - ➢ समुदाय में रहने की कला
  - ➢ देश भक्ति
  - ➢ विश्व बन्धुत्व
  - ➢ नैतिक मूल्य
- व्यावसायिक कुशलता
  - ➢ कार्य के प्रति क्रियात्मक दृष्टिकोण
  - ➢ तकनीकी कुशलता तथा स्वावलम्बन
- व्यक्तित्व विकास
  - ➢ रचानात्मक शक्ति का विकास
  - ➢ उत्तम रूचि
  - ➢ कला–शिल्प आदि का महत्व जानना
  - ➢ भावात्मक विकास
- नेतृत्व के गुणों का विकास
  - ➢ उचित समय पर आदेश देने की तथा पालन कराने की क्षमता
  - ➢ अपूर्व साहस तथा चिन्तन
  - ➢ संगठन की मर्यादा रखना
  - ➢ स्वयं अनुशासन का पालन करना

भारतीय समाज का समाजवादी ढाँचा

स्वतन्त्रता संग्राम के नेताओं ने स्वतन्त्र भारतीय समाज की परिकल्पना की थी। गांधी जी के कई आन्दोलनों से स्पष्ट होता है कि वे राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ–साथ आन्दोलन सामाजिक पक्षों पर भी आधारित थे। उदाहरणर्थ खादी का विकास, घरेलु तथा कुटीर धन्धों का विकास, हरिजन सुधार आन्दोलन, नशाबंदी, बेसिक शिक्षा आन्दोलन आदि समाज में नए ढाँचे सं संबंधिंत थे। वर्ष 1937 में भारत के नौ राज्यों में (उस समय कुल 11 राज्य थे) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकारें गठित कीं। इन सरकारों ने कई ऐसे कार्य किए जो समाजवादी ढँाचे से तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थः

1. श्रमिक संघों को अपनी गतिविधियाँ चलाने की अनुमति दीं।
2. कृषि कानून पारित करके काश्तकारों को कई प्रकार के अधिकार दिए। ऋणग्रही किसानों की सुरक्षा की व्यवस्था की।

3. चुने हुए क्षेत्रों में नशाबन्दी लागू की।
4. खादी तथा कई कुटीर धन्धों को संरक्षण दिया।
5. बुनियादी शिक्षा की सामाजिक क्रान्ति का अग्रदूत मा

- **समाज के सामाजिक ढाँचे के निर्माण हेतु मूलभूत सिद्धान्त**

समाज के सामाजिक ढाँचे के निर्माण हेतु निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्त हैंः

1. समता का सिद्धान्त
2. समान अधिकारों का सिद्धान्त
3. सभी को रोजगार उपलब्धि का सिद्धान्त
4. सभी के लिए रोजगार के समान अवसरों का सिद्धान्त
5. पर्याप्त भोजन व्यवस्था का सिद्धान्त
6. सभी के लिए स्वास्थ्य का सिद्धान्त
7. सामाजिक बराबरी का सिद्धान्त
8. समान न्याय का अधिकार
9. काम का अधिकार
10. शिक्षा का अधिकार
11. राष्ट्रीय सम्पदा के अधिकतम उत्पादन का सिद्धान्त
12. अधिकतम राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त
13. सभी नागरिकों के व्यक्तित्व की गरिमा का सिद्धान्त
14. सामाजिक तथा आर्थिक न्याय का सिद्धान्त
15. शांतिपूर्ण, अंहिसात्मक तथा प्रजातान्त्रिक विधियों के प्रयोग का सिद्धान्त
16. आधारभूत जीवन सुविधाओं के प्रावधान का सिद्धान्त

- **संविधान की प्रस्तावना में दर्शायी गई भारतीय समाज की व्यवस्था**

'हम, भारत के लोग', भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों कोः सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सवंत् दो हजार छः विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।

तद्नुसार भारतीय नीति के निम्नलिखित मूल्य दृष्टिगोचर होते हैंः

1. समाजवाद पर आधारित समाज
2. पंथनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित समाज
3. लोकतन्त्र पर आधारित समाज
4. समानता अथवा समता पर आधारित समाज
5. बन्धुत्व पर आधारित समाज
6. व्यक्ति स्वतंत्रता पर आधारित समाज
7. न्याय पर आधारित समाज

समाज के इन सब आदर्शों की पूर्ति हेतु संविधान में मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निर्देशक तत्व में अनेक प्रावधान किए हैं:

1. भारतीय समाज के मूल अधिकार

भारतीय संविधान में नीचे लिखे मूल अधिकार सभी नागरिकों को दिए गए हैं:-

1. समानता अथवा समता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार
5. संस्कृति तथा शिक्षा का अधिकार
6. संवैधानिक उपचारो का अधिकार

(I) समानता अथवा समता का अधिकारः- इसके अन्तर्गत नीचे लिखे तत्व शामिल हैं:

(1) विधि के समक्ष समानता-धारा 14

(2) धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रविषेध धारा-15

(3) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता

(4) अस्पृश्यता (छुआछूत) का अन्त

(II) स्वतंत्रता का अधिकार इसके अन्तर्गत नीचे दिए तत्व शामिल हैं:

(i) वाक्स्वतंत्रता तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता धारा-19(a)

(ii) शान्तिपूर्वक तथा अधियारों के बिन इकट्ठे होना-धारा-19(b)

(iii) संघ बनाने का अधिकार धारा-19(c)

(iv) भारत में अबाध आने जाने का अधिकार धारा-19(d)

(v) भारत के किसी भी भाग में निवास करने तथा बसने का अधिकार धारा-19(e)

(vi) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार

(vii) शिक्षा का अधिकार धारा-21 : इस धारा को वर्ष 2002 में जोड़ा गया।

(viii) शिक्षा का अधिकार अधिनियम- 2009

(III) शोषण के विरूद्ध अधिकार इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व शामिल हैं।

(i) मानव के दुर्व्यापार तथा जबरन श्रम का प्रतिवेध-धारा 23

(ii) कारखानों आदि में बच्चों के कार्य करने का प्रतिवेध-धारा 24

(IV) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार इसके अन्तर्गत नीचे लिखे तत्व शामिल हैं।

(i) अंतःकरण की और धर्म को मानने की, आचरण तथा प्रचार की स्वतंत्रता का अधिकार -धारा 25

(ii) धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता-धारा 26

(iii) किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के भुगतान के बारे में स्वतंत्रता-धारा

26

(iv) कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता–धारा 28

(V) संस्कृति तथा शिक्षा का अधिकार इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तत्व शामिल हैं।

(i) अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण–धारा 29

(ii) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने के अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार –धारा 30

(VI) संवैधानिक उपचारो का अधिकार– धारा–32, धारा–33, तथा धारा–34

राज्य की नीति के निदेशक तत्व

भारतीय संविधान के भाग IV में 16 धाराओं में सिद्धान्त दिए गए हैं। कुछ विचारकों को कहना है कि इन सिद्धान्तों के अनुसार यदि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें कार्य करें तो भारत पृथ्वी पर स्वर्ग बन जाएगा। इन सिद्धान्तों की भारतीय समाज के नवनिर्माण में विशेष भूमिका है। इसके अनुसार समाज के विकास के लिए कई कार्य किए गए हैं परन्तु बहुत कार्य करने की आवश्यकता है। इन सिद्धान्तों पर विस्तृत रूप से पहले चर्चा की गई है। यहाँ पर संक्षेप में इनका उल्लेख किया जा रहा है।

1. न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था–धारा 38 (1)
2. असमानता को कम से कम करना–धारा 38 (2)
3. आर्थिक न्याय को सुरक्षित करने के सिद्धान्त–धारा 39
4. समान न्याय तथा निःशुल्क कानूनी व्यवस्था–धारा 39
5. ग्राम पंचायतों का संगठन–धारा 40
6. कार्य, शिक्षा और सार्वजनिक सहायता का अधिकार–धारा 41
7. प्रसूति सहायता के लिए न्यायोचित और सहानुभूतिपूर्ण परिस्थितियों का प्रबन्ध–धारा 42
8. श्रमिकों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि–धारा 43
9. उद्योगों के प्रबन्धन में कार्यकर्त्ताओं की भागेदारी–धारा 43A
10. समरूप व्यवहार सिद्धान्त–धारा 44
11. छः वर्ष से कम बच्चों के लिए शिशु देखभाल तथा शिक्षा का प्रावधान–धारा 45
12. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शैक्षिक तथा आर्थिक हितों की अभिवृद्धि –धारा 46
13. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करना तथा जन स्वास्थ्य सुधार –धारा 47
14. कृषि और पशुपालन का संगठन–धारा 48
15. पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा–धारा 48 A

नवीन सामाजिक व्यवस्था निर्माण करने में नागरिकों के कर्त्तव्य

भारतीय संविधान में जहाँ एक ओर भारतीय नवीन सामाजिक व्यवस्था निर्माण में केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के उत्तरदायित्वों पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ पर इस नव निर्माण कार्य के लिए देश के नागरिकों की जिम्मेदारी भी दर्शायी गई है। भाग IVA धारा 51 A में नागरिकों के 10 मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है।

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वहः

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।

2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए और उनका पालन करें।

3. भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण रखें।

4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।

5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निमार्ण करे जो धर्म, भाषा और क्षेत्र या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं को त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हैं।

6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका परिक्षण करे।

7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करें तथा प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव रखें।

8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।

9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें।

10. व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की और बढ़ने का सत्त प्रयास करें जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाईयों को छू ले।

11. यदि माता-पिता या संरक्षक है, छः वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करें।

1.5 आधुनिक भारतीय समाजः संवैधानिक मानक संरचना
(Modern Indian Society: Constitutional Normative Frameworks)

आधुनिक समाज को विज्ञान के नवीन ज्ञान तथा प्रौद्यागिकी के नवीन अविष्कारों का लाभ मिला है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, तीव्रतर यातायात के साधन, तुरन्त संप्रेषण, नागरिकों के कल्याण के प्रति जागरूक सरकार का गठन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा भूमण्डलीय के कारण आधुनिक मानव जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो गये हैं।

आधुनिक समाज का मानव आज जीवन की सभी सुख-सुविधाओं का आनन्द लेता है जैसे आरामदायक घर, विद्युत, टी.वी., कूलर, ए.सी. यातायात के साधन तथा दूर-संचार। आधुनिक युग के विभिन्न साधन मानव की, निम्नलिखित विशेषाधिकारों तक पहुँच है-

1. शहरी इलाकों में मनुष्य का जीवन आरामदायक है।

2. प्रशिक्षण ओर शिक्षा के माध्यम से उसने बेहतर बुद्धि तथा कौशलों का विकास किया है।

3. एक सुरक्षित तथा आरामदायक जीवन बिताने के लिए उसने सुरक्षा और सम्पत्ति के अधिकारों को प्राप्त किया है।

4. वह अनेक सुसंगठित संस्थाओं जैसे परिवार, विद्यालय, गिरजाघर, सरकारी, बैंक आदि का लाभ उठाता है।

5. उच्च स्तर के जीवन का आनन्द उठाने के लिए उसके पास बेहतर पर्यावरण तथा अधिक संसाधन मौजूद हैं।

6. जीवन के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं में उसकी गतिशीलता अब अधिक है।

7. गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में उसे अनेक अत्याधुनिक औजारों तथा मशीनों जैसे कम्प्यूटर के उपयोग तक उसकी पहुँच है।

आधुनिक युग में आधुनिक मानव को विकास का लम्बा अनुभव तथा उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञान का लाभ मिला है। औद्योगिक क्रान्ति ने भारतीय समाज में औद्योगिकीकरण तथा आधुनिकीकरण का समावेश किया है मानव आज कम्प्यूटर तथा सूचना प्रोद्योगिकी क्रान्ति के युग में प्रवेश कर गया है।

आधुनिक सभ्य तथा सुसंस्कृत मानव की विशेषताएँ : आधुनिक सभ्य मानव में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

- जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान करने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान का विकास तथा कौशलों को अर्जित करने की क्षमता।
- सुविधापूर्ण जीवन तथा प्रत्येक क्षेत्र में दक्षितापूर्वक निष्पादन के लिए प्राप्त प्रोद्योगिकी का उपयोग कर सकने की क्षमता।
- राजनीतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक रूप से भलिभाँति अपने को संगठित कर सके।
- अपने परिवारजनों तथा समुदाय के अन्य साथियों के बीच पारिस्परिक आदान–प्रदान तथा देखभाल की कुशलता विकसित कर सकने की क्षमता।
- सामाजिक उत्तरदायित्व तथा समुदाय की समस्याओं के प्रति संवेदनशील होने की अनुभूती का भली प्रकार विकास कर सकने की क्षमता।
- प्रत्येक क्षेत्र में उपलब्ध पेशेवर समूहों तथा संघों के माध्यम से वह अपने पास–पड़ोस तथा कार्य की शर्तों में सुधार ला सकने की क्षमता।
- अपने जीवन के लक्ष्य तथा आकांक्षाओं की प्राप्ति तथा समय–समय पर जीवन की गुणवत्ता को सुनिशिचत करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उच्च शिक्षा का लाभ ले सकने की क्षमता का विकास।

1.5.1 आधुनिक सामाजिक विकास का परिदृश्य

“आधुनिक सामाजिक विकास के परिदृश्य” के बारे में श्री अरबिन्दों अपनी कृति
‘वार एण्ड डिटरमिनेशन’ में लिखते हैं कि इस घटना में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय, गिरजाघर, सैनिक अभिजात वर्ग तथा साहित्य और संस्कृति के अभिजात–तन्त्र का पतन तथा वाणिज्यिक और औद्योगिक वर्गों, वैश्य तथा शूद्रों, पँजी और श्रम के शक्ति का उत्थान या उनकी प्रधानता समाहित है। आपस में मिलकर उन्होंने अपने विरोधियों को या तो निगल लिया है या बाहर फेंक दिया है और अब एकाधिपत्य के लिए भाई–भाई का गला घोंटने में लगा हुआ है जिसमें सामाजिक गुरुत्वाकर्षण का नीचे की ओर लगने वाला बल पूर्ण रूपेण्य संलग्न है। इसमें श्रमिक की अन्तिम जीत निहित है तथा श्रम व श्रमिक को प्राथमिकता देते हुए सभी सामाजिक अभिधारणाओं तथा संस्थाओं का पुनर्निमाण

समाहित है। भाग्य का प्रत्यक्ष लेखन यही दिखाई देता है कि यही सबसे सम्मानित शब्द होगा जो अन्य सभी को अपना मूल्य प्रदान करेगा। वर्तमान में यह वैश्य ही है जो अभी भी प्रधान स्थान ग्रहण किए हुए है तथा व्यापार के इस विश्व में, आर्थिक व्यक्ति की प्रधानता में, व्यापारिक मूल्य की सार्वभौमिकता में या मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगिता, भौतिक रूप से सम्पन्नता तथा उत्पादकता में उसी का बोलबाला है। यहाँ तक कि ज्ञान के दृष्टिकोण, चिन्तन, विज्ञान, कला, कविता तथा धर्म सभी में जीवन के आर्थिक संकल्पना का स्थान सर्वोपरि होता है”

विकास के मनो–सामाजिक अवस्था में प्रत्येक मानव मात्र संभवतः एक ज्ञान–क्रिया धारा है जो ज्ञान और कर्म का रक्षक है। स्वतंत्र बुद्धिशील मानव मात्र जो बहुत अधिक विकसित हो चुके हैं वे ही सत्य और सार्वभौमिक कल्याण के लिए कार्य कर सकते हैं। ये ही लोग सच्चे अर्थों में ब्राह्मण कहलाते हैं। वे किसी भी चीज के लिए किसी अन्य पर निर्भर नहीं रहते। बुद्धजीवी वर्ग, विशेषतया वैज्ञानिक तथा शिल्प वैज्ञानिक आधुनिक युग के ब्राह्मण कहे जा सकते हैं। परन्तु सबसे अहम् प्रश्न यह है कि उनमें से कितने ऐसे हैं जो स्वतंत्र बुद्धिशील हैं तथा सत्य और सार्वभौमिक कल्याण के लिए स्वतंत्रापूर्वक कार्य करते हैं? क्या वे सभी चीजों के लिए स्वयं पर ही निर्भरशील हैं अथवा वित्त एजेंसियों द्वारा संचालित या प्रभावित होते हैं?

- **वर्तमान आधुनिकता की प्रक्रिया**
  नवीन आवश्यकताओं तथा नवीन ज्ञान के कारण आधुनिक समाज तेजी से बदल रहा है। यह आधुनिकता की प्रक्रिया से गुजर रहा है जिसके लक्षणों को निम्नलिखित छः कारकों के रूप में देखा जा सकता है।
  शहरीकरण (Urbanization)
  औद्योगीकरण (Industrialization)
  गतिशीलता (Mobilization)
  लोकतंत्रीकरण (Democrlizatioj)
  संस्थागतीकरण (Institutionalization)
  भूमंडलीकरण (Globalization)
- **शहरीकरण (Urbanization)** :– लोगों को अनेक सुविधाओं जैसे विद्युत, यातायात के साधन, संचार व्यवस्था, नगर निगम की सेवाएँ तथा सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करने के अच्छे और बेहतर अवसरों की उपलब्धि के कारण कस्बों और शहरों में तेजी से वृद्धि हुई है। जीवन के बेहतर मानकों का उपभोग करने के लिए अधिक से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कर शहरों व कस्बों में बसते जा रहे हैं।
- **औद्योगीकरण (Industrialization)**:– प्रौद्योगिकी के नये औजारों तथा वैज्ञानिक अन्वेषणों के कारण अनेक देश औद्योगिक क्रांति के दौर से गुजर चुके हैं। कुशल तथा अकुशल दोनों ही प्रकार के श्रमिकों के लिए शहरों में स्थित उद्योगों में जीविकोपार्जन के अधिक अवसर उपलब्ध हैं। उद्योगों में श्रम विभाजन के अवसर प्रदान किए जाने के कारण प्रत्येक श्रमिक फैक्ट्रियों में विशिष्ट कार्य करता है। श्रमिकों के लिए एक सुसंगठित जीवन यापन की गुंजाइश है तथा वे जीवन में पूरी संतुष्टि और अधिकतम् लाभ भी प्राप्त करने में समर्थ हैं।
- **गतिशीलता (Mobilization)** :– यातायात तथा संचार के कई आसान साधन उपलब्ध हैं जिनके फलस्वरूप आधुनिक मानव भौगोलिक तथा सामाजिक गतिशीलता का उपभोग करने में समर्थ

हैं। वह अब पूर्व की भाँति 'घर में स्थिर रहने वाला' व्यक्ति नहीं है बल्कि आधुनिक युग का 'गतिशील मानव' है।

- **लोकतंत्रीकरण (Democrolizatioj)** :-लगभग सभी सभ्य देशों ने अपने आप को न्याय, समानता तथा स्वतंत्रता पर आधारित लोकतंत्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप संगठित कर लिया है। इसी कारण आधुनिक मानव एक नागरिक के रूप में अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता है। तथा साथ ही अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह भी कर सकता है। वह कानून बनाने में भागीदार बनता है और अपने पंसद की सरकार का चुनाव करता है। निष्क्रिय होने पर वह सरकार को बदल सकता है। लोकतंत्र आज के आधुनिक जीवन तथा सभ्यता की कुंजी है।
- **संस्थागतीकरण (Institutionalization)** :- प्रत्येक सभ्य समाज में सभी क्षेत्रों में उन्नति और मानव कल्याण के लिए अनेक संगठित संस्थाएं मौजूद हैं। परिवार, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, गिरिजाघर, बैंक, सरकार, संघ, सम्मेलन तथा पेशेवर/वाणिज्यिक समूह इसके कुछ उदाहरण हैं। आधुनिक मानव सभ्य जीवन यापन करने में समर्थ है तथा उसने शांति, प्रगति और समृद्धि को पा लिया है।
- **भूमंडलीकरण (Globalization)** :- आधुनिक समाज भूमंडलीय रूप से जुड़े हुए हैं तथा वे एक दूसरे पर निर्भरशील हैं। चूँकि यातायात और संचार के आसान साधन उपलब्ध हैं अतः आज कोई भी समाज अलग-अलग राष्ट्र के रूप में जीवित नहीं रह सकता। साथ ही सभी राष्ट्र एक जैसी समस्याओं के लिए सार्वभौम सहकारिता के प्रति वचनबद्ध हैं। उदाहरणार्थ : अफगानिस्तान में व्याप्त उग्रवाद के विरूद्ध अमरीका द्वारा चलाये गए युद्ध को सार्वभौम रूप से सराहा गया और उसे स्वीकृति मिली।

  इन कारकों और बलों के कारण भविष्य के सभी समाजों को निम्नलिखित की आवश्यकता होगी-

  1. मानव जीवन में होने वाले तीव्र परिवर्तनों के साथ समायोजन की आवश्यकता
  2. जीवित रहने के लिए मानव मूल्यों की आवश्यकता
  3. वैज्ञानिक विचारधार और तार्किक दुष्टिकोण की आवश्यकता
  4. सार्वभौम सहकारिता और सह-अस्तित्व की आवश्यकता
  5. प्रत्येक देश में बहु सांस्कृतिक, बहुजातीय तथा बहुभाषी समाजों को समेकित करने की आवश्यकता

1.5.2 आधुनिकता के अवयव

भावी समाज आधुनिकता के लगातार और निरंतर प्रक्रिया द्वारा प्रभावित होता रहेगा। जिसका मतलब है कि जीने के लिए नवीन चुनौतियों तथा समय के नवीन माँगों के प्रति समाज को पुनः समायोजन करते रहना होगा। इसके कारण नये परिवर्तन, नये लक्ष्य तथा नवीन संस्थाओं को जन्म देना होगा ताकि अभीष्ट परिणामों की प्राप्ति हो सके। कुछ समाज विज्ञान के विशेषज्ञों ने आधुनिकता की अभिधारणा का विश्लेषण कर इस प्रक्रिया के निम्न दस अवयवों को चिन्हित किया है-

1. साथी लोगों के प्रति समानुभूति
2. गतिशीलत, सामाजिक और आर्थिक

3. सामाजिक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी
4. रूचि समुच्चय तथा रूचि का स्पष्टीकरण
5. उपलब्धि उन्मुखीकरण
6. तार्किक साध्य-उपाय गणना
7. धन, कार्य तथा बचत के प्रति नई अभिवृत्ति
8. वांछनीयता में विश्वास तथा परिवर्तन की संभावना
9. सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अनुशासन
10. भविष्य में दीर्घकालीन उच्चतर लाभों के लिए तुरंत प्राप्त होने वाले अल्पकालीन लाभों को स्थगित रखने की क्षमता।

इस प्रकार, वैज्ञानिक ज्ञान, प्रौद्योगिकी के औजारों, अग्रगामी अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक स्थिरता के बूते पर पारम्परिक समाज का आधुनिक समाज में ''पूर्ण रूपान्तरण'' ही आधुनिकीकरण है।

1.6 संविधानः अभिप्राय और कार्य (Constitution: Meaning and Functions)

संविधान एक ऐसा दस्तावेज है जिसके अनुसार किसी देश की सरकार का कार्य चलाया जाता है। इसमें सरकार के विभिन्न अंगों के आपसी संबंधों तथा सरकार एवं नागरिकों के संबंधों का वर्णन रहता है। इसमें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों आदि उत्तरदायित्वों का ब्यौरा भी होता है।

संविधान में राष्ट्रीय उद्देश्यों अर्थात् किस प्रकार का समाज होगा, उनका संकेत भी मिलता है। इसमें राष्ट्रीय मूल्यों का भी उल्लेख किया जाता है।

संविधान का अभिप्राय (अर्थ) (Meaning of Constitution)

फाइनर ने संविधान को 'शक्ति-संबंधों की आत्मकथा' कहा है। राजनीतिक संरचना में विभिन्न अंगों की शक्तियों और उनके संबंध कैसे होने चाहिए तथा उनकी शक्ति और उनके सम्बन्ध जनता के साथ किस प्रकार के होंगे, इसकी विवेचना संविधान करता है। राजनैतिक प्रक्रिया के रूप में संविधान ऐसे नियमों के समुच्य कहा जाएगा जो न्यायोचित खेल की गारण्टी देते हैं। फ्रेड्रिक ने संविधान को प्रभावशाली रूप से नियमित किया हुआ नियंत्रण कहा है। वास्तव में संविधान जहाँ एक तरफ सरकार पर नियमित नियंत्रण रखता है वहाँ दूसरी तरफ समाज में एकता लाने वाली शक्ति के प्रतीक रूप में कार्य करता है। सी.एफ. स्ट्राँग ने लिखा है कि संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जिनके अनुसार राज्य के अधिकारों, नागरिकों के अधिकारों और दोनों के संबंधों में सामजस्य स्थापित किया जाता है। गार्नर ने संविधान के तीन प्रमुख तत्व बताये हैं-

1. स्वतंत्रता,
2. सरकार और
3. प्रभुसत्ता का गठन।

ब्राइस ने संविधान, उन नियमों को कहा है जो शासन के आकार, उसके निर्माण और उसके प्रति नागरिकों के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हैं।। किसी देश के संविधान में प्रायः जो बातें शामिल होती हैं वे निम्नवत हैं-

1. राज्य के शासन का स्वरूप एवं संगठन
2. सरकार के विभिन्न अंग, उनके कार्य एवं अधिकार,
3. इन अंगों का पारस्परिक संबंध,

4. नागरिकों के मूल अधिकार,
5. सरकार तथा जनता के मध्य स्थित संबंध
6. संविधान की सुरक्षा एवं
7. उसमें संशोधन की विधि आदि।

यह आवश्यक नहीं है कि संविधान पूर्णतः लिखित ही हो। संविधान तो उन समस्त लिखित–अलिखित कानूनों तथा नियमों का संग्रह होता है जिनके आधर पर किसी देश की शासन–व्यवस्था संगठित होती है और शासन के विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों का वितरण करते हुए उन सिद्धान्तों को निर्धारित किया जाता है जिनके अनुसार वे शक्तियाँ प्रयोग में लाई जाती है।

प्रायः ऐसा देखा और अनुभव किया जाता है कि संविधान में व्यवस्था कुछ होती है तथा व्यवहार में सरकार कुछ और करती है अर्थात् संविधान और सरकार की कथनी और करनी में भारी अन्तर पाया जाता है।

भारत के संविधान का निर्माण

भारत का संविधान 26 जनवरी, 1950को लागू किया गया। संविधान को बनाने में 2 वर्ष, 11 महीने और 18 दिन लगे। 26 नवम्बर, 1949 को संविधान पूरी तरह संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया तथा 24 जनवरी 1950 को सभी सदस्यों के इस पर हस्ताक्षर हो गए।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने विचार व्यक्त किया कि भारत को संविधान बनाने के लिए एक निकाय बनाया जाए। इससे पूर्व भारत में पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया जा रहा था। 1946 ई. में ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन भारत भेजा। मिशन ने कांग्रेस तथा अन्य दलों से संविधान के बारे में विचार–विमर्श किया। परिणामस्परूप संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधान सभाओं के द्वारा हुआ। संविधान बनाने वाली सभा के 389 सदस्य थे। इसके सदस्य लगभग राजनैतिक दलों, कमजोर वर्गों तथा अलपसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसमें स्वतन्त्रता संग्राम के सैनानी, प्रसिद्ध विधि विशेषज्ञ तथा अनेक वर्गों के प्रतिनिधि भी थे।

संविधान सभा का पहला सत्र 9 दिसंबर,1946 के बुलाया गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जो बाद में भारत के प्रथत राष्ट्रपति बने, उन्हें संविधान सभा का सभापति चुना गया। भारत विभाजन तथा स्वतन्त्रता के बाद संविधान सभा के 308 सदस्य रह गए। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में आए सदस्यों के दल ने संविधान का प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप की सभी धाराओं पर गम्भीर विचार–विमार्श के पश्चात् भारत का संविधान बनाया गया।

आवश्यकतानुसार संविधान में समय–समय पर संशोधन होता रहता है।

यह उल्लेखनीय है कि भारत में संविधान के अनुसार कार्य किया जा रहा है जबकि कुछ पड़ोसी देश जो भारत के साथ ही स्वतन्त्र हुए तथा उन्होंने अपना–अपना संविधान बनाया, परन्तु इसके अनुसार कार्य न कर सके। पाकिस्तान में कई बार संविधान की अवहेलना हुई तथा सैनिक शासन चला। इसी प्रकार श्रीलंका तथा अन्य देशों में भी संविधान के अनुसार शांति का वातावरण न बन पाया।

भारतीय संविधान के स्त्रोत

- भारत की धरोहर
- स्वतन्त्रता सेनानियों के आदर्श तथा मूल्य

- पूर्ण राज्य प्रस्ताव
- विस्तृत संविधान
- भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य
- समाजवादी राज्य
- पंथ निरपेक्ष राज्य
- लोकतंत्रात्मक राज्य
- गणतान्त्रिक राज्य
- कठोर और लचीला
- संसदीय शासन प्रणाली
- संघात्मक सरकार
- शक्तिशाली केन्द्र
- समता का अधिकार
- स्वतन्त्रता का अधिकार
- शोषण के विरूद्ध अधिकार
- धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
- सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
- संविधानिक उपचारों का अधिकार
- न्याय पर आधारित राज्य
- बन्धुता पर आधारित राज्य
- व्यक्ति की गरिमा का संरक्षण
- देश की एकता अखण्डता सुनिश्चित करना
- मौखिक कर्त्तव्यों का पालन
- पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान
- अल्पसंख्यकों का संरक्षण
- राज्य नीति के निदेशक तत्व
- पंचायती राज्य की संस्थाएँ
- अनुसूचित जाति तथा जनजाति क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान
- राष्ट्रीय भाषा तथा अन्य भाषाओं का विकास
- आपात कालीन प्रावधान
- निष्पक्ष तथा स्वतन्त्र चुनाव
- वयस्क मताधिकार
- संकटकालीन

1.7 संविधान सभा का निर्माणः प्रकृति (स्वरूप) और कार्य

(Fornation of Constitution Assemble: Nature and Functions):–

प्रकृति (स्वरूप) :– भारत में शिक्षा के संवैधानिक स्वरूप के सन्दर्भ में शिक्षा–शास्त्रियों में प्रारम्भ से ही मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान प्रस्तुत की प्रशंसा करते हैं, तो वहीं कुछ इसे मात्र ब्रिटिश स्वरूप का अन्धानुकरण मानकर निकारते हैं। प्रसिद्ध शिक्षा–कानूनविद् डॉ. सिंघवी ने शिक्षा को समवर्ती सूची में सन्निहित करने का प्रस्ताव रखा था। एसी ही टिप्पणी श्री एम. सी. छागला ने भी की थी–"शिक्षा को राज्य का विषय बनाकर संविधान निर्माताओं ने भूल की है।"

कोठारी कमीशन ने भी शिक्षा के संवैधानिक स्वरूप की विवेचना करते हुए अपने विचार निम्नलिखित रूप में व्यक्त किये हैं– "हमने समस्या का गहन अध्ययन किया है। हम समस्या को विभाजित करके एक भाग समवर्ती तथा दूसरा राज्य सूची में नहीं रखना चाहतें हैं। शिक्षा का सदैव एक रूप में ही समझना चाहिए।"

प्रसिद्ध शिक्षाविद् डॉ.वी.पी. लुल्ला ने लिखा है। "सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत संविधान की प्रस्तावना से मिलता है, जिससे नागरिकों को हर प्रकार का न्याय, विचार, कार्य स्वातन्त्रय, समानता और भ्रातृत्व प्राप्त होगा। प्रश्न यह है कि पाठशालाओं एवं उच्च–शिक्षा संस्थाओं ने इस सम्बन्ध में क्या किया है? कौन से परिवर्तन किये हैं, जिनसे उपर्युक्त सूत्रों का प्रचार हो अथवा उनके आधार पर विद्यार्थियों का गठन हो।"

उपर्युक्त कथनों की गवेषणा के आधार पर तथा शिक्षा सम्बन्धी व्यावहारिक उपलब्धियों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने शिक्षा को केन्द्र एवं समवर्ती सूची में रखकर एक संतुलित एवं तार्किक व्यवस्था प्रदान करने का प्रयास किया था, जिससे संघ एवं राज्य के अतिक्रमण से बच सकें तथा संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास किये जा सकें। किन्तु विगत 45 वर्षों में व्यावहारिक राजनीति ने इन्हें पंगु ही नहीं बनाया है बल्कि ये संवैधानिक महत्त्वाकांक्षाएँ मात्र मजाक बन कर रह गयी हैं राष्ट्र प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता से लेकर हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप ढालने के यथार्थ प्रयासों से सदैव दूर होता चला गया है। इसके अतिरिक्त अनुसूचित वर्गों की शिक्षा, राष्ट्रीय नीतियों के क्रियान्वन आदि क्षेत्रों में भी अपेक्षाकृत असफल रहा है। अतः आवश्यकता यह है कि राजनीतिक, शिक्षाशास्त्री, शिक्षा नियोजक, राज्य सरकारें संविधान के शिक्षा संबंधी नीति निर्देशकों के प्रति प्रतिबद्ध भावना से कार्य करें तथा उन्हें ठोस रूप से क्रियान्वित करें।

1.7.1 **संविधान सभा का निर्माणः–** भारतीय संविधान एक विशाल संविधान है, जिसकी प्राथमिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. **विशाल संविधानः–** भारतीय संविधान विश्व के समस्त संविधानों में विशाल है। इसकी विशालता का प्रथम कारण है कि विश्व के श्रेष्ठतम संविधानों का गठन अध्ययन करके उनके सार तत्व को अधिग्रहण किया गया है तथा द्वितीय कारण है, भारत जैसे विशाल राष्ट्र में समस्त धर्मो, जातियों वर्गों आदि की अपेक्षाओं के अनुकूल इसका निमार्ण किया गया है।

2. **एकात्मक एवं संघात्मक संविधानः–** भारतीय संविधान में एकात्मक एवं संघात्मक दोनों गुणों को समाहित किया गया है। संघात्मक स्वरूप को सन्तुष्ट करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गयी है। केन्द्र एवं राज्य सरकार के कार्यो एवं अधिकारों का विभाजन किया गया है। यद्यपि सामान्य

रूप से यह कहा जाता है कि भारतीय संविधान संघात्मक संविधान है, किन्तु संघात्मक संविधान में समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति के हाथों में केन्द्रित रहती हैं। संकटकालीन परिस्थितियों में भारत भी इसका अनुसरण करता हैं अतः भारतीय संविधान को संघात्मक-एकात्मक गुणों से परिपूर्ण कहा जाता है।

3. **वयस्क मताधिकार व्यवस्थाः-** भारतीय संविधान प्रत्येक वयस्क को जिसकी आयु 18 वर्ष की है, बिना किसी भेदभाव के मतदान का अधिकार प्रदान करता है।

4. **धर्म-निरपेक्ष संविधानः-** भारतीय संविधान को एक धर्म निरपेक्ष संविधान की संज्ञा प्रदान की जाती है। इस प्रकार भारतीय नागरिक को धर्म का अनुसरण करने, स्वीकार करने, परिवर्तित करने आदि की पूर्ण स्वतंत्रता है।

5. **कठोर एवं लचीलाः-** भारतीय संविधान दोनों गुणों का अद्‌भुत मिश्रण है। संविधान की कुछ धाराएँ एवं कानून साधारण विधि द्वारा परिवर्तित किये जा सकते हैं। अतः लचीला कहा जा सकता है। किन्तु अन्य धाराओं में परिवर्तन करने हेतु दीर्घ प्रक्रिया का अपनाना होता है। अतः यह इसका कठोर स्परूप कहा जाता है।

6. **स्त्रियों को समान अधिकारः-** भारतीय संविधान में स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के समकक्ष अधिकार प्राप्त हैं।

7. **पिछड़ी एवं अनुसूचित जातियों का संरक्षणः-** संविधान में पिछड़ी जातियों तथा अनुसूचित जातियों के संरक्षण करने के उद्देश्य से विशेष व्यवस्था की गयी है। इसके साथ ही उनकी सामाजिक प्रगति एवं सांस्कृतिक विकास के प्रति प्रतिबद्धता निश्चित की गयी है।

8. **अस्पृश्यता का अन्तः-** संविधान में अस्पृश्यता निवारण के लिए पृथक कानूनों का निर्माण किया गया है। अस्पृश्यता को अवैध एवं अपराधिक श्रेणी में रखा गया है।

9. **एक सामान्य न्याय व्यवस्थाः-** भारत के समस्त नागरिकों के लिए तथा अपराधों के सन्दर्भ में एक जैसी दण्ड संहिता का निर्माण किया गया है।

1.7.2 **संविधान की प्रकृतिः-** भारतीय संविधान की प्रकृति को लेकर भारतीय संविधान की प्रस्तावना मे निम्नलिखित पाँच विशेषताओं का वर्णन किया गया हैः 1. सम्पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न राज्य, 2. समाजवादी राज्य 3. धर्मनिरपेक्ष राज्य 4. लोकतांत्रिक राज्य 5. गणतंत्रात्मक राज्य।

1. **सम्पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न राज्यः-** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत पूर्ण प्रभूसत्ता संपन्न राष्ट्र बन गया। संपूर्ण प्रभुसत्ता का अर्थ है कि इस पर किसी आंतरिक और बाह्य शक्ति का दबाब या नियंत्रण नहीं है। हाँलाकि केंद्र और राज्यों की शक्तियों का उचित बँटवारा किया गया है लेकिन प्रभुसत्ता पर कोई विभाजन नहीं है। आपातकाल में संघ राष्ट्रीय हित में राज्यों पर शासन कर सकता है और सामान्य काल में संघ राज्यों को दिए हुए विषयों पर कानून बना सकता है।

2. **समाजवादी राज्यः-** समाजवादी राज्य का उद्देश्य आय, सामाजिक स्तर और जीवन स्तर के आधार पर असमानताओं को दूर करना है। एक समाजवादी राज्य इसका प्रयत्न करता है कि सभी को उन्नति के समान अवसर और सामाजिक धन का सबकों समान रूप से लाभ मिले। यह अमीरों और गरीबों के बीच खाई को पाटने का प्रयास करता है और समाज के गरीब और कमजोर वर्गों के लाभों को सुरक्षा प्रदान करता है।

3. **धर्मनिरपेक्ष राज्यः-** धर्मनिरपेक्ष राज्य किसी धर्म की उन्नति में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं करता। राज्य किसी धर्म विशेष से जुड़ा हुआ नहीं होता और न ही वह किसी एक धर्म विशेष को महत्व देता है। प्रत्येक स्त्री पुरूष से उसके धर्म पर विचार किए बिना एक सामान्य नागरिक की तरह

व्यवहार किया जाता है। सभी नागरिक अपनी इच्छानुसार धर्म को मान सकते हैं। पूजा–पाठ आदि की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

4. **लोकतांत्रिक राज्यः–** नागरिकों को सरकार बनाने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का पूर्ण अधिकार है इसी प्रकार चुनाव लड़ने का अधिकार है।

5. **गणतंत्रात्मक राज्यः–** गणतन्त्र राज्य का अर्थ है कि भारत राज्य का मुख्य चुना हुआ प्रतिनिधि होगा। संविधान में भारतीय गणराज्य के मुख्य तौर पर राष्ट्रपति का प्रावधान रखा है।

- **न्यायः–** यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तावना में न्याय को स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के ऊपर रखा गया है। न्याय जीवन के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पक्षों को पूरा करता है।
- **सामाजिक न्याय का अर्थः–** जन्म, वंश, जाति, संप्रदाय, धर्म, लिंग, पद प्रतिष्ठा आदि को ध्यान में न रखते हुए सभी नागरिकों के साथ समानता का व्यवहार करना। आर्थिक न्याय का अर्थ है गरीबी और अमीरी की खाई को पाटने का प्रयास करना और उन्हें बराबरी की नजर से देखना। राजनैतिक न्याय का अर्थ है कि धर्म, जाति आदि को ध्यान में न रखते हुए सभी नागरिकों को समान रूप से राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार होना।
- **स्वतंत्रताः**–स्वतंत्रता से अभिप्राय एक ऐसी सकारात्मक विचारधार है जिसके अंतर्गत सभी को स्वतंत्र सोच, अभिव्यक्ति, आस्था, विश्वास और पूजा का अधिकार है। सभी नागरिकों को कई तरह की आजादी दी गई है जिन्हें संविधान के मूल अधिकारों में शामिल किया गया है। व्यक्ति और राष्ट्र के विकास के लिए स्वतंत्रता का होना परम आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर संविधान की धारा–19 के तहत प्रत्येक व्यक्ति को विचार अभिव्यक्त करने की आजादी दी गई है और इसी संविधान की धारा– 25–28 के तहत सभी को धार्मिक स्वतंत्रता का भी अधिकार है। लेकिन स्वतंत्रता का यह अर्थ कदापि नहीं समझना चाहिए कि ऐसे कार्य किए जाएँ जिससे राज्य की सुरक्षा, लोक कल्याण आदि खतरे में पड़े और अन्य लोगों का नुकसान हो।
- **समानताः–** इस सिद्धान्त का अर्थ है कि धर्म, जाति, धन के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। सभी नागरिक कानून के समझ समान हैं और उनके न्यायिक अधिकार एक जैसे हैं। सभी नागरिकों को मतदान का राजनैतिक अधिकार दिया गया है। अधिकार क्षेत्र में स्वतंत्रता का मतलब है कि कोई भी व्यक्ति अथवा वर्ग किसी भी व्यक्ति अथवा वर्ग का शोषण नहीं करेगा। सभी को समान स्तर और अवसर प्रदान किए जाएँगे।
- **बंधुत्वः–** न्याय, स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत सही मायनों में तभी तक सार्थक हैं जब कि वे भारतीयों में भाईचारं की भावनाओं का विकास कर सकें। बंधुत्व के सिद्धांत को भारतीय संविधान में नागरिकों के मूलभूत कर्त्तव्यों में शामिल किया गया। भारत की एकता और अखण्डता को बरकरार रखने के लिए सभी समुदाय के लोगों में अपसरी भाईचारे का होना परम आवश्यक है। बंधुत्व का एक अंतराष्ट्रीय पक्ष भी है। भारतीय दर्शन के अनुसार हम “वसुधैव कुटुंबकम” के सिद्धातों को मानते हैं जिसका अर्थ है कि समूचा विश्व एक परिवार है।

राष्ट्र की एकता और अखण्डताः आपसी भाईचारे और बंधुत्व की भावना से ही हम राष्ट्रीय एकता के निर्माण की कल्पना कर सकते हैं। राष्ट्र की एकता और अखण्डता की अनुपस्थिति में

आर्थिक विकास के साथ–साथ देश की स्वतंत्रता और लोकतंत्र को कायम रखना संभव नहीं है। अनुच्छेद–51A के तहत प्रत्येक नागरिक का पहला कर्त्तव्य है कि वह भारत की एकता, अखण्डता के लिए सभी नागरिकों का यह कर्त्तव्य है कि वे आपसी मतभेद भुलाते हुए धर्म, जाति संप्रदाय एवं क्षेत्र आदि भावनाओं से ऊपर उठकर सोचें और देश की रक्षा करें। अगर ऐसा नहीं होगा तो राष्ट्र का निर्माण होना संभव नहीं। सरकार द्वारा इस संबंध में कुछ उठाए कदम इस प्रकार हैं–

1. देश का एक राष्ट्रीय संविधान, एक ध्वज, एक निशान तथा एक राष्ट्रीय गान निश्चित किया गया है।
2. हिंदी को संपूर्ण देश की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है।
3. देश में संघ राज्य की स्थापना की गई है जिसमें सभी राज्य उसके अभिन्न अंग हैं।
4. देश में इकहरी नागरिकता के सिद्धान्त को अपनाया गया है।

1.8 ईकाई सांराश (Unit Summary)

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। संविधान में सामाजिक न्याय को अपना आदर्श माना गया है। समाज मनुष्यों का एक महान सामूहिक एकत्रीकरण हैं जसमें एक सामान्य संस्कृति, रीतिरिवाज और संचार तथा सम्प्रेषण का एक माध्यम होता है। समाज के सदस्यों के बीच लगातार पारस्परिक संघर्ष चलता रहता है। मानव समाज की मुख्य विशेषताएँ–सामान्य ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विरासत, समप्रेषण कुशलता, सामान्य रीति–रिवाज, एकता तथा आपसी प्रेम तथा सामाजिक व्यवहार व सामाजिक जीवन की आचार संहिता होती है।

सामाजिक स्तरीकरण मानव समाज की एक चारित्रिक विशेषता है। मानव समाज जातियों में संगठित है। जाति प्रथा सामान्यतया कृषि आधारित समाजों की विशिष्टता होती है। एक जाति के परिवार सामान्यतया पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कार्य को ही करते हैं। वैदिक युग में परिवार का प्रमुख पिता होता था। स्त्रियों को सम्मान का स्थान प्राप्त था।

भारतीय समाज चार वर्गों में विभक्त था। चार आश्रमों के अनुसार लोग जीवन यापन करते थे। अनेक समाज सुधारकों ने समाज की बुराइयों को पहचाना। राजाराम मोहनराय ने सतीप्रथा, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू विधवायों के पुनर्विवाह की स्वीकृति, केशवचन्द्र सेन ने शराब बन्दी एवं अन्तर्जातीय विवाह का प्रोत्साहन किया। मैकाले अंग्रेजी के माध्यम से एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता था जिसके सदस्य रंगरूप से तो भारतीय हो किन्तु विचारों से यूरोपिय।

स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी आदि भारतीय महापुरूषों ने भारतीय समाज के उत्थान के लिए अथक प्रयास किये और समाज के उन्नयन हेतु समाज का मार्गदर्शन किया।

जब समाज के सदस्य सदाचार का पालन करते हैं तब विशेष प्रकार की सामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है और सामाजिक एकता को मजबूत बनाती है।

भारतीय समाज के सामाजिक उद्देश्यों में प्रजातांत्रिक नागरिकता विकास, व्यावसायिक कुशलता, व्यक्तित्व विकास, नेतृत्व के गुणों का विकास प्रमुख हैं। स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने स्वतन्त्र भारतीय समाज की परिकल्पना की थी। समाज के सामाजिक ढांचे के निर्माण हेतु प्रमुख सिद्धान्तों में से समता के सिद्धान्त, सभी को रोजगार के समान अवसरों का सिद्धान्त, सभी के लिए स्वास्थ्य का सिद्धान्त, समान न्याय का सिद्धान्त आदि हैं।

संविधान की प्रस्तावना में दर्शायी गई भारतीय नीति में समाजवाद, पंथनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, समानता, बन्धुत्व, व्यक्ति स्वतंत्रता एवं न्याय पर आधारित भारतीय समाज की

व्यवस्था की गई है। समाज के इन सब आदर्शों की पूर्ति हेतु संविधान में मूल अधिकार तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में अनेक प्रावधान किये गए हैं।

नवीन सामाजिक व्यवस्था निर्माण करने मे नागरिकों के कर्त्तव्य हैं कि वे संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें एवं भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्य रखें।

आधुनिक समाज को विज्ञान के नवीन ज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के नवीन अविष्कारों का लाभ मिला है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, तीव्रतर यातायात के साधन, तुरन्त सम्प्रेषण, अन्तराष्ट्रीय सहयोग तथा भुमण्डलीकरण के कारण आधुनिक मानव जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है।

संविधान एक ऐसा दस्तावेज हैं, जिसके अनुसार किसी देश की सरकार का कार्य चलाया जाता है। संविधान में राष्ट्रीय उद्देश्यों अर्थात किस प्रकार का समाज होगा, उनका संकेत मिलता है। इसमें राष्ट्रीय मूल्यों का भी उल्लेख किया गया है। भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। आवश्यकतानुसार संविधान में समय-समय पर संशोधन होता रहता है। भारत में संविधान के अनुसार कार्य किया जा रहा है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक एवं गणतंत्रात्मक राज्य का वर्णन किया गया है। संविधान में हिन्दी को सम्पूर्ण देश की राष्ट्रभाषा, देश का संघराज्य की स्थापना एवं इकहरी नागरिकता के सिद्धान्त को अपनाया गया है।

1.9 अपने प्रगति की जांच करें (Check your Progress)

1. संविधान का अर्थ स्पष्ट करते हुए भारत के संविधान के निर्माण का वर्णन कीजिए।
2. भारतीय संविधान के विभिन्न स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।
3. भारतीय संविधान के प्रकृति का वर्णन कीजिए।
4. संविधान की प्रस्तावना में दर्शायी गयी भारतीय समाज की व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
5. भारतीय समाज की विभिन्न प्रमाणिक संरचनाऐं कौन-कौन सी है? समझाइये।
6. भारतीय समाज के सामाजिक उद्देश्यों का वर्णन कीजिऐ।
7. संविधान की प्रस्तावना में दर्शायी गई भारतीय समाज की व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।
8. नवीन सामाजिक व्यवस्था निर्माण करने में नागरिकों के क्या कर्तव्य हैं? वर्णन कीजिए।

1.10 सत्रगत कार्य/गतिविधियाँ (Assignment /Activities)

1. अपने गाँव/बस्ती की सामाजिक संरचना का अध्ययन कीजिए और उनकी विशेषताओं को अपने शब्दों में उल्लेख कीजिए।
2. आधुनिक भारतीय समाज के संवैधानिक मानक संरचना का उल्लेख करते हुए बताइये कि वर्तमान में हुए परिवर्तनों से आने वाले भविष्य के लिए किन-किन चुनौतियों का समाना करना पड़ सकता है?
3. संविधान सभा के निर्माण की आवश्यकता प्रतिपादित कीजिए।
4. वसुधैव कुटुम्बकंम् की भावना मानव समाज में कैसे विकसित की जा सकती है? तर्क सहित व्याख्या कीजिए।
5. वर्तमान में भारतीय समाज को किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है? विवेचना कीजिए।

1.11 चर्चा के बिन्दु (Points to be Discussion)

इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप कुछ बिन्दुओं पर चर्चा करना चाहेंगे अथवा बेहतर समझ पैदा करने के लिए कुछ स्पष्टीकरण चाहेंगे। इन बिन्दुओं को निम्नबत लिपिबद्ध कीजिएः

1.11.1 चर्चा के बिन्दु

....
....
....
....
....

1.11.1 स्पष्टीकरण के बिन्दु

....
....
....
....
....

1.12 संदर्भ (References)

- गुप्ता, एस. एवं अग्रवाल, जे.सी. (2008). **उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा,** दिल्ली : शिप्रा पब्लिकेशन, 115–।, विकास मार्ग, शाकारपुर।
- बघेला, हेत सिंह (1988). **शिक्षा तथा भारतीय समाज,** आगरा : हरप्रसाद भार्गव, 4/230, कचहरी घाट।
- पाण्डेय, रामशकल (2010). **उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक,** आगरा–2 : अग्रवाल पब्लिकेशन्स।

DELED 02–समकालीन भारतीय समाज और शिक्षा

खण्ड–03 समकालीन भारतः

इकाई–02 भारत का संविधानः मूल दर्शन और विशेषताएं

संरचनाः–

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 संविधान की प्रस्तावना

2.4 मौलिक अधिकार

2.5 मौलिक कर्त्तव्य

2.6 राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांत

2.7 इकाई सारांश

2.8 अपनी प्रगति की जाँच करें

2.9 निहित कार्य

2.10 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

2.11 संदर्भग्रंथ

2.1 परिचयः–

भारतीय संविधान बीसवीं सदी तक आते–आते भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन कई दशक पुराना हो चुका था। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान राष्ट्रवादियों ने इस बात पर काफी विचार किया था स्वतंत्र भारत किस तरह का होना चाहिये। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत जिन्हें जिन नियमों को मानना पड़ता था वे उन्होनें खुद नहीं बनाए थे। औपनिवेशिक राज्य के लम्बे अत्याचारी शासन ने भारतीयों के सामने इतना जरूर स्पष्ट कर दिया था कि स्वतंत्र भारत को एक लोकतांत्रिक देश होना चाहिये। उसमें प्रत्येक नागरिक को समान माना जाएगा और सभी को सरकार में हिस्सेदारी का अधिकार होगा। इसके बाद यह तय करना था कि भारत में लोकतांत्रिक सरकार का गठन कैसे किया जाए और उसके कामकाज के नियम क्या है। यह काम किसी एक आदमी के वश का नही था। इसमें लगभग 300 लोगों ने योगदान दिया जो 1946 में गठित की गई संविधान सभा के सदस्य थे। भावी संविधान के निर्माण के लिए अगले तीन साल तक संविधान सभा की बैठके होती रही।

संविधान सभा के इन सदस्यों के सामने एक बड़ी जिम्मेदारी थी। हमारे देश में कई समुदाय थे। उनकी न तो भाषा एक थी, न एक धर्म था और न ही एक जैसी संस्कृति थी। जब संविधान लिखा जा रहा, उस समय हमारा देश भारी उथल–पुथल से गुजर रहा था। भारत और पाकिस्तान का बंटवारा लगभग तय हो चुका था। कुछ रियासतें तय नहीं कर पा रही थी कि उनका भविष्य क्या होगा, वे किधर जाएंगी। जनता की सामाजिक आर्थिक स्थिति भयानक थी। संविधान सभा के सदस्यों के सामने ये सारे मुद्दें थे लेकिन उन्होनें अपने इस ऐतिहासिक दायित्व को बहादुरी से पूरा किया और देश को एक ऐसा कल्पनाशील दस्तावेज दिया जिससे राष्ट्रीय एकता को बनाए रखते हुए विविधता के प्रति गहरा सम्मान दिखाई देता है। उन्होनें जो दस्तावेज तैयार किया उसमें सामाजिक आर्थिक सुधारों के जरिये गरीबी उन्मूलन और जनप्रतिनिधियों के चयन में जनता की महत्वपूर्ण भ्ूमिका पर काफी जोर दिया गया है।

स्वतंत्र भारत को एक शक्तिशाली लोकतांत्रिक समाज बनाने के लिए कुछ प्रमुख आयाम का उल्लेख किया गया है जो निम्न हैः–

1. संघवाद–(Federation) इसका मतलब है देश में एक से ज्यादा स्तर की सरकारों का होना। हमारे देश में राज्य स्तर पर भी सरकारें हैं और केन्द्र स्तर पर भी। पंचायती राज व्यवस्था शासन का तीसरा स्तर है। भारत में इतने सारे समुदायों की उपस्थिति का सीधा मतलब यह था कि यहॉ शासन की एक ऐसी व्यवस्था विकसित करनी होगी। जिसमें राजधानी दिल्ली में बैठे मुट्ठी भर लोग ही पूरे देश के फैसले न लेने लगे। इसलिए प्रांतीय स्तर पर भी सरकार की व्यवस्था की गई ताकि इलाकों के हिसाब से अलग फैसले भी लिए जा सके। भारत के सभी राज्यों को कुछ मुद्दों पर फैसले लेने का स्वायत्त अधिकार है। राष्ट्रीय महत्व के सवालों पर सभी राज्यों को केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गये कानूनों को मानना पड़ता है। कार्यक्षेत्र की स्पष्टता के लिए संविधान में कुछ सूचियॉ दी गई है। जिसमें बताया गया है कि कौन से स्तर की सरकार कार्यो

के लिए पैसे का इंतजाम कहाँ से कर सकती है। संघवाद के अंतर्गत राज्य केवल केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि नही होते। उन्हें भी संविधान से ही अपनी ताकत ओर अधिकार मिलते हैं। भारत के सभी लोग इन सभी स्तरों की सरकारों द्वारा बनाए गये कानूनों और नीतियों के अंतर्गत आते हैं।

2. **संसदीय शासन पद्धति**— सरकार के सभी स्तरों पर प्रतिनिधियों का चुनाव लोग खुद करते हैं। भारत का संविधान अपने सभी व्यस्क नागरिकों को वोट डालने का अधिकार देता है। संविधान सभा के सदस्य जब संविधान की रचना कर रहे थे तो उन्हें लगा कि स्वतंत्रता संघर्ष ने भारतीय जनता को व्यस्क मताधिकार का प्रयोग करने के योग्य बना दिया है। उन्हें विश्वास था कि इससे न केवल लोकतांत्रिक सोच व तौर—तरीकों को प्रोत्साहन मिलेगा, बल्कि जाति, वर्ग और औरत मर्द के फर्क पर आधारित उँच—नीच की बेड़ियों को भी तोड़ा जा सकता है। सार्वभौमिक मताधिकार का मतलब है कि अपने प्रतिनिधियों के चुनाव में देश के सभी लोगों की सीधी भूमिका होती है। इसके अलावा हर व्यक्ति खुद चुनाव भी लड़ सकता है चाहे उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि कैसी भी क्यों न हो। ये प्रतिनिधि जनता के प्रति जबावदेह होते हैं।

3. **शक्तियों का बँटवारा**ः—संविधान के अनुसार सरकार के तीन अंग हैं विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका । विधायिका में हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं कार्यपालिका ऐसे लोगों का समूह है जो कानूनों को लागू करने और शासन चलाने का काम देखते हैं न्यायालयों की व्यवस्थ्झा को न्यायपालिका कहा जाता है। सरकार की किसी भी शाखा द्वारा सत्ता के दुरूप्रयोग को रोकने के लिए प्रावधान किया गया है कि इन सभी अंगों की शक्तियॉ एक दूसरे से अलग होगी। शक्तियों के इस बटंबारे के आधार पर प्रत्येक अंग दूसरे अंग पर अंकुश रखता है और इस तरह तीनों अंगों के बीच सत्ता का संतुलन बना रहता है।

4. **मौलिक अधिकार**ः—मौलिक अधिकारों वाला खंड भारतीय संविधान की **"अंतरात्मा"** भी कहलाता है। औपनिवेशिक शासन ने राष्ट्रवादियों के दिमाग में राज्य के प्रति संदेह का भाव पैदा कर दिया था। इसलिए राष्ट्रवादी चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में राज्य की सत्ता के दुरूपयोग से बचने के लिए कुछ लिखित अधिकार होने चाहिये। मौलिक अधिकार देश के सभी नागरिकों को राज्य की सत्ता के मनमाने और निरंकुश इस्तेमाल से बचाते हैं इस तरह संविधान राज्य और अन्य व्यक्तियों के समक्ष व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करता है।

    विभिन्न अल्पसंख्यक समुदाय भी चाहते थे कि संविधान में ऐसे अधिकारों को शामिल किया जाए

जो उनके समूह की रक्षा कर सके। फलस्वरूप बहुसंख्यकों से अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन भी संविधान में दिया गया है। इन मौलिक अधिकारों के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि इनका दोहरा उद्देश्य है पहला, हरेक नागरिक ऐसी स्थिति में हो कि वह उन अधिकारों के लिए दावेदारी कर सके और दूसरा ये अधिकार हर उस सत्ता और संस्था के लिए बाध्यकारी हो जिसे कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। मौलिक अधिकारों के अलावा हमारे

संविधान में एक खंड नीति निर्देशक तत्वों की भी है। संविधान सभा के सदस्यों ने यह खंड इसलिए जोड़ा था ताकि ज्यादा सामाजिक व आर्थिक सुधार लाए जा सके। वे चाहते थे कि स्वतंत्र भारतीय राज्य जनता की गरीबी दूर करने वाले कानून और नीतियाँ बनाते हुए इन सिद्धांतों को मार्गदर्शक के रूप में हमेशा अपने सामने रखें।

5. **धर्मनिरपेक्षताः**—धर्मनिरपेक्ष राज्य वह होता है जिससे राज्य अधिकृत रूप से किसी भी धर्म को राजकीय धर्म के रूप में बढ़ावा नही देता। संविधान उन आदर्शो को तय करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता जिन्हें हम अपने देश और अपने प्रतिनिधियों के जरिये साकार करना चाहते हैं।

2.2 उद्देश्यः—

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे।
- मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्त्तव्यों के बारे में समझ सकेंगे।
- राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे।

2.3 भारतीय संविधान की उद्देशिका (Preamble)-

संविधान के उद्देश्यों को प्रकट करने हेतु प्रायः उनसे पहले एक उद्देशिका प्रस्तुत की जाती है।

भारतीय संविधान की उद्देशिका (आस्ट्रेलियाई संविधान) से प्रभावित तथा विश्व में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। उद्देशिका संविधान का सार मानी जाती है उसके लक्ष्य प्रकट करती है, संविधान का दर्शन भी इसके माध्यम से प्रकट होता है।

संविधान किन आदर्शो आकांक्षाओं को प्रकट करता है इसका निर्धारण भी उद्देशिका से हो जाता है। उद्देशिका यह घोषणा करती है कि संविधान अपनी शक्ति सीधे जनता से प्राप्त करता है। इसी कारण यह हम भारत के लोग से प्रारंभ होती है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावनाः—

हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता, प्राप्त कराने के लिए उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित कराने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर अपनी संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ईस्वीं (मिती मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

उद्देशिका की प्रकृति

1. यह संविधान का महत्वपूर्ण अंग नही है क्योंकि यह राज्य के तीनों अंगों को कोई शक्ति नही देती है वे अपनी शक्तियॉ संविधान के अन्य अनुच्छेदों से प्राप्त करती है। इसी प्रकार यह उनकी शक्ति पर कोई रोक भी नही लगाती है।
2. संविधान के किसी भाग पर यह कोई विशेष बल नही देती है संविधान के अनुच्छेद तथा इसमें संघर्ष होने पर अनुच्छेद को वरीयता मिलेगी।
3. न्यायालय में इस के आधार पर कोई वाद नही लाया जा सकता है न ही वे इसे लागू कर सकते हैं।
4. इस कारण इसे कई बार मात्र शोभात्मक आभूषण भी कहा गया है सर्वोच्च न्यायालय भी इसकी सीमित भूमिका मानता है इसका प्रयोग संविधान में विध्यमान अस्पष्टता दूर करने हेतु किया जा सकता है।

उद्देशिका के उद्देश्य

1. उद्देशिका यह बताती है कि संविधान जनता के लिए है तथा जनता ही अंतिम सम्प्रभु है।
2. उद्देशिका लोगों के लक्ष्यों आकांक्षाओं को प्रकट करती है।
3. इसका प्रयोग किसी अनुच्छेद में विद्यमान अस्पष्टता को दूर करने में हो सकता है।
4. यह जाना जा सकता है कि संविधान किस तारीख को बना तथा पारित हुआ था।

2.4 मौलिक अधिकारः–

भारतीय संविधान के तृतीय भाग में नागरिकों के मौलिक अधिकारों (Fundamental rights) की विस्तृत व्याख्या की गयी है यह अमेरिका के संविधान से ली है। मौलिक अधिकार व्यक्ति के नैतिक, भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्याधिक आवश्यक है। जिस प्रकार जीवन जीने के लिए जल आवश्यक है, उसी प्रकार व्यक्तित्व के विकास के लिए मौलिक अधिकार। मौलिक अधिकार के अंतर्गत यह बताया गया है कि वे सब कानून जो संविधान के शुरू होने से ठीक पहले भारत में लागू थे उनके वे अंश लागू रह जायेगें जो संविधान के अनुकूल हों अर्थात उससे मेल खाते हों यह भी कहा गया कि राज्य कोई भी ऐसा कानून नहीं बना सकता जिससे मौलिक अधिकारों पर आघात होता है। "राज्य" शब्द से तात्पर्य है– संघ सरकार राज्य सरकार दोनों । मौलिक अधिकारों को 6 भागों में विभाजित किया गया है–

1. समानता का अधिकार (अनुच्छेद–18)
2. स्वतत्रंता का आधार (अनुच्छेद–19–22)
3. शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद–23–24)
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद–25–28)
5. संस्कृति और शिक्षा से सम्बद्ध अधिकार (अनुच्छेद–29–30)
6. सांवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद–32–35)

1. समानता का अधिकार (Right to Equality)

1. इसके अनुसार राज्य की तरफ से धर्म, जाति, और लिंग के नाम पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। राज्य की दृष्टि से सभी नागरिकों को समान माना गया है। लेकिन राज्य के स्त्रियों, बच्चों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए विशेष सुविधा के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है।
   - कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद–14) यह ब्रिटिश विधि से लिया गया है। इसका अर्थ है कि राज्य पर बंधन लगाया जाता है कि वह सभी व्यक्तियों के लिए एक समान कानून बनाएगा तथा उन्हें एक समान रूप से लागू करेगा।
   - धर्म, नस्ले, जाति, लिंग या जन्म के स्थान पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद–15)
   - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनु.16)
   - अस्पृश्यता का निषेध (अनु.–17)
   - उपाधियों का निषेध (अनु–18)

2. स्वतंत्रता का अधिकार **(Right to Freedam)**

प्रजातंत्र में स्वतत्रंता को ही जीवन कहा गया है। नागरिकों के उत्कर्ष और उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें लेखन, भाषण तथा अपने भाव व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी जाए। उन्हें कम से कम राज्य सरकार द्वारा यह आश्वासन दिया जाये कि उनकी दैनिक स्वतत्रंता का अकारण अपहरण नही किया जायेगा।

a) भाषण और भावाभिव्यक्ति की स्वतत्रंता (अनु.19)
b) शांतिपूर्ण निःशस्त्र एकत्र होने की स्वतंत्रता (अनु.19 ख)
c) संघ या समुदाय या परिषद निर्मित करने की स्वतंत्रता (अनु.19ग)
d) राज्य के किसी भी कोने में निर्विरोध घूमने की स्वतंत्रता (अनु.19घ)
e) किसी भी तरह की आजीविका के चयन करने की स्वतंत्रता (अनु.19 छ)
f) अपराधों के लिए दोषसिद्धि के विषय में संरक्षण (अनु.20)
g) प्राण और शारीरिक स्वाधीनता का संरक्षण (अनु.21)
h) बंदीकरण और निरोध से संरक्षण

राज्य को यह अधिकार है कि किसी व्यक्ति की इन स्वतंत्राओं पर नियंत्रण करें दि वह यह समझे कि इनके प्रयोग से समाज को सामूहिक तौर पर हानि होगी।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकार **(Right Against Exoploitation)** संविधान के अनुसार मनुष्यों का क्रय विक्रय बेगार तथा किसी अन्य प्रकार का जबर्दस्ती लिया गया श्रम अपराध घोषित किया गया है। यह बताया गया है कि 14 वर्ष से कम आयुवाले बालकों को कारखाने खान–पान अथवा अन्य संकटमय नौकरी में नही लगाया जा सकता।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार **(Right to freedom of Religion)**

संविधान के द्वारा भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। अनु. 25,26,27 और 28 में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार उल्लेखित है। राज्य में किसी भी धर्म को प्रधानता नही दी जाएगी। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्मविरोधी राज्य नही होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति की आय नैतिकता और स्वास्थ्य को हानि पहुँचाये बिना अपना धर्मपालन करने का सम्पूर्ण अधिकार है।

5. संस्कृति और शिक्षा से सम्बद्ध अधिकार **(Cultural & Educational Rights)**

संविधान द्वारा भारतीय जनता की संस्कृति को बचाने का भी प्रयास किया गया है। अल्पसंख्यकों की शिक्षा और संस्कृति से सम्बद्ध हितों की रक्षा की व्यवस्था की गई है। यह बताया गया है कि नागरिकों के किसी भी समूह को, जो भारत या उसके किसी भाग में रहता है, अपनी भाषा लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार है। धर्म के आधार पर किसी भी इंसान को शिक्षण संस्थान में नाम लिखने से रोका नही जा सकता।

6. सांवैधानिक उपचारों का अधिकार **(Right to Constitutional Remedies)**

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को अतिक्रमण से बचाने की व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक माना गया है। प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करने का अधिकार प्राप्त है। डॉ. अम्बेडकर ने बताया था कि मौलिक अधिकार उल्लेखित करने का उद्देश्य एक तो यह है कि हर व्यक्ति इन अधिकारों का दावा कर सके और दूसरा यह है कि हर अधिकारी इन्हें मानने के लिए विवश हो।

मौलिक अधिकारों का निलंबन **(Suspension of fundamental Rights)**

निम्नलिखित दशाओं में मौलिक अधिकार सीमित या स्थगित किये जा सकते हैंः–

1. संविधान में संशोधन करने का अधिकार भारतीय संसद को है। वह संविधान में संशोधन का मौलिक अधिकारों को स्थगित या सीमित कर सकती है। भारतीय संविधान में इस उद्देश्य से बहुत से संशोधन किये जा चुके हैं। इसके लिए संसद को राज्यों के विधान मंडलों की स्वीकृति की आवश्यकता नही रहती।
2. संकटकालीन अवस्था की घोषणा होने पर अधिकार बहुत ही सीमित हो जाते हैं।
3. संविधान के अनुसार स्वतंत्रता के अधिकार और वैयक्तिक अधिकार कई परिस्थितियों में सीमित किये जा सकते हैं, जैसे सार्वजनिक सुव्यवस्था, राज्य की सुरक्षा, नैतिकता साधारण जनता के हित में या अनुसूचित जातियों की रक्षा इत्यादि के हित में राज्य इन स्वतंत्रताओं पर युक्तिसंगत प्रतिबंध लगा सकता है।

4. जिस क्षेत्र में सैनिक कानून लागू हो उस क्षेत्र में उस समय अधिकारियों द्वारा मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण
5. संविधान में यह कहा गया है कि सशस्त्र सेनाओं या अन्य सेना के सदस्यों के मामले में संसद मौलिक अधिकारों को सीमित या प्रतिबंधित कर सकता है।

भारतीय संविधान में उल्लेखित मौलिक अधिकारों में से कुछ अधिकार

1. समानता का अधिकारः–

कानून की नजर में सभी लोग समान है। इसका मतलब है कि सभी लोगों को देश का कानून बराबर सुरक्षा प्रदान करेगा। इस अधिकार में यह भी कहा गया है कि धर्म, जाति या लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता। खेल के मैदान होटल, दुकान इत्यादि सार्वजनिक स्थानों पर सभी को बराबर पहुँच का अधिकार होगा। रोजगार के मामले में राज्य किसी के साथ भेदभाव नही कर सकता। छुआछूत की प्रथा का भी उन्मूलन कर दिया गया है।

2.स्वतंत्रता का अधिकारः–

इस अधिकार के अंतर्गत अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता, सभा/संगठन बनाने की स्वतंत्रता देश के किसी भी भाग में आने–जाने और रहने तथा कोई भी व्यवसाय पेशा या कारोबार करने का अधिकार शामिल है।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकारः–

संविधान में कहा गया है कि मानव व्यापार जबरिया श्रम और 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को मजदूरी पर रखना अपराध है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकारः–

सभी नागरिकों को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा का धर्म अपनाने उसका प्रचार प्रसार करने का अधिकार है।

5. सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारः–

संविधान में कहा गया है कि धार्मिक या भाषाई, सभी अल्पसंख्यक समुदाय अपनी संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए अपने–अपने शैक्षणिक संस्थान खोल सकते हैं।

6. संवैधानिक उपचार का अधिकारः–

यदि किसी नागरिक को लगता है कि राज्य द्वारा उसके किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है तो इस अधिकार का सहारा लेकर वह अदालत में जा सकता है।

2.5 मौलिक कर्त्तव्य :–

मौलिक कर्त्तव्यों का अर्थ, परिभाषाः–

यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने अधिकार का ही ध्यान रखें एवं दूसरों के प्रति कर्त्तव्यों का पालन न करें तो शीघ्र ही किसी के लिए भी अधिकार नही रहेंगे।

करने योग्य कार्य 'कर्त्तव्य' कहलाते हैं किसी भी समाज का मूल्यांकन करते हुए ध्यान केवल अधिकारों पर ही नही दिया जाता है वरन् यह भी देखा जाता है कि नागरिक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं या नही ।

26 जनवरी 1950 में लागू किये गये भारतीय संविधान में नागरिकों के केवल अधिकारों का ही उल्लेख किया गया था मूल कर्त्तव्यों का नहीं। संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा भाग 4 में धारा 51 के अंतर्गत 11 मौलिक कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है। सन् 2002 में धारा 51 अनुभाग द्वारा एक और कर्त्तव्य इसमें जोड़ दिया गया है।

भारत के नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य को सरदार स्वर्ण सिंह समिति की अनुशंसा पर संविधान 42वें संशोधन (1976) के द्वारा मौलिक कर्त्तव्य को संविधान में जोड़ा गया, इसे रूस के संविधान से लिया गया है। इसे भाग 4 (क) में अनुच्छेद 51 (क) के तहत रखा गया है।

मौलिक कर्त्तव्यों की संख्या 11 है जो निम्नलिखित है–

1. प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तर्व्य होगा कि वह संविधान का पालन करें और उसके आदर्शो संस्थाओं राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें।
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शो को हृदय में संजोए रखे और और राष्ट्रगान का आदर करें।
3. भारत की प्रभुत्ता,एकता और आखंडता की रक्षा करें और उसे अक्षुण्ण रखें।
4. देश की रक्षा करें।
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें।
6. हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझे और उसका निर्माण करें।
7. प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और उसका संवर्धन करें।
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उसका ज्ञानार्जन की भावना का विकास करें।
9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें।
10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत्त प्रयास करें।
11. माता–पिता या संरक्षक द्वारा 6 से 14 वर्ष के बच्चों हेतु प्राथमिक शिक्षा प्रदान करना (86 वां संशोधन)

मौलिक कर्त्तव्यों का महत्वः–(Importance of Fundamental Duties)

अधिकारों और कर्त्तव्यों का घनिष्ठ संबंध सदैव से रहा है। अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्के के ही पहलु हैं। एक के बिना दूसरा अस्तित्वहीन हो जाता है। कर्त्तव्यों के बिना

अधिकारों की मांग करना नीतिसंगत और न्यायोचित नही है। वाइल्ड के अनुसार केवल कर्त्तव्यों के संसार में ही अधिकारों की प्रतिष्ठता है। संविधान के 42वें संशोधन द्वारा नागरिकों के कर्त्तव्यों का समावेश करके हमारे संविधान की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा किया है।

मौलिक कर्त्तव्यों की आलोचनाः–(Criticism of Fundamental Duties)

संविधान के भाग 4 (क) में वर्णित मूल कर्त्तव्यों की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है–कर्त्तव्यों की सूची अधूरी है क्योंकि इसमें मतदान, कर उदायगी,परिवार नियोजन, आदि जैसे कर्त्तव्य समाहित नही है। स्वर्णसिंह समिति ने कर उदायगी के कर्त्तव्य की सिफारिश की थी।

कुछ कर्त्तव्य अस्पष्ट, बहुअर्थी एवं सामान्य जन के लिए समझने में कठिन हैं, जैसे उच्च आदर्श, मिश्रित संस्कृति, वैज्ञानिकता आदि। अपनी गैर न्यायोचित छवि के चलते उन्हें आलोचकों द्वारा नैतिक आदेश की संज्ञा दी गई। प्रसंगवश स्वर्णसिंह समिति ने मूल कर्त्तव्यों के उल्लंघन पर अर्थदण्ड व सजा की सिफारिश की थी। आलोचकों का यह भी कहना था कि कर्त्तव्यों को भाग 4 (क) में समाविष्ट करके इसके मूल्य व महत्व को कम कर दिया गया है। इसे भाग 3 के बाद जोड़ा जाना चाहिये था ताकि मूल अधिकारों से संबद्ध रहते।

मौलिक कर्त्तव्यों की प्रकृतिः–ः–(Nature of Fundamental Duties)

हमारे संविधान में मौलिक कर्त्तव्य केवल आदर्शो की ओर संकेत करता है। वे वास्तविक नही जान पड़ते। इन कर्त्तव्यों की विशेष आलोचना इस प्रकार से है कि वे न्याय योग्य नही है। जिनका परिणाम यह निकलता है कि यह कर्त्तव्य संविधान पर बोझ बन कर रह गये हैं। कुछ कर्त्तव्य तो साधारण मनुष्य की समझ से बाहर हैं जैसे गौरवशाली परम्परा और सामाजिक संस्कृति का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है। मानववाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कई परिभाषाएं हो सकती हैं। राष्ट्रीय संघर्ष को प्रोत्साहन देने वाले आदर्श से संबंधित कर्त्तव्य अस्पष्ट हैं।

भारतीय संविधान के मूल कर्त्तव्यः–

भारत के संविधान में मूल अधिकारों के साथ मूल कर्त्तव्यों (मौलिक कर्त्तव्यों) को भी शामिल किया गया है। वस्तुतः अधिकार और कर्त्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। अधिकार विहीन कर्त्तव्य निरर्थक होते हैं जबकि कर्त्तव्य विहीन अधिकार निरंकुशता पैदा करते हैं यदि व्यक्ति को 'गरिमापूर्ण जीवन' का अधिकार प्राप्त हो तो उसका कर्त्तव्य बनता है कि वह अन्य व्यक्तियों के गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार का भी ख्याल रखें। यदि व्यक्ति 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' प्यारी है तो यह भी जरूरी है कि उसमें दूसरों की 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के प्रति धैर्य और सहिष्णुता विद्यमान हो।

विश्व के अधिकांश लोकतांत्रिक देशों के संविधान में नागरिकों के कर्त्तव्यों का उल्लेख नही किया गया है, उनमें केवल मूल अधिकारों की घोषणा की गई है, जैसे अमेरिकी संविधान। कुछ साम्यवादी देशों में मूल कर्त्तव्यों की घोषणा की परम्परा दिखाई पड़ती है।

भूतपूर्व सोवियत संघ का उदाहरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भारतीय संविधान में उल्लेखित मूल कर्त्तव्य भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान से ही प्रभावित है।

संविधान में मूल कर्त्तव्यों का इतिहासः—:—(History of Fundamental Duties in Indian Constitution)

भारतीय संविधान में ही आरंभ में मूल कर्त्तव्य शामिल नही थे, इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व के काल में 1975 में आपातकाल की घोषणा की गई थी, तभी सरदार स्वर्णसिंह के नेतृव्य में संविधान में उपयुक्त संशोधन सुझाने के लिए एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति ने यह सुझाव दिया कि संविधान के मूल अधिकारों के साथ—साथ मूल कर्त्तव्यों का समावेश होना चाहिये। समिति का तर्क यह था कि भारत में अधिकांश लोग अधिकारों पर बल देते है।, यह नही समझते कि अधिकार किसी न किसी कर्त्तव्य के सापेक्ष होता है। स्वर्णसिंह समिति की अनुशंसाओं के आधार पर '42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976' के द्वारा संविधान के भाग 4 के पश्चात् भाग 4 (क) अंतः स्थापित किया गया और उसके भीतर अनुच्छेद 51 (क) को रखते हुए 10 मूल कर्त्तव्यों की सूची प्रस्तुत की गई। आगे चलकर '86 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2002' के माध्यम से एक और मूल कर्त्तव्य जोड़ा गया। जिसके तहत 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के माता—पिता और संरक्षकों पर यह कर्त्तव्य आरोपित किया गया है कि वे अपने बच्चें अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करेंगे।

मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने के उपायः—

भारत सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायधीश श्री जे. एस. वर्मा की अध्यक्षता में मूल कर्त्तव्यों के प्रचालन पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की थी। इस समिति में 1999 में प्रस्तुत की गई अपनी रिर्पोट में मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने के लिए कुछ सुझाव दिये जिनमें प्रमुख हैं—

- 3 जनवरी को 'मूल कर्त्तव्य दिवस' घोषित किया जाये। 3 जनवरी की तिथि इसलिये चुनी गई थी क्योंकि इसी दिन से 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1976 लागू हुआ था। जिसमें मूल कर्त्तव्य भी थे।
- मूल कर्त्तव्यों को विद्यालयों के पाठ्यक्रम तथा अध्यापकों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल किया जाये।
- सभी शासकीय कार्यालयों में तथा सार्वजनिक स्थानों पर बोर्ड विज्ञापन आदि के माध्यम से मूल कर्त्तव्यों को ज्यादा से ज्यादा प्रस्तुत किया जाना चाहिये ताकि लोगों को उनसे परिचित होने का मौका मिलना चाहिये।
- मीडिया को लगातार ऐसे संदेश तथा कार्यक्रम प्रस्तुत करने चाहिये जिनसे मूल कर्त्तव्यों के संबंध में जागृति तथा चेतना का प्रसार हो।

- मीडिया को ऐसे दृश्य दिखाने से परहेज करना चाहिये जो जनता को उत्तेजित करते हों और उससे मूल कर्त्तव्यों से विचलित करते हों।

वर्मा समिति का सुझाव यह भी था कि मूल कर्त्तव्यों की प्रवर्तनीयता पर बल दिया जाना चाहिये। इसके बाद भी सही बात यही है कि किसी देश की राजनीति का संस्कृति में परिवर्तन करने के लिए सिर्फ सरकारी प्रयास पर्याप्त नही होते। तथ्य यही है कि जब तक देश के लोगों में राजनीतिक जागरूकता तथा कर्त्तव्य निर्वाह की चेतना विकसित न हो, तब तक मूल कर्त्तव्यों को लागू करने का उद्देश्य पूर्ण नही होगा।

मूल कर्त्तव्यों की प्रवर्तनीयताः–ः–(Enforceability of Fundamental Duties)

सामान्य धारणा यह है कि मूल कर्त्तव्य न्यायालयों के माध्यम से प्रवृत्त नही कराये जा सकते हैं अर्थात यदि कोई नागरिक अपने मूल कर्त्तव्यों का पालन न करें तो न्यायालय द्वारा नागरिक को दंडित नही किया जा सकता है। इस दृष्टि से मूल कर्त्तव्य भी राज्य के नीति निदेशक तत्वों की तरह हैं। जिस तरह से राज्य को न्यायालय में इस बात के लिए प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है कि वह नीति निदेशक तत्वों का पालन नही कर रहा है, वैसे ही कि किसी नागरिक को इस बात के लिए बाध्य या दण्डित नही किया जा सकता है कि वह अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहा है।

अनुच्छेद 37 तथा अनुच्छेद 51 (क) में तुलना करें तो देखा जाता है कि जहाँ अनुच्छेद 37 में नीति निदेशक तत्वों के अप्रवर्तनीय होने की बात साफ तौर पर कही गई है, वहाँ अनुच्छेद 51 (क) में ऐसी कोई बात वर्णित नही है। न्यायमूर्ति श्री वेंकटचेलैया ने एक मामले में यह स्पष्टीकरण देते हुए बताया है कि संविधान यदि मूल कर्त्तव्यों को प्रवर्तनीय घोषित नही करता है तो वह उन्हें अप्रवर्तनीय घोषित नही करता है। इसके अलावा, न्यायालय ने कुछ मामलों में स्पष्ट किया है कि जिस तरह मूल अधिकार, संविधान को समझने के लिए मूलभूत महत्व के हैं, वैसे ही मूल कर्त्तव्य भी। मूल और कर्त्तव्य दोनों शब्द इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, इसलिये जहाँ कही भी संविधान की व्याख्या करने का प्रश्न उपस्थित होगा, न्यायालय मूल कर्त्तव्यों को भी एक महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में प्रयुक्त करेंगे। न्यायालय स्वयं भी कोई भी आदेश पारित करते हुए ध्यान रखेंगे कि उनका कोई अनुच्छेद 51 (क) में दिये गये कर्त्तव्यों के विरूद्ध न हो।

महत्वपूर्ण तथ्यः–

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 (क) में मूल कर्त्तव्य शामिल हैं।
- भारतीय संविधान के भाग 4 (क) में मूल कर्त्तव्यों का वर्णन है।
- भारतीय संविधान में मूल कर्त्तव्यों को भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान से लिया गया है।
- संविधान में मूल कर्त्तव्यों से संबंधित प्रावधान स्वर्णसिंह समिति की संस्तुतियों के आधार पर किया गया है।
- मूल कर्त्तव्यों को 42वें संविधान संशोधन के द्वारा 1976 में शामिल किया गया है।
- 86वें संविधान संशोधन 2002 के माध्यम से 11वें मूल कर्त्तव्य को जोड़ा गया।

- संविधान में उल्लेखित मूल कर्त्तव्य केवल भारत के नागरिकों के लिए है।

मूल अधिकारों, निदेशक सिद्धांतों और मौलिक कर्त्तव्यों के बीच संबंधः–

निदेशक सिद्धांतों को मूल अधिकारों के साथ विवाद की स्थिति में कानून की संवैधानिक वैद्धता को बनाये रखने के लिए इस्तेमाल किया गया है। 1971 में 25वें संशोधन द्वारा जोड़े गये अनुच्छेद 31 (सी) में प्रावधान है कि अनुच्छेद 39 (बी)–(सी) में निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिए बनाया गया कोई भी कानून इस आधार पर अवैध नही होगा कि वह अनुच्छेद 14,19 और 31 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों अवमूल्यित है।

1976 में 42वें संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद का सभी निदेशक सिद्धांतों पर विस्तार किया गया था लेकिन इस विस्तार को शून्य कर दिया क्योंकि इससे संविधान के बुनियादी ढाँचें में परिवर्तन होता है। मूल अधिकार और निदेशक सिद्धांत दोनों का संयुक्त इस्तेमाल सामाजिक कल्याण के लिए कानून का आधार बनाने में किया गया है। केशवानंद भारती मामले में फैसले के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपना लिया है कि मूल अधिकार और निदेशक सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों एक कल्याणकारी राज्य बनाने के लिए सामाजिक क्रांति के एक ही लक्ष्य के लिए कार्य करते हैं।

इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने मौलिक कर्त्तव्यों का प्रयोग मौलिक कर्त्तव्यों में दिये गये उद्देश्यों को प्रोत्साहित करने वाले कानूनों की संवैधानिक वैद्धता बनाये रखने के लिए किया है। इन कर्त्तव्यों को सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य ठहराया गया है, बशर्ते राज्य द्वारा उनका प्रवर्तन एक वैद्य कानून के द्वारा किया जाये। सर्वोच्च न्यायालय ने एक नागरिक को अपने कर्त्तव्य के उचित पालन के लिए प्रभावी और सक्षम बनाने हेतु प्रावधान करने की दृष्टि राज्य को इस संबंध में निर्देश जारी किये हैं।

2.6 राज्य के नीति निदेशक तत्वः–:–(Directive Principles of State Policy)

हमारे संविधान की एक प्रमुख विशेषता नीति निदेशक तत्व है। विश्व के अन्य देशों के संविधान में आयरलैंड के संविधान को छोड़कर अन्य किसी देश के संविधान में इस प्रकार के तत्व नही है। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संविधान में केवल राज्य के संगठन की व्यवस्था एवं अधिकार पत्र का वर्णन ही नही किया है, वरन् वह दिशा भी निश्चित की है जिसकी और बढ़ने का प्रयत्न भविष्य में भारत राज्य को करना है। संविधान निर्माताओं का लक्ष्य भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का, और इसलिये उन्होनें नीति निदेशक तत्व में ऐसी बातों का समावेश किया, जिन्हें कार्य रूप में परिणत किये जाने पर एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना संभव हो सकती है।

नीति निदेशक तत्वः–

संविधान की धारा 38 से 51 तक में राज्यनीति के निदेशक तत्वों का वर्णन किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन तत्वों को निम्न वर्गो में बांटा जा सकता है–

1. **आर्थिक सुरक्षा निदेशक तत्वः**– भारतीय संविधान के निर्माताओं का उद्देश्य भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना था और इस दृष्टि से अधिकांश निदेशक तत्वों द्वारा आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक न्याय के संबंध में व्यवस्था की गई है। संविधान में इस प्रकार के निम्न तत्वों का उल्लेख है–

(i) राज्य प्रत्येक स्त्री और पुरूष को समान रूप से जीविका के साधन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा।

(ii) राज्य देश के भौतिक साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण की ऐसी व्यवस्था करेगा कि अधिक से अधिक सार्वजनिक हित हो सके।

(iii) राज्य इस बात का भी ध्यान रखेगा कि सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों का इस प्रकार केन्द्रीकरण न हो कि सार्वजनिक हितों किसी प्रकार की हानि हो।

(iv) राज्य प्रत्येक नागरिक को चाहे वह स्त्री हो या पुरूष, समान कार्य के लिए समान वेतन प्रदान करेगा ।

(v) राज्य श्रमिक पुरूषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग नही होने देगा ।

(vi) मूल संविधान में कहा गया था कि राज्य बच्चों तथा युवकों की शोषण से तथा भौतिक या नैतिक परित्याग से रक्षा करेगा। 42वें संविधान संशोधन द्वारा उसे इस प्रकार संशोधित किया गया हैः राज्य के द्वारा बच्चों को स्वस्थ रूप में विकास के लिए अवसर और सुविधाएं प्रदान की जायेगी, उन्हें स्वतंत्रता और सम्मान की स्थिति प्राप्त होगी, बच्चों तथा युवकों की शोषण से तथा भौतिक या नैतिक परित्याग से रक्षा की जायेगी।

(vii) राज्य अपने आर्थिक साधनों के अनुसार और विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयास करेगा कि सभी नागरिक अपनी योग्यता के अनुसार रोजगार पा सके, शिक्षा पा सके एवं बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंगहीनता आदि दर्शाओं में सार्वजनिक सहायता प्राप्त कर सकें।

(viii) राज्य ऐसा प्रयत्न करेगा कि व्यक्तियों को अपनी अनुकूल अवस्थाओं में ही कार्य करना पड़े तथा स्त्रियों को प्रसूतावास्था में कार्य न करना पड़े ।

(ix) राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि कृषि और उद्योग में लगे हुए सभी मजदूरों को अपने जीवन निर्वाह के लिए यथोचित वेतन मिल सके, उनका जीवन स्तर ऊपर उठ सके, वे अवकाश के समय का उचित उपयोग कर सकें तथा उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति का अवसर प्राप्त हो सके।

(x) राज्य का कर्त्तव्य होगा कि गांवों में व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दे।

(xi) वैज्ञानिक आधार पर कृषि का संचालन करना ही राज्य का कर्त्तव्य होगा।

(xii) राज्य पशु पालन की अच्छी प्रणालियों का प्रचलन करेगा और गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्ल सुधारने और उनके वध को रोकने का प्रयत्न करेगा।

(xiii) नवीन अनुच्छेद 391 के अनुसार राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि कानूनी व्यवस्था का संचालन समान अवसर तथा न्याय की प्राप्ति में सहायक हो और उचित व्यवस्थापन, योजना या अन्य किसी प्रकार से समाज के कमजोर वर्गो के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था करेगा, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति या अन्य किसी प्रकार से व्यक्ति न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह सके।

(xiv) राज्य उचित व्यवस्थापन या अन्य प्रकार से औद्योगिक संस्थानों के प्रबंध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने के लिए कदम उठायेगा । 44वें संविधान संशोधन (अप्रैल 1979) द्वारा आर्थिक सुरक्षा संबंधी निदेशक तत्वों में एक और तत्व जोड़ा गया है। इसमें कहा गया है कि राज्य न केवल व्यक्तियों की आय और उनके सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों संबंधी भेदभाव को कम से कम करने का प्रयत्न करेगा वरन् विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए व्यक्तियों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं और अवसरों संबंधी भेदभाव को भी कम से कम करने का प्रयत्न करेगा।

2. सामाजिक हित संबंधी निदेशकः–

इस संबंध में राज्य के निम्नलिखित कर्त्तव्य निश्चित किये गये हैं–

(i) राज्य लोगों के जीवन स्तर को सुधारने और स्वास्थ्य सुधारने के लिए प्रयत्न करेगा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए औषधि में प्रयोग किये जाने के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मादक, द्रव्यों तथा अन्य पदार्थो के सेवन पर प्रतिबंध लगायेगा।

(ii) राज्य जनता के दुर्बल अंगों के विशेषतःया अनुसूचित जातियों तथा अनुजनजातियों के, शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोधण से उनकी रक्षा करेगा।

3. न्याय, शिक्षा और प्रजातंत्र संबंधी निदेशक तत्वः–

भारत में सुगम और सुलभ न्याय व्यवस्था, शिक्षा के प्रसार और प्रचार तथा प्रजातंत्र की भावना के विकास के लिए भी कुछ निदेशक तत्वों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार है–

(i) न्याय की प्राप्ति हेतु राज्य सभी नागरिकों के लिए समान कानून बनायेगा और अपनी सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने का प्रयत्न करेगा।

(ii) शिक्षा के संबंध में यह प्रस्तावित किया गया है कि विधान के लागू होने के 10 वर्ष के समय में राज्य 14 वर्ष के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा।

(iii) प्रजातंत्र की भावना के विकास के लिए निदेशक तत्वों में कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों के संगठन की ओर कदम उठायेगा और इन्हें इतने अधिकार प्रदान किये जायेगें कि वे स्वायत्ता शासन की इकाईयों के रूप में कार्य कर सके।

4. प्राचीन स्मारकों की रक्षा संबंधी निदेशक तत्वः–

इन तत्वों द्वारा प्राचीन स्मारकों, कलात्मक महत्व के स्थानों और राष्ट्रीय महत्व के भवनों की रक्षा का कार्य भी राज्य को सौंपा गया है। राज्य का कर्त्तव्य निश्चित किया गया है कि वह प्रत्येक स्मारक, कलात्मक या ऐतिहासिक रूचि के स्थानों को जिससे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया हो रक्षा करने का प्रयत्न करेगा। 42वें संवैधानिक संशोधन में कहा गया है कि राज्य देश के पर्यावरण की रक्षा और उसमें सुधार का प्रयास करेगा। (अनुच्छेद–48 अ)

5. अन्तराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा संबंधी तत्वः–

हमारे देश का आदर्श सदैव ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रहा है और हमने सदैव ही शांति तथा 'जीओ और जीने दो' के सिद्धांत को अपनाया है। इसी आदर्श को हमारे संविधान के अंतिम निदेशक तत्व में इस प्रकार बताया हैः राज्य अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में निम्नलिखित आदर्शो को लेकर चलने पर प्रयत्न करेगाः

(i) अन्तराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा में वृद्धि।

(ii) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण संबंध स्थापित करना ।

(iii) राष्ट्रों के आपसी व्यवहार में अन्तराष्ट्रीय कानून और संधियों के प्रति आदर का भाव बढ़ाना।

(iv) अन्तराष्ट्रीय झगड़ों को मध्यस्थता द्वारा सुलझाने के लिए प्रोत्साहित करना । निदेशक तत्वों के इस वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन तत्वों के आधार पर भारत में वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना हो सकेगी और हमारा देश एक ऐसा लोक कल्याणकारी राज्य बन सकेगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समता तथा सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके।

राज्य के नीति निदेशक तत्वः–

- अनुच्छेद 38– राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा ।
  - अनुच्छेद 39(क)–समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता।
  - अनुच्छेद 40–ग्राम पंचायतों का संगठन।
  - अनुच्छेद 41–कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।
  - अनुच्छेद 42–काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध ।
  - अनुच्छेद 43–कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि ।

- अनुच्छेद 43 (क)—उद्योगों के प्रबंध में श्रमिकों का भाग लेना ।
- अनुच्छेद 44—नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता।
- अनुच्छेद 45—बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध ।
- अनुच्छेद 46—अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।
- अनुच्छेद 47—पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्त्तव्य ।
- अनुच्छेद 48—कृषि और पशुपालन का संगठन ।
- अनुच्छेद 48 (क)—पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन एवं वन्य जीवों की रक्षा ।
- अनुच्छेद 49—राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण।
- अनुच्छेद 50—कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण ।
- अनुच्छेद 51—अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि।

2.7 ईकाई सारांशः—

किसी भी स्वतंत्र राज्य के निर्माण में मौलिक अधिकार तथा नीति निदेशक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य के नीति निदेशक तत्व जनतांत्रिक संवैधानिक विकास के नवीनतम तत्व हैं। ये वे तत्व हैं जो संविधान के विकास के साथ ही विकसित हुए हैं। इन तत्वों का कार्य एक जन कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति निदेशक तत्व शामिल किये गये हैं। भारतीय संविधान के भाग 3 तथा 4 मिलकर संविधान तथा सामाजिक न्याय के दर्शन के वास्तविक तत्व निहित हैं। निदेशक तत्व कार्यपालिका और विधायिका के वे तत्व हैं, जिनके अनुसार इन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग करना होता है। राज्य के नीति निदेशक तत्वों का उद्देश्य सामूहिक रूप से भारत में आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र की रचना करना तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है।

2.8 अपनी प्रगति की जाँच करनाः—

- राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का वर्णन कीजिये?
- मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं?

2.9 निहित कार्यः—

- मौलिक अधिकार और मौलिक कर्त्तव्य में अंतर स्पष्ट कीजिए?

2.10 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दुः—

2.10.1 चर्चा के बिन्दु

....

....

....

2.10.2 स्पष्टीकरण के बिन्दुः—

....

....

....

2.11 संदर्भः—

- राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र (एन. आई. सी.) इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय,भारत सरकार पृ.1 अभिगम तिथि 19 नवम्बर 2016.
- तायल बी.बी. और जेकब, ए (2005) इंडियन हिस्ट्री, वर्ल्ड डेवलपमेंट एंड सिविक्स, पृ. ए—23.
- एन. सी. ई. आर. टी. (2008) सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन III, पाठ्यपुस्तक.
- एन. सी. ई. आर. टी. (2010) प्रजातांत्रिक राजनीति, पाठ्यपुस्तक.

D.El.Ed. 02

Block III Contemporary India : Normative vision

खण्ड–3 समकालीन भारत (आदर्शवादी दृष्टि)

Unit 3- Constitution of India and Educational Provisions

इकाई–3 भारतीय संविधान तथा शैक्षिणक प्रावधान

संरचना

3. 1 परिचय

3. 2 उद्देश्य

3. 3 भारतीय संविधान की समझ

3. 4 शिक्षा के लोकतांत्रिकरण के लिए ब्रिटिश –काल में भारतीयों के प्रयास

3.4.1 राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन एंव उसके उद्देश्य

3.4.2 राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन द्वारा किये गए कार्य

3.4.3 विश्व भारती (शांति निकेतन)

3.4.4 गुरूकूल शिक्षा प्रणाली

3.4.5 वनस्थली विद्यापीठ

3.4.6 श्री अरविन्द आश्रम

3.4.7 जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय

3.4.8 बंगाल विभाजन

3.4.9 असहयोग आंदोलन

3.4.10 वर्धा शिक्षा प्रणाली

3.4.11 गोखले प्रस्ताव (1910),विधेयक (1911) एवं उसका प्रभाव

3.4.12 शिक्षा –नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव ,1913

3.4.13 कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग,1917–1919

3.4.14 वर्धा शिक्षा–प्रणाली

3. 5 शैक्षिक तथा भाषा नीतियों पर संविधान सभा में चर्चा

3.5.1 शिक्षा समितियों की रिपोर्ट में भाषा –भाषायी की स्थिति

3.5.2 कोठारी कमीशन (1964–66)

3.5.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

3.5.4 कार्यक्रम का कार्यान्वयन (1992)

3.5.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा रूपरेखा (NCF,2005)

3.5.6 राष्ट्रीय शिक्षा नीति, ड्राफ्ट (2019)

3.5.7 भारतीय संविधान के भाग 17 में धारा 343–351 तक भारतीय भाषाओं संबंधी प्रावधान

3. 6 भारत के संविधान में प्रमुख शैक्षिक प्रावधान

3.6.1 शिक्षा का अधिकार (Right to Education Act,2009)

3. 7 इकाई सारांश

3. 8 नियत कार्य

3.9 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिंदु

3.10 संदर्भ सूची

3. 1 परिचय– सन् 1857 के विद्रोह के पश्चात् ,भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 1885 में जन्म से राष्ट्रीय चेतना को एक नई दिशा प्राप्त हुई। सन् 1905 में बंगाल का विभाजन, इस राष्ट्रीय चेतना को पूरे भारत में विकासशील कर दिया, इस राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ,यह आंदोलन मुख्यतः चार चरणों में विभाजित है।

(1) 1890 से 1904 –भारतीय शिक्षा आंदोलन

(2) 1905 –बंगाल विभाजन

(3) 1921–22 –असहयोग आंदोलन

(4) 1937–39 वर्धा शिक्षा प्रणाली

शिक्षा की महत्ता को हमारे स्वतंत्रता संग्राम से नेताओं ने बहुत पहले पहचान लिया था, अज्ञानता से मुक्ति का सबल साधन शिक्षा ही है। यह सोच गाँधी जी के मन में सदा रही और इसी के फलस्वरूप अवधारणा बनी और उसके व्यावहारिक प्रयोग किय गए। इसी दुर दृरदृष्टि के परिणाम स्वरूप संविधान के अनुच्छेद 45 में स्पष्ट रूप में कहा गया है कि यह राज्यों का उत्तरदायित्व होगा कि वे संविधान के लागू होने के दस वर्षो ं के भीतर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करें, यह एक बहुत साहसपूर्ण और दूरगामी परिणाम वाला निणर्य था, यह निहित संकल्प का पालन वर्तमान में किया जा रहा है।

3. 2 उद्देश्य :– इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न बिंदुओं को जान पायेंगे।

- भारतीय संविधान को परिभाषित करने में।
- शिक्षा के लोकतांत्रिकरण में विभिन्न भारतीयों के प्रयासों का वर्णन करने में ।
- शैक्षिक एंव भाषा नीतियों को समझने में।
- भारत के संविधान में शैक्षिक प्रावधान की व्याख्या करने में।
- शिक्षा के अधिकारों एंव जिम्मेदारियों को जान पायेंगे।

- भारतीय संविधान और शिक्षा समितियों के रिपोर्ट में भाषाओं की स्थिति की व्याख्ता कर पायेंगे।

3.3 भारतीय संविधान की समझ (Understanding of Constitution):– लोकतंत्र में शासन जनता की संप्रभु या स्वामित्व होता है। यह जनता के लिए, जनता द्वारा और जनता से ,एक संगठित एंव आदेश द्वारा स्थापित व्यवस्था है। किसी देश का संविधान उसका मौलिक कानून है तथा उसकी आधारभूत राजनीति संरचना का आधार है। एक देश कैसे शासित होता है तथा उसके नागरिकों के अधिकार और दायित्व क्या है? यह राज्य के मुख्य अंगों की स्थापना करता है। कार्यपालिका, विधायिका, और न्यायपालिका उनकी शक्तियों को परिभाषित करती है। लोकतांत्रिक उनकी जिम्मेदारियां और एक–दूसरे के साथ उनके संबंधों को नियंत्रित करता है, विश्व में सबसे लंबा लिखित संविधान भारत का है। इसे डॉ. भीमराव अंबेडकर बनाया है, भारतीय संविधान भारत का सर्वोच्च कानून है। यह दस्तावेज मूलभूत राजनीतिक, कोड़, संरचना, प्रक्रियाओं , शक्तियों और सरकारी संस्थानों के कर्त्तव्यों की सीमांकन करता है। तथा मौलिक अधिकारों निर्देश सिद्धांतों और नागरिकों के कर्त्तव्यों को निर्धारित करता है। संविधान भारत को एक संप्रभू , समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष घोषित करता है।

3. 4 शिक्षा के लोकतांत्रिक के लिए ब्रिटिश –काल में भारतीयों के प्रयास

3. 4.1 राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन के उद्देश्य :–

1. शिक्षा का भारतीयकरण– इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजों द्वारा प्रसारित की गई पाश्चात्य सभ्यता एंव संस्कृति व ज्ञान–विज्ञान के स्थान पर भारतीय शिक्षा संस्कृति का प्रचार करता था, जो भारतीय संस्कृति व जनता के अनुरूप हो। अतः पाठ्यचर्याओं को भारत के सांस्कृ तिक मूल्यों को समुचित स्थान दिया जाए।

2. अंग्रेजी भाषा व संस्कृति का विरोध –राष्ट्रीय आंदोलन के अग्रदूत वारतव में अंग्रेजी भाषा के घोर विरोधी थे, इसलिए वह शिक्षा की अंग्रेजी के स्थान पर राष्ट्रभाषा मातृभाषा तथा प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से प्रदान करने के पक्ष धर थे, मुख्यतः शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

3. राष्ट्रीय जागरण– आंदोलकारों, भारतीय युवाओं को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करना चाहते थे कि वे वास्तव में भारत के गौरवशाली इतिहास की जानकारी प्राप्त कर अपने को भारतीय नागरिक के रूप में धन्य समझें तथा मन में भारतीय की भावना जाग्रत हों

4. व्यावसायिक शिक्षा– जीवन की उन्नति व विकास हेतु तथा रोजगार के लिए छात्रों को उपयुक्त एंव आधुनिक व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य था। औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा व्यवस्था से ही देश औद्योगीकरण की ओर बढ़ सकता था।

3.4.2 राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन द्वारा किये गए कार्य–

इस आंदोलन के दौरान सर्व प्रथम भारतीय छात्रों के लिए भारतीय विद्यालयों की आवश्यकता थी, अतः राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन द्वारा इसी प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया गया जो भारतीयों की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकें।

(1) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना–बंगाल में 15 अगस्त ,1906 की एक राष्ट्रीय शिक्षा संवर्धन समिति का गठन किया गया।

(2) बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय–14 अगस्त,1906 के बंगाल राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना हुई।

(3) कलकत्ता में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई तथा अरविन्द घोष को इसका प्राचार्य नियुक्त किया गया।

(4) उपर्युक्त शैक्षिक संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य संस्थाएँ भी स्थापित हुई, जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में महान योगदान किया तथा आज भी यह शिक्षण संस्थाएं भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही है। यह संस्थाएँ निम्नलिखित है–

- विश्व भारती (शान्ति निकेतन)
- गुरूकूल प्रणाली
- वन सीली विद्यापीठ
- श्री अरविन्द आश्रम
- राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान (जामिया मिलिया इस्लामिया, काशी, गुजरात, विद्यापीठ)

3.4.3 विश्व भारती (शान्ति निकेतन)–

रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर 1863 में कलकत्ता से 100 मील दूर बोलपुर नामक स्थान पर, एक शैक्षिक व आध्यात्मिक संस्था की स्थापना की, यहाँ महर्षि देवेन्द्रनाथ अपने शिष्यों व मित्रों के साथ शैक्षिक संगोष्ठियाँ करते थे तथा इस अत्यन्त रमणीक स्थान में उन्हें महान शान्ति का अनुभव होता था तथा आत्मिक शान्ति की प्राप्ति होने के कारण से इस संस्था को 'शान्ति निकेतनल नाम दिया गया, बचपन से ही रवीन्द्र नाथ टैगोर भी अपने पिता के साथ इस स्थान पर आते थे तथा टैगोर पर अपने पिता के उच्च आदर्श व मूल्यों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

1901 में महर्षि देवेन्द्रनाथ ने शान्ति निकेतन में एक स्वतंत्र विद्यालय की नींव डाली, तथा इस के संचालनकर्त्ता का कार्यभार रविन्द्रनाथ टैगोर को सौंपा गय, इसी विद्यालय में छात्रों की संख्या में वृद्धि तथा इसके विस्तार करके इसका नाम ''विश्व–भारती विद्यापीठ'' रखा गया।

1951 में इसे विश्वविद्यालय के रूप में केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो गयी तथा आधुनिक काल में इसे विश्व भारती शान्ति निकेतन विश्व विद्यालय के नाम से पुकारा जाता है।

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के दर्शन तथा विचार धाराओं तथा भारतीय दर्शन के समन्वित रूप ने ही शान्ति निकेतन के विचारों की वास्तविक रूप में क्रियान्वित किया गया। उनके अनुसार मनुष्य में अर्न्तनिहित शक्तियों के विकास करके पूर्णता तथा परम् सतय की ओर ले जाना चाहिए। वे बालक के पूर्ण विकास में स्वतंत्र वातावरण को महत्व देते थे वे प्रकृतिवादी थे तथा उन्मुक्त, स्वतंत्र प्रकृति में बालक के सर्वागीण विकास का मूल–मंत्र मानते थे, इसी कारण शान्ति के प्रकृतिक वातावरण में आज भी कक्षाएँ ली जाती है। एक बड़े आम के पेड़ की छाया में वह कक्षाएँ ली जाती है, जिसे शिक्षक एक छात्र दोनों आनन्द लेते है।

गुरूदेव का मानना था कि बालक स्वाभाविक रूप से ही क्रियाशील होता है तथा वह क्रियाओं के माध्यम से अपने आप को अभिव्यक्त करता है। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान के द्वारा ही मात्र विकास पर वल नहीं दिया अपितु जब बालक पुस्तकीय ज्ञान का प्रयोग सृजनात्मकता में लगाया है, तो उसका सर्वांगीण विकास होता है।

3.4.4 गुरूकुल शिक्षा प्रणाली–

सन् 1896 में शहीद स्वामी श्रद्धानन्द महाराज ने गुरूकुल प्रणाली हेतु वैदिक आदर्शों की शिक्षा हेतु महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया। इसके पश्चात् सन्1902 में कागड़ी ग्राम हरिद्धार में स्थापित है, वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर की संख्या घोषित किया गया है। रमणीक, शान्त तथा स्वास्थ्यप्रद वनस्थली में गुरूकुल प्रणाली के आधार पर महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरूकुल कुरूक्षेत्र, गुरूकुल वृन्दावन इत्यादि स्थानों पर स्थापित हुए।

गुरूकुल प्रणाली के प्रति गांधीजी, श्रीमती एनी बेसेन्ट, लाला लाजपत राय व रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि ने निष्ठा व्यक्त की थी। इस प्रणाली में छात्रों को शिक्षक के प्रति सम्मान तथा अनुशासन में रहते हुए शिक्षा ग्रहण पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें विश्व बन्धुत्व, मानव कल्याण तथा वैदिक संस्कृति के प्रोत्थान की धारणा निहित है।

3.4.5 वनस्थली विद्यापीठ –

सन् 1929 में राजस्थान के वनस्थली (ग्रामीण क्षेत्र) में जीवन कुटीर, नामक संस्था की स्थापना राजस्थान में की गई, इसके प्रमुख कार्यकत्ताओं में श्री हीरालाल शास्त्री तथा उनकी पत्नी श्रीमती रत्ना शास्त्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् 1935 में इसका नाम ''राजस्थान बालिका विद्यापीठ'' रखा गया तथा 1942–43 में राजस्थान बालिका विद्याालय वनस्थली विद्यापीठ के रूप में जाना जाने लगा। यहाँ उच्च शिक्षा में उत्तर सिनातक स्तर तक। शिक्षण कार्य होता है तथा सरकार इसे विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्राप्त है। यहाँ प्राथमिक स्तर से लेकर परास्नातक व शोध कार्य तक संचालित होते है।

3.4.6 श्री अरविन्द आश्रम–

सन् 1910 में पाण्डिचेरी में भारतीय अध्यात्मवाद के प्रचार के उद्देश्य से श्री अरविन्द घोष ने इस आश्रम को स्थापना की। श्री अरविन्द जी ने अपना राजनैतिक क्षेत्र का परित्याग कर, यह अत्यन्त पवित्र तथा आध्यात्मिक आश्रम सुनवाया। आश्रम अपनिषद के उपदेशानुसार भौतिकतावादी तथा आध्यात्मवादी विचारधाराओं को सामंजस्य करने का लक्ष्य रखा गया।

3.4.7 जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय–

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में लगभग सभी सम्प्रदाय, धर्म, भाषा व प्रान्त के लोगों ने बढ़–बढ़कर हिस्सा लिया हिन्दुओं की ही भाँति मुसलमानों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया तथा राष्ट्रीयता के प्रयास के लिए शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की। इसमें कई मुस्लिम नेताओं में शैक्षिक प्रयास किय जैसे –नवाब अब्दुल लतीफ मिर्जा गुलाम अहमद, सर सैयद अहमद खाँ इत्यादि।

सन् 1879 में सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का रूप ले लिया। अलीगढ विश्वविद्यालय से अंगेजी सरकार के समर्थक व राजभक्त युवक ही शिक्षा ग्रहण करते थे।

3.4.8 बंगाल विभाजन (**Partition of Bangal 190I**):– बंगाल के विभाजन से राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रीय शिक्षा की मांग को गति प्रदान की। इस आन्दोलन के प्रति तीव्र होने से शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की मांग बढ़ती गई और भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण के विरूद्ध देशप्रेमियों की आवाज भारत के कोने –कोने में गूँजने लगी। भारतीय नेताओं तथा गाँधीजी भी इसके जबरदस्त विरोधी एंव निन्दक थे। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ,लाल लाजपत राय तथा बाल गंगाधर तिलक भी इस भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप का कड़ा विरोध किया। स्वेदशी आंदोलन तथा स्वदेशी शिक्षण संस्थाओं की बढ़ावे को बल दिया गया।

3.4.9 असहयोग आंदोलन (**Non-Coopration Movement 1920**) –

अंग्रेजी शिक्षा नीति का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत, पाली एंव पारसी भाषा के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करने के साथ ही पश्चिमी सभ्यता एंव जीवन पद्धति के प्रति भारतीयों में आकर्षण पैदा करना भी था परन्तु इस अंग्रेजी शिक्षा एंव संस्कृति ने विरोध में राष्ट्रीय आंदोलन कर्त्ताओं ने शासन से खिलाफ आन्दोलन खड़ा कर दिया। महातमा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन द्वारा देश के सभी लोगो को इस आंदोलन का भागीदार बनाया। इस परिवर्तन में ज्योतिराव फुले, भीमराव अम्बेडकर, पेरियार रामास्वामी नाईकर,राजा राममोहन राय, आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी, सावित्री बाई फुले ने लड़कियों के लिए शिक्षा के द्वार खोले,

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन व अम्बेडकर ने भारत को निर्माणधीन राष्ट्र बनाया, सन् 1911 के बंगाल विभाजन के साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन का उत्साह आगे नहीं बढ़ रहा था। परन्तु 1920 में महात्मा गाँधी ने असहयोग –आंदोलन पुनः प्रारम्भ कर अपने देशवासियों को स्कूलों और कॉलेजों का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया, परिणमतः सभी प्रान्ती में उनका निर्माण किया गया। इसी के फलस्वरूप जामिया–मिलिया–इस्लामिया, बंगाल राष्ट्रीय विश्वविद्यालय काशी विद्यापीठ ,बिहार विद्यापीठ एंव गुजरात विद्यापीठ अस्तित्व में आये, परन्तु असहयोग –आंदोलन के हिंसात्मक होने पर गाँधी जी यह आंदोलन स्थगित कर दिया।

अतः कुछ राष्ट्रीवादी कार्यकर्त्ताओं ने ही अलीगढ़ शिक्षा प्रणाली का विरोध किया तथा उससे असहयोग करके सन् 1920 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के समान स्तर की राष्ट्रवादी संस्था जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना अलीगढ़ में ही की गई, श्री मोहम्मद अली इस संस्था के प्रथम प्रधानाचार्य थे। 1920–22 में जब खिलाफल आंदोलन के समाप्त होते ही इसे दिल्ली से सीानान्तरित कर दिया गया।

इसके अलावा कई विद्यालय भी खोले गये, इसकी शुरूआत कलकत्ता के वकील श्री एस. आर.दास. ने सन्1929 में किया, उन्होंने इण्डियन पब्लिक स्कूल सोसाइटी का रजिस्ट्रेशन करया तथा इसके लिए 14 लाख रूपये चन्दा एकत्रित किया।

3.4.10 बड़ौदा नरेश के प्रयास–

राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में शिक्षा के महत्व को जीवन का परम लक्ष्य बनाकर, सुविख्यात शिक्षा–प्रेमी बडौदा –नरेश,महाराज सायाजीराव गायकवाड़ और कर्मठ समाज–सेवक गोपाल गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क ताि अनविार्य बनाने की दिशा में दीप्तिमान कदम उठाए तथा प्राथमिक शिक्षा को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

20 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में बम्बई में सर चिमनलाल सीतलवाद तथा सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों ने ब्रिटिश सरकार से बम्बई नगर में अनिवार्य शिक्षा आरम्भ करने की शक्तिशाली शब्दों में माँग की ब्रिटिश सरकार ने उनको संतुष्ट करने के लिए , इस विषय पर परामर्श हेतु 1906 में एक समिति की नियुक्ति कर दी, परन्तु समिति के सदस्य, सरकार के ही सलाहकार थे, अतः उन्होंने बलपूर्वक घोषित किया कि अनिवार्य शिक्षा को बम्बई नगर में आरम्भ किया जाना असम्भव है।

इसी कार्य की महाराज सायाजीराव गायकवाड़ ने अपने बड़ौदा–राज्य में सम्भव किया, उन्होंने यह योजना सन् 1893 में अपने राज्य के अमरेली तालुका के व ग्प्रमों में आरम्भ किया · इस योजना के अनुसार, इन ग्प्रमों के 7 से 12 वर्ष तक की आयु के समस्त बालकों तथा 7 से 10 वर्ष तक की समस्त बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एंव अनिवार्य बना दिया गया, इस सफलता के बाद महाराज ने सन् 1906 में एक अधिनियम बनाकर अपने राज्य में लागू कर दिया।

3.4.11 गोखले प्रस्ताव (1910),विधेयक (1911) एवं उसका प्रभाव (**Gokhale's Resolution 1910, Bill 1911 and its Impact**):–

बडौदा– नरेश के सफल प्रयास से प्रभावित होकर गोपाल कृष्ण गोखले ने भी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का संकल्प किया, वह उस समय केन्द्रीय धारा–सभा के सदस्य थे, अतः उन्होंने, इस सभा के माध्यम से भारत–सरकार की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की दिशा में क्रियाशील बनाने का संकल्प लिया।

बिल का प्रभाव (Impact of Bill):– गोखले के प्रयास अन्ततः फलीभूत हुए, उनके कार्य सरदार वल्लभ भाई पटेल द्वारा उठा लिया गया। सन् 1917 से उन्होंने बुम्बई विधान परिषद में, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का बिल प्रस्तावित कर दिया, बिल को कुछ संशोधनों के साथ पारित कर दिया गया, यह भारत में अनिवार्य शिक्षा का पहला कानून बन गया, इसे पटेल अधिनियम 1918 (Patel Act of 1918) के रूप में जाना जाता है।

गोखले का विधेयक,1911

एक वर्ष तक सरकार ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के आश्वासन के प्रति कोई कार्य नहीं किया, अंत 16 मार्च, 1911 को गोखले ने केन्द्रीय धारा सभा के समक्ष अपना विधेयक प्रस्तुत कर दियां जिसके अनुसार–'' इस विधेयक का उद्देश्य –देश की प्राथमिक शिक्ष– प्रणाली में अनविार्यता के सिद्धान्त की क्रमशः लागू करना है।'' 19 मार्च ,1912 की इस विधेयक पर मतदान कर उसे गिरा दिया गया।

3.4.12 शिक्षा –नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव ,1913 (**Government Resolution on Education Policy,1913**)

गोखले के बिल को खारिज करते हुए सरकार ने वादा यिका कि वे प्राथमिक शिक्षा के लिए आवर्ती और गैर –आवर्ती अनुदान का विस्तार करेगी ,शिक्षा के प्रसार की बढ़ती लोकप्रिय की मांग को सरकार पूरी तरह से नजरअंदाज नहीं कर सकती है। जो बीज गोखले द्वारा बोय गये उनकी फसल अब कटने को तैयार भी गोखले के इस बिल ने ब्रिटिश संसद में स्पंदन पैदा कर दिया, भारतीय बजट के चर्चा के दौरान, भारत के लिए राज्य के अवर सचिव (Under Secetary) ने भी भारतीय शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता को स्वीकार किया इसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार ने 21 फरवरी 1913 इस प्रस्ताव की प्रकाशित कर अपनी शिक्षा नीति का स्पष्टीकरण दिया। नुरूलला एंव नामक ने प्रस्ताव के सम्बन्ध से यह विचार लेखबद्ध किया है–''प्रस्ताव को भारतीय विश्वविद्यालयों के इतिहास में एक मोड कहा जा सकता है।''

इस प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य –भारतीय शिक्षा के विभिन्न अंगों में सुधार करके,उनकी समुन्नत बनाना था। अतः प्राथमिक ,माध्यमिक और उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में बहुमूल्य विचार व्यक्त किये।इस प्रस्ताव में सरकारें ने माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के विषय में इच्छा व्य क्त की साथ ही माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा को संगठित करके, अधिक लाभप्रद बनाने का प्रयास किया 'प्रस्ताव' के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि उसने नवीन विश्वविद्यालयों , शिक्षा विश्वविद्यालयों और प्रत्येक प्रान्त मे कम से कम एक विश्वविद्यालय की स्थापना की सिफारिश करके विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए एक नवीन नीति का निर्धारण किया

3.4.13 कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग,1917–1919 (**Calcutta University Commision ,1917-1919**):– सन् 1913 के शिक्षा सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव में प्राथमिक,माध्यमिक और उच्च शिक्षा की उन्नति एंव विस्तार के लिए अनेक बहुमूल्य विचार व्यक्त किए गये थे। परन्तु इन विचारों के व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए शिक्षा विदों की सम्मति की आवश्यकता थी। इसकारण, एक शिक्षा–आयोग की नियुक्ति की प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। परन्तु 1914 में आरम्भ होने वाले विश्वयुद्ध ने आयोग की नियुक्ति को रद्द कर दिया, परन्तु विश्वयुद्ध की समाप्ति से पहले भारत सरकार ने 'कलकत्ता' विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की।

नियुक्ति के कारण–सन् 1916 के कलकत्ता विश्वविद्याालय के उप–कुलपति आसुतोष मकुर ने विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर विभाग (Post-Graduate Department) की स्थापना की इस और सरकार का ध्यान आकृष्ट किया अतः इस विभाग की क्षमता की जाँच हेतु 14 सितम्बर सन् 1917 को 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' की नियुक्ति की, इस आयोग ने उच्च शिक्षा के लिए सभी , सुझावों को सहर्ष स्वीकार करके, विश्वविद्यालय में सुधार करने के लिए रचनात्मक कदम उठाए। इस में सर्वश्रेष्ठ सुधार यह था कि भारतीय विश्वविद्यालय केवल परीक्षा संस्थाएँ न रहकर शिक्षण और अनुसन्धान के भी केन्द्र बन गए, भारतीय शिक्षा के इतिहास में इसका महत्व असीम है।

3.4.14 वर्धा शिक्षा–प्रणाली (**Wardha Scheme of Education**):– वर्धा शिक्षा–योजना की रूप –रेखा सन् 1937 में गांधी द्वारा बनाई गई थी, वे सन्1937 में वर्धा के मारवाड़ी हुई स्कूल (वर्तमान नवभारत स्कूल)के रजत जयंती समारोह में शामिल होने आये थे। यह 22 एवं 23 अक्टूबर 1937 को होने वाला था। यहाँ अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन (All India National Education Conference) का गांधीजी के सभापतित्व में आयोजन किया गया था। इसी सम्मेलन को ''वर्धा –शिक्षा सम्मेलन '' (Wardha Education Conference) भी कहा जाता है। यहाँ भारत के अनेक शिक्षा शास्त्रियों ,राष्ट्रीय नेताओं और समाज –सुधारकों के समक्ष बुनियादी शिक्षा या नई तालीम की नवीन योजना प्रस्तुत की। इस प्रणाली बालक के

मानसिक विकास के साथ–साथ शारीरिक ,मानसिक ,नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास भी करता है। बुनियादी शिक्षा की सर्वप्रधान विशेषता– उसके उत्पादन का सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करके बालक को अपने भावी जीवन मे निश्चित रूप से आत्म निर्भर और स्वाकलम्बी बनाया जा सकता है। शैक्षिक तथा भाषा नीतियों पर संविधान सभा में चर्चा ।

3.5 शैक्षिक तथा भाषा नीतियों पर संविधान सभा में चर्चा

3.5.1 शिक्षा समितियों की रिपोर्ट में भाषा–भाषाओं की स्थितिः– ब्रिटिश कालीन भारत की आधिकारिक भाषाएं अंग्रेजी, उर्दू तथा हिन्दी थी, अंग्रेजी भाषा को शासकीय भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता था, 1950 में अपनाए गए भारतीय संविधान में इस बात की परिकल्पना की गई थी कि 15 वर्ष की अवधि में अंग्रेजी को हिन्दी के पक्ष में लाया जाएगा। हिन्दी को गणतंत्र की एकमात्र आधिकारिक भाषा बनाने की योजना को देश के विभिन्न हिस्से में लागू किया गया। कुछ राज्यों में तथा केन्द्रिय स्तर पर संयुक्त रूप से हिन्दी व अंग्रेजी का उपयोग जारी है। आधिकारिक प्रयोजनों के लिए भाषाओं के प्रयोग को नियंत्रित करेन के लिए राजभाषा अधिनियम (1963), राजभाषा नियम (1976) तथा विभिन्न राज्य कानून, केंद्र सरकार तथा राज्यों द्वारा बनाए गए नियम और कानून है।

3.5.2 कोठारी कमीशन (1964–66) **Kothari Commision -**

कोठारी कमीशन के अनुसार भारत में भाषायी विविधता को देखते हुए त्रिभाषा सुत्र में बदलाव किया,आयोग ने भारत में अंग्रेजी भाषा के महत्व को स्वीकार करते हुए माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओं के शिक्षण को अनिवार्य बनाने का सुझाव दिया,

1. मातृभाषा या केन्द्रीय भाषा की शिक्षा ।
2. केंद्र की राजभाषा हिन्दी या सहराजभाषा अंग्रेजी।
3. एक भारतीय भाषा या विदेशी भाषा जो शिक्षा के माध्यम से अलग हो।

मातृभाषा का सीखना व प्रयोग करना, बालक घर तथा आसपास में वातावरण से सीख लेता है, अपनी अभिव्यक्ति करने लगता है, अतः मातृभाषा को बच्चा स्वाभाविक रूप से सीखता है, मातृभाषा में बच्चा सहनता व आसानी अनुभव करता है, इसीलिए स्कूल की भाषा मातृभाषा ही होनी चाहिए। स्कूल और कॉलेज स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनने के लिए ,मातृभाषा का सर्वप्रथम अधिकार है, अतः प्रदेशिक भाषाओं को ही शिक्षा का माध्यम बनना चाहिए, शैक्षिक कार्य तथा बौद्धिक आदान–प्रदान के लिए उच्चतर शिक्षा में अंग्रेजी सम्पर्क भाषा का कार्य करेगी। हिन्दी संघ की राजभाषा एवं सम्पर्क की। भाषा है, इसीलिए अहिन्दी क्षेत्रों में इसके प्रसार हेतू सभी उपाय किए जाने चाहिए।

3.5.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति –1986

राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 1986 के 8.7 में कहा गया है कि 1968 को शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास के प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया गया था। उस नीति की मूल सिफारिश में सुधार की गुंजाइश शायद ही हो और ये जितनी प्रासंगिक पहलें थीं उतनी ही आज भी है। किंतु देश भर में 1968 की नीति का पालन एक समान नहीं हुआं अब इस नीति का अधिक सक्रियता और सोद्देश्यता से लागू किया जाएगा।

3.5.4 कार्यक्रम का कार्यान्वयन 1992–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति की रिपोर्ट के बाद समीक्षा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए POA (1992) बनाया गया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भाषाओं के संबध में कहा गया है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में भाषाओं के संबंध में किए गये प्रावधानों की ही सक्रियता के साथ लागू किया जायेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा समिति ने किसी भी तरह का परिवर्तन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में नहीं किया है।

वर्तमान में प्रावधान है कि विश्वविद्यालय स्तर पर किसी आधुनिक भारतीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए लेकिन मातृभाषा के द्वारा शिक्षा को उपलब्ध कराना जरूरी है जो कि भारतीय संविधान में भाषाओं की दी गई सूची के आधार पर हो सकता है।

- POA, 1992 में विस्तार से इस बात पर चर्चा हुई है कि विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के माध्यम को लेकर सही स्थिति नहीं है। पाठ्यपुस्तके एवं अध्यापकों का भी अभाव है, अतः विभिन्न राज्य सरकारों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के साथ मिलकर आध्यापकों व विभिन्न भाषाओं में शिक्षण सामग्री तैयार करने का काम करना चाहिए।
- POA, 1992 के अनुसार त्रिभाषा सूत्र का कार्यान्वयन सही ढंग से नहीं हो पा रहा है। माध्यमिक स्तर पर सभी भाषाओं का अध्ययन नहीं हो पा रहा है। दक्षिण भारतीय भाषाओं का अध्ययन भी हिन्दी भाषी प्रदेशों में न के बराबर है। तीनों भाषाओं के अध्ययन का कार्यकाल विभिन्न राज्यों में अलग–अलग है।
- POA, 1992 के अनुसार अहिन्दी भाषी प्रदेशों में हिन्दी अध्यापकों की नियुक्ति को लगातार बनाये रखना चाहिए और 100% हिन्दी अध्यापकों की भर्ती की जानी चाहिए।
- हिन्दी व अन्य मातृभाषाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए राज्यों को प्रबंध करना चाहिए।
- मंत्रालय व भाषा संस्थानों को भाषाओं के शिक्षण, शिक्षण–पद्धति , कम्पयूटर तकनीक पर शौध कार्य बढ़ाना चाहिए।
- केन्द्र को राज्यों को हिन्दी अध्यापक नियुक्ति के लिए अनुदान सहायता देनी चाहिए।

- ➢ केंद्रीय हिन्दी संस्थान, भारतीय भाषा अध्ययन संस्थान, अंग्रेजी व विदेशी भाषाओं को केन्द्रिय संस्थान और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद को हिन्दी को सम्पर्क भाषा के रूप में लागू करने के लिए एक दूसरे के साथ मिलकर काम करना चाहिए।

3.5.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा (2005) **NCF (2005)**

- लिखने ,बोलने ,सुनने एवं पढ़ने की भाषिक क्षमताएँ स्कूल के सभी विषयों एवं अनुशासनों के शिक्षण स विकसित होती है, प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर तक बच्चों के ज्ञान निर्माण में उनके बुनियादी महत्व को समझना आवश्यक है।
- त्रिभाषा फॉमूले को पुनः लागू किए जाने की दिशा में काम किया जाना चाहिए?, जिसमें बच्चों की घरेलू भाषाओं और मातृभाषा को शिक्षण के माध्यम के रूप में मान्यता देने की जरूरत है।
- अंग्रेजी को अन्य भारतीय भाषाओं के बीच स्थान देने की जरूरत है।
- भारतीय समाज के बहुभाषात्मक प्रकृति को स्कूली जीवन की समृद्धि के लिए संसाधन के रूप में देखा जाना चाहिए।

3.5.6 राष्ट्रीय शिक्षा नीति ड्राफ्ट ,2019 (**New Education Policy Draft, 2019)**

शिक्षा और भारतीय भाषाएँ–

- समिति ने पाया कि स्कूलों में ऐसी भाषा का संचालन हो रहा है जो छात्रों को समझ में नहीं आती है। इसलिए यह सिफारिश की कि शिक्षा का माध्यम या तो कक्षा पाँच तक घरेलू भाषा /मातृभाषा / स्थानीय भाषा होना चाहिए।
- पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति द्वारा प्रस्तुत, तीन भाषा सूत्र ने कहा कि राज्य सरकारों को एक आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन को अपनाना और लागू करना चाहिए, अधिमानतः दक्षिणी भाषाओं में से एक ,हिन्दी भाषी राज्यों और हिन्दी के अलावा गैर हिन्दी राज्यो में क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी के साथ, कसौदा नीति ने सिफारिश की कि इन तीन भाषा फार्मूले को जारी रखा जाना चाहिए और सूत्र के कार्यान्वयन में लचीलापन प्रदान किया जाना चाहिए।
- समिति ने टिप्पणी की कि सूत्र के कार्यान्वयन को मजबूत करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से हिन्दी भाषी राज्यों में। हिन्दी भाषी क्षेत्रों के स्कूलों को राष्ट्रीय

एकीकरण के उद्देश्य से भारत के अन्य हिस्सों से भारतीय भाषाओं को भी पढ़ाना चाहिए, भाषा के विकल्प में लचीलापन प्रान करने के लिए, जो छात्र अपनी तीन भाषाओं में से एक या अधिक को बदलना चाहते है, वे ग्रेड छः या सात में ऐसा कर सकते है, इस शर्त के अधीन कि वे अभी भी अपने माडॅयूलय परीक्षा बोर्ड में तीन भाषाओं में दक्षता प्रदर्शित करने में सक्षम हैं।

- भारतीय भाषाओं की बढ़ावा देने के लिए ,पाली,फारसी ओर प्राकृत के लिए पाली, फारसी ओर प्राकृत के लिए एक राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया जाएगा। सभी उच्च शिक्षा संस्थानों में स्थानीय भारतीय भाषा के अलावा कम से कम तीन भारतीय भाषाओं के लिए उच्च प्रवक्ता वाले संकाय होने चाहिए।

3.5.7 भारतीय संविधान के भाग –17 में धारा 343–351 तक भारत में भाषा संबंधी प्रावधान

विभिन्न संसदीय समितियों द्वारा चर्चा उपरान्त निम्नलिखित धाराओं का समावेश संविधान में दिया गया।

1. धारा 343– संघ की राजभाषा

- संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों में प्रयोग होने वाले अंको का रूप भारतीय अंको का अंतराष्ट्रीय रूप होगा।
- धारा 343 खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ में 15 वर्ष की अवधि तक संघ के सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा।

2. धारा 344 राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति

राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर ओर तत्पश्चात् ऐस प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक अध्यक्ष ओर आठवीं अनुसूची में शामिल विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनो के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग,

(ख) संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्वचनों,

(ग) संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच प्रत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय,

धारा 344 खण्ड (2) के अधीन, अपनी, सिफारिशें करेन में, आयोग भारत की औद्योगिक , सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियो के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।

- एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे और दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।
- समिति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिश की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।
- अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी , राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चातॅ उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निर्देश दे सकेगा।

3. **धारा 345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं–** अनुच्छेद 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान–मंडल, विधि द्वारा ,उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किंही शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगाः
परंतु जब तक राज्य का विधान–मंडल विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था। 346. एक राज्य ओर दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगीः

परंतु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हें कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

4. **धारा 347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वार बोली जान वाली भाषा के संबंध में विशेष उपलब्ध** –यदि इस निकतम मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राजय की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता हे कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निर्देशह दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

5. धारा 348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियम विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा – (1) इस भाग के पूर्वागामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करें तब तक–

(क) उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होगीः

(ख) (1) संसद के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान–मंउल के सदन या प्रत्येंक सदन में पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

(2) संसद या किसी राज्य के विधान–मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

(3.) इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधान–मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए, सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के,

प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाही में जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिंदी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगाः

परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिग्री या आदेश को लागू नहीं होगी।

(3) खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहाँ किसी राज्य के विधान–मंडल ने उस विधान–मंडल में पुनःस्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमो ं मे अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पेरा (iii) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियमविनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से निम्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र मं उस राज्य के राज्यपाल के पाधिकार से प्राकशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

6. धारा 349 भाषा से संबंधित कुद विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया – इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लेखित किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपलब्ध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुनःस्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा अैर राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुनःस्थापित या किसी ऐसे संशोधन को

प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं।

7. **धारा 350 व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा**–प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

350– क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं –प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक –वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपलब्ध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

350 –ख भाषाई अल्पसंख्यक –वर्गों के लिए विशेष अधिकारी –(1) भाषाई अल्पसंख्यक –वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक –वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करें ओर उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतराल पर जो राष्ट्रपति निदिष्ट करे, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

8. **धारा 351 हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश** :– संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए , उसका विकास करें, जिससे वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति की माध्यम बन सकें और उसकी प्रकृति ने हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द–भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से ओर गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

3.4.12 शिक्षा नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, 1913 (**Government Resolution on Education Policy,1913**)

स्वतंत्रता उपरांत संविधान सभा ने अनेक माह तक गहन कार्य कर भारतीय संविधान की अन्तिम रूप प्रदान किया तथा यह 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। भारतीय संविधान में अनेक धाराएँ अनुच्छेद एवं उपबन्धों का अभिलेख है जिसका शिक्षा से संबंध है।

भारत में शिक्षा पर कुछ प्रमुख संवैधानिक प्रावधान इस प्रकार है–
संविधान में 42 वें संशोधन के संबंध में कुद बदलाव हैं। 1976 के दौरान हमारे संविधान में इसके कई मूलभूत प्रावधानों में संशोधन किया गया था। भारत के संविधान के तहत, केन्द्र, सरकार को विशेष रूप से कई शैक्षिक जिम्मेदारियों के साथ निहित किया गया है।
नीचे शिक्षा पर संवैधानिक प्रावधन दिए गए हैं–

1. निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा– (**Free and Compulsary Education**):–
संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 45 के तहत निम्नलिखित प्रावधान किए गए है, '' राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा, जब तक कि वे पूरा नहीं कर लेते। चौदह वर्ष की आयु।'' इस अनुच्छेद में होने वाली अभिव्यक्ति 'राज्य' को अनुच्छेउ 12 में परिभाषित किया गया है, जिसमें ''भारत सरकार और संसद और सरकार ओर राज्यों के विधानमंडल और भारत के क्षेत्र के भीतर या नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकरण शामिल हैं। भारत सरकार।''
संविधान के अनुच्छेद 45 में स्पष्ट रूप से निर्देशित किया गया है कि सार्वभौमिक , निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान केंन्द्र और राज्यों की संयुक्त जिम्मेदारी बन जाती है।

संविधान में यह निर्धारित किया गया था कि 10 वर्षों के भीतर अर्थात् 1960 तक, 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए सार्वभौमिक अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, 100 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जोरदार प्रयासों की आवश्यकता है। केन्द्र सरकार को इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त वित्तीय प्रावधान करने की आवश्यकता है।

2. अल्पसंख्यकों की शिक्षा (**Education of Minorities**)

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 30 शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के लिए कुछ सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों से संबंधित है।
यह नीचे देता है–
(1) सभी अल्पसंख्यक चाहे वे धर्म या भाषा के आधार पर हों, उन्हें अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
(2) राज्य शैक्षणिक संस्थानों को सहायता देने मं, किसी भी शिक्षण संस्थान के खिलाफ इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह अल्पसंख्यक के प्रबंधन के अधीन है, चाहे वह धर्म या भाषा पर आधारित हो।

3. भाषा सुरक्षा– (**Language sefeguards**):–

अनुच्छेद 29 (1) के अनुसार,''नागरिकता कोई भी वर्ग, भारत के क्षेत्र में रहने वाला या वहाँ का कोई भी भाग, उसकी अपनी कोई अलग भाषा, लिपि या संस्कृति हो, हॉल को उसी के संरक्षण का अधिकार हैं'' अनुच्छेद 350 (बी) प्रदान करता हे। संविधान के तहत भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों की जांच के लिए भाषाई अल्पसंख्यक के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति के लिए ।

4. कमजोर वर्गों के लिए शिक्षा (**Education for Weaker sections**):– अनुच्छेद 15,17,46 भारतीय समुदाय के कमजोर वर्गों, यानी नागरिकों और अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के शैक्षिक हितों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 15 में कहा गया है, ''इस लेख में कुछ भी नहीं है या अनुच्छेद 29 के खंड (2) में किसी भी सामाजिक ओर शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के नागरिकों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए कोई विशेष प्रावधान करने से राज्य को नहीं रोका जाएगा।''

संविधान के अनुच्छेद 46 के तहत, संघीय सरकार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए जिम्मेदार है

यह कहता है। ''राज्य विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढावा देगा और उन्हें सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से बचाएगा।''

5. धर्मनिरपेक्ष शिक्षा– (**Secular Education**)

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है । यह एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ धर्म पर आधारित आध्यात्मिकता को हमेशा एक उच्च सम्मान दिया गया है। संविधन के तहत, अल्पसंख्यकों, चाहे वे धर्म या भाषा के आधार पर हो, उन्हें अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान स्थापित करने का पूरा अधिकार दिया जाता है। संवैधानिक प्रावधानों का हवाला देते हुए कि किसी भी बंदोबस्ती या ट्रस्ट के तहत संस्थानों में दिए गए धार्मिक निर्देशों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, भले ही ऐसे संस्थानों को राज्य की मदद की जाए।

संविधान का अनुच्छेद 25 (1) सभी नागरिकों को विवेक की स्वतंत्रता और धर्म के प्रचार, अभ्यास और प्रचार के अधिकार की गारंटी देता है।

अनुच्छेद 28 (1) के अनुसार,'' यदि राज्य राज्य निधि से पूर्ण रूप से बनाए रखा जाए तो किसी भी शैक्षणिक संस्थान में कोई धार्मिक निर्देश नही दिया जाएगा।''

अनुच्छेद 28 (2) के अनुसार, ''खण्ड (1) में कुछ भी एक शैक्षणिक संस्थान पर लागू नहीं होगा जो राज्य द्वारा प्रशासित हो लेकिन किसी बंदोबस्ती या ट्रस्ट के तहत स्थापित किया गया हो जिसके लए ऐसी संस्था को धार्मिक निर्देश दिए जाने चाहिए।''

अनुच्छेद 28 (3) के अनुसार, '' राज्य द्वारा किसी भी शैक्षणिक संस्थान में भाग लेने वाले या राज्य के कोष से सहायता प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति , किसी भी धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए आवश्यक नहीं होगा, जो इस तरह के संस्थानों में आयात किया जा सकता हे या किसी भी धार्मिक पूजा मे शामिल हो सकता है। इस तरह के संस्थान में या किसी भी परिसर में, जब तक कि ऐसे व्यक्ति के नाबालिग होने पर, उसके अभिभावक ने अपनी सहमति नहीं दी है, तब तक उसका संचालन किया जाता है।''

अनुच्छेद 30 में कहा गया है, ''राज्य केवल धर्म, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर, राज्य द्वारा अनुरक्षित शैक्षिक संस्थान को सहायता देना या राज्य निधियाँ से सहायता प्राप्त करना नहीं होगा।''

6.शैक्षणिक संस्थानों में अवसर की समानता (**Equality of opportunity in Educational Institutions**)–

अनुच्छेद 29 (1) के अनुसार ''किसी भी नागरिक को राज्य द्वारा अनुरक्षित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश या राज्य कोष से सहायता प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जाएगा, केवल धर्म, जाति, भाषा या उनमें से किसी के आधार पर।''

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों ने भी न्याय, स्वतंत्रता, समानता ओर बंधुत्व के चार गुना आदर्श को अपनाया है। हमारे संविधान ने निर्धारित किया है कि कानून की नजर में, सभी को एक समान दर्जा होना चाहिए। किसी को भी न्यास से वंचित नहीं किया जाना चाहिए।, सभी को विचार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

समानता का मौलिक अधिकार स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कानून की नजर में किसी भी स्थिति, जाति, वर्ग या पंथ के आधार पर कोई भेद नहीं किया जा सकता है। सभी को अवसरों की समानता का अधिकार भी प्रदान किया गया है। अवसर की समानता व्यर्थ है, जब तक कि किसी की शिक्षा के लिए समान अवसर नहीं है।

कोठारी आयोग, के अनुसार 1964–66 में सिफारिश की कि केन्द्र सरकार को अंतर–राज्य मतभेदों को कम करने और समुदाय के कमजोर वर्ग की उन्नति के लिए विशेष संदर्भ के साथ शैक्षिक अवसरों के समानकरण के लिए शिक्षा में जिम्मेदारी निभानी चाहिए।

7. मातृभाषा में निर्देश (**Instruction in Mother Tongue**)–

हमारे देश में भाषाओं की विविधता है। भारत के संविधान में, यह निर्धारित किया गया है कि किसी की भाषा का अध्ययन नागरिकों का मौलिक अधिकार है तथा मातृभाषा को शिक्षा एवं अध्ययन के माध्यम के रूप में विशेषता प्राप्त है, अनुच्छेद 26(1) के तहत, ''नागरिकों के किसी भी वर्ग, भारत के क्षेत्र में रहने वाले या वहाँ के किसी भी हिस्से में, किसी भी भाषा, लिपि या संस्कृ ति का कोई भी हिस्सा हो, उस समझाने का अधिकार होगा।''

अनुच्छेद 350 एक निर्देश, ''यह वह हर राज्य और हर स्थानीय प्राधिकारी का प्रयास करेगा कि भाषाई अल्पसंख्यक समूहों से संबंधित बच्चों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान करें।''

माध्यमिक शिक्षा आयोग , 1952–53 ने सिफारिश की कि मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा को आम तौर पर पूरे माध्यमिक विद्यालय चरण में इस प्रावधान के अधीन शिक्षा का माध्यम होना चाहिए कि भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए, विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएं। कोठारी आयोग 1964–66 ने भी कहा है कि कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर, मातृभाषा को माध्यम होना चाहिए। स्कूल स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है। यह कोई नया प्रस्ताव नहीं है।

8. हिन्दी का प्रचार (**Promotion of Hindi**) –

भारतीय संविधान हिन्दी के विकास और संवर्धन के लिए राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रावधान करता है। अनुच्छेद 351 संघ से जुड़ता है, हिन्दी भाषा के प्रसार को बढ़ावा देने का कर्त्तव्य । हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसे संविधान ने निम्नलिखित शब्दों में रखा है–

'' यह हिन्दी भाषा के प्रसार को बढ़ावा देने , इसे विकसित करने के लिए संघ का कर्त्तव्य होगा ताकि वह भारत की समग्र संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में काम कर सके।'' व्यवहार में, हिन्दी पहले से ही बड़े पैमाने पर है। देश के लिए एक लिंक भाषा के रूप में उपयोग करें। छात्र और शिक्षक के आंदोलन को सुविधाजनक बनाने और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए शैक्षिक प्रणाली को इस प्रँयिा के त्वरण में योगदान देना चाहिए।

9. उच्च शिक्षा और अनुसंधान (**Higher Education and Research**) –

संसद के पास 63 और 64,65 और 66 सूचियों की प्रविष्ठियों में उल्लिखित संस्थानों और केंद्रीय एजेंसियों के संबंध में कानून बनाने का विशेष अधिकार है। शिक्षा में भारत सरकार को अधिकार देने वाली प्रविष्ठियाँ नीचे उल्लेखित हैः

संघ सूची की प्रविष्टि 63ः

इस संविधान के बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ,अलीगढ़ मुस्लिम और दिल्ली विश्वविद्यालय के रूप में, और संसद द्वारा कानून द्वारा घोषित किसी अन्य संस्था को राष्ट्रीय महत्व का संस्थान बताया जाना शुरू हुआ।

संघ सूची की प्रविष्टि 66ः

उच्च शिक्षा या अनुसंधान और वैज्ञानिक और तकनीकी संस्थानों के लिए संस्थान में मानकों का समन्वय और निर्धारण।

10. महिला शिक्षाः– (**Women Education**):– मॉडेम इंडियन एजूकेशन की अनूठी विशेषताओं में से महिला शिक्षा की जबरदस्त उन्नति हैं लड़कियों की शिक्षा लड़कों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है।
अनुच्छेद (15) (1) में यह प्रावधन है कि राज्य केवल शिक्षा के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेद–भाव नहीं करेगा।

3.6.1 शिक्षा का अधिकार, ,2009 (**Right to Education Act, 2009**) – निःशुल्क एंव अनिवार्य शिक्षा विधेयक ,2009– इसके अर्न्तगत बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है। अनुच्छेद 45 में 6–4 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है तथा 86 वे संशोधन द्वारा 21(A) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिकों का मूलाधिकार बना दिया गया है। अतः इसमें अनुच्छेद 45 के साथ अनुच्छेद 21((A) जोड़ दिया गया है।

3.7 इकाई सारांश

- राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन , लोकतांत्रिकरण के लिए भारतीयों के प्रथम प्रयासों में से प्रमुख स्थान रखता है।
- बंगाल के विभाजन ने राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राष्ट्रीय शिक्षा की मांग को गति प्रदान की।
- राष्ट्र शिक्षा आंदोलन के ही फलस्वरूप शान्ति निकेतन, गुरूकुल शिक्षा, वनस्थली विद्यापीठ , श्री अरविन्द आश्रम, जामिया मिलया इस्लमिया विश्वविद्यालय आदि राष्ट्रीय शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना की।
- बड़ौदा –नरेश महाराज सायाजीराव गायकवाड और कर्मठ समाज–सेवक गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को नया मोड़ दिया।
- बुनियादी शिक्षा या नई तालीम की योजना गाँधी द्वारा वर्धा में सन् 1937 में दी गई । इसमें स्वावलम्बी एवं आत्म–निर्भर जीवन के लिए बुनियादी शिक्षा की योजना बताई गई।
- विभिन्न शिक्षा समीतियों की रिपोर्ट में भाषा –भाषाओं की स्थिति आज तक त्रिभाषा फॉमूले के रूप में ही चल रही है। हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है।
- भारतीय संविधान में समस्त शैक्षिक प्रावधानों को विस्तारपूर्ण वर्णन किया गया है।

3.8 नियत कार्य :–

1. भारतीय संविधान में भाषा संबंधी प्रावधानों की विवेचना किजिए।
2. विभिन्न अनुच्छदों को सूचीबध कीजिए तथा शिक्षा का अधिकार ,2009 पर अपने शब्दों में प्रतिवेदन तैयार कीजिए।
3. कार्यक्रम का कार्यान्वयन (1992) में भाषाओं संबंधी सिफारिशों पर चर्चा कीजिए।
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, ड्राफट (2009) में भाषा की स्थिति का वर्णन कीजिए।

3.9 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दुः–

इकाई के समुचित अध्ययन के पश्चात् आप कुछ बिन्दुओं पर विवेचना तथा अन्य पर स्पष्टीकरण चाहेंगे, इन बिन्दुओं की निम्न स्थान पर लिखित ।

3.9.1 चर्चा के बिन्दु

____

____

____

3.9.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

____

____

____

3.10 सन्दर्भ सूची

1. शंखधर, बी.एम. (2005) : इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ऐजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया, (1): दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।
2. कश्यप,सी,सुभाष(2000) :अंडरस्टैंडिंग द कान्स्टिटयूशन ऑफ इंडिया :एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

3. त्यागी, गुरूसरनदास (2005) : भारतीय शिक्षा का परिदृश्य : विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

4. अग्रवाल ,जे.सी. (2005) डेवलपमेंट ऑफ एजुकेशन सिस्टम इन इंडियाः शिप्रा पबलिकेशन , नई दिल्ली।

5. पात्रा, ऐ. एन. (1987) कमेटीस् एण्ड कमिशनस् ओन इड़ियन ऐजुकेशन :एन.सी.ई़.आ.टी., नई दिल्ली।

6. एन.सी.ई.आर.टी. (2006) :पाठ्यचर्या की रूपरेखा , 2005: एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

DELED -02

BLOCK – III Contemporary India : Normative Vision

इकाई 4 : स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास : मुद्दे

(Educational Development Since Independence : Issues)

इकाई संरचना

4.1 परिचय (Introduction)
4.2 उद्देश्य (Objectives)
4.3 परिमात्रात्मक विस्तारण विस्तार : विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति
Quantitative Expansion : Extent and its Social Nature
4.4 विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता : स्थिति
Quality in School Education : Status
4.5 शैक्षिक अवसरों की समानता : सफलता और असफलता
Equality of Education opportunities : Success and Failures
4.6 इकाई सारांश (Unit Summary)
4.7 अपनी प्रगति की जाँच करें (Check your Progress)
4.8 नियत कार्य/ गतिविधियाँ (Assignment / Activity)
4.9 चर्चा/ स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.10 सन्दर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

4.1 परिचय (Introduction)

पन्द्रह अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के उपरान्त 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू किया गया। भारतीय संविधान में भारत को गणतंत्र घोषित किया गया। भारतीय संविधान में लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था में शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया तथा शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्वों को केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विभाजित किया गया जिससे केन्द्र तथा राज्य अपने-अपने स्तर पर शिक्षा का नियोजन करके शैक्षिक विकास को सुनिश्चित कर सके। स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा के विकास के एक नये युग का सूत्रपात हुआ। यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में वे सभी उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं जो स्वतंत्र भारत में अपेक्षित थीं फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं। वास्तव में भारतीय शिक्षा के ज्ञात इतिहास

में शिक्षा तथा इसकी समस्याओं पर इतना अधिक ध्यान पहले कभी नहीं दिया गया था जितना ध्यान स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त दिया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के तत्काल बाद भारत के सामने अनेक समस्यायें थीं। इन समस्याओं में से एक शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन करने तथा शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने की समस्या भी थी। सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध

कराने, अनपढ़ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने, माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार करने, विज्ञान तकनीकी शिक्षा का तेजी से विस्तार करने, लड़कियों, हरिजनों व अल्पसंख्यकों के शैक्षिक विकास को सुनिश्चित करने तथा मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा व राष्ट्रभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने जैसी अनेक विकट चुनौतियाँ स्वतंत्र भारत के कर्णधारों के सम्मुख थीं। निःसंदेह स्वतन्त्र भारतीय संविधान के निर्माताओं तथा केन्द्र व राज्यों की सरकारों ने इन चुनौतियों को स्वीकार किया तथा भारतीय शिक्षा को एक नई दिशा प्रदान करने का भरसक प्रयास किया। संविधान में शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक प्रावधान करके सभी के शैक्षिक अधिकारों को सुनिश्चित किया गया एवं केन्द्र तथा राज्यों के शैक्षिक उत्तरदायित्वों को स्पष्ट कर दिया गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त सन् 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, सन् 1952 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा सन् 1964 में डॉ. दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग का गठन विभिन्न स्तरों की शिक्षा समस्याओं का अध्ययन करने तथा उनके समाधान प्रस्तुत करने के लिए किया गया। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर अनेक शैक्षिक समितियों का भी गठन किया गया। सन् 1968 तथा सन् 1986 में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा सन् 1979 में तैयार की गई ड्राफ्ट शिक्षा नीति भी भारतीय शिक्षा के विकास के कुछ दिलचस्प मोड़ हैं।

प्रस्तुत इकाई में स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास के विभिन्न मुद्दों के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

1. स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक विकास के विभिन्न मुद्दों की समझ सकेंगे।
2. शिक्षा के परिमात्रात्मक विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति समझ सकेंगे।
3. विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता की स्थिति समझ सकेंगे।
4. शैक्षिक अवसरों की समानता के बारे में समझ सकेंगे।
5. शैक्षिक अवसरों की असमानता के कारण और उसकी सफलता के उपाय समझ सकेंगे।

4.3 परिमात्रात्मक विस्तारण विस्तार : विस्तार और इसकी सामाजिक प्रकृति

Quantitative Expansion : Extent and its Social Nature

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रारंभिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत ने भी बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया।

4.3.1 भारतीय संविधान और अनिवार्य शिक्षा

(Indian Constitution and Compulsory Education)

अनेक शताब्दियों के पश्चात् परतंत्रता की परिधि को पार करके भारत ने 15 अगस्त, 1947 को स्वाधीनता के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया और 26 जनवरी, 1950 को इस युग के लिये उपयुक्त संविधान का प्रतिष्ठापन किया। संविधान सभा (Constitution Assembly) ने शिक्षा की स्थिति को समुन्नत करने के लिए प्रारंभिक शिक्षा का संपूर्ण भार भारतीय संघ सरकार को सौंपा, ताकि इस कार्य को द्रुत गति से समय सीमा में पूरा किया जा सके। संविधान की धारा 45 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निदेशक सिद्धांत घोषित किया। इस धारा में उल्लिखित है-

"राज्य इस संविधान के लागू किये जाने के समय से दस वर्ष के अंदर सब बच्चों के लिये जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।" इस प्रकार 1960 तक इस लक्ष्य की प्राप्ति हो जानी चाहिये थी। परंतु पर्याप्त साधनों की कमी, जनसंख्या में भारी वृद्धि, बालिकाओं के शिक्षा में रूकावटे, गरीबी, माता-पिता के निरक्षरता और उदासीनता जैसी बड़ी-बड़ी दिक्कतों से यह लक्ष्य आज तक प्राप्त नहीं हो सका है।

संविधान द्वारा 1976 में किये गये संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया, उसके दूरगामी परिणाम हुए। आधारभूत, वित्तीय तथा प्रशासनिक उपायों को राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियों को बाँटने की आवश्यकता हुई। जहाँ एक ओर शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वहीं केन्द्र सरकार ने शिक्षा के **राष्ट्रीय एवं एकीकृत स्वरूप को सुदृढ़ करने** का गुरुतर भार भी स्वीकारा। इसके अंतर्गत सभी स्तरों पर शिक्षकों की योग्यता एवं स्तर को बनाये रखने एवं देश की शैक्षिक जरूरतों का आकलन एवं रखरखाव भी शामिल है। केन्द्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Policy of Education – NPE) तथा कार्ययोजना - 1986 भी शामिल हैं, जिसे 1992 में अद्यतन किया गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली

तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को जनान्दोलन बनाने, सभी को शिक्षा को सुलभ कराने, प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने, बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने, देश के प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की जानकारी देने तथा अंतर अनुसंधानात्मक अनुसंधान करने, राज्यों में नये मुक्त विश्वविद्यालय की स्थापना करने, अखिल भारतीय प्रौद्योगिक शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं एक सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल है। इसके अलावा शिक्षा में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए एक विकेन्द्रीकृत प्रबन्ध व्यवस्था का भी सुझाव दिया गया है। इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में लगी एजेन्सियों के लिए विभिन्न नीतिगत मानकों को तैयार करने के लिए विस्तृत रणनीति का भी कार्ययोजना – 1992 में प्रावधान किया गया है।

दिसम्बर, 2002 में बने संविधान (86वाँ संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा –III (मूलभूत अधिकार) में एक नई धारा – 21– A जोड़कर 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाने की बात करता है। संविधान की धारा –21– A कहती है–

"कानून, संकल्प द्वारा, राज्य अपने अनुरूप 6 से 14 वर्ष तक की आयुवर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।"

सरकार एक ऐसे उपयुक्त कानून के अधिनियम को वचनबद्ध थी, जो संविधान की आवश्यकतानुसार शिक्षा को मूलभूत अधिकार बनाये। संविधान की धारा –21– A के तहत विचारित उपयुक्त कानून के लिए कदम उठाये गए। तद्नुसार शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 आया जो सम्पूर्ण देश में 1 अप्रैल 2010 से लागू है।

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता हेतु सरकार की वित्तीय सहायता के लिए वित्त (न.2) अधिनियम, 2004 के जरिये सभी प्रमुख केन्द्रीय करों पर दो प्रतिशत शिक्षा अधिभार लगाया गया। इस शिक्षा अधिभार को एकत्रित कर प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा 6 अक्टूबर, 2005 को केन्द्रीय बजट की प्रस्तुति (28 फरवरी, 2006) के बाद पी.एस.के. एक अलग मद बन गया। पी.एस.के. के तहत उपलब्ध फण्ड का उपयोग विशेष रूप से सर्वशिक्षा अभियान (SSA) और प्राथमिक शिक्षा के पोषण एवं सहयोग के राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए किया जाने लगा। शिक्षा अधिकार प्राथमिक शिक्षा के लिए निश्चित फण्ड उपलब्ध कराने की दिशा में एक ठोस कदम है।

4.3.2 प्रारम्भिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण/सार्वभौमीकरणः–

प्रारम्भिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण/सार्वभौमीकरण राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया है। 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में संकल्प व्यक्त किया गया है कि 21वीं शताब्दी के शुरू होने से पहले देश में 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निःशुल्क, अनिवार्य तथा गुणवत्ता की दृष्टि से संतोषजनक शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी। शिक्षा का जन–जन तक प्रचार एवं प्रसार करना ही इसके लोकव्यापीकरण का प्रमाण है। भारत जैसे लोकतांत्रिक राष्ट्र में इसके लोकव्यापीकरण का महत्व और भी अधिक है क्योंकि शिक्षा ही सफल लोकतंत्र का ठोस आधार तैयार करती है। नवीं पंचवर्षीय योजना में सबके लिये प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य के बारे में अग्रलिखित मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं–

(अ) लोकव्यापी/सार्वभौम पहुँच (Universal Approach) – सन् 1950 से इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रयास किये गये है। परन्तु जनसंख्या विस्फोट ने समस्त प्रयासों एवं उपलब्धियों को अर्थहीन बना दिया है। सीमित साधनों के कारण हम जनसंख्या वृद्धि की गति के साथ विद्यालयी सुविधाओं को प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की कार्य–योजना (1992) में सभी राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिये कहा गया था कि 300 (जनजाति, पहाड़ी तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों में) तथा 200 तक की आबादी बस्तियों में प्राथमिक विद्यालयों की व्यवस्था की जाये और प्रारम्भिक शिक्षा की सर्व सुलभ व्यवस्था के लिये एक मास्टर योजना बनायी जाये जिससे कि ऐसी बस्तियों में जहाँ 50 बच्चे भी प्राथमिक विद्यालय के लिये मिल सकें तो वहाँ प्राथमिक विद्यालय की व्यवस्था की जाये और जहाँ प्राथमिक विद्यालयों अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के लिये आवासीय विद्यालयों की व्यवस्था की जाये।

आचार्य राममूर्ति समिति (1990)– जिसने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा की थी, पैरा–6.2.9 के अनुसार, पाँचवें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या के लगभग 20 प्रतिशत भाग के लिये घर के नजदीक प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। जहाँ तक मध्य स्तर (कक्षा 6–8) के स्कूलों का प्रश्न है, वह जनसंख्या के लगीाग 63 प्रतिशत भाग के लिये घर के नजदीक नहीं हैं। इस सर्वेक्षण से यह भी स्पष्ट हुआ कि लगभग 95 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के लिये प्राथमिक स्कूल एक किलोमीटर की दूरी पर हैं। यह दूरी प्राथमिक स्कूलों के लिये 'पैदल दूरी' का सरकारी मानक है। इसी प्रकार लगभग 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के लिये मध्य स्तर के स्कूल 3 किलोमीटर के भीतर की दूरी पर हैं।

प्राथमिक विद्यालयः आवास से दूरी

दूरी किलोमीटर में	निम्न प्राथमिक (कक्षा 1 से 5)	उच्च प्राथमिक (कक्षा 6 से 8)

1. आवास के निकट 2. 0.5 किलोमीटर 3. 0.6 से 1 किमी.	80.38 प्रतिशत 6.74 प्रतिशत 7.33 प्रतिशत	36.85 प्रतिशत – 14.95 प्रतिशत
एक किलोमीटर की दूरी में उपलब्ध विद्यालय	94.45 प्रतिशत	51.80 प्रतिशत
4. 1.1 से 1.5 किमी. 5. 1.6 से 2.0 किमी.	1.78 प्रतिशत 2.28 प्रतिशत	– 18.43 प्रतिशत
दो किमी. की दूरी में उपलब्ध विद्यालय	98.51 प्रतिशत	70.23प्रतिशत
6. दो किमी. से अधिक दूरी में उपलब्ध विद्यालय	1.49 प्रतिशत	29.77 प्रतिशत

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि अभी आवास के निकट पर्याप्त मात्रा में विद्यालयों की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। यह समस्या ग्रामीण क्षेत्रों तथा उन सुदूर क्षेत्रों की है, जहाँ प्राथमिक विद्यालयों के लिये 50 बच्चे नहीं मिल पाते है।

संशोधित कार्य योजना (1992) के अनुसार लगभग 52 हजार बस्तियाँ ऐसी थीं जिनकी जनसंख्या 300या इससे कुछ अधिक थी और जहाँ प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यकता थी। यद्यपि बहुत से नये विद्यालयों की स्थापना की गई। परंतु साथ ही नई बस्तियाँ उत्पन्न हो गई। अनुमान है कि 35000 नये विद्यालयों की आवश्यकता थी जो कि ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना के अंतर्गत खोले जा रहे थे। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1997) के अनुसार भारतीय किलोमीटर की दूरी के अंदर प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था में से एक है। 8.26 लाख बस्तियों हेतु एक किलोमीटर की दूरी के अन्दर प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में ग्रामीण जनसंख्या के लिए 7.26 लाख बस्तियों में 3 किमी. की अधिकतम दूरी पर व्यवस्था हो गई है।

आठवीं योजना में पहुँच के सम्बन्ध में निम्नलिखित राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए कार्य किया गया–

1. बलिकाओं और अनुसूचित जातियों/जनजातियों के व्यक्तियों सहित सभी बच्चों का सार्वभौम नामांकन।
2. एक किलोमीटर की पैदल दूरी की परिधि में सभी बच्चों के लिए प्राथमिक स्कूल उपलब्ध कराना तथा पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले, ऐसे कार्यरत बच्चे तथा बालिकाएँ जो स्कूलों में नहीं जा सकते है, के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की सुविधा।
3. अपर प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं की सहभागिता को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त अवसरों हेतु पूर्व शर्त के रूप में प्राथमिक स्कूल से अपर प्राथमिक स्कूल के मौजूदा अनुपात 1:4 से 1:2 में सुधार।

विश्व बैंक की 1997 की रिपोर्ट में भारत में प्राथमिक शिक्षा की दिशा पर चिन्ता प्रकट की गई थी। उसमें निम्नलिखित तथ्यों को प्रस्तुत किया था–

1. भारत में 6 से 10 वर्ष के 2 करोड़ 80 लाख से 3 करोड़ 20 लाख बच्चे स्कूल नहीं जा पा रहे है।
2. स्न् 2007 तक 6 से 10 वर्ष के सभी बच्चों को स्कूल भेजने के लिए तीन लाख स्कूली कमरे बनवाने होंगे और 7 लाख 40 हजार नये शिक्षकों की आवश्यकता होगी।
3. भारत सरकार अपने लक्ष्य (सार्वभौम शिक्षा) को तभी प्राप्त कर सकेगी जब बिहार, उत्तर प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल जैस बड़ी आबादी वाले राज्यों में लोकव्यापी (सार्वभौम) शिक्षा की व्यवस्था कर लेगी। ये छः राज्य ही भारत में शिक्षा के विकास के लिये चुनौती बने हुए हैं।

(ब) लोकव्यापी (सार्वभौम) नामांकन (Universal Enrolment) – सार्वभौमिक नामांकन का अभिप्राय – निर्धारित प्रवेश आयु अर्थात् 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश दिलाने से है। सामान्यतः यह पाया गया है कि अनेक बच्चे स्कूल में प्रवेश ही नहीं लेते हैं। अनुमानतः 11 प्रतिशत बच्चे (लड़कों में 2 प्रतिशत तथा बालिकाओं में 20 प्रतिशत) विद्यालय में प्रवेश नहीं लेते हैं। अतः सार्वभौमिक नामांकन से अभिप्राय है कि इस आयु वर्ग के सभी बच्चे स्कूल में प्रवेश लें, परंतु यह कार्य अभी काफी सीमा तक शेष है। विशेषतः लड़कियाँ, जनजातियों के बच्चों तथा निम्न स्तर के लोगों के बच्चों के नामांकन का कार्य पर्याप्त सीमा तक बाकी है।

नमांकन का शतप्रतिशत लोकव्यापीकरण (सार्वभौमीकरण) न होने का प्रमुख कारण बच्चों की आर्थिक दशा का खराब होना है, जो अपने माता-पिता की जीविकोपार्जन में सहायता करते हैं। वे विद्यालय जाने की बजाय अपने परिवार की आय की पूर्ति के लिए फार्म एवं खेतों, दुकानों तथा कारखानों में काम करते हैं। लड़कियाँ जीविकोपार्जन में प्रत्यक्ष रूप से सहायता न देकर घर के कामकाज तथा छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। ऐसे बच्चे विद्यालय जाने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि इनको परिवार की दृष्टि से किसी-न-किसी कार्य के लिए आवश्यक समझा जाता है। साथ ही माता-पिता की उदासीनता तथा अप्रासंगिक एवं नीरस विद्यालय पाठ्यक्रम और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ नामांकन के लोकव्यापीकरण (सार्वभौमीकरण) के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएँ हैं।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के द्वारा किये गये प्रयासों के फलस्वरूप देश की 94 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को एक किलोमीटर के दायरे में कम-से-कम एक प्राथमिक विद्यालय तथा 84 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को तीन किलोमीटर के दायरे में एक उच्च प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध कराया गया। फलस्वरूप प्राथमिक विद्यालयों तथा उच्च

प्राथमिक विद्यालयों (पूर्व माध्यमिक विद्यालयों) में दाखिला प्रतिशत निरंतर बढ़ा और यह प्राथमिक विद्यालयों में 1950–51 में 42–60 प्रतिशत से बढ़कर 1998–99 में 92.14 प्रतिशत हो गया। इस उपलब्धि के होते हुए भी हम सार्वभौम नामांकन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सके। सरकार ने नौवीं योजना में अर्थात् 2002 तक 6–14 आयु वर्ग के शत–प्रतिशत बच्चों को प्रारम्भिक शिखा सुलभ कराना अपना लक्ष्य निर्धारित किया। परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति संभव नहीं दिखाई पड़ रही है।

लोकव्यापी (सार्वभौम) धारणा) (Universal Retention) – प्रत्येक नामांकित बच्चे को विद्यालय में तब तक रोके रखा जाये जब तक वह विहित आयु का न हो जाये या विहित पाठ्यक्रम न पूरा कर ले। दूसरे शब्दों में बच्चा प्रारम्भिक शिक्षा की समाप्ति तक विद्यालय में बना रहे। सामान्यतः यह देखा गया है कि अनेक बालक प्राथमिक शिक्षा को पूर्ण किये बिना ही विद्यालय छोड़ देते हैं। एक अनुमान के अनुसार लगभग 60 प्रतिशत बच्चे (लड़कों में 55 प्रतिशत तथा बालिकाओं में 65 प्रतिशत) कक्षा 5 से पूर्व तथा 75 प्रतिशत (लड़कों में 70 प्रतिशत तथा बालिकाओं में 80 प्रतिशत) कक्षा 8 से पूर्व अध्ययन–कार्य छोड़ देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कक्षा में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक 100 बच्चों में से 40 बच्चे कक्षा 5 में पहुँच पाते है और केवल 25 बच्चे कक्षा 8 में पहुँच पाते हैं। इस प्रकार शेष बच्चे बीच में शाला त्याग कर देते है। वर्तमान में सरकारी प्रयासों के फलस्वरूप विद्यालयों में बच्चों की सार्वभौम धारणा में वृद्धि हुई है। अतः प्रारम्भिक शिक्षा के संवैधानिक दायित्व को पूरा करने के लिये यह अनिवार्य है कि प्रारम्भिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जाये। अतः इसके लिये प्रवेश लेने वाले सभी बच्चों को विद्यालय में कक्षा 8 तक रोके रखने के लिए हर सम्भव उपाय किये जाने चाहिए। विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है कि बच्चों को दाखिला दिलाने के लिहाज से भारत ने अच्छी उपलब्धियाँ हासिल की है लेकिन सबसे जरूरी बात यह है कि बच्चे स्कूल में निर्धारित आयु तक टिके रहें तथा पढ़ाई बीच में न छोड़े। भारत में केन्द्र, राज्य सरकारों तथा स्थानीय प्रशासन को चाहिए कि वे बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा का चक्र पूरा करने के लिये प्रेरणा दें। इसके लिये विद्यालयों को बच्चों के करीब लाया जाये तथा स्तरीय शिक्षा प्रदान की जाये। जिन बच्चों को स्कूल तक ला पाना संभव न हो उनके लिये अनौपचारिक शिक्षा या वैकल्पिक शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किये जाना चाहिये।

4.4 विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता : स्थिति

Quality in School Education : Status

शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट वर्तमान समय की एक ज्वलन्त समस्या है। न केवल शिक्षाशास्त्री व बुद्धिजीवीवर्ग वरन आम नागरिक भी यह आशंका व्यक्त करते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता में दिन प्रतिदिन गिरावट आती जा रही है। आज सभी जगह यह सुनने को

मिलता है कि शिक्षा की गुणवत्ता कम होती जा रही है। सामान्यतः जब शैक्षिक गुणवत्ता की चर्चा की जाती है तब अभिप्राय उच्चशिक्षा के मानकों से होता है, परन्तु उच्चशिक्षा शिक्षा के अन्य स्तरों से अलग नहीं है, वरन् सम्पूर्ण शिक्षा–व्यवस्था का एक अंग ही है जो प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। शैक्षिक गुणवत्ता का प्रश्न शिक्षा के सभी स्तरों पर समान रूप से उठता है। क्योंकि आज के नवयुवक व नवयुवतियाँ साधारणतः स्नातक या स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करके अपनी सामान्य शिक्षा की समाप्ति करते हैं तथा किसी व्यवसाय में प्रवेश करते हैं इसलिए उनके शैक्षिक स्तरों को देखते हुए उच्चशिक्षा के गुणवत्ता की चर्चा की जाती है अतः शैक्षिक गुणवत्ता की चर्चा में सभी स्तर की शिक्षा सम्मिलित रहती है शिक्षाविज्ञ व बुद्धिजीवी वर्ग सभी स्तरों पर शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आ जाने की आशंका व्यक्त करते हैं।

4.4.1 शैक्षिक गुणवत्ता का अर्थ

Meaning of Education Quality

शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट का अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि शैक्षिक गुणवत्ता के प्रत्यय को भली–भाँति समझ लिया जायें। 'गुणवत्ता' शब्द एक बहुत ही लचीला तथा अनेक व्याख्या करने में सक्षम शब्द है। गुणवत्ता वास्तव में एक परिनिश्चितता का बोध करते हैं। जैसे लम्बाई नापने का मानक मीटर है, संहति नापने का मानक किलोग्राम है, आयतन नापने का मानक लीटर है, तथा समय नापने का मानक सैकण्ड है। एक मीटर, एक किलोग्राम, एक लीटर तथा एक सैकण्ड का अर्थ समस्त संसार में समान है। किसी भी वस्तु की लम्बाई या संहति या आयतन को नापकर बताया जा सकता है कि वह कितने मीटर लम्बी या कितने किलोग्राम संहति वाली या कितने लीटर आयतन की है। शिक्षा में भी इसी तरह के परिनिश्चत माप को शैक्षिक गुणवत्ता कहा जाता है। यहाँ यह बात ध्यान देने की है शैक्षिक गुणवत्ता की प्रकृति गत्यात्मक होने के नाते शैक्षिक गुणवत्ता में उतनी परिनिश्चतता नहीं हो पाती है जितनी मीटर, किलोग्राम, लीटर या सैकण्ड में होती है। 'शैक्षिक गुणवत्ता' से तात्पर्य, विभिन्न कक्षाओं में पढ़ने के बाद व परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिए आवश्यक, छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से है। शैक्षिक गुणवत्ता शब्द को शिक्षण उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अधिगम परिवर्तन या उत्तीर्ण छात्रों की गुणवत्ता के आधार पर भी परिभाषित किया गया है। परन्तु वास्तव में 'शैक्षिक गुणवत्ता' को छात्रों की 'शैक्षिक उपलब्धि' के रूप में ही परिभाषित करना उपयुक्त होगा। शिक्षण उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि तों छात्रों में अपेक्षित परिवर्तन करने के साधन है। शिक्षा की गुणवत्ता तो छात्रों के व्यवहार से ही परिलक्षित होती है। अतः शैक्षिक गुणवत्ता से हमारा अभिप्राय वे गुण या योग्यताएँ हैं, जो शिक्षा प्राप्त व्यक्ति के व्यवहार से इंगित होती हैं। शैक्षिक गुणवत्ता के अंतर्गत, छात्रों का

सामान्य व विशिष्ट ज्ञान, मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति, सामान्य व परिस्थितिगत उपलब्धि, ज्ञान को ग्रहण करने व प्रदान करने की योग्यता तथा सामाजिक व नैतिक व्यवहार को सम्मिलित किया जा सकता है। अतः शैक्षिक गुणवत्ता किसी उपाधि को प्राप्त करने के उपरान्त छात्रों में अपेक्षित ज्ञान, अभिव्यक्ति-क्षमता, उपलब्धि-स्तर, ग्रहण करने व प्रदान करने की योग्यता तथा सामाजिक व नैतिक व्यवहार के स्तर को बताते हैं। दूसरे अर्थों में शैक्षिक गुणवत्ता समाज व शैक्षिक वर्ग द्वारा स्वीकृत वे मानदण्ड है जो शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को अशिक्षित या अल्पशिक्षित व्यक्ति से अलग करने के लिए प्रयुक्त किये जा सकते हैं। अर्थात गुणात्मक शिक्षा का अभिप्राय 'समानता सहित गुणवत्ता' है जिसमें बालक, शिक्षक और उसकी समस्त प्रक्रियाओं का गुणात्मक विकास समाहित है। हम सभी चाहते हैं कि हमारे बच्चे प्रारंभिक स्तर की अच्छी शिक्षा प्राप्त करें। यह तभी संभव है जब कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा गुणात्मक बने। इसके लिए प्रयास किया जाए कि- बच्चे पुस्तक के पाठों को समझकर सीख रहे हों, वांछित दक्षताएँ प्राप्त कर रहे हों, बच्चे लगातार प्रगति कर रहे हों तथा बच्चे बिना डरे अपनी बात शिक्षक से कह सकते हों।

1. गुणात्मक शिक्षा के लिए शिक्षक कैसा हो ?

गुणात्मक शिक्षा के लिए प्रारंभिक शिक्षक का पूर्ण समर्पित, कर्तव्यनिष्ठ एवं लगनशील होना आवश्यक है। शिक्षक को चाहिए ि कवे -

- यह देखे कि सभी बच्चों के पास पुस्तके, कापियाँ, स्लेट, पेंसिल, रबर हों।
- पाठों में दिए अभ्यास को कक्षा में बच्चों से कराए।
- मासिक मूल्यांकन करके बच्चों की कमजोरियों को जाने और इनको दूर करने के लिए उपचार करे।
- मासिक बैठको में बच्चों की कमजोरियों पर चर्चा कर सुझाव प्राप्त करे और इन पर कार्य करे।

2. गुणात्मक शिक्षा के लिए पालक-शिक्षक विद्यालय प्रबंधन समिति-

विद्यालय प्रबन्धन समिति का दायित्व है कि वह शाला को अच्छा बनाने में सहयोग करे परन्तु सहयोग तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब शाला की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया जाए और उसे शाला के बारे में निर्णय लेने में भागीदार बनाया जाए। इसे कैसे किया जाए-

- शाला में सुधार लाने के लिए पालक-शिक्षक संघ विद्यालय प्रबन्धन समिति से चर्चा करके शाला विकास के लिए योजना बनाई जाए।
- बच्चों के प्रवेश, नियमित उपस्थिति एवं उपलब्धि आदि समस्याओं को साथ में बैठकर हल किया जाय।

3. **गुणात्मक शिक्षा के लिए बच्चों का मूल्यांकन–**

गुणात्मक शिक्षा के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों का सही सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाय। तो आइए हम जाने कि बच्चों का मूल्यांकन कैसा हो–

- वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए छात्र–छात्राओं का सतत् मूल्यांकन करना चाहिए।
- छात्र–छात्राओं की मासिक, त्रैमासिक, छः मासिक एवं वार्षिक परीक्षा ली जानी चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन पढ़ाए गये पाठ पर मौखिक प्रश्न पूछने चाहिए।

4.4.2 शैक्षिक गुणवत्ता में ह्रास का वर्तमान स्वरूप –

क्या शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आई है? तथा क्या यह गिरावट निरंतर बढ़ती जा रही है? ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं इन पर विचार करना आवश्यक है। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी हैं शैक्षिक गुणवत्ता में परिनिश्चितता का अभाव है तथा ये गतिशील व परिवर्तनशील होते हैं। संभवतः इसी कारण से यह कहना कि शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आई है अथवा गिरावट नहीं आई है अत्यन्त कठिन है। जिन व्यक्तियों का विचार है कि शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आई हैं वे साधारणतः तीन बातें अपने कथन के समर्थन में कहते हैं।

- प्रथम, आज छात्रों को किसी कक्षा में उत्तीर्ण करने के पश्चात अपने विषयों का उतना ज्ञान नहीं होता है जितना कि उस कक्षा को उत्तीर्ण करने वाले छात्रों की पुरानी पीढ़ी को होता था। दूसरे शब्दों में, पुरानी पीढ़ी के शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का ज्ञान अधिक विशद होता था।
- द्वितीय, आजकल कक्षा शिक्षण की गुणवत्ता इतनी खराब हो गई है कि एक बड़ी संख्या में छात्र किसी भी कक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं अर्थात अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों का प्रतिशत बढ़ गया है।
- तृतीय, विदेशों में शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर जितना ऊँचा है उतना भारत में नहीं है अर्थात विदेशों में भारतीय उपाधियों को मान्यता प्राप्त नहीं हो पाती है।

शिक्षा आयोग (1964–66) ने भी स्वीकार किया था कि वर्तमान परिस्थितियों में शैक्षिक गुणवत्ता की स्थिति संतोषप्रद परिस्थिति से काफी दूर है। आयोग ने कहा है कि हमारे विश्वविद्यालयों का कार्य माध्यमिक विद्यालयों के स्तर का है तथा माध्यमिक विद्यालयों का कार्य प्राथमिक स्तर का है। उन्होंने कहा कि स्नातक उपाधि का उद्देश्यों छात्रों के लिए नवीनतम ज्ञान व अनुसंधान कार्य का

द्वार खोलना है तथा स्नातकोत्तर उपाधि का उद्देश्य उन्हें विशेषीकृत ज्ञान गहराई से प्रदान करना है, परन्तु हमारे विश्वविद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता इन लक्ष्यों से बहुत नीचे हैं तथा विकसित देशों के स्नातक का मुकाबला हमारे यहाँ का स्नातकोत्तर भी नहीं कर पाता है।

शैक्षिक गुणवत्ता की गिरावट के सम्बन्ध में दो प्रकार के विरोधी मत होते हुए भी अधिकांश व्यक्तियों के विचार में शैक्षिक गुणवत्ता में पर्याप्त गिरावट आई हैं। शैक्षिक प्रशासक, शिक्षाविद तथा आम नागरिकों की भी यही धारणा है। सार्वजनिक परीक्षाओं के प्रतियोगियों द्वारा दिये गये गलत व हास्यास्पद उत्तर समस्त बुद्धिजीवी वर्ग के चिंतन का विषय बन जाते हैं। विभिन्न व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा आयोजित सर्वेक्षणों का निष्कर्ष भी यही रहा है कि भारत में शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आई है।

4.4.3 शैक्षिक गुणवत्ता में ह्रास के कारण–

शैक्षिक गुणवत्ता में आई गिरावट के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। स्वतंत्रता के उपरांत देश में आये राजनीतिक व सामाजिक परिवर्तनों ने देश की प्रत्येक व्यवस्था को प्रभावित किया है। शिक्षा–व्यवस्था भी इसकी अपवाद नहीं है। राजनीतिक कायाकल्प तथा सामाजिक जागरूकता के कारण जनसाधारण में उत्पन्न शैक्षिक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए शिक्षा का मुक्त प्रसार हुआ तथा नगरों, कस्बों व गाँवों में विशाल संख्या में शिक्षा संस्थाएँ खोली गई। शिक्षा के इस मुक्त प्रसार में छात्रों, अध्यापकों व शिक्षण–संस्थाओं के वांछित स्तर को ध्यान में नहीं रखा गया। अयोग्य छात्रों को शिक्षा–संस्थाओं के प्रवेश दिया जाने लगा, अयोग्य व्यक्तियों को अध्यापक नियुक्त कर लिय गया, तथा आवश्यक सुविधाओं जैसे इमारत, पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि के अभाव में भी शिक्षा संस्थाओं को मान्यता दे दी गई। शिक्षा के क्षेत्र में हुई इन अनियमितताओं का दूरगामी दुष्परिणाम स्वाभाविक ही था। धीरे–धीरे शिक्षा के गुणवत्ता में गिरावट आने लगी। शिक्षा संस्थाओं में राजनीति के प्रवेश के साथ शैक्षिक गुणवत्ता में और भी अधिक गिरावट आई है। अध्यापक, छात्र व कर्मचारीवर्ग के आंदोलनों ने भी शैक्षिक गुणवत्ता को प्रभावित किया। इन सब वाह्य कारकों के साथ–साथ, शिक्षा व्यवस्था के अनेक आंतरिक कारक भी शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट के लिए दोषी है। अनुपयुक्त पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली के दोष, प्रभावहीन शिक्षण विधियाँ, पाठ्यपुस्तकों का स्तर, माध्यम की समस्या, छात्रों का असुरक्षित भविष्य तथा शैक्षिक चेतना का अभाव शिक्षा व्यवस्था के कुछ ऐसे प्रमुख दोष हैं जो शैक्षिक गुणवत्ता के गिरने की प्रवृत्ति को बढ़ा रहे है।।

4.4.4 शैक्षिक गुणवत्ता को ऊँचा उठाने के उपाय–

शैक्षिक गुणवत्ता को बनाये रखने तथा उन्हें ऊँचा उठाने के संबंध में सरकारी तथा गैरसरकारी स्तर पर पर्याप्त चिंतन हुआ है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में समय-समयपर इस संबंध में अनेक सुझाव दिये है तथा विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता को ऊँचा उठाने के लिए अनेक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये हैं। शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी इस विषय पर अनेक सिफारिशें केन्द्र सरकार से की थी शिक्षा की गुणवत्ता का निर्धारण पर्याप्तता, गतिशीलता व अंतर्राष्ट्रीय तुलनीयता के आधार पर किया जाना चाहिए। शैक्षिक गुणवत्ता नवीनतम ज्ञान से युक्त, आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील तथा अंतर्राष्ट्रीय मंच पर तुलनीय होने चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शैक्षिक गुणवत्ता को बनाये रखने का सबसे शक्तिशाली साधन अध्यापक है। अच्छी तरह से शिक्षित व प्रशिक्षित अध्यापक शैक्षिक गुणवत्ता को ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है। यदि अध्यापकों के चयन की प्रक्रिया इस प्रकार की होगी कि केवल योग्य व्यक्तियों को ही अध्यापक नियुक्त किया जाये तथा ऐसे अध्यापकों को उचित मार्गदर्शन व प्रोत्साहन दिया जाये तो शैक्षिक गुणवत्ता को ऊँचा उठाया जा सकता है। चयनित प्रवेश, नीति, मातृभाषा शिक्षा का माध्यम, शिक्षा अवधि में वृद्धि, पाठ्यक्रम से सुधार, परीक्षा प्रणाली में सुधार, उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग, योग्यता छात्र वृत्तियों की व्यवस्था, शिक्षकों के सामाजिक-आर्थिक स्तर व मनोबल में वृद्धि तथा शिक्षा को राजनीति से अलग करके, शैक्षिक गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने इस संबंध में निम्नलिखित सिफारिशें की थीः-

1. प्रथम दस वर्ष की शिक्षा में गुणात्मक विकास के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए। अपव्यय में कमी करके तथा उत्तम शिक्षकों, पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों, सहायक सामग्री व मूल्यांकन की सहायता से दस वर्ष की शिक्षा का वही स्तर करना चाहिए जो वर्तमान में कक्षा 12 का है।
2. विश्वविद्यालय शिक्षा में कम से कम एक वर्ष बढ़ाया जाये। स्नातक पाठ्यक्रम तीन वर्ष का हो। एक वर्ष की पाठ्यवस्तु स्कूल शिक्षा में बढ़ाकर तथा एक वर्ष स्नातक स्तर में बढ़ाकर, स्नातक स्तर उपाधि में दो वर्षों की पाठ्यवस्तु में बढ़ोत्तरी होगी जिससे शिक्षा के गुणवत्ता ऊँचे उठ सकेंगे।
3. समस्त देश में एक समान शिक्षा -व्यवस्था होनी चाहिए। यदि ऐसा संभव न हो तो देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक गुणवत्ता तुलनीय हों।
4. केन्द्रीय व राज्य स्तर पर एक ऐसी प्रभावशाली व्यवस्था होनी चाहिए जो समय-समय पर गुणवत्ता को परिभाषित, संशोधित व मूल्यांकित कर सकें।

4.5 शैक्षिक अवसरों की समानता : सफलता और असफलता

Equality of Education opportunities : Success and Failures

शिक्षा–आयोग के अनुसार, शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य है– अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्ग और व्यक्ति शिक्षा के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज सामाजिक न्याय को अत्यन्त आदर्श मानता है और साधारण की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षित करने का उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सब वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाये। एक समतामूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें निर्बल का शोषण कम–से–कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन है।

1. **विषय–प्रवेशः–** शिक्षा–आयोग के अनुसार, शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य है– अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्ग और व्यक्ति शिक्षा के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज सामाजिक न्याय को अत्यन्त आदर्श मानता है और साधारण की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षित करने का उत्सुक है, उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सब वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाये। एक समतामूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें निर्बल का शोषण कम–से–कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन है।

2. **शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थः–** शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ हमें समानता के अर्थ को जानने के लिए बाध्य करता है। 'समानता' का तात्पर्य यह नहीं है कि सब हर प्रकार से समान हों। ऐसा असम्भव है। समानता का तात्पर्य अवसर की समानता से है। राज्य की ओर से सबको समान समझा जाय। जाति, रंग, नस्ल, धर्म आदि के कारण किसी के साथ भेदभाव न किया जाये। किसी वर्ग या समुदाय या सम्प्रदाय को विशेष अधकार न दिये जायें। अतः समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से है जिनके कारण सब व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अन्त हो सके। साथ ही सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। **प्रो0 लास्को** के शब्दों में, "समानता का यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाय अथवा सभी को समान वेतन दिया जाय। यदि पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया गया तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए समानता का अर्थ है कि कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर रहे।"

शैक्षिक अवसरों की समानता की अवधारणा को 'शिक्षा नामक वस्तु के वितरण के रूप में समझा जा सकता है। प्रारम्भिक स्तर पर इस वितरण के सिद्धान्त का अर्थ है कि बिना किसी भेदभाव के एक निश्चित अवधि तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय। माध्यमिक स्तर पर इसका अभिप्राय है– विभिन्नकृत पाठ्यक्रम की व्यवस्था जिससे व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा रूचियों को सन्तुष्ट किया जा सके। उच्च शिक्षा

के स्तर पर इसका अभिप्राय है कि उन समस्त लोगों के लिए शैक्षिक अवसरों की व्यवस्था की जाये जो इस शिक्षा से लाभ उठाने की क्षमता रखते है और उसके बदले में समाज को उपयुक्त योगदान देने में समर्थ हैं।

3. शिक्षा के अवसरों के समकरण की आवश्यकताः– आज शैक्षिक अवसरों के समकरण के लिए विश्व–व्यापी माँग के दो प्रमुख कारण है। प्रथम वैचारिक कारण है। शिक्षा का अधिकार एक सार्वभौमिक मानवीय अधिकार है जिसका उल्लेख मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की धारा 26(1) में की गई है। इस दृष्टि से शिक्षा एक मौलिक अधिकार है। इस कारण व्यक्ति को जाति, रंग, धर्म, प्रजाति आदि के आधार पर इससे वंचित नहीं किया जा सकता है। द्वितीय, अधिकाधिक व्यक्तियों को अधिकाधिक शिक्षा का विचार शिक्षा की इस क्षमता से विकसित हुआ कि शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक एवं आर्थिक सीढ़ी पर अग्रसर करने में समर्थ है अर्थात् अधिक एवं उत्तम शिक्षा अधिक आय तथा उन्नत सामाजिक स्थिति की महत्त्वपूर्ण कुँजी है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा सामान्य मानवीय अधिकारों– आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार जो व्यक्ति की गरिमा तथा उसके व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिये अनिवार्य है, कि प्राप्ति का प्रमुख साधन है।

4. भारत में शिक्षा के अवसरों की विषमताएँः– भारत में शिक्षा की विषमताएँ विभिन्न प्रकार की हैं। उनमें से प्रमुख अग्रांकित हैंः

(1) जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कॉलेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ नहीं हैं, वहाँ के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता जैसा उन बच्चों को मिल पाता है जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएँ उपलब्ध हैं।

(2) इस समय देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों में भारी असन्तुलन देखने मिलता है– एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बहुत बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अन्तर देखने को मिलता है।

(3) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीब है और बहुत थोड़ा भाग अपेक्षतया धनी। किसी शिक्षा–संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है।

(4) शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और बड़ा दुःसाध्य रूप विद्यालयों तथा कॉलेजों के अपने–अपने भिन्न स्तरों के कारण पैदा होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंकों के आधार पर दिया जाता है जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पर दी गयी सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों और प्रवेश साधारणतया इसी आधार पर होता है, तब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।

(5) घरेलू पर्यावरणों के भिन्न–भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। देहात के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता–पिता की सन्तान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता जो उच्चतर शिक्षा पाये हुए माता–पिता के साथ रहने वाली उनकी सन्तान को मिलता है।

(6) भारतीय परिस्थितियों ने अग्रलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से जन्म दिया हैः

(अ) शिक्षा के सब स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में भारी अन्तर।

(ब) उन्नत वर्गों तथा पिछड़े वर्गों–अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों–के बीच शैक्षिक विकास का अन्तर।

5. शैक्षिक अवसरों में विषमता के कारणः– शैक्षिक अवसरों में विषमता अनेक कारणों से उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ प्रमुख कारणों का वर्णन आगे किया जा रहा है–

(i) शिक्षा संस्थाओं की अनुपलब्धता **Non-Availability of Educational Institution:-** जिन स्थानों पर कोई भी प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षासंस्था नहीं है वहाँ के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर प्राप्त नहीं कर पाते जो शिक्षा–संस्थाओं से युक्त बस्तियों में रहने वाले बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। जब बच्चों के लिए सरलता से तय करने योग्य दूरी पर शिक्षा–संस्था की व्यवस्था नहीं होती है तो बच्चों का शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

यहाँ यह भी इंगित करना उचित ही होगा कि देश के विभिन्न भागों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त असंतुलन हैं विभिन्न राज्यों यहाँ तक कि एक ही राज्य के विभिन्न जनपदों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त अंतर स्पष्ट रूप से दुष्टिगोचर होता है।

(ii) निर्धरता **Poverty :-** निर्धनता शैक्षिक अवसरों में विषमता का एक महत्वपूर्ण कारक है। हमारे देश की जनसंख्या का अधिसंख्य भाग निर्धनता से त्रस्त है, जबकि एक छोटा भाग साधन सम्पन्न है। निर्धन परिवारों के बच्चों को शिक्षा –प्राप्ति के वे अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते जो समृद्ध परिवारों के बच्चों को हो जाते हैं। शिक्षा–शुल्क, पठन–पाठन सामग्री, विद्यालयी गणवेश, पौष्टिक आहार आदि की कमी के कारण निर्धन बालक या तो विद्यालय पहुँच ही नहीं पाते हैं बौर यदि पहुंच भी जाते है तो शिक्षा बिना पूरी किये ही विद्यालय छोड़ देते है। कुछ शिक्षा–स्तर पर तो स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है।

(iii) शिक्षा की गुणवत्ता में अंतर **Difference in Quality of Education :-** शैक्षिक विषमता के लिए विभिन्न स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में विद्यमान अन्तर भी उत्तरदायी हैं जैसे ग्रामीणक्षेत्र में स्थित अल्पसाधन युक्त स्कूल के छात्र को उपलब्ध शिक्षा तथा नगरीय क्षेत्र में स्थित साधन– सम्पन्न विद्यालय के छात्र को

उपलब्ध शिक्षा की गुणवत्ता कभी भी समतुल्य नहीं हो सकती । यही कारण है कि जनपरीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर योग्यता की तुलना करना कदापि तर्कसंगत नहीं हो सकता।

(iv) परिवार का वातावरण **Family Enviornment :-** परिवार के वातावरण का अंतर शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में विषमता उत्पन्न करता है। अशिक्षित माता–पिता के बच्चे अथवा ग्रामीण परिवेश में रहने वाले माता–पिता के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर नहीं प्राप्त कर पाते हैं जो शिक्षित माता–पिता अथवा शहरी परिवार अथवा समृद्ध परिवार के बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। अनुपढ़ माता–पिता के बच्चों को शिक्षा–प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन/सहयोग नहीं मिल पाता है।

(v) यौन भेद **Sex Difference :-** भारतीय परिवेश में लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के बीच एक भारी अंतर पाया जाता है। परम्परागत भारतीय समाज में अभी भी लड़कियों की शिक्षा को हेय दृष्टि से देखा जाता है। लड़कियों की शिक्षा के प्रति इस नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण लड़के तथा लड़कियों को शिक्षा–प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

(vi) सामाजिक स्थिति **Social Status :-** समाज के प्रगतिशील तथा पिछड़ेवार्गें के मध्य शैक्षिक विकास में अन्तर पाया जाता है। अनुसूचित जातियाँ जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के बालक–बालिकाओं को शिक्षा–प्राप्ति के वे अवसर नहीं मिल पाते हैं जो समाज के अगड़ी जातियों के बच्चों को मिल जाते है।

(vii) शारीरिक दोष **Physical Defects:-** विकलांग तथा विभिन्न प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक कतियों से युक्त बालक–बालिकायें भी शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में समानता नहीं प्राप्त कर पाते हैं। अन्धे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे तथा मंदबुद्धि के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था प्रायः नहीं हो पाती है।

शैक्षिक अवसरों में विषमताओं के लिए उत्तरदायी उपरोक्त वर्णित कारणों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक लाभ साधन सम्पन्न, समृद्ध तथा शहरी वर्ग के लोग प्राप्त करते है। निर्धन तथा साधन विहीन ग्रमीण इस प्रणाली का लाभ नहीं उठा पाते हैं। लोकतंत्र की प्रगति हेतु इन वर्गो के बीच शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के प्रयासों को करने की महती आवश्यकता है। जिससे सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को बल मिल सके।

6. शैक्षिक अवसरों की समानता के उपाय

Measures for Equalizing Educational Opportunities

समानता और न्याय पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता है इसके लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित

करनी होगी जो सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करें। शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के लिए अनेक प्रयास किए गए है परन्तु उनसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक विषमतायें दूर करने वाले कारणों को पहचानने तथा उनके प्रभाव को कम करने के लिए उचित कदम उठाने के प्रयास निरन्तर होते रहें। नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत नवोदय विद्यालय इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खोले गये है। मुक्त विश्वविद्यालय भी उच्च–शिक्षा के अवसर बढ़ा रहे है। अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग तथा लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। ग्रामीण–शहरी असन्तुलन को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। बालबाड़ी, शिशु परिचर्या केन्द्र आंगनवाड़ी, आश्रम विद्यालय, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र आदि तथा प्रौढ़ शिक्षाकेन्द्र वंचितवर्ग के लिए शिक्षा प्राप्ति में वरदान सिद्ध हो सकते हैं। शैक्षिक समानता लाने के लिए कुछ उपाय निम्नवत हो सकते हैं–

1. यथासम्भव छात्रों के घर के पास शिक्षा संस्थायें स्थापित की जानी चाहिए।
2. छात्रावास सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए।
3. छात्रों को यातायात साधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
4. निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ अधिक संख्या में दी जानी चाहिए।
5. शैक्षिक विकास की स्पष्ट व समान नीति तैयार की जानी चाहिए।
6. शिक्षण शुल्क पूर्ण रूपेण समाप्त कर देना चाहिए।
7. पुस्तकें, गणवेश, स्टेशनरी तथा स्कूल अल्पाहार निःशुल्क दिया जाना चाहिए।
8. दिवा अध्ययन केन्द्र खोले जाने चाहिए।
9. अभिभावाकें में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए।

यद्यपि जीवन के अन्य आदर्शे की तरह शैक्षिक अवसरों की पूर्ण समानता की प्राप्ति कदाचित असम्भव ही है फिर भी उपरोक्त वर्णित उपाय शिक्षा में समान अवसरों की प्राप्ति की दिशा में कुछ न कुछ उपयोगी आवश्यक सिद्ध होंगे।

4.5.1 शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थः–

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ हमें समानता को जानने के लिए बाध्य करता है। ‘समानता’ का तात्पर्य यह नहीं है कि सब हर प्रकार से समान हों। ऐसा असंभव है। समानता का तात्पर्य अवसर की समानता से है। राज्य की ओर से सबको समान समझा जाये। जाति, रंग, नस्ल, धर्म आदि के कारण किसी के साथ भेदभाव न किया जाये। किसी वर्ग या समुदाय या सम्प्रदाय को विशेष अधिकार न दिये जायें। अतः समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से है जिनके कारण सब व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो सकें और सामाजिक भेदभाव का अंत हो सके। साथ ही सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। **प्रो0 लास्को** के शब्दों में, “समानता का यह

अर्थ नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाये अथवा सभी को समान तेतन दिया जाये। यदि पत्थर ढोने वाले का वेतन एक प्रसिद्ध गणितज्ञ या वैज्ञानिक के समान कर दिया गया तो इससे समाज का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा। इसलिए समानता का अर्थ है कि कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग न रहे और सबको उन्नति के समान अवसर रहे।”

शैक्षिक अवसरों की समानता की अवधारणा को ‘शिक्षा नामक वस्तु के वितरण के रूप में समझा जा सकता है। प्रारंभिक स्तर पर इस वितरण के सिद्धांत का अर्थ है कि बिना किसी भेदभाव के एक निश्चित अवधि तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाय। माध्यमिक स्तर पर इसका अभिप्राय है– विभिन्नकृत पाठ्यक्रम की व्यवस्था जिससे व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा रूचियों को संतुष्ट किया जा सके। उच्च शिक्षा के स्तर पर इसका अभिप्राय है कि उन समस्त लोगों के लिए शैक्षिक अवसरों की व्यवस्था की जाये जो इस शिक्षा से लाभ उठाने की क्षमता रखते है और उसके बदले में समाज को उपयुक्त योगदान देने में समर्थ हैं।

4.5.2 शैक्षिक अवसरों की समानता की आवश्यकताः–

आज शैक्षिक अवसरों की समानता के लिए विश्व–व्यापी माँग के दो प्रमुख कारण है। प्रथम वैचारिक कारण है। शिक्षा का अधिकार एक सार्वभौमिक मानवीय अधिकार है जिसका उल्लेख मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की धारा 26(1) में की गई है। इस दृष्टि से शिक्षा एक मौलिक अधिकार है। इस कारण व्यक्ति को जाति, रंग, धर्म, प्रजाति आदि के आधार पर इससे वंचित नहीं किया जा सकता है। द्वितीय, अधिकाधिक व्यक्तियों को अधिकाधिक शिक्षा का विचार शिक्षा की इस क्षमता से विकसित हुआ कि शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक एवं आर्थिक सीढ़ी पर अग्रसर करने में समर्थ है अर्थात् अधिक एवं उत्तम शिक्षा अधिक आय तथा उन्नत सामाजिक स्थिति की महत्त्वपूर्ण कुँजी है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा सामान्य मानवीय अधिकारों – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार जो व्यक्ति की गरिमा तथा उसके व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिये अनिवार्य है, कि प्राप्ति का प्रमुख साधन है।

4.5.3 भारत में शैक्षिक अवसरों की विषमताएँः–

भारत में शिक्षा की विषमताएँ विभिन्न प्रकार की हैं। उनमें से प्रमुख अग्रांकित हैंः

1. जिन स्थानों पर प्राथमिक, माध्यमिक या कॉलेज की शिक्षा देने वाली संस्थाएँ नहीं हैं, वहाँ के बच्चों को वैसा अवसर नहीं मिल पाता जैसा उन बच्चों को मिल पाता है जिनकी बस्तियों में ये संस्थाएँ उपलब्ध हैं।

2. इस समय देश के विभिन्न भागों में शैक्षिक विकासों में भारी असंतुलन देखने मिलता है– एक राज्य और दूसरे राज्य के शैक्षिक विकासों में बहुत बड़ा अंतर मौजूद है और एक जिले तथा दूसरे जिले के विकास में और भी बड़ा अंतर देखने को मिलता है।
3. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और कारण यह है कि जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीब है और बहुत थोड़ा भाग अपेक्षातया धनी। किसी शिक्षा–संस्था के समीप होते हुए भी गरीब परिवारों के बच्चों को वह अवसर नहीं मिलता जो धनी परिवारों के बच्चों को मिल जाता है।
4. शिक्षा के अवसरों की विषमता का एक और बड़ा दुःसाध्य रूप विद्यालयों तथा कॉलेजों के अपने–अपने भिन्न स्तरों के कारण पैदा होता है। जब किसी विश्वविद्यालय या वृत्तिक कॉलेज जैसी संस्था में प्रवेश उन अंको के आधार पर दिया जाता है जो माध्यमिक स्तर की समाप्ति पद दी गई सार्वजनिक परीक्षा में प्राप्त हुए हों और प्रवेश साधारणतया इसी आधार पर होता है, तब देहाती क्षेत्र के साधनहीन ग्रामीण विद्यालय में पढ़े छात्र के लिए यह कसौटी या मापदण्ड एक समान नहीं रहता।
5. घरेलू पर्यावरणों के भिन्न–भिन्न होने के कारण भी भारी विषमताएँ उत्पन्न होती हैं। देहात (गाँव) के घर या शहरी गन्दी बस्तियों में रहने वाले और अनपढ़ माता–पिता की संतान को शिक्षा पाने का वह अवसर नहीं मिलता जो उच्चतर शिक्षा पाये हुए माता–पिता के साथ रहने वाली उनकी संतान को मिलता है।
6. भारतीय परिस्थितियों ने अग्रलिखित दो प्रकार की शैक्षिक विषमताओं को प्रमुख रूप से जन्म दिया हैः
   (अ) शिक्षा के सब स्तरों पर तथा क्षेत्रों में लड़कों तथा लड़कियों की शिक्षा में भारी अंतर।
   (ब) उन्नत वर्गो तथा पिछड़े वर्गो–अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के बीच शैक्षिक विकास का अंतर।

4.5.4 शैक्षिक अवसरों की विषमता के कारणः–

शैक्षिक अवसरों में विषमता अनेक कारणों से उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ प्रमुख कारणों का वर्णन आगे किया जा रहा है–

1. **शिक्षा संस्थाओं की अनुपलब्धता (Non-Availability of Educatinal Institution)** :– जिन स्थानों पर कोई भी प्राथमिक, माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा संस्था नहीं है वहाँ के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर प्राप्त नहीं कर पाते जो शिक्षा–संस्थाओं से युक्त बस्तियों में रहने वाले बच्चे प्राप्त कर

लेते हैं। जब बच्चों के लिए सरलता से तय करने योग्य दूरी पर शिक्षा–संस्था की व्यवस्था नहीं होती है तो बच्चों का शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

यहाँ यह भी इंगित करना उचित ही होगा कि देश के विभिन्न भागों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त असंतुलन हैं विभिन्न राज्यों यहाँ तक कि एक ही राज्य के विभिन्न जनपदों में हो रहे शैक्षिक विकास में पर्याप्त अंतर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

2. **निर्धनता (Poverty) :–** निर्धनता शैक्षिक अवसरों में विषमता का एक महत्वपूर्ण कारक है। हमारे देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग निर्धनता से त्रस्त्र है, जबकि एक छोटा भाग साधन सम्पन्न है। निर्धन परिवारों के बच्चों को शिक्षा–प्राप्ति के वे अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते जो समृद्ध परिवारों के बच्चों को हो जाते हैं। शिक्षा–शुल्क, पठन–पाठन सामग्री, विद्यालयी गणवेश, पौष्टिक आहार आदि की कमी के कारण निर्धन बालक या तो विद्यालय पहुँच ही नहीं पाते हैं और यदि पहुंच भी जाते हैं तो शिक्षा बिना पूरी किये ही विद्यालय छोड़ देते है। कुछ शिक्षा–स्तर पर तो स्थिति और भी अधिक खराब हो जाती है।
3. **शिक्षा की गुणवत्ता में अंतर (Difference in Quality of Education):–** शैक्षिक विषमता के लिए विभिन्न स्कूलों, कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता में विद्यमान अंतर भी उत्तरदायी हैं जैसे ग्रामीण क्षेत्र में स्थित अल्पसाधन युक्त स्कूल के छात्र को उपलब्ध शिक्षा तथा नगरीय क्षेत्र में स्थित साधन–सम्पन्न विद्यालय के छात्र को उपलब्ध शिक्षा की गुणवत्ता कभी भी समतुल्य नहीं हो सकती। यही कारण है कि जनपरीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर योग्यता की तुलना करना कदापि तर्कसंगत नहीं हो सकता।
4. **परिवार का वातावरण (Family Enviornment) :–** परिवार के वातावरण का अंतर शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में विषमता उत्पन्न करता है। अशिक्षित माता–पिता के बच्चे अथवा ग्रामीण परिवेश में रहने वाले माता–पिता के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के वे अवसर नहीं प्राप्त कर पाते हैं जो शिक्षित माता–पिता अथवा शहरी परिवार अथवा समृद्ध परिवार के बच्चे प्राप्त कर लेते हैं। अनपढ़ माता–पिता के बच्चों को शिक्षा–प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन/सहयोग नहीं मिल पाता है।
5. **यौन भेद (Sex Difference) :–** भारतीय परिवेश में लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के बीच एक भारी अंतर पाया जाता है। परम्परागत भारतीय

समाज में अभी भी लड़कियों की शिक्षा को हेय दृष्टि से देखा जाता है। लड़कियों की शिक्षा के प्रति इस नकारात्मक दृष्टिकोण के कारण लड़के तथा लड़कियों को शिक्षा–प्राप्ति के समान अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

6. **समाजिक स्थिति :–** समाज के प्रगतिशील तथा पिछड़े वर्गो के मध्य शैक्षिक विकास में अंतर पाया जाता है। अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के बालक–बालिकाओं को शिक्षा–प्राप्ति के वे अवसर नहीं मिल पाते हैं जो समाज के अगड़ी जातियों के बच्चों को मिल जाते हैं।
7. **शारीरिक दोष (Physical Defects) :–** विकलांग तथा विभिन्न प्रकार के शारीरिक अथवा मानसिक कृतियों से युक्त बालक–बालिकायें भी शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में समानता नहीं प्राप्त कर पाते हैं। अंधे, लूले, लँगड़े, बहरे, गूँगे तथा मंदबुद्धि के बच्चों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था प्रायः नहीं हो पाती है।

   शैक्षिक अवसरों में विषमताओं के लिए उत्तरदायी उपरोक्त वर्णित कारकों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक लाभ साधन सम्पन्न, समृद्ध तथा शहरी वर्ग के लोग प्राप्त करते हैं। निर्धन तथा साधन विहीन ग्रामीण इस प्रणाली का लाभ नहीं उठा पाते हैं। लोकतंत्र की प्रगति हेतु इन वर्गो के बीच शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के प्रयासों को करने की महती आवश्यकता है जिससे सामाजिक न्याय के सिद्धांत को बल मिल सके।

4.5.5 शैक्षिक अवसरों की समानता के उपायः–

स्मानता और न्याय पर आधारित समाजवादी व्यवस्था के निर्माण के लिए सामाजिक पुनर्गठन की आवश्यकता है इसके लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करनी होगी जो सभी को शैक्षिक अवसरों की समानता सुनिश्चित करे। शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के लिए अनेक प्रयास किए गए है परंतु उनसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि शैक्षिक विषमतायें दूर करने वाले कारणों को पहचानने तथा उकने प्रभाव को कम करने के लिए उचित कदम उठाने के प्रयास निरंतर होते रहें। नई शिक्षा नीति (1986) के अंतर्गत नवोदय विद्यालय इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खोले गये हैं। मुक्त विश्वविद्यालय भी उच्च–शिक्षा के अवसर बढ़ा रहे है। अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग तथा लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया

जा रहा है। ग्रामीण-शहरी असंतुलन को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। बालबाड़ी, शिशु परिचर्या केन्द्र, आंगनवाड़ी, आश्रम विद्यालय, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र आदि तथा प्रौढ़ शिक्षाकेन्द्र, वंचितवर्ग के लिए शिक्षा प्राप्ति में वरदान सिद्ध हो रहे हैं। शैक्षिक समानता लाने के लिए कुछ उपाय निम्नवत हो सकते हैं-

1. यथासंभव छात्रों के घर के पास शिक्षा संस्थायें स्थापित की जानी चाहिए।
2. छात्रावास सुविधाओं को बढ़ाया जाना चाहिए।
3. छात्रों को यातायात साधन उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
4. निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ अधिक संख्या में दी जानी चाहिए।
5. शैक्षिक विकास की स्पष्ट व समान नीति तैयार की जानी चाहिए।
6. शिक्षण शुल्क पूर्ण रूपेण समाप्त कर देना चाहिए।
7. पुस्तकें, गणवेश, स्टेशनरी तथा स्कूल अल्पाहार निःशुल्क एवं पर्याप्त दिया जाना चाहिए।
8. दिवा अध्ययन केन्द्र खोले जाने चाहिए।
9. अभिभावकों में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहिए। यद्यपि जीवन के अन्य आदर्शो की तरह शैक्षिक अवसरों की पूर्ण समानता की प्राप्ति कदाचित असंभव ही है फिर भी उपरोक्त वर्णित उपाय शिक्षा में समान अवसरों की प्राप्ति की दिशा में कुछ न कुछ उपयोगी आवश्यक सिद्ध होंगे।

4.6 इकाई सारांश (Unit Summary)-

पन्द्रह अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्रता उपरांत 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू किया। भारतीय संविधान में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया। स्वतंत्रता प्राप्त करने के तत्काल बाद भारत के सामने अनेक समस्याओं में से एक शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन तथा शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने की भी समस्या थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संविधान की धारा-45 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निदेशक सिद्धांत घोषित किया। संविधान द्वारा 1976 में किए गए संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया। केन्द्र सरकार ने 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा कार्य योजना 1992 लागू किया जिसमें एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढ शिक्षा, सभी को शिक्षा,

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता, बालिका शिक्षा, नवोदय विद्यालय की स्थापना मुफ्त विश्वविद्यालयों की स्थापना, व्यावसायिक शिक्षा आदि का उल्लेख किया गया।

दिसम्बर, 2002 में बने संविधान (86वाँ संशोधन) अधिनियम–2002 की धारा–III (मूलभूत अधिकार) में एक नई धारा–21– A जोड़कर 6–14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मूलभूत अधिकार कहा गया।

प्रारंभिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा का जन–जन तक प्रचार एवं प्रसार करना ही लोकव्यापीकरण है। नवीं पंचवर्षीय योजना में सभी के लिए प्रारंभिक शिक्षा के लक्ष्य के अंतर्गत लोकव्यापी पहुँच, लोकव्यापी नामांकन, लोकव्यापी धारणा और लोकव्यापी उपलब्धि में सुधार जैसे–मानदण्ड निर्धारित किये गये है।

विद्यालयनी शिक्षा में गिरावट वर्तमान समय की समस्या है जिसे शासन स्तर पर सुधार के सतत् प्रयास किये जा रहे है। शैक्षिक गुणवत्ता सुधार हेतु शिक्षा आयोग ने प्रथम दस वर्ष की शिक्षा में गुणात्मक विकास के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने के सुझाव दिये गये है। शिक्षा आयोग में अपने सिफारिश में कहा है कि समस्त देश में एक समान शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए और केन्द्रिय व राज्य स्तर पर एक ऐसी प्रभावशाली व्यवस्था की जानी चाहिए जो समय–समय पर गुणवत्ता को परिभाषित, संशोधित एवं मूल्यांकित कर सके।

शैक्षिक अवसरों की समानता के संबंध में शिक्षा आयोग ने शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के अंतर्गत अवसरों की समता प्रदान करने का उल्लेख किया है जिसमें सामाजिक न्याय को अत्यंत आदर्श माना गया है। शैक्षिक समानता का अर्थ औसर की समानता से है। अर्थात राज्य की और से सभी को समान समझा जाय। जाति, रंग, नस्ल, धर्म आदि के कारण किसी के साथ भेदभाव न किया जाये। अतः समानता का तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों से है जिनके कारण सभी व्यक्तियों को विकास के समान अवसर प्राप्त हो और सामाजिक भेदभाव का अंत हो। शैक्षिक अवसरों की समानता लाने के लिए शासन द्वारा यथा संभव छात्रों के घर के पास विद्यालय, छात्रावास सुविधा, यातायात के साधन, निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तिया, पुस्तके, गणवेश, स्टेशनरी तथा मध्यान्ह भोजन आदि उपाय किये जा रहे है।

4.7 अपनी प्रगति की जाँच करें (Check your Progress)

1. भारतीय संविधान के अनुसार अनिवार्य शिक्षा को परिभाषित कीजिए।
2. किस संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया? समझाइए।
3. शिक्षा का अधिकार अधिनियम कब और क्यो लागू किया गया?

4. प्रारंभिक शिक्षा का लोकव्यापीकरण क्या है? समझाइए।
5. लोकव्यापीकरण नामांकन से आपका क्या अभिप्राय है? वर्णन कीजिए।
6. लोकव्यापी धारणा को अपने शब्दों में समझाइए।
7. विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता सुधार पर अपना प्रकाश डालिए।
8. शैक्षिक गुणवत्ता में ह्रास के क्या कारण है? विवेचना कीजिए।
9. शैक्षिक गुणवत्ता को ऊँचा उठाने के उपायों का वर्णन कीजिए
10. शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ समझाइए।
11. भारत के शैक्षिक अवसरों की विषमताएँ कौन-कौन सी है? वर्णन कीजिए।
12. शैक्षिक अवसरों में विषमता के कारणों का उल्लेख कीजिए।
13. शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के उपाय लिखिए।
14. विद्यालयीन शिक्षा में गुणवत्ता की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
15. भारत में शैक्षिक अवसरों के समानता की आवश्यकता क्यों है? समझाइए।

4.8 नियत कार्य/ गतिविधियाँ (Assignment / Activity):-

1. भारत में शिक्षा के परिमाणात्मक विस्तार का उल्लेख करते हुए बताइए की आपके जिले में इस हेतु क्या-क्या प्रयास किये गये है?
2. आपके प्रदेश में विद्यालयीन शिक्षा की गुणवत्ता सुधार हेतु क्या-क्या प्रयास किये गये है? आपकी राय से अभी किन-किन सुधारों की आवश्यकता है।
3. अपने देश में शैक्षिक अवसरों की असफलता के क्या कारण है? शैक्षिक अवसरों में समानता लाने के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे।
4. बच्चों के शैक्षिक उपलब्धि में गिरावट के कौन-कौन से कारण है? आपके अनुसार शैक्षिक उपलब्धि में सुधार हेतु क्या-क्या प्रयास किये जाने चाहिए।

4.9 चर्चा/ स्पष्टीकरण के बिन्दु

इकाई के समुचित अध्ययन के पश्चात् आप कुछ बिन्दुओं पर विवेचना तथा अन्य पर स्पष्टीकरण चाहेंगे। इन बिन्दुओं को निम्न स्थान पर लिखिए–

4.9.1 चर्चा के बिन्दु

____

____

____

4.9.2 स्पष्टीकरण के बिन्दु

4.10 सन्दर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

D.El.Ed. 02

Block IV India, Economy and Democracy
Unit-01 India as an Evolving Nation State
भारत एक राष्ट्र राज्य

1.1 परिचय

1.2 उद्‌देश्य

1.3 राष्ट्र राज्य की अवधारणा

1.4 भारत एक राष्ट्र राज्य

1.5 राष्ट्रवाद

1.6 राष्ट्रवाद का इतिहास

1.7 राज्य एवं राष्ट्र

1.6 लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरेपक्ष नीतियाँ

- 1.6.1 धर्म निरपेक्ष राज्य
- 1.6.2 धर्म निरपेक्षता एवं शिक्षा
- 1.6.2.1 धर्म निरपेक्षता का यूरोपीय मॉडल
- 1.6.2.2 धर्म निरपेक्षता का भारतीय मॉडल
- 1.6.3 धर्म निरपेक्षता की विशेषताएँ

1.7 संघीय ढाँचा

- 1.7.1 संघीय शासन प्रणाली क्या है?
- 1.7.2 संघीय शासन व्यवस्था के आधारभूत तत्व
- 1.7.3 भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति
- 1.7.3.1 एकात्मक शासन व्यवस्था गुण दोष
- 1.7.3.2 संघात्मक शासन व्यवस्था गुण दोष

1.8 स्थानीय सरकार की जिम्मेदारी

1.9 शैक्षिक का शिक्षा पर प्रभाव

1.10 ईकाई सांराश– याद रखने योग्य बिन्दु

1.11 अपनी प्रगति की जाँच करिए ?

1.12 नियत कार्य/ गतिविधियाँ

1.13 चर्चा/ स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.14 संदर्भ/ अतिरिक्त पठन सामग्री

1.1 परिचयः–

भारत एक राष्ट्र राज्य–विभिन्न जाति प्राणी एवं वेशभूषा होते हुए इंडियन अर्थात एक राष्ट्र – 'नेशन+स्टेट' दो शब्दों से मिलकर बना है।
भारत दक्षिण एशिया में स्थित भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे बड़ा देश है। भारत भौगोलिक दृष्टि से विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा द्वीप है, जबकि जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत के पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर पूर्व में चीन, नेपाल और भूटान पूर्व में बांग्लादेश और म्यान्मार स्थित है। उत्तर में हिमालय पर्वत दक्षिण में हिन्द महासागर एवं पूर्व में बंगाल की खाडी तथा पश्चिम में अरब सागर से घिरा हुआ है।

भारत में हरितक्रांति के सूत्रपात के पाँच से अधिक दशक बीत जाने के बाद भी भूख से हमारा युद्ध अभी खत्म नहीं हुआ है, जारी है। आज भारत की आबादी 1.35 अरब हो गई है, संयुक्त राष्ट्र के सन् 2017 के जनसंख्या अनुमान के अनुसार वर्ष 2024 तक भारत की कुल आबादी चीन की कुल आबादी से भी अधिक हो जायेगी, वर्ष 2030 तक यह 1.5 अरब तक पहुँच जायेगी, एवं भारत इस भूमंडल का सबसे अधिक आबादी वाला देश होगा।

लोकतंत्र का (शाब्दिक अर्थ है लोगों का शासन) जनता द्वारा जनता के लिए, जनता का शासन। प्राचीन काल में भारत की व्यवस्था सुदृढ़ थी। इनके साक्ष्य हमें प्राचीन अभिलेखों में प्राप्त होता है। योग्यता एवं गुणों के आधार पर इनकी चुनाव प्रक्रिया आज के दौर से थोड़ी भिन्न है। वर्तमान संसद की तरह ही प्राचीन संसद जो वर्तमान संसदीय प्रणाली से मिलता जुलता था। इस तरह हम पाते है कि प्राचीन काल से ही हमारे देश में गौरवशाली लोकतंत्रीय परम्परा थी, इसके अलावा सुव्यवस्थित शासन के संचालन हेतु अनेक मंत्रालयों का भी निर्माण किया गया था। उत्तम गुणों एवं योग्यता के आधार पर इन मंत्रालयों के अधिकारियों का चुनाव किया जाता था। शासन की मूल ईकाई गांवों को ही माना गया था। प्रत्येक गांव में एक ग्राम सभा होती थी जो गांव की प्रशासन व्यवस्था न्याय व्यवस्था से लेकर गांव की हरेक कल्याणकारी काम को अंजाम देती थी।

1.2 उद्देश्यः–

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

- राष्ट्र राज्य भारत को समझने का प्रयास कर सकेंगे।
- राष्ट्र राज्य की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- भारत की अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास कर सकेंगे।
- भारत की लोकतांत्रिक नीतियों को समझने का प्रयास करेंगे।

- विकसित राज्य के आवश्यक तत्वों को समझने का प्रयत्न कर सकेंगे।
- राष्ट्र एवं राज्य के अंतर को जानेंगे।
- धर्मनिरपेक्षता की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- भारत की धर्मनिरपेक्षता नीतियों को समझ सकेंगे।
- भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति को समझ सकेंगे।
- संघीय शासन प्रणाली को समझने का प्रयास करेंगे।
- स्थानीय सरकार की जिम्मेदारी को समझने का प्रयत्न कर सकेंगे।
- शैक्षिक व्यवस्था का शिक्षा पर प्रभाव देख सकेंगे।

1.3 राष्ट्र राज्य की अवधारणाः–

(राष्ट्र+राज्य) कहते हैं कि एक जनसमूह को जिनकी एक पहचान होती है, एवं राज्य जिसकी अपनी एक निश्चित भौगोलिक सीमाएं होती है। राष्ट्र राज्य उस राज्य (State) को कहते हैं जो राज्य की राजनैतिक सत्ता को उसकी सांस्कृतिक सत्ता से मिला है। राष्ट्र राज्य एक ऐसा राज्य है, जिसमें सांस्कृतिक सीमाएं राजनीतिक लोगों के साथ मेल खाली हो एक राष्ट्र एक सामान्य जातीयता के अर्थ में, एक प्रवासी या शरणार्थी शामिल हो सकते हैं, जो राष्ट्र राज्य के बाहर रहते हैं सामान्य अर्थो में राष्ट्र राज्य केवल एक बड़ा राजनीतिक रूप से सम्प्रभु देश या प्रशासनिक क्षेत्र है।

- एक बहुराष्ट्रीय राज्य, जहॉ कोई भी एक जातीय समूह न होकर विभिन्न संस्कृति के लोग निवास करते हैं, अर्थात बहुसांस्कृतिक राज्य ।
- ऐसा साम्राज्य, जो कई देशों और एक ही राज्य या शासक राज्य के तहत राष्ट्रों से बना हो।
- राष्ट्र राज्यों की उत्पत्ति एवं प्रारंभिक इतिहास विवादित है, कौन सा देश या राष्ट्र राज्य पहले आया? स्टीवन बेबर बुडवर्ड जैसे विद्वानों ने इस परिकल्पना को आगे बढ़ाया कि राष्ट्र राज्य राजनीतिक सरलता या अज्ञान स्त्रोत से उत्पन्न नहीं हुआ था।

1.4 भारत एक राष्ट्र राज्य की विशेषताः–(विद्वानों के मतानुसार राज्य) कुछ विद्वान भारत को राष्ट्र राज्य नहीं मानते क्योंकि उनका मानना है कि भारत कई राज्यों का राष्ट्र है, जिसके लिए वे राष्ट्र राज्य शब्द का प्रयोग करते हैं, उनके अनुसार भारत कई राष्ट्रों (जिनको हम राज्य कहते हैं) से मिलकर बना हो। इन क्षेत्रों की अलग–अलग भाषाएं संस्कृति और इतिहास है, यदि उनके इस तथ्य को स्वीकार किया जाये तो विभिन्न क्षेत्रों में समय–समय पर होने वाले आंदोलन जैसे खालिस्तानी आंदोलन, असम आंदोलन, नक्सलवादी आंदोलन, झारखण्ड आंदोलन जिनकों हम उपराष्ट्रवादी आंदोलन कहते हैं, वे आंदोलन राष्ट्रवादी

आंदोलन हो गए। ऐसा इसलिए क्योंकि इनका संचालन उस राष्ट्र के निवासी अपनी राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत होकर कर रहे हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार हमें राष्ट्रवादी होने के बजाय देशभक्त होना चाहिये। देश लोगों से मिलकर बनता है इसलिए देश से प्रेम करने से पहले देश के लोगों में प्रेम करना जरूरी है। राष्ट्र उस जन समूह को कहते हैं, जिनकी एक पहचान होती है जो कि उन्हें उस राष्ट्र से जोड़ती है, तात्पर्य यह है कि साधारणतया समान भाषा, धर्म, इतिहास, नैतिक व्यवहार आचार हो, जहॉ राष्ट्र व राज्य में एकरूपता हो, वहॉ राज्य विद्यमान होता है राज्य जब राष्ट्र के अनुरूप होता है तो उसमें स्थायित्व व दृढ़ता पाई जाती है। भू राजनीतियों के अनुसार राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय अखंडता को बनाए रखना आवश्यक हो एक राष्ट्र विकास की लंबी यात्रा का परिणाम हो जो रीतिरिवाज भाषा, धर्म आदि की एकता से स्थापित हुआ है।

1.5 **राष्ट्रवादः–(Nationalism)** लोगों में किसी समूह की उस आस्था को कहते हैं, जिनमें इतिहास, भाषा, जातीयता एवं संस्कृति के आधार पर एकजुट हों। इन्हीं बंधनों के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अपने राजनीतिक समुदाय अर्थात राष्ट्र की स्थापना करने का आधार हो। हालाकि दुनिया में ऐसा कोई राष्ट्र नहीं है जो इन कसौटियों पर पूरी तरह से फिट बैठता हो, इसके बावजूद अगर विश्व का मानचित्र उठा कर देखें तो धरती की एक–एक इंच जमीन राष्ट्रों की सीमाओं के बीच बँटी हुई मिलेगी।

राष्ट्रवाद की परिभाषा और अर्थ को लेकर व्यापक चर्चाएं होती रही हैं राष्ट्रवाद की सुस्पष्ट और सर्वमान्य परिभाषा करना आसान नहीं है। प्रो. स्नाइडर नो मानते हैं कि राष्ट्रवाद को परिभाषिक करना कठिन है, फिर भी उन्होनें जो परिभाषा दी है वह राष्ट्रवाद को समझने में उपयोगी है– "इतिहास के विशेष चरण पर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व बौद्विक कारणों का एक उत्पाद–राष्ट्रवाद एवं परिभाषित, भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों का समूह जो समान भाषा, समान साहित्य, समान परम्परायें रीति–रिवाजों में परिपूर्ण हो।

राष्ट्रवाद का इतिहास :– राष्ट्रवाद और आधुनिक राज्य के इतिहास के बीच एक संरचनागत संबंध है। 16वीं एवं 17वीं शताब्दी के आसपास यूरोप में आधुनिक राज्य का उदय हुआ, जिसने राष्ट्रवाद के रूप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके विपरीत मध्ययुगीन यूरोप में राजसत्ता किसी एक शासक या सरकार के पास बँटी हुई थी। राष्ट्रवाद के सिद्रांत को समझने के लिए उस घटनाक्रम को समझना आवश्यक है, जिसने आधुनिक राजसत्ता के जन्म के हालात बनें।

उन्नीसवीं सदी के आखिर तक राष्ट्रवाद पूँजीपति वर्ग के लिए और साथ में आम जनता के लिए भी राजनीतिक अधिकारों हेतु गोलबंदी का बहुत बड़ा कारक बन गया।

राष्ट्रवादी विचार जैसे—जैसे यूरोपीय जमीन से आगे बढ़कर एशिया अफ्रीका और लातीनी अमेरिकी में पहुँचा, उसकी यूरोप से भिन्न किस्में विकसित होने लगी। इन क्षेत्रों में उपनिवेशवाद विरोधी मुक्ति संघर्षो को राष्ट्रवादी भावनाओं ने जीत के मुकाम तक पहुँचाया। परिणामस्वरूप उपनिवेशीकरण और राष्ट्रवाद का संचय बना।

एक तरफ आज का समय असहिष्णुता एवं सहिष्णुता चर्चा का पर्याय बना हुआ है वही दूसरी ओर लोग अपने राष्ट्र के प्रति निहित कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्व को पीछे छोड़ चुके हैं। राष्ट्र और राज्य में काफी अंतर है, इसे उस प्रकार से समझ सकते हैं कि यदि शरीर को राज्य एवं शरीर में बसी आत्मा को राष्ट्र समझे, तो राष्ट्र एवं राज्य एक दूसरे के पूरक हैं। अर्थात एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। राज्य की अपनी भौगोलिक सीमाएं हैं भारत के परिपेक्ष्य में बात करें तो यह सीमा उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में कन्याकुमारी एवं पूरब में असम से पश्चिम में गुजरात तक है। इन भौगोलिक सीमाओं की सुरक्षा हमारे सैन्य बल कर रहे हैं। और करते रहेंगे।

भौगोलिक सीमाओं में होता है, तो राष्ट्र का निर्माण विचारों से होता है। जो राष्ट्र के समग्र विकास का पर्याय है। राष्ट्र किसी से प्रदाय विशेष या वर्ग विशेष का ना होकर सम्पूर्ण राष्ट्र की भावना संस्कृति से ओतप्रोत होना है।

अगर कोई राष्ट्र मृत हो जाता है तो राज्य और भौगोलिक सीमाओं का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। अतः समग्र रूप से सभी राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये।

भारत राज्यों का एक संघ है संविधान में उल्लेख है कि यह देश भारत है, यदि भारत के संविधान को किसी भी भाषा में अनुवाद किया जाये जो भारत को भारत ही लिखा जायेगा। परंतु अंग्रेजी भाषा में अंग्रेजी भाषा के वैकल्पिक शब्द इंडिया का उपयोग किया जाना है देश व राष्ट्र में अंतर हो देश एक राजनीतिक सीमा क्षेत्र है जबकि राष्ट्र किसी भी देश के मूल लोगों से राष्ट्र का निर्माण होना है।

1.2 लोकतांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष नीतियाँः— लोकतंत्र का कोई सुनिश्चित सर्वमान्य परिभाषा वही है यह इस शब्द के पीछे दिये हुए संपूर्ण इतिहास तथा अर्थ को अपने में समाहित करना है। अलग—अलग युगों में अलग—अलग विचारकों ने इसकी अलग—अलग प्रकार से बताया है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था वह है जिसमें जनता की संप्रभुता हो। जनता का क्या अर्थ? संप्रभुता से क्या तात्पर्य? यह सब विवादास्पद विषय है, फिर भी अब्राहम लिंकन की परिभाषा—लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन। लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी है, और उनकी अनुमति से ही शासन होता है।

लोकतंत्र केवल शासन के रूप तक ही सीमित नहीं है, वह समाज का एक संगठन भी है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र वह समाज है, जिसमें कोई विशेषाधिकार युक्त वर्ग नहीं होता, और न जाति, धर्म, वर्ग, वंश, धन, लिंग आदि के आधार पर व्यक्ति—व्यक्ति के बीच

भेदभाव किया जाता है। यदि वह शासन व्यवस्था जिसमें देश के समस्त नागरिक प्रत्यक्ष रूप से राज्यकार्य संपादन में भाग लेते हैं। आजकल अधिकतर देशों में प्रतिविधि लोकतंत्र या अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का ही प्रचार हो जिसमें जनभावना की अभिव्यक्ति जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा की जाती है। जनता स्वयं शासन न करते हुए निर्वाचन पद्धति के द्वारा चयनित शासनप्रणाली के अंतर्गत निवास करती है। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ गैर धार्मिक है। धर्म निरपेक्ष होने का मतलब एक व्यक्ति धार्मिक व्यवहारों व धार्मिक के रूप में पहचान नही करता है।

धर्म निरपेक्ष होने का मतलब यह नही है कि किसी में विश्वास की कमी हो धर्मनिरपेक्ष लोग सभी प्रकार की बातों पर विश्वास करते हैं।

'धर्म निरपेक्षता' लैटिन शब्द से कलम से बना है, जिसका अर्थ है—एक पाढ़ी का, एक उम्र से संबंध

भारतीय संविधान द्वारा भारत धर्मनिरपेक्ष देश घोषित किया गया है भारतीय संविधान की पूर्वपीठिका में सेम्यूलर शब्द 42वें संविधान संशोधन द्वारा 1976 में जोड़ा गया, परन्तु ऐतिहासिक रूप से भारत में सर्वधर्म समन्वय और वैचारिक एवं दार्शनिक स्वतंत्रता पुरातत्व काल से चली आ रही है।

1.2.1 धर्मनिरपेक्ष राज्यः—धर्मनिरपेक्षता की एक अवधारणा है जिसके तहत एक राज्य या देश स्वयं को धार्मिक मामलों में अधिकारिक तौर पर, न धर्म और न ही अधर्म का समर्थन करते हो परन्तु भारतीय आशय में धर्म शब्द का अर्थ व्यापक है। धर्म का अर्थ जीवन प्रणाली की माना गया है।

वास्तव में सेक्युलर शब्द के लिए हिन्दी में अभी कोई उपयुक्त शब्द वही मिल पाया। कालांतर में शब्द अपना रूप तथा भाव पकड़ लेते है।

धर्म निरपेक्ष राज्य धार्मिक उदारतावाद का प्रशंसक और धार्मिक कट्टरता का विरोध होता है। ऐसे राज्य का कोई धर्म नहीं होता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य सभी धर्मो को समान समझता है, और इसके द्वारा किसी विशेष धर्म के प्रभाव को बढ़ावें या कम करने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। धार्मिक स्वतंत्रता के साथ धर्मनिरपेक्ष राज्य सभी नागरिकों को समान अधिकार भी प्रदान करता है। ऐसे में सभी नागरिकों को अपनी इच्छानुसार धार्मिक जीवन व्यतीत करने का तो अधिकार होता है किन्तु उन्हें अन्य धर्मो के विरोध का अधिकार नहीं होता है एवं नागरिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे कोई भी ऐसा कार्य न करें, जिससे अन्य धर्मो के अनुयायियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचें। धर्मनिरपेक्ष राज्य गांधीजी के इस विचार को स्वीकार करता है कि "विश्व के सभी धर्म विशाल वृक्ष की पत्तियों की भांति हैं, और विभिन्न धर्मो के अनुयायी दूसरे धर्मो के साथ अपने गुण या प्रमुख भेदों पर जोर दिये बिना एक दूसरे के साथ प्रसन्नपूर्वक रह सकते हैं।"

भारत एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है। 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रस्तावना में सैम्यूलर शब्द को शामिल किया गया था। भारत के संविधान में धर्मनिरपेक्ष शब्द का अर्थ है कि भारत में सभी धर्मो को राज्य से समान सुरक्षा और समर्थन प्राप्त हो। डेमोक्रेडिट शब्द से तात्पर्य संविधान ने सरकार का एक रूप स्थापित किया है, जो चुनाव में व्यक्त लोगों की इच्छा से अपने जन्मकाल से ही भारतीय संस्कृति अपना अधिकार प्राप्त करता है।

1.6.2 धर्म निरपेक्षता एवं भारतीय शिक्षाः—धर्मनिरपेक्षता शिक्षा सिर्फ भोगवाद, भौमिकवाद, अवसरवाद, भ्रष्टाचार, धर्मद्रोह देशद्रोह की ओर ले जा रहे हैं, जिसका परिणाम भ्रष्टाचार और बलात्कार के रूप में दिखाई दे रहा है। यह वही भारत है और हम ऋषि पुत्र जिसके कारण भारत विश्व गौरव का प्रतीक माना जाता था भारत में स्त्रियों के प्रति हिंसा के कारण नैतिकता समाप्त हो रही है।

धर्मनिरपेक्षता की विशेषताएँः—देश में सभी धर्मो के बीच समानता तथा राज्य द्वारा किसी अधर्म के लिए पक्षपात नहीं करना ।

- धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण सभी धर्मो को समान स्तर पर मानता है ।
- धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण धर्म की स्वतंत्रता स्वीकार करता है।
- कानून द्वारा किसी धर्म का पक्षपात नहीं होता है।
- सभी धर्मो के लोगों को अपने धर्म के पालन तथा प्रचार और प्रसार की आजादी होती है।
- राज्यों द्वारा किसी भी धर्म को राजकीय धर्म घोषित नहीं किया जाना।
- धर्म निरपेक्षता का यूरोपीय मॉडल

1. धर्म और राज्यों का एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करने की अटल नीति होती हो।
2. व्यक्ति और उसके अधिकारों को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है।
3. समुदाय आधारित अधिकारों पर कम ध्यान दिया जाता है।
4. विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच समानता, एक मुख्य आधार होता है।

धर्मनिरपेक्षता का यूरोपीय मॉडलः—

1. धर्म और राज्यों का एक दूसरे के मामले में हस्तक्षेप न करने की अटल नीति होती है।
2. व्यक्ति और उसके अधिकारों को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है।
3. समुदाय आधारित अधिकारों पर कम ध्यान दिया जाता है।
4. विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच समानता, एक मुख्य आधार होता है।

धर्मनिरपेक्षता का भारतीय मॉडलः—

- एक धर्म के भिन्न–भिन्न पंथों के बीच समानता पर जोर देना ।
- अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों पर ध्यान देना।
- राज्यों द्वारा समाहित धार्मिक सुधारों की अनुमति ।
- व्यक्ति और धार्मिक समुदायों दोनों के अधिकारों को संरक्षण देना।

धर्मनिरपेक्षता की विशेषताएँः–

- किसी एक समुदाय का अन्य समुदाय पर वर्चस्व नहीं होना चाहिये।
- एक ही धार्मिक समुदाय के अंदर व्यक्ति के किसी एक समूह का दूसरे पर हावी होना उचित नहीं है।
- किसी भी व्यक्ति को धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये।

1.3 संघीय ढँाचाः–शैक्षिक व्यवस्था एवं जिम्मेदारी का शिक्षा पर प्रभाव

संविधान द्वारा सन् 1976 में किये गये जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया उसके दूरगामी परिणाम प्राप्त हुए। वित्तीय आधारभूत एवं प्रशासनिक उपायों को राज्यों एवं केन्द्र सरकार के बीच नई जिम्मेदारियाँ बाँटने की आवश्यकता हुई। जहॉ एक तरफ शिक्षा के क्षेत्र में राज्यों की भूमिका एवं उनके उत्तरदायित्व में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ, वही केन्द्र सरकार ने शिक्षा के राष्ट्रीय एवं एकीकृत को स्वीकारा ।

केन्द्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं उनके क्रियान्वयन पर नजर रखी। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति जिसे 1992 में संशोधित किया गया। संशोधित नीति में ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान जिसके अंतर्गत शिक्षा में समानता, एकरूपता, प्रौढ़शिक्षा कार्यक्रम सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी शिक्षा की गुणवत्ता बनाएं रखना, बालिका शिक्षा पर जोर देना, नवोदय विद्यालय की स्थापना, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा आदि पर जोर दिया गया।

1.3.1संघीय शासन प्रणाली व इसके आधारभूत तत्वः–

संघीय व्यवस्था वह रूप है, जिसमें शक्ति का विभाजन आंशिक रूप से केन्द्र सरकार और राज्य सरकार अथवा क्षेत्रीय सरकारों के मध्य होता है। संघवाद संवैधानिक तौर पर शांति को सांझा करता है क्योंकि इसमें स्वशासन तथा साझा शासन की व्यवस्था होती है

आजादी के बाद से अब तक भारतीय राजनीति में कई ऐसे परिवर्तन हुए जिसने संघीय प्रणाली को कई स्तरों पर प्रभावित किया, इसके कारण देश में संघवाद के अलग–अलग चरण देखने को मिलते है।

- भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूचि के अनुसार जो शक्ति का विभाजन है, उसमें केन्द्र को अधिक वरीयता दी गई है।

- केन्द्र सरकार द्वारा राज्यपाल के माध्यम से संघीय व्यवस्था कैसे चलती है?
- भाषीय राज्य 1947 में नये राज्य बनाने के लिए भारत के कई पुराने राज्यों की सीमाएं बदल गई हैं, भाषा के आधार पर ।
- संस्कृति के आधार पर ।
- संघीय व्यवस्था सत्ता की शक्तियों का बंटवारा ही संघ व्यवस्था कहलाता है, इस व्यवस्था का शासन केन्द्र तथा राज्य दोनों द्वारा चलाया जाता है। भारत में संविधान द्वारा संघीय व्यवस्था स्थापित की गई है, वर्तमान में 28 राज्य व 9 केन्द्रशासित प्रदेश हैं।

भारतीय संघीय व्यवस्था के प्रमुख तत्वः—

1. शासन शक्तियों का विभाजन संविधान की सातवीं अनुसूची के तहत अनुच्छेद 246 में केन्द्र तथा राज्य के मध्य शक्तियों का बंटवारा किया गया है।
2. स्वतंत्र न्यायपालिका संघीय व्यवस्था का प्रमुख तत्व स्वतंत्र न्यायपालिका होती है। इसके द्वारा राज्य व केन्द्र के मामलों को संविधान के तहत हल किया जाता है।
3. संविधान की सर्वोच्चयता यह है कि भारत में संविधान को सर्वश्रेष्ठ माना गया है भारत में सभी राज्यों के लिए एक ही संविधान स्थापित्य है।
4. भारत में पूरे देश के नागरिकों के लिए एक नागरिकता पाई जाती है।
5. भारतीय संघीय व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए संसद के सदन राज्यसभा की स्थापना की गई है।
6. राज्यपाल भारतीय संघीय व्यवस्था के प्रमुख है, जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।
7. भारतीय संविधान में संशोधन करने के लिए केन्द्र को राज्य से अधिक अधिकार प्राप्त हो संविधान संशोधन में सभी केन्द्र को प्राथमिकता दी गई है, यह एकात्मक प्रणाली का मुख्य तत्व है।
8. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं हैं कि पूरे देश के लिए एक ही प्रकार की दीवानी एवं फौजदारी न्यायालय की स्थापना की गई है, और पूरे देश के लिए एक ही चुनाव आयोग है।

भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति एवं विशेषताएंः—

शासन प्रणाली के प्रकार
(केन्द्र राज्य संबंधों के आधार पर)

परिसंघात्मक प्रणाली | संघात्मक प्रणाली | एकात्मक प्रणाली

- संघीय व्यवस्था में अपनी—अपनी बातों का ध्यान रखना एवं शक्ति का विभाजन एवं केन्द्र का अस्तित्व बना रहेगा, केन्द्र यदि मजबूत रहता है ।
- भारतीय संघीय व्यवस्था में संविधान द्वारा क्षेत्र के आधार पर शक्तियों के विभाजन या केन्द्रीयकरण के आधार पर दो प्रकार की शासन व्यवस्थाएं हैं—
  एकात्मक शासन
  संघात्मक शासन

भारत क्षेत्र और जनसंख्या की दृष्टि से विशाल एवं अधिक विविधताएं से परिपूर्ण हैं ऐसी स्थितियों में संघात्मक शासन व्यवस्था भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त की गई है।

भारतीय संविधान के संघात्मक लक्षणः—

- संविधान की सर्वोच्चता
- संविधान के द्वारा केन्द्र सरकार और ईकाईयों की सरकारों में शक्तियों का विभाजन ।
- लिखित और कठोर संविधान ।
- स्वतंत्र उच्चतम न्यायालय ।

एकात्मक शासन ऐसी शासन व्यवस्था है, जिसमें शासन की सम्पूर्ण सत्ता तक केन्द्रीय सरकार में निहित होती है, यदि स्थानीय सरकारों को कोई शक्ति दी गई होती तो वह केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती।

- सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रीय सरकार में ।
- संविधान द्वारा शक्ति विभाजन नहीं ।
- इकहरी नागरिकता का प्रावधान ।
- एक संविधान ।

एकात्मक सरकार के गुणः—

- सत्ता की सार्वभौमिकता ।
- शासन की कुशलता ।

- कम खर्चीली सरकार ।
- एकीकरण की भावना ।
- छोटे राज्यों के लिए उपयुक्त।

एकात्मक सरकार के दोषः—

- केन्द्रीय सरकार के निरंकुशता की संभावना
- अकुशल शासन
- स्थानीय चेतना का अभाव
- बड़े राज्यों के लिए अनुपयुक्त

संघात्मक शासन वह शासन व्यवस्था जिसमें कई छोटे—छोटे राज्य एक समझौते के आधार पर एक संध में सम्मिलित होते हैं, तथा अपने लिए एक सम्मिलित संघ सरकार के अधिपात्य को स्वीकार करते हैं।

स्थानीय सरकार की जिम्मेदारीः—सरकारी व्यवस्था को बेहतर करना जिन विभागों में काम सही ढंग से नहीं चल रहा है उनकी समस्याएं और कमजोरियॉ समझना और उन्हें हल करना नये नियम बनाना जिससे विभाग ठीक प्रकार से काम कर सके, एवं जनता को बेहतर सुविधाएं दे पायें। सरकारी कम्पनियों की समस्याएं हल करने के बजाय उन्हें निजी हाथों में सौपने की तैयारी की ओर बढ़ती जा रही है।

सरकार की मुख्य जिम्मेदारी है, तंत्र को बेहतर बनाना, उसका प्रबंध करने के लिए उसे चुना गया है, निजीकरण के लिए नहीं।

लोकतंत्र में सबसे बड़ी चिन्ता लोगों का अपना शासक चुनने का अधिकार और शासकों पर नियंत्रण बरकरार रहे। एक व्यापक धरातल पर लोकतांत्रिक सरकारों से यह उम्मीद की जाती है कि वे लोगों की जरूरतों और माँगों का ध्यान रखने वाली हो, और भ्रष्टाचार मुक्त शासन दें। लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं अक्सर लोगों को उनकी जरूरतों के लिए परेशान करने के साथ—साथ आबादी के एक बड़े हिस्से की माँगों की उपेक्षा करती है। कई मामलों में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था निश्चित रूप से अन्य शासनों से बेहतर हो यह वैध शासन—व्यवस्था है। यह सुस्त हो सकती है, कम कार्यकुशल हो सकती है। इसमें भ्रष्टाचार हो सकता है। यह लोगों की जरूरतों को कुछ हद तक अनदेखी कर सकती है। लेकिन यह शासन व्यवस्था लोगों की अपनी व्यवस्था हो इसी कारण पूरी दुनिया में लोकतंत्र के विचार के प्रति जबरदस्त समर्थन का भाव है।

शैक्षिक व्यवस्था का शिक्षा पर प्रभावः—

संघीय सरकार उच्च शिक्षा के समर्थन और वित्त पोषण में एक माध्यमिक भूमिका निभाती है। वह भूमिका काफी महत्वपूर्ण है और स्पष्ट रूप से मदद करती है। संघीय सरकार उच्च शिक्षा में निवेश करती है। सबसे पहले, संघीय सरकार उच्च शिक्षा के भीतर दो प्रकार की गतिविधियों का समर्थन करती है ओर निर्देशित करती है। आधुनिक शिक्षा तक पहुँच

सुनिश्चित करना, ओर राष्ट्रीय हित में बुनियादी और अनुप्रयुक्त अनुसंधान को बनाए रखना । देश के संघीय ढाँचें में केन्द्र सरकार द्वारा शिक्षक शिक्षा पर विस्तृत एवं नीतिगत ढाँचा प्रदान किया गया है फिर भी विभिन्न कार्यक्रमों एवं स्कीमों का क्रियान्वयन प्रमुखतः राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। स्कूली शिक्षा की उपलब्धियों के सुधार के विस्तृत उद्देश्य की दोहरी कार्यनीति (1) स्कूल प्रणाली के लिए अध्यापक तैयार करने के साथ–साथ मौजूदा स्कूल अध्यापकों की क्षमता में सुधार करना ।

सेवा पूर्व प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा परिषद (एन. सी. टी.ई.) जो केन्द्र सरकार की सांविधिक निकाय है, देश में शिक्षक शिक्षा के नियोजित और समन्वित विकास की जिम्मेदारी है।

संविधान द्वारा शक्तियों + कार्य क्षेत्र का विभाजन

विशेषताएँः–

1. कई राज्यों का एक संघ में शामिल होना।
2. शक्तियों का विभाजन ।
3. दोहरी नागरिकता ।
4. संविधान की सर्वोच्यता ।
5. लिखित एवं कठोर संविधान ।
6. न्यायालय की सर्वोच्यता ।

संघात्मक शासन के प्रमुख लाभः–

1. स्वतंत्र अस्तित्व तथा राष्ट्रीय एकता में तालमेल ।
2. केन्द्र के निंकुशलता का भय नही ।
3. संविधान की सर्वोच्यता
4. न्यायपालिका की सर्वोच्यता।
5. मौलिक अधिकारों की रक्षा।
6. राजनैतिक चेतना ।
7. कुशल शासन ।
8. बड़े राज्यों के अनुकुल ।

संघीय शासन व्यवस्था के दोषः–

- दुर्बल केन्द्रीय सरकार
- केन्द्र तथा ईकाईयों में मतभेद
- राष्ट्रीयता की भावना में कमी
- दोहरी नागरिकता
- धन तथा समय का व्यय
- विघटन का भय

1.10 ईकाई सारांशः–

लोकतंत्र जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन । प्राचीन समय में भारत की सुदृढ़ व्यवस्था थी। सुव्यवस्थित शासन के संचालन हेतु उनके मंत्रालयों का भी निर्माण किया गया। राष्ट्र राज्य उस राज्य को कहते हैं, जो राज्य की राजनैतिक सत्ता को उसकी सांस्कृतिक सत्ता से मिला दें। राष्ट्र राज्य एक ऐसा राज्य है, जिसमें सांस्कृतिक सीमाएं राजनैतिक लोगों के साथ मेल खाती हैं, एक राष्ट्र एक सामान्य जातीयता के अर्थ में एक प्रणाली या शरणार्थी शामिल हो सकते हैं, जो राष्ट्र राज्य से बाहर रहते हैं।

कुछ विद्वान भारत को राष्ट्र राज्य नहीं मानते, क्योंकि उनकी भावना है कि भारत कई राज्यों का राष्ट्र है, जिसके लिए वे राष्ट्र राज्य का प्रयोग करते हैं, अर्थात भारत कई राष्ट्रों (जिनको हम राज्य कहते हैं) से मिलकर बना है। इन क्षेत्रों की अलग–अलग भाषाएं, संस्कृति एवं इतिहास है। राष्ट्रवाद और आधुनिक राज्य के इतिहास के बीच एक संरचनागत संबंध है। 16वीं एवं 17वीं शताब्दी के आसपास यूरोप में आधुनिक राज्य का उदय हुआ।

धर्मनिरपेक्ष का अर्थ है– गैर धार्मिक भारतीय संविधान द्वारा भारत को धर्म निरपेक्ष देश घोषित किया गया है। एक राज्य या देश स्वयं को धार्मिक मामलों में अधिकारिक तौर पर न तो धर्म और न ही अधर्म का समर्थन करते हैं।

संघीय व्यवस्था वह रूप है जिसमें शक्ति का विभाजन आंशिक रूप से केन्द्र सरकार और राज्य सरकार अथवा क्षेत्रीय सरकारों के मध्य होता है। संघवाद संवैधानिक तौर पर शांति को साझा करता हो क्योंकि इसमें स्वशासन तथा साझा शासन की व्यवस्था होती है।

देश के संघीय ढाँचें में केन्द्र सरकार द्वारा शिक्षक शिक्षा पर विस्तृत जातिगत ढाँचा प्रदान किया गया है। सेवापूर्ण प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा परिषद जो सरकार की सांविधिक निकाय हो देश में शिक्षक शिक्षा की नियोजित और कार्यान्वित ईकाई है।

1.11 अपनी प्रगति की जाँच कीजिए?

1. भारतीय संघीय व्यवस्था की प्रकृति एवं विशेषताएं बनाईये?
2. एक राष्ट्र राज्य की प्रगति को समझाये?
3. धर्मनिरपेक्षता क्या है?
4. धर्मनिरपेक्षता का भारतीय मॉडल बनाईये?

1.12 नियत कार्यः–

1. **"Evaluation of India as a Nation"** चर्चा कीजिए?
2. **State nation** एवं **Nation State** में अंतर को समझाइये?

1.13 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दुः–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप किन्हीं मुख्य बिन्दुओं पर कदाचित आगे चर्चा करना चाहेंगे या बेहतर समझ के लिए कुछ स्पष्टीकरण चाहेंगे, जैसे बिन्दुओं के नीचे नोट कर दीजिए?

1.13.1 चर्चा के लिए बिन्दुः–

....

....

....

1.13.2 स्पष्टीकरण के लिए बिन्दु

....

....

....

1.14 संदर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

- जेम्सपॉल, (1996), नेशन फार्मेशन हु वर्डस अ थ्योरी ऑफ एबस्ट्रेक कम्युनिटी लंदन सेग पब्लिकेशन
- खान अली, (1992), द एक्सटीन्शन ऑफ नेशन स्टेट
- फोलोमर, पोसेफ 2007 ग्रेट संपायर्स, स्माल, नेशन्स, अनसर्टन प्यूफ़्यूचर ऑफ द सोवेरिंग स्टेट
- डरसन, बेनडिक्ट, 1991 इमेजिन कम्यूनीटीज

D.EL.ED.02

खण्ड –4

भारतः अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र

India: Economy and Democracy

इकाई –2 : विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में भारतः मुख्य विशेषताएँ

Unit- 2 India as developing Economy : Salient features

संरचना : Structure

2.1 परिचय Introducation

2.2 उद्देश्य Objections

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था Indian Economy

2.3.1 विकासशील अर्थव्यवस्था Developing Economy

2.3.2 विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ Salient features of Developing Economy

2.4 भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था Indian Agricultural Economy

2.4.1 विशेषताएँ Key teatures

2.4.2 भू–स्वामित्व

2.4.3 भूमि हीनता

2.4.4 कृषि उत्पादन Producation

2.4.5 बाजार Market

2.4.6 साख Finance

2.5 औद्योगिक क्षेत्र :– परिचय एवं विशेषताएँ Industrial Sector

2.5.1 विशेषताएँ

2.6 सेवा क्षेत्रः– परिचय एवं विशेषताएँ Service Sector

2.6.1 विशेषताएँ

2.7 वैश्वीकरण Globalization

2.8 उदारीकरण Liberalization

2.9 निजीकरण Provalization

2.10 इकाई सारांश : याद रखने योग्य बातें
2.11 प्रगति परिक्षण अपनी प्रगति की जॉच करे
2.12 प्रदत्त कार्य / क्रियाकलाप
2.13 परिचर्चा के बिन्दु
2.14 स्पष्टीकरण के बिन्दु
संदर्भ ग्रंथ सूचीः—

2.1 परिचय :— भारतीय अर्थव्यवस्था को विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में माना जाता हैं । जो निरंतर आर्थिक विकास के लिए प्रयासरत् है। लगातार बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को देखते हुए इसका स्वरूप भी बदल रहा है। भारत में 70 प्रतिशत लोग कृषि क्षेत्र में जुड़े हुये है। कृषि पर भार ज्यादा हैं। वही दूसरी और औद्योगिकरण का विकास भी हुआ है। ये दोनों ही एक ही सिक्के के दो पहलु हैं । जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था कहे जाना ज्यादा बेहतर होगा।

वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था निरंतर विकास की अर्थव्यवस्था हैं, जो भारत को विश्व की मुख्य धारा के साथ जोड़तें हैं। भारतीय संस्कृति विश्व की अत्यंत प्राचीन संस्कृति रही है। किसी भी देश की लोकतांत्रिक स्थिरता ही उसकी अर्थव्यवस्था के विकास को मजबूत बनाती है।

2.2 उद्देश्य :—

1. भारतीय अर्थव्यवस्था को समझना।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या करना।
3. कृषि का अर्थ एवं इसकी विशेषता की व्याख्या करना।
4. भारतीय कृषि के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या करना।
5. औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को जानना।
6. सेवा क्षेत्र की भूमिका को पहचानना।
7. भारतीय परिवेश में वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, की अवधारणा को समझना।

2.3 भारतीय अर्थव्यवस्थाः— विकासशील देशों में भारत सबसे तेजी से विकास कर रहा है। भारत अन्य देशों जैसे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन देशों के समान बढ़ रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

2.3.1 विकासशील अर्थव्यवस्थाः—

1. भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था रही है। यहाँ पर सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों के द्वारा एक साथ काय्र किया जाता हैं । ये दोनों देश में रोजगार के अवसरों को बढ़ा रहे है।

2.3.2 विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषताएँः–

1. **संस्थागन ढ़ाँचे में परिवर्तन (Changes in Institutional Structure)** :– किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था के अंतर्गत संस्थागत ढ़ाँचे में परिवर्तन करना हैं। समय के साथ लोगों में भी परिवर्तन होना चाहिए। सरकार द्वारा शिक्षा कानून उपयोगी सेवाओं के विस्तार आदि के द्वारा भी इसे बेहतर बनाया जा सकता है।

2. **कृषि की प्रधानताः**– भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्य का 70% भाग कृषि क्षेत्र में लगा हुआ था जो 2002 वर्ष में घटकर 62% हो गया । यह भाग अधिक होने के कारण भारत को विकासशील देश की श्रेणी में लाना है।

3. **प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि** :– विकास रिर्पोट के अनुसार वर्ष 2008 में भारत की प्रतिव्यक्ति आय केवल 1070 डालर है। वर्तमान समय में यद्यपि भारत निरपेक्ष रूप से विश्व की 12वीं बड़ी अर्थव्यवस्था होते हुये भी प्रति व्यक्ति आय के लियं काफी विछड़ा हुआ है। आज भी भारत की 25% से अधिक आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है।

4. **सार्वजनिक क्षेत्र** :– आर्थिक नियोजन को अवधि में कुल निवेश 44% निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है। और बाकी निजी क्षेत्रों में किया जाता है। आज सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित इस्पात, सीमेंट, रसायन, इंजीनियरिंग,कोयला व अन्य उद्योग स्थापित हैं । इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित वित्तीय संस्थानों ने निवेश के लिये बचतों व साधनों को एकत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

5. **समाज वादी व्यवस्था की और** :– आर्थिक विषमता को कम करने का बराबर प्रयत्न किया जा रहा है इसी को ध्यान में रखकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति, कृषकों को उनकी भूमि के अधिकार दिलाना, भूतपूर्व देशी रियासतों के राजाओं को मिलने वाला प्रिविपर्स समाप्त करना सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक उपक्रम स्थापित करना बैंकों का राष्ट्रीकरण करना, कृषि जोनों की उच्चतम व निम्नतम सीमा निर्धारित करना इस प्रकार सरकार नियोजन के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था की और अग्रसर है।

2.4 भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था :–

प्राचीनकाल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है। उस समय देश में पुरानी कृषि पद्धति प्रचलित थी। वृहद कृषि क्षेत्र एंव सीमित जनसंख्या के कारण ग्रामीण सरलता से अपनी आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन कर लेते थे और वे पूर्णतः खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर थे, किन्तु समय के साथ–साथ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई तथा कृषि के विकास पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में खाद्यान्न की कमी होने लगी और बड़ी मात्रा में आयात करके देश की आवश्यकता को पूण्र करने के लिये देश की पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास को प्राथमिकता दी जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास को प्राथमिकता दी जाने लगी। पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम सघन कृषि विकास को प्राथमिकता दी गई । इन योजनाओं में कृषि विकास के लिये सामुदायिक विकास कार्यक्रम, सघन कृषि योजना, सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि, उन्नत बीजों का अविष्कार एवं उपयोग उर्वरकों व कीटनाशकों का अधिक उत्पादन एवं उनका उपयोग कृषि की उन्नत विधियों का अविष्कार एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन, कृषि क्षेत्र में आवश्यक ऋणों की उपलब्धता हेतु बैंकों का राष्ट्रीकरण, कृषि बीमा आदि कार्यक्रम प्रांरभ किए। कृषि विकास के इन कार्य{मों के फलस्वरूप देश में खाद्यानों का उत्पादन बढ़ा और देश आत्मनिर्भर होने के साथ–साथ निर्यातक देश बन गया।

2.4.1 विशेषताएँः–

भारतीय कृषि की विशेषतायेंः– भारतीय कृषि विश्व के अन्य देशों से भिन्न हैं। यही कारण है भारत में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता विश्व के विकसित देशों से कम हैं भारतीय कृषि की अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जिसके कारण यहाँ कृषि की विकास दर अत्यंत धीमी है तथा प्रति हैक्टेयर उत्पाद कम हैं। अतः कृषि के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करने से पहले इन विशेषताओं को जानना आवश्यक हैं।

1. कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का अधिक भार (**Burden of population on land**)ः– भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि पर निर्भर हैं। कृषि क्षेत्र पर अधिक जनसंख्या की निर्भरता से भूमि पर जनसंख्या का भार अधिक होता है। प्रति व्यक्ति उत्पादकता फसली क्षेत्र कम होता जाता है।

विकसित देशों में विकासशील देशों की तुलना में बहुत कम प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्र पर निर्भर होती है। भारत में कृषि पर निर्भर जनसंख्या के प्रतिशत में बहुत धीमी गति की कमी आ रही हैं,

2. कृषि जोतों का अपखण्डन (**Fragmentation of Holding**)ः–

भूमि के अपखण्डन का अर्थ भूमि– स्वामियों एवं किसानों के खेतों का एक चक्र में न होकर उसके निखने हुये होने से हैं। इस प्रकार अपखंण्डन में खेत एक स्थान पर न होकर उसके बिखरे हुये होने से हैं। इस प्रकार अपखंडन में खेत एक स्थान पर न होकर छोटे–छोटे टुकड़ों में अलग–अलग स्थानों पर होते हैं। भारत में खेतों के अपखंण्डन की जटिल समस्या विद्यमान है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैः–

(i) उत्तराधिकार के नियम (Law of Inheritance) :–

भारत में उत्तराधिकार के नियम के अनुसार सभी बच्चे पिता की सम्पति के समान रूप से भागीदार होते हैं। पहले पिता की सम्पति पर पुत्रों का ही अधिकार होता था अब हिन्दू कोड बिल के कारण पुत्रियों का भी समान अधिकार हो गया हैं। उत्तराधिकार के इस नियम से भूमि किसानों की संतानों में समान रूप से बँट जाती है, इससे खेतों का आकार छोटा हो जाता है।

(ii) संयुक्त परिवार प्रणाली का पतन (Define of joint Family System):–

अब पाश्चात्य, सभ्यता, साक्षरता एवं आधुनिक ढंग से परिवार में रहने की प्रथा आदि कारणों से व्यक्ति केवल स्वयं के बारे में सोचने लगा हैं संयुक्त परिवार प्रणाली का चलन कम हो रहा हैं। इसके परिणाम स्वरूप खेतों का उप विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया है। सभी अब स्वयं की भूमि लेना चाहते हैं।

(iii) जनसंख्या में वृद्धि (Growing Population):–

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। इससे उत्तराधिकारियों की संख्या भी बढ़ी हैं। इतना ही नहीं देश में गैर कृषि उद्योगों का विकास भी कम हुआ है। अतः रोजगार प्राप्ति का प्रमुख साधन कृषि रह गया है। इसके परिणाम स्वरूप खेतों का उप विभाजन एवं अपखंडन बढ़ गया है।

(iv) भूमि के प्रति लगाव (Attachment with Land):–

भारतीय किसानों का भूमि से बहुत अधिक जुड़ाव हैं। वे कृषि को आय का साधन कम मानते है, उसे अपनी सम्मान एवं प्रतिष्ठा मानते है। जिसमें भूमि का उप विभाजन एवं अपखंडन होता है।

(v) ऋणग्रस्तता (Indebtedness):–

भारतीय किसान साहूकारों से ऊँची ब्याज दरो पर जमीन के लिए ऋण देते हैं। किसान महाजन का ऋण चुकाने में असमर्थ होता है। वह अन्त में कर्ज के बदले में अपनी

भूमि का कुछ भाग साहूकार को दे देता हैं जिससे भूमि के उप विभाजन एवं अपखंडन को प्रोत्साहन मिलता है।

(vi) कुटीर उद्योगों का पतन (**Dedine of Rural Industries**):–

स्वतंत्रता के पहले देश के कुटिर उद्योग कम हो गये थे। वर्तमान समय तक भी इनके विकास के लिये कोई लाभदायक प्रयास नहीं किये गये। इससे ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी बढ़ी और लोग रोजगार की तलाश में कृषि पर निर्भर रहने लगे है। इससे भूमि का उप–विभाजन तथा अपखंडन बढ़ा हैं।

(vii) भमि की उर्वरता की भिन्नता (**Difference in the Rerbility of Land**):–

भारत में सभी खेतों की उर्वरता समान नहीं है। एक ही भू–भाग में किसी एक खेत की उर्वरता अधिक और दूसरे की कम होती है। फलतः बँटवारे के समय उत्तराधिकारी को कम और अधिक दोनों प्रकार की उर्वरता वाली भूमियों में से हिस्सा मिलता हैं जिससे भूमि के अधिक टुकड़े हो जाते हैं।

3. **दोषयुक्त भू–धारण पद्धति** :– भारतीय कृषि में भू–धारण की दोषयुक्त पद्धति प्रचलित है जिसके कृषक भूमि से उत्पादकता बढ़ाने में इच्छुक नहीं होते हैं। प्रचलित दोषयुक्त –पद्धतियों में कृषक एवं सरकार के मध्य मध्यरथों का होना जोत, अपखण्डन जोत का क्षेत्रफल कम व असमान होना, भू–राजस्व की अधिक राशि वसूल करना आदि प्रमुख है। इस प्रकार की दोषयुक्त भू–धारण पद्धतियों के होने से कृषि विकास में बाधा पहुँचनी है। सरकार में स्वतंत्रता के पश्चात भू–धारण की दोषयुक्त पद्धतियों की समाप्ति के लिये अनेक भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाए है।

4. **खाद्यान्न उत्पादन को प्राथमिकता (Priority to food grains)**:– भारत में कृषि जीवन–यापन का साधन है और कृषक खेती से अपने उपभोग के लिये प्राथमिकता के आधार पर खाद्यानों का उत्पादन करते है। यही कारण है भारत में खाद्यानों का उत्पादन गैर खाद्यान्न एवं व्यापारिक फसलों की तुलना में अधिक है कृषि का व्यवसायीकरण न होने के कारण कृषक व्यापारिक फसलो को उत्पन्न करके अधिक लाभ अर्जित करने में रूचि नहीं लेने ।

5. **कृषि उत्पादन का प्रकृति पर निर्भर होता** :– भारत वर्ष में अधिकार किसानों द्वारा प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। और मौसम के अनुसार ही फसलों को उत्पन्न किया जाता है। औश्र मौसम के अनुसार ही फसलों को उत्पन्न किया जाता है। अब लगभग 44% फसली क्षेत्र

में सिंचाई सुविधाएँ उपलब्ध है सिंचाई को पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिकता देने के बाद भी अभी 56% कृषि मानसून पर निर्भर है।

6. कृषि जीवन निर्वाह का साधनः– भारत में कृषकों द्वारा कृषि को व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है भारतीय कृषकों जोते बहुत छोटी है और वे इन खेतों पर अपने उपभोग की खाद्यान्न फसलें पैदा करते हैं। अशिक्षा एंव ज्ञान के अभाव से भारतीय कृषक उन्नत कृषि पद्धति का प्रयोग नहीं करते।

2.4.2 भू–स्वामित्वः– स्वतंत्रता के पहले भूमि पर कुछ लोगों का ही आधिपत्य था। जिससे समाज विभिन्न वर्गों में बटाँ गया है। समाज में भूमि का वितरण भी असमान था। स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार के विभिन्न कार्यक्रम आयोजित आरंभ किये गये। जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों की स्थिति को सुधारना था।
सरकार द्वारा उठाये गये कदम :–

1. मध्यथों की समाप्ति।
2. काश्तकारी सुधार।
3. कृषि का पुर्नगठन।
4. भू–जोतों का सीमा निर्धारण।

2.4.4 कृषि उत्पादनः– उत्पादन के किसी एक साधन की एक इकाई मात्रा द्वारा प्राप्त उत्पादन की मात्रा उस साधन की उत्पादकता कहलाती हैं। कृषि के क्षेत्र में उत्पादकता साधरणतया भूमि अथवा श्रम साधन के आधार पर व्यक्त की जाती हैं। भूमि की उत्पादकता से तात्पर्य भूमि के एक इकाई क्षेत्र से प्राप्त होने वाले उत्पादन की मात्रा से हैं। भूमि की उत्पादकता कुल उत्पादन की मा़त्रा तथा भूमि के क्षेत्रफल के मध्य बदलते हुये सम्बन्धों का विवेचन करती हैं उत्पादकता प्रकट करने की यह विधि भौतिक है, क्योंकि इसमें उत्पादों के मूल्य का समावेश नहीं होता हैं। भूमि उत्पानद–साधन के आधार पर उत्पादकता प्रकट करने का कार्य सरल हैं, क्योंकि इसे सुगमता से ज्ञात किया जाता। स्वतंत्रता के बाद से ही सरकार द्वारा कृषि उत्पादों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए निरंतर कृषि क्षेत्र में अनेक कार्यक्रम जैसे–अधिक अन्न उपजाओं कार्यक्रम, पैकेज कार्यक्रम, सघन कृषि ,क्षेत्र कार्यक्रम, उत्पादन साधनों के उत्पादन एवं उपभोग में वृद्धि , कृषि विस्तार कार्यक्रम आदि शुरू किये गये है।

2.4.5 बाजारः— भारत में काफी लंबे समय तक कृषि ही जीवन का आधार थी। किसान अपनी उपज का थोड़ा सा भाग बेचते थे ताकि वे उस मुद्रा से लगान व ऋण चुकाने में समर्थ हो सके। फसल काटने के बाद ही उन्हें बेचा जाता था। क्योंकि उस वक्त भण्डारण सुविधाओं का अभाव था। शक्तिशली एवं संगठित व्यापारियों द्वारा उनका विभिन्न प्रकरण से शोषण किया जाता था, शहरी जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण भी कृषि पदार्थों की माँग में वृद्धि हुई। कृषि जीवन निर्वाह का साधन न होकर एक व्यवसाय बन गया हैं। एक सुव्यवस्थित कृषि विपणन व्यवस्था से किसान को अनेक लाभ होते हैं। उसे उसकी उपज की उचित कीमत प्राप्त हो जाती है। फलस्वरूप वह अधिक उत्पादन करने के लिय प्रोत्साहित होता हैं। कृषि पदार्थों को विपणन से शहरी जनसंख्या को जहाँ अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त होती है वहाँ उद्योगों को कच्चा माल प्राप्त होता है।

कृषि बाजार के अंतर्गत किसान से उपभोक्ताओं को सीधे अथवा मध्यसीों के माध्यम से कृषि पदार्थों का एकत्रीकरण, वर्गीकरण, भण्डारण, परविहन तथा वितरण सभी बातें सम्मिलित की जाती हैं। कुछ अर्थशास्त्री कृषि में काम आने वाले सामान जैसे बीज, उर्वरक, औजार तथा कृषि पदार्थों दोनों को कृषि बाजार में सम्मिलित करते है।

भारत के कृषि बाजार

1. महाजनों तथा गाँव के व्यापारियों की बिक्रीः— किसान कुल उपज का एक बहुत बड़ा भाग गाँव के महाजनों तथा व्यापारियों को ही बेच देते हैं। गाँवों में अधिकांश किसानों, महाजनों के ऋणों से दबे रहते हैं । अतः महाजन उन्हें इस बात के लिये बाहय करता हैं कि वे उन्हें ही अपनी फसल बोये। वह किसान को फसल बेचने के लिये बाध्य ही नहीं करते वरन् बाजार की तुलना में कीमत कम कर देते हैं ं। महाजन थोक व्यापारियों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। किसान को उपज गाँवों में बेचने का लाभ यह होता है कि उसे मंडी तक माल ले जाने की असुविधा से छुटकारा मिल जाता है। परंतु इस लाभ की तुलना में उसे हानि अधिक होती है। क्योंकि न तो उसे उपज का उचित मूल्य प्राप्त होता है और न ही पूरी उपज का मूल्य क्योंकि व्यापारी प्रायः तौल में गड़बड़ी करते है।

2. हाट तथा मंडीः— हाट गाँव में सप्ताह में एक या दो बार लगने वाला बाजार है। जबकि मंडी पाक्षिक या विशेष अवसरों पर लगने वाला बाजार है। जबकि मंड़ी पाक्षिक या विशेष अवसरों पर लगने वाला बाजार हैं। ग्रामीण लोग यहाँ से अपनी आवश्यकताओं का सामान खरीदते है। किसान भी अपनी उपज का एक भाग इन बाजारों में बेचते है। थोक व्यापारियों के प्रतिनिधि और कृषि पदार्थों को खरीदते हैं इस प्रकार के बाजार पूरे देश में फेले हुये हैं।

3. मण्डी या थोक बाजारः– एक थोक बाजार अनेक गाँवों को सेवा प्रदान करता हैं तथा प्रायः शहर में होता हैं । इन मण्डियों में उपज लाने में यातायात संबंधी अनेक कठिनाईयाँ आती है तथा अनेक कुरितियाँ प्रचलित होती है। इसलिए छोटे किसान अपनी थोड़ी सी उपज को यहाँ लाने में सकुचाते हैं तथा प्रायः हाट में ही अपनी उपज को बेच देते हैं थोक बाजार में कृषि पदार्थों की बिक्री मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत कमीशन के रूप में लेते हैं।

4. सहकारी विपणनः– कृषि विपणन में सुधार तथा मध्यसीों द्वारा किसानों का शोषण रोकने के लिये सहकारी विपणन समितियों का विकास किया गया है। ये समितियाँ अपने सदस्यों की छोटी–छोटी उपजों को एकत्रित करके सामूहिक रूप से मण्डियों में बेचती है। जिसके फलस्वरूप इन समितियों के सदस्य किसानों की सौदा शक्ति बढ़ जाती है और उन्हें उपज की सही कीमत मिल जाती है। इसके अतिरिक्त ये समितियाँ सदस्यों की अन्य तरीकों से भी मदद करती है।

कृषि विपणन व्यवस्था में दोष

(**Defects in the Agricultural Marketing System**)

(1) भण्डारण सुविधाओं का अभावः– भारत के गाँवों में उचित भण्डारण सुविधाओं का अभाव है, जिसके कारण किसान अपनी उपज को बोरों में भरकर रखने के लिये मजबूर होता है। इस तरह के भण्डारण विधियों के कारण उपज का एक बड़ा भाग बेकार हो जाता है। एक अनुभव के अनुसार कुल उपज का 15 प्रतिशत भाग या तो सड़ जाता हैं या चूहें तथा कीटाणुओं द्वारा खा लिया जाता हैं। इस प्रकार के खतरों से बचने के लिये किसान अपनी उपज को जल्द से जल्द बेच देना चाहता हैं जिससे इन गाँवों में कृषि पदार्थों की पूर्ति एकदम बढ़ जाती हैं और किसान को उनका उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता हैं।

(2) श्रेणीकरण व प्रमाणीकरण का अभाव

(3) यातायात सुविधाओं की अपर्याप्तता

(4) मध्यसीों की अधिकता

(5) अनियन्त्रित बाजारों में व्यापारिक दुराचार

(6) बाजार संबंधी सूचनाओं का अभाव

(7) साख सुविधाओं का अभाव

(8) प्रतिकूल परिस्थितियाँ

(9) कृषकों द्वारा विक्रय किये जाने वाले उत्पादों की मात्रा का कम होना

(10) विक्रय लागत की अधिकता

(11) कृषकों में संगठन का अभाव

(12) विपणन हेतु वित्त का अभाव

2.5 औद्योगिक क्षेत्र :–

2.5.1 परिचयः– भारत में आधुनिक औद्योगिक विकास का प्रारंभ मूंबई में प्रथम सूती कपड़े की मिल की स्थापना (1854) से हुआ। इस कारखाने की स्थापना में भारतीय पूँजी तथा भारतीय प्रबंधन ही मुख्य था। टाटा लौह–इस्पात कारखाना जमशेदपुर (झारखण्ड राज्य) में सन् 1907 में स्थापित किया गया। इनके बाद कई छोटी–छोटी औद्योगिक इकाइयों जैसे सीमेंट, कांच, साबुन, रसायन, जूट, चीनी तथा कागज इत्यादि की स्थापना की गई स्वतंत्रता पूर्व औद्योगिक उत्पादन न तो पर्याप्त थे और न ही उनमें विभिन्नता थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की अर्थव्यवस्था अविकसित थी, जिसमें कृषि का योगदान भारत के सकल घेरलू उत्पाद का 60ः से अधिक था तथा देश की अधिकांश निर्यात से आय कृषि से ही थी। स्वतंत्रता के 60 वर्षों के बाद भारत ने अब अग्रणी आर्थिक शक्ति बनने के संकेत दिए हैं।

भारत में औद्योगिक विकास को दो चरणों में विभक्त किया जा जाता है। प्रथम चरण (1947–80) के दौरान सरकार ने क्रमिक रूप से अपना नियन्त्रण विभिन्न आर्थिक –क्षेत्रों पर बढ़ाया। द्वितीय चरण (1980–97) में विभिन्न उपायों द्वारा (1980–1992 के बीच) अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लाया गया। इन उपायों द्वारा उदारीकरण तात्कालिक एवं अस्थाई रूप से किया गया था। अतः 1992 के पश्चात उदारीकरण की प्रक्रिया पर जोर दिया गया तथा उपागमों की प्रकृति में मौलिक भिन्नता भी लाई गई।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत में व्यवस्थित रूप से विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक योजनाओं को समाहित करते हुए कार्यान्वित किया गया और परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में भारी और मध्यम प्रकार की औद्योगीकरण इकाइयों की स्थापना की गई देश की औद्योगिक विकास नीति में अधिक ध्यान देश में व्याप्त क्षेत्रीय असमानता एवं असंतुलन को हटाने में केन्द्रित किया गया था और विविधता को भी स्थान दिया गया। औद्योगिक विकास में आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने के लिये भारतीय लोगों की क्षमता को प्रोत्साहित कर विकसित किया गया। इन्हीं सब प्रयासों के कारण भारत आज विनिर्माण के क्षेत्र में विकास कर पाया है। आज हम बहुत सी औद्योगिक वस्तुओं का निर्यात विभिन्न देशों को करते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों को संसाधित कर के अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं में बदलना विनिर्माण कहलाता है। वे विनिर्मित वस्तुएँ कच्चे माल से तैयार की जाती हे। विनिर्माण उद्योग में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल या तो अपने प्राकृतिक स्वरूप में सीधे उपयोग में ले लिये जाते हैं जैसे कपास, ऊन, लौह अयस्क इत्यादि अथवा अर्द्ध–संशोधित स्वरूप में जैसे धागा, कच्चा लोहा आदि जिन्हें उद्योग में प्रयुक्त कर के और अधिक उपयोगी एवं मूल्यवान वस्तुओं के रूप में बदला जाता है। अतः किसी विनिर्माण उद्योग से विनिर्मित

वस्तुएँ दूसरे विनिर्माण उद्योग के लिये कच्चे माल का कार्य करती है। किसी भी देश की आर्थिक–प्रगति या विकास उसके अपने उद्योगों के विकास के बिना संभव नहीं है।

2.5.2 :– विशेषताएँ

विनिमार्ण उद्योग द्वितीयक क्षेत्र के एक बड़े भाग का निर्माण करते है। इन उद्योगों को लघु उद्योगों तथा बड़े पैमाने के उद्योगों में वर्गीकृत किया जाता है।

कोई भी उद्योग जिसमें संयंत्र तथा मशीनरी पर कम से कम 30 लाख रूपये का व्यय होता है, लघु उद्योग कहलाता है। वे उद्योग अधिकतर श्रम प्रधान प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं अर्थात इन उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया में अधिक श्रम शक्ति का उपयोग किया जाता है। दूसरी ओर, बड़े पैमाने के उद्योगों में संयंत्र तथा मशीनरी में बहुत बड़ी राशि के निवेश की आवश्यकता पड़ती है। ये अनेक एकड़ भूमि में फेले होते हैं तथा बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार देते हैं। ये बड़ी मशीनों के रूप में पूंजी प्रधान प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक क्षेत्र, लघु उद्योगों तथा बड़े पैमाने के उद्योगों दोनों के महत्व में वृद्धि होती रही है। जो इस प्रकार हैं।

1. राष्ट्रीय आय में अंशः– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक क्षेत्र का योगदान इस अवधि में धीरे–धीरे बढ़ रहा है। वर्ष 2011.12 में भारत के घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान 28 प्रतिशत था। स्वतंत्रता के समय यह केवल 14 प्रतिशत था। इसमें वृद्धि विनिर्माण इकाईयों में वृद्धि तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के कारण हुई है।

2. रोजगार का सृजन :– औद्यागिक क्षेत्राक ने भारत की जनसंख्या को रोजगार के अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। लघु उद्योगों तथा बड़े पैमाने के उद्योगों दोनों में सयुक्त रूप से लगभग 3 करोड़ 30 लाख लोग संलग्न हैं। इसमें से लघु उद्योग लगभग 3 करोड़ 12 लाख लोगों को नौकरी के अवसर प्रदान करता है।

3. आधारिक संरचना का सृजनः– आज सड़कें, राजमार्गों, रेलवे, हवाई जहाजों आदि के होने के कारण दूरस्थ स्थानों की यात्रा करना आसान हो गया है। बड़ी– बड़ी बांध परियोजनाओं के द्वारा हमें बिजली तथा सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करते हैं। बड़ी– बड़ी इमारतों पर दफ्तर, क्रय–विक्रय केन्द्र, फैक्ट्रियों, संस्थानों आदि को स्थान दिया गया हैं तथा निवास स्थान उपलब्ध कराते हैं। रेड़ियो तथा टेलीफोन के टावरों के द्वारा संचार माध्यमकों सुगम बनाते है। ये सभी आधारिक संरचना के भाग हैं आधारिक संरचना का निर्माण बड़े पैमाने के उद्योगों के योगदान के कारण ही संभव है जो आधारिक संरचना के निर्माण के लिये आवश्यक मशीनरी तथा फर्नीचर का निर्माण करते है।

4. उपभोक्ता वस्तुओं का प्रावधान :–हमारे द्वारा जो कपड़े ,पहने जाते हैं, पैन, टूथ ब्रश, साबुन , जूते, साइकिल, स्कूटर, कार, मोबाइल आदि जो हम प्रयोग करते हैं, सभी का उत्पादन विनिर्माण उद्योगों में होता है। आज हमारी पसंद की अनेक वस्तुओं से बाजार भरा हुआ है। यह औद्योगीकरण के कारण ही सम्भव है।

2.6 सेवा क्षेत्रः–

2.6.1 परिचय :– आज भारत के सेवा क्षेत्र का देश के सकल घरेलू उत्पाद में आधे से अधिक योगदान है। आकड़ों के मुताबिक सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान 5.5.1 प्रतिशत , कृषि का 18.5 प्रतिशत एवं उद्योगों का 26.4 प्रतिशत है, यह भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र के महत्व को दर्शाता है, अब जब सेवा क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में आधे से अधिक योगदान कर रहा है तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की एक प्रमुख उपलब्धी है, वास्तव में यह इसे विकसित अर्थव्यवस्था कि और ले जा रहा है, नव्वे के दशक में सेवा क्षेत्र में उल्लेखनीय बढ़त हुई। 1950 से लेकर 2000 तक के पचास सालों में सेवा क्षेत्र का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 21 प्रतिशत की दर से बढ़ा जबकि नव्वे के दशक में यह दर 40 प्रतिशत हो गयी, तीनों क्षेत्र अर्थात कृषि ,उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में, सेवा क्षेत्र ने भारत की राष्ट्रीय आय में सबसे अधिक योगदान दिया है।

सेवा क्षेत्र की रचना

देश में राष्ट्रीय आय का जो विभाजन सांखिकी संगठन द्वारा किया गया है वो यहां पर दिया जा रहा है। भारत में सेवा क्षेत्र राष्ट्रीय आय की निम्नलिखित को जोड़ता है

1. व्यावसाय, होटल और रेस्टोरेंट– व्यावसाय ,रेस्टोंरेट तथा होटल
2. परिवहन, भंडारण एवं संचार – रेलवे परिवहन के अन्य साधन भंडारण संचार
3. वित्त , बीमा, रियल एस्टेट तथा व्यापारिक सेवाएं बैंकिंग तथा बीमा रियल एस्टेट, मकान का स्वामित्व और व्यापारिक सेवाएं।
4. समुदाय ,सामाजिक व निजी सेवाएं– लोक प्रशासन तथा रक्षा अन्य सेवाएं

2.6.2 विशेषताएँ :–

1. रोजगार प्रदान करने में – आज अधिकाधिक लोगों को सेवा क्षेत्र में रोजगार मिल रहा है।2009.10 में देश में कुल रोजगार स्तर के 29.4 प्रतिशत को इस क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हुआ। आगे आने वाले समय में इस आंकड़ें में और वृद्धि होने वाली है। इसका मुख्य कारण है कि भारत में प्रत्येक वर्ष शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है। वे विभिन्न क्षेत्रों से जैसे 10वीं पास कला, वाणिज्य, विज्ञान, इंजीनियरिंग , औषधि विज्ञान तथा अन्य व्यवसायिक

विषयों में स्नातक आदि होते हैं । सेवा क्षेत्र में इन लोगों की आवश्यकता होती है। मजदूरी और वेतन के सम्बन्ध में, सेवा क्षेत्र , कृषि क्षेत्र की अपेक्षा अधिक भुगतान करता है। कृषि की तुलना में, सेवा क्षेत्र अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करता है। ऐसी भिन्न–भिन्न प्रकार की सेवाएं अस्तित्व में हैं जो पूरे वर्ष प्रदान की जाती है। लेकिन, कृषि में कुछ मौसमी गतिविधियां ही होती हैं । इसलिये जैसे–जैसे लोग अधिक शिक्षित होत जाते हैं वे सेवा क्षेत्र की ओर बढ़ते हैं। इसलिये, सेवा क्षेत्र में रोजगार बढ़ रहा है।

2. विदेशों से कोषों को आकर्षित करने में योगदान :– भारत के सेवा क्षेत्र के विकास को देखकर विदेशों से लोग लाभ कमाने के लिये इस क्षेत्र में अधिक धन निवेश करने में अपनी रूचि प्रदर्शित कर रहे हैं। बैंकिंग, बीमा, व्यापार, परिवहन, होटल सेवाओं ने संयुक्त रूप से एक लाख अठारह हजार करोड़ रू. से अधिक प्रत्यक्ष निवेश के रूप में विदेशों से आकर्षित किए हैं। हाल में, भारत में कम्प्यूटर सेवाओं में कई गुना वृद्धि हुई है। इसने सैंतालीस हजार करोड़ रू. से अधिक विदेशों से आकर्षित किए हैं। यदि निवेश किए जाते हैं तो अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन होता है। यदि निवेश किए जाते हैं तो अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन होता है। यह देश के लिये लाभदायक है।

3. निर्यातों में सेवा क्षेत्र का योगदान– निर्यात से तात्पर्य–डालर, यूरो, येन, पौण्ड आदि के रूप में विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिये विदेशी नागरिकों को वस्तुएं तथा सेवाएं बेचना है। हाल के वर्षों में, भारत के सेवा क्षेत्र ने, निर्यातों के माध्यम से देश के लिये विदेशी मुद्रा अर्जित करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। हमारी व्यवसायिक सेवाएं जिनमें सूचना प्रौद्योगिक, परामर्श सेवाएं, कानूनी सेवाएं आदि को सम्मिलित किया जाता है, विश्व स्तर की हो चुकी हैं।

2.7 वैश्वीकरणः–

वैश्वीकरण अंतराष्ट्रीय व्यापार निवेश सूचना प्रौद्योगिकी और सांस्कृतियों के वैश्विक एकीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। वैश्वीकरण दुनिया भर में लागों, कंपनियों और सरकारों के बीच बातचीत और एकीकरण की प्रक्रिया है।

वैश्वीकरण के अन्तर्गत व्यापार का विस्तार विश्व के अधिकांश देशों के मध्य होता हैं। जिसमें उन देशों के मध्य अपेक्षाकृत अधिक उदार आर्थिक संबंध बनाये जाते है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में प्रतिक्रिया में प्रतियोगी संस्कृति के विकास के साथ–साथ उत्पादकता का उच्च दक्षता को बढ़ावा देना, तकनीकी हस्तावरण, शोध एवं विकास के कार्य{मों में आपसी सहयोग का लाभ उठाना तथा उद्योगों को बढ़ावा देना सम्मिलित हैं, जिससे बंद अर्थव्यवस्था की बुराइयों से देश को बचाया जा सके।

इसके लिये एक देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था तथा विश्व बाजार से सौहार्दपूर्ण सामंजस्य स्थापित करना होगा जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ,खुले बाजार के साथ एक सीमा–विहीन विश्व अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो सके।

वैश्वीकरण की वर्तमान विचारधारा प्राचीन भारतीय दर्शन 'वसुर्धेव कुटुम्बकम्' पर ही आधारित है, लेकिन विकसित देशों के समर्थन, वैश्वीकरण की परिभाषा को पहले तीन तत्वों तक ही सीमित कर देते हैं अर्थात् निर्वाध व्यापार प्रवाह निर्बाध पूँजी प्रवाह और निर्बाध तकनीकी–प्रवाह, परन्तु विकासशील देशों के बहुत से अर्थशास्त्री यह सोचते हैं कि परिभाषा केवल प्रथम तीन तत्वों पर आधारित होने के कारण अपूर्ण है। यदि वैश्वीकरण के समर्थकों का अंतिम लक्ष्य समस्त संसार को एक सार्वभौमिक ग्राम के रूप में परिकल्पित करना है। तो इसके चौथे तत्व अर्थात् श्रम के निर्बाध प्रवाह की अपेक्षा नहीं की जा सकती । इस सम्पूर्ण प्रकरण पर विश्व व्यापार संगठन या अन्य मंचों पर अनेक बार बहस हो चुकी हैं, लेकिन श्रम प्रवाहों की पूर्णतया उपेक्षा ही की गयी, भले ही यह वैश्वीकरण का अनिवार्य अंग है।

विभिन्न राष्ट्र राज्यों को विश्व व्यापार संगठन के ढाँचे के अधीन एकीकृत कर देना चाहिए। इसके समर्थक हैं भूमण्डलीकरण की नीतियों के परिणाम स्वरूप विकासशील देश अपनी स्पर्धा–शक्ति को मजबूत बना पाएंगे और उनमें चरित विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जायेगी। परिणामतः विकासशील देशों को कई प्रकार के प्रलोभनों एवं कठोर दबावो द्वारा भूण्डलीकरण की नीति को अपनाने के लिये बाध्य किया जाता है।

साधारण शब्दों में वैश्वीकरण का अर्थ है। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ 'एकीकृत' करना। भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है विदेशी कंपनियों को भारत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश करने की अनुमति देकार अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिये खोलना, विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम जैसे कानूनों को धीरे–धीरे समाप्त करके बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में आने की व निवेश करने की सुविधाएँ प्रदान करना। भारतीय कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना तथा दूसरे देशों में परियोजनाएँ चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना, मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर धीरे– धीरे प्रशुल्कों को प्रतिस्थापित करना और फिर धीरे–धीरे उनको भी कम कर देना जिससे आयात उदारीकरण कार्य{मों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सके, तथा कई तरह के नियति प्रोत्साहनों (जैसे नकद, मुआवजा, शुल्क वापसी की व्यवस्था, आयात पुनः पूर्ति योजना, राजकोषिय रियायता इत्यादि) के स्थान पर विनिमय दर में परिवर्तनों द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहित करना। वैश्वीकरण की दिशा परिवर्तन द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहित करना।

2.8 उदारीकरणः– 1991 के आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में किये गये व्यापार नीति के परिवर्तन में कृषि व्यापार नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। कृषि व्यापार नीति में परिवर्तन के फलस्वरूप 1994 तक कृषि व्यापार नीति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ।

नारियल, दाले, चावल, सब्जियाँ, खली एवं गिरी आदि लाइसेंसिंग व्यवस्था में ही बने रहे । वस्तुतः निरंतर उदार होती अर्थव्यवस्था एवं विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद कृषि व्यापार नीति को भी उदार किया जाना जरूरी हो गया। भारत में 14 अप्रैल 1994 के अनुसार विश्व व्यापारसंगठन के समझौते पर हस्ताक्षर के अनुसार विश्व व्यापार संगठन पहली जनवरी 1994 से ही कार्यन्वित हुआ। विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर हुये समझौते के अनुसार कृषि व्यापार में मात्रात्मक प्रतिबंधों को भी विश्व व्यापार संगठन के कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया है। इस समझौते हेतु खेती व्यापार के मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करना, मात्रात्मक प्रतिबंधों को प्रशुल्कों से विकास का उदारीकरण निजीकरण और वैश्वीकरण जो बड़े जोर शोर से 1991 में चालू किया गया,

2.9 निजीकरणः– 1985 में नई सरकार ने आर्थिक उदारीकरण को प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत निजीक्षेत्र को अधिक महत्वपूर्ण उत्तरायित्व सौपे जाने का विचार रखा गया। नई सरकार की घोषणा के अनुसार 'सार्वजनिक क्षेत्र बहुत अधिक क्षेत्रों में फेल गया है, जहाँ इसे नहीं होना चाहिए।'

आर्थिक विकास के अंतर्गत आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में 1991 में निजीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये गये जब सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों में 20 प्रतिशत अविनियोग करने का निर्णय लिया। निजीकरण की और अभिप्रेरित करने वाला एक प्रमुख घटक जापान तथा एशिया ने नव औद्योगीकृत देश–सिंगापुर ताईवान, हांगकांग, कोरिया आदि का सफल आर्थिक निष्पादन है। इन देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिये निजीकरण का मार्ग चुना है। दूसरा महत्वपूर्ण घटक सार्वजनिक उपक्रमों की अकुशलता हैं सार्वजनिक क्षेत्र के जो उपक्रम लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं उनमें से अधिकांश एकाधिकारी कंपनियाँ हैं । इसके अतिरिक्त विश्व के घटनाक्रमों के तरह भी सरकार ने निजीकरण को बल देना प्रारंभ किया वर्तमान में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिये आरक्षित उद्योगों की संख्या केवल 6 कर दी हैं तथा अब केवल सामाजिक के महत्व के उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र में रह गये हैं।

निजीकरण के उद्देश्य

विकसित तथा विकासशील दोनों ही प्रकार के देशों में निजीकरण को महत्व दिया जा रहा हैं। निजीकरण के विचारधारा के पक्ष में निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है।

1. अर्थव्यवस्था की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के आवश्यक वित्तीय संसाधनों को जुटाना।
2. प्रबंधकीय योग्यता और दक्षता प्रदान करना।
3. राष्ट्रीय आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुरूप निजी क्षेत्र की उत्पादन–क्रियाओं को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ समन्वित करना।

4. नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना करना तथा योजनाओं में आरंभ की गई आयात प्रतिस्थापन क्रिया को बल प्रदान करना।
5. उपयुक्त तकनीक के प्रसार, अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण तथा उद्योगों के विवेकीकरण के वास्तें औद्य शोध व विकास कार्यक्रम तेज करना और उनका विस्तार करना।
6. बाहय ऋणों को घटाना।
7. प्रतियोगिता में वृद्धि करना
8. उत्पादकता में वृद्धि करना तथा परिचालन क्षमता को बढ़ाना।

भारत में निजीकरण को प्रोत्साहित करने वाले कारकः–

1. नये आर्थिक सुधार कार्यक्रम :– 1991 में भारत सरकार ने नये आर्थिक सुधारों के तरत अनेक घोषणनाएँ की इनमें 100 करोड़ रूपये से अधिक सम्पति वाली संस्थाएँ बिल के केन्द्रीय सरकार की अनुमति के भी स्थापित हो सकेगी। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में कमी बड़े औद्योगिक घरानों को विस्तार से छूट लाइसेंस समाप्ति एवं सरलीकरण, विदेशी विनियोजनकों का उपक्रम में 51 प्रतिशत तक समता पूँजी को रखने की छूट, फेरा एवं एम. आर.टी.पी. अधिनियमों में ढील, रूपये की पूर्ण परिवर्तनीयता सीमा व उत्पाद शुल्कों में कमी आदि प्रमुख रूप से शामिल है। इन सबके फलस्वरूप एक ऐसा वातावरण तैयार हुआ जिसमें निजी उद्यमी अधिक स्वतंत्रता के साथ कार्य कर सकते है।

सरकार पर बढ़ता ऋणभार :– स्वतंत्रता के पश्चात भारत की सार्वजनिक क्षेत्र को प्राथमिकता के आधार पर विकसित करने का निर्णय सातवीं योजना तक चलता रहा फलस्वरूप सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं व विदेशी सरकारों से ऋण प्राप्त करती रहीं इस समय अधिकांश सार्वजनिक उपक्रम घाटे में चलते रहे तथा सरकार उन्हें सहायता प्रदान करती रही अतः सरकारी विदेशी ऋण जाल में फसती चली गयी। अब सरकार इस ऋण जाल से निकलने के लिए निजीकरण का सहारा ले रही हैं जिससे इन स्थापित उद्योगों का कुशलपूर्वक संचालन संभव हो सकेगा तथा सरकार को और अधिक ऋण नहीं लेना पड़ेगा।

3.विदेशी कंपनियों की उपस्थितिः– जहाँ एक ओर विकसित पूँजीवादी देशों में आर्थिक मंदी के फलस्वरूप अति उत्पादन तथा बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर भारत के विदेशी उत्पादनों के उपयोग पर बढ़ते हुये प्रभाव को देखते हुये भारत के विस्तृत बाजार तथा कम प्रतियोगिता को देखते हुये भारत की ओर आकर्षित हुये। फलस्वरूप भारत में निजीकरण को प्रोत्साहन मिला।

4. भारतीय उद्योगों को प्रतियोगीः– भारतीय उद्योगों को सरकार के पिछले 45 वर्षो से संरक्षण में रखा जिससे इन उद्यमों में नो लागत कम करने का प्रयास किया और न ही अपनी वस्तु की किस्म में सुधार किया अतः स्पष्ट है कि यदि हमें अपने उत्पादनों को निर्यातोन्मुखी बनाना हैं तो भारतीय उद्योगों की गुणवत्ता कीमत की दृष्टि से प्रतियोगी बनाना होगा और यह निजीकरण द्वारा ही संभव हो सकता हे।

5. उत्पादन बढ़ाने का विस्तृत आधारः– भारत में जहाँ एक ओर विस्तृत बाजार उपलब्ध हैं वहीं दूसरी ओर उसकी औद्योगिक अद्यः संरचना पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी हैं । भारत में सस्ता श्रम तकनीकी एवं प्रबंधकीय कुशलता तथा आवश्यक कच्चा माल प्रचुरता से उपलब्ध हैं। अतः निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने पर उत्पादक कम कीमत पर अच्छे किस्म की वस्तु का उत्पादन करने में समक्ष होगे जिससे न केवल घरेतु बाजार की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता हैं बल्कि विदेशी बाजारों में भी अपनी वस्तु को बेचने में सक्षम हो सकते हैं।

इकाई सारांश : याद योग्य बातेंः–

अपनी प्रगति की जाँच कीजिएः–

इकाई सारांश :– (**Unit Summary**)

1. भारतीय अर्थव्यवस्था को समझने में मदद मिलती है।
2. भारतीय कृषि के आधारभूत पहलुओं को जानने में आसानी होगी।
3. अर्थव्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं को विस्तार से समझना।
4. देश के ग्रामीण किसानों की स्थिति को व्यक्त किया गया है।
5. भारतीय कृषि की विभिन्न विशेषताओं को जानना।
6. अर्थव्यवस्था में बाजार की स्थिति को विस्तार से समझते हैं।
7. कृषि साख के द्वारा छोटे–बड़े किसान इससे लाभान्वित होते हैं।
8. औद्योगिक क्षेत्र को समझना।
9. सेवा क्षेत्र को समझना।
10. भारतीय अर्थव्यवस्था के अंतर्गत वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण को जानना।

अपनी प्रगति की जाँच करेंः–

1. भारतीय अर्थव्यवस्था को संक्षिप्त में समझाइये?

2. कृषि अर्थव्यवस्था की अवधारणा को समझाइये?
3. भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की विभिन्न विशेषताओं को विस्तार से समझाइये?
4. औद्योगिक क्षेत्र को परिभाषित कीजिए, एवं इनकी मुख्य विशेषताओं को बताइये?
5. सेवाक्षेत्र को परिभाषित कीजिए एवं इनकी मुख्य विशेषताएँ को समझाइये?
6. उदारीकरण को समझाइये?
7. वैश्वीकरण को समझाइये?
8. निजीकरण को समझाइये?

नियत कार्यः– (1) कृषि मंडियों में विक्रेता से मिलकर कृषि साख व कृषि बाजार एवं वस्तुओं के विक्रम से संबंधित तथ्यों की सूची बनाइये? एवं इसे विस्तार से समझाइये?
2. अपने क्षेत्र में उत्पन्न लघु एवं कुटीर उद्योगों की वस्तुओं की सूची बनाइये एवं इसे विस्तार से समझाइये?

चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दुः–

इकाई के समुचित अध्ययन के पश्चात् आप कुद बिन्दुओं पर विवेचना तथा अन्य पर स्पष्टीकरण चाहेंगे बिन्दुओं को निम्न स्थान पर लिखिए।

चर्चा के लिये बिन्दुः–

____

____

____

स्पष्टीकरण के विशेष बिन्दुः–

____

____

____

संदर्भ ग्रंथः–

D.El.Ed. 02

खण्ड – 4

इकाई – 3 भारतीय अर्थव्यवस्था का विकासः विरोधाभास और अंर्तविरोध

इकाई संरचना (Structure of Unit)

3.1 परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

  3.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

3.4 अर्थ और विकास की राजनीति और प्रभाव

  3.4.1 विकास का अर्थ

  3.4.2 विकास की विशेषताएँ

  3.4.3 विकास और उसके प्रभाव

3.5 विकास और विस्थापन और पलायन

3.6 बढ़ती आय और व्यापक के समानताएँ

3.7 विकास और पर्यावरणीय गिरावट

3.1 परिचय–

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है। जो निरंतर गति से चलायमान है। आज के समय में विश्व के राष्ट्रों के बीच बढ़ते हुये आर्थिक अंतर ने विकास के प्रयत्नों की आवश्यकता को और अधिक आवश्यक बना दिया है। किसी भी अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास का तात्पर्य नये दृष्टिकोण में भौतिक कल्याण में वृद्धि गरीबी का निवारण असमानता और बेरोजगारी को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आर्थिक विकास में प्रति व्यक्ति उत्पादन द्वारा सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन से है।

3.2 उद्देश्य–

- भारतीय अर्थव्यवस्था को समझना।
- भारत में आर्थिक विकास की अवधारणा को जानना।
- विकास की निरंतर प्रक्रिया को जानना।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास के प्रभावों को समझना।
- विकास के अंतर्गत विस्थापन एवं प्रवास को जानना।
- बढ़ती आय के कारणों को समझना।
- विकास में पर्यावरण की भूमिका को जानना।

3.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास–

आर्थिक विकास मानवीय प्रयत्नों का परिणाम है, जिसमें एक राष्ट्र के निवासियों द्वारा वहाँ पर व्याप्त प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके प्रति व्यक्ति आय एवं उत्पादकता में वृद्धि का प्रयास करते है। आर्थिक विकास से आशय समाज के सम्पूर्ण विकास से नहीं है, यह तो सम्पूर्ण विकास के प्रयत्नों का केवल एक अंग है। विकास तो कई प्रकार के होते है जैसे – राजनैतिक विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास आदि। आर्थिक विकास भी इन्हीं में से एक है। जो संपूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करता है। जब कोई देश उपलब्ध प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग इस प्रकार से करने का प्रयास करता है कि उत्पादन, राष्ट्रीय आय एवं रोजगार का स्तर ऊँचा उठे जिससे सभी लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था उसके विकसित, अविकसित या विकासशील कहे जाने का निर्धारण करती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था हैं, जो निरंतर गति से बढ़ रही हैं।

अर्थव्यवस्था वह संरचना है, जिसके अंतर्गत सभी आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है। उत्पादन उपभोग व निवेश अर्थव्यवस्था की आधारभूत गतिविधियाँ है। अर्थव्यवस्था की ईकाईयाँ मानव द्वारा गठित होती है। अतः इनका विकास भी मानव अपने अनुसार ही करता है।

आय का सृजन उत्पादन प्रक्रिया में होता है। उत्पादन प्रक्रिया द्वारा उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं पर आय व्यय किया जाता है। आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु व्यय करना आवश्यक है जिसे अर्थशास्त्र में उपभोग क्रिया कहते है। जब उपभोग क्रिया अधिक होती है तो उत्पादन भी अधिक करना आवश्यक है उत्पादन करने के लिये अधिक धन्य व्यय करने की आवश्यकता होती है। इस व्यय को विनियोग कहते हैं। जिन क्षेत्रों में उत्पादन उपभोग व निवेश की क्रिया की जाती है, उसे अर्थव्यवस्था कहते हैं।

अर्थव्यवस्था के प्रकार –

- **पूँजीवादी अर्थव्यवस्था :–** ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें निजी क्षेत्रों व बाजार की भूमिका प्रभावकारी होती है, आर्थिक गतिविधियों के समस्त निर्णय जैसे कितना उत्पादन किया जाए किसका किया जाए कैसे किया जाए। निजी क्षेत्र द्वारा लिए जाते है दूसरे शब्दों में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बाजार की शक्तियों अर्थात मांग एवं पूर्ति द्वारा संचालित होती है जिसका एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना है उदाहरण के लिए अमेरिका, कनाडा, मेक्सिकों की अर्थव्यवस्थाएँ पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है।
- **समाजवादी अर्थव्यवस्थाः–** ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें आर्थिक क्रियाओं का निर्धारण एवं नियंत्रण केन्द्रीय इकाई या राज्य के द्वारा होता है इसीलिए इसे नियंत्रित अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है यहाँ बाजार के कारकों की भूमिका सीमित होती है, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था जहाँ उपभोग एवं उत्पादन का निर्धारण करता है वहीं समाजवादी अर्थव्यवस्था उत्पादन एवं उपभोग का निर्धारण करती है, वहीं दूसरी और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था लाभ से प्रेरित होती है, जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था कल्याणकारी राज्य की संकल्पना पर आधारित होती है उदाहरण के लिए चीन, वियतनाम, उत्तर कोरिया की अर्थव्यवस्थाएँ।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्थाः–** एक ऐसी प्रणाली जिसमें बाजार यंत्र के संचालन के साथ राज्य की भूमिका भी साथ–साथ चलें मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के आवश्यक निर्णय राज्य के द्वारा लिए जाते हैं जबकि

संबंधित निर्णय बाजार द्वारा लिए जाते हैं, मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था दोनों की विशेषताएँ पाई जाती हैं उदाहरण के लिए भारत नार्वे और स्वीडन की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदाहरण है।

विकास की अवधारणा के आधार पर अर्थव्यवस्थाएँ–

Concept of Development on the Basic of Beo…..

3.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँः– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से देश में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये है। नये–नये उद्योग स्थापित हुए है। जो विकास के क्षेत्र में चलायमान हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र में वृद्धि औद्योगिक विकास, बैकिंग सुविधाओं का विकास प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूँजी–निर्माण में वृद्धि व नवीन उद्योगों की स्थापना, आदि नवीन विशेषताएँ है।

1. **नियोजित अर्थव्यवस्था–** भारत में विकास के लिये नियोजन की नीति अपनायी गयी हैं। यह नियोजन 1 अप्रैल 1951 से चालू किया गया है। अब तक बहुत सी विकास योजनाओं को क्रियान्वित किया गया हैं। जिससे देश का विकास हुआ है।
2. **सार्वजनिक क्षेत्र का विकासः–** यहाँ पर सार्वजनिक क्षेत्रों का विकास भी लगातार हो रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत लोहा एवं इस्पात उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, रसायन उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग, कोयला उद्योग व अनेक उपभोक्ता उद्योग शामिल हैं।
3. **बैंकिंग सुविधाओं का विकासः–** यहाँ पर बैंकिंग सुविधाओं का बराबर विकास हो रहा है। जून 1969 में भारत में व्यापारिक बैंकों की 8262 शाखाएँ थी, लेकिन जून 2007 के अंत में इन शाखाओं की संख्या 72ए165 हो गई है।
4. **प्रति व्यक्ति आय में वृद्धिः–** भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यक्ति के आय लगातार बढ़ रही है। वर्तमान की कीमतों के आधार पर यह 1999–2000 में 15,881 रुपये में बढ़कर 2006–2007 में 29ए642 रुपये हो गयी है। और 2016–17 में यह 1,03,870 रुपये थी। 2017–18 में वर्तमान मूल्य पर प्रति व्यक्ति आय बढ़कर 1,12,835 रुपये पर पहुँचने का अनुमान है।
5. **बचत एवं पूँजी निर्माण दरों में वृद्धिः–** बचतों व पूँजी निर्माण की दरों में भी वृद्धि हो रही है। 1950–51 में बचते सफल घरेलू आय का 8.6 प्रतिशत

थी, जबकि 06-07 में 34.8 हो गयी। और यह वर्तमान समय में लगातार बढ़ रही है।

6. **सामाजिक सेवाओं का विस्तारः-** भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी सामाजिक सेवाओं का विकास हुआ है। शोध एवं तकनीकी शिक्षा में प्रगति हुई। साक्षरता का स्तर है। व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रौद्योगिकीय शिक्षा के विद्यालयों में महाविद्यालयों की संख्या बढ़ी हैं।
7. **सामाजिक परिवर्तनः-** देश में हो रहे विकास के फलस्वरूप यहाँ सामाजिक परिवर्तन की गति तेज हुई हैं। रूढ़िवादिता, जाति-प्रथा, बाल-विवाह तथा छुआ-छूत जैसी बुराइया कम हुई हैं। सामाजिक राजनैतिकता तथा आर्थिक क्रियाकलापों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी हैं। महिलाओं में शिक्षा एवं ज्ञान का स्तर बढ़ा हैं।
8. **बाजार तंत्र-** भारतीय अर्थव्यवस्था में एक मजबुत व्यापार तंत्र का विकास हुआ है। यहाँ वस्तुओं के साथ-साथ श्रम एवं पूँजी के संगठित बाजार हैं। वस्तु बाजार अधिकांश वस्तुओं की कीमतें माँग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। साथ ही अनिवार्य वस्तुओं के अभाव में उनका वितरण उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से किया जाता हैं। कृषकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये सरकार द्वारा अनेक उत्पादों का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित किया जाता लें
9. **गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने के उपायः-** देश में गरीबी एवं बेरोजगारी दूर करने के लिये विशिष्ट कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। जैस ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि। इससे देश में गरीबी अनुपात ....
10. **नवीन प्रौद्योगिकीः-** भारत में नित हो रहे नवीन खोजो से नवीन प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। इसमें उत्पादन तकनीक में सुधार और नये उद्योगों की स्थापना हो रही है। 'विकास उद्योगों' की स्थापना से व्यावसायिक जीवन में गति शीलता बढ़ गई है तथा प्रबंधकों के समक्ष प्रबंधकों के समक्ष प्रबंधन के नये-नये आयाम विकसित हो रहे है।

आर्थिक विकास एक विस्तृत धारणा है। यह आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं प्रेरणाओं और संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों से संबंधित है। यह प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों जैसे वृद्धि के अंत निहित निर्धारकों का वर्णन करता है। विकास में वृद्धि और हास दोनों सम्मिलित होते हैं। एक अर्थव्यवस्था वृद्धि कर सकती है परंतु यह विकास नहीं कर सकती है। क्योंकि प्रौद्योगिकी और संरचनात्मक परिवर्तनों के अभाव के कारण गरीबी, बेरोजगारी और असमानताएँ

निरंतर विद्यमान रहती है। परंतु प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि में अभााव के कारण, विशेषकर जब जन संख्या तीव्रता से बढ़ रही हैं, तो आर्थिक वृद्धि के बिना विकास के बारे में कल्पना करना भी सही नहीं हैं।

आर्थिक विकास की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैः–

1. सतत् प्रक्रिया (Continuous Process) :– किसी क्षेत्र या देश में आर्थिक विकास तभी संभव होता है, जबकि विकास की प्रक्रिया सतत् रूप से चले। दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसमें कुछ विशेष प्रकार की शक्तियों के निरंतर कार्यशील रहने के परिणाम स्वरूप आर्थिक चर मूल्यों में सदैव परिवर्तन होते रहते है।
2. राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि (Increase in National and Per. Capital Income:– आर्थिक विकास का प्रव्यक्ष मूलभूत प्रभाव वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में दृष्टिगत होता है। वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि दर से अधिक होना चाहिए। यही कारण है कि वर्तमान में राष्ट्रीय आय की तुलना में प्रति व्यक्ति आय को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. दीर्घकालीन प्रवृत्ति (Long – Term Tending) :– आर्थिक विकास उसी स्थिति में कहा जाता है जबकि किसी देश में विकास की प्रक्रिया अल्पकालीन न होकर दीर्घकाली हो। इस प्रकार एक या दो वर्षो में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तन को आर्थिक विकास की संज्ञा नहीं दी जाती, वरन् 15 से 20 वर्ष की लम्बी अवधि में होने वाले आर्थिक परिवर्तन को ही आर्थिक विकास कहा जाता है। इसका कारण यह हैं कि अल्पकाल में आर्थिक वृद्धि अच्छी वर्षा या व्यापार चक्र आदि के कारण हो सकती हैं।
4. व्यापक अर्थशास्त्र (Macro Economics) :– वर्तमान में आर्थिक विकास के अध्ययन के लिये व्यापक आर्थिक विश्लेषण को अपनाया जाता हैं। यही कारण है कि यह व्यापक अर्थशास्त्र का एक अंग बन गया हैं। आर्थिक विकास में राष्ट्रीय आय, कुल उत्पादन, मूल्य स्तर जनसंख्या आर्थिक कल्याण आदि का व्यापक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है।
5. सैद्धांतिक (Theoretical Analysis) :– आर्थिक विकास के घटकों एवं विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार आर्थिक विकास के सिद्धांतों का प्रतिपादन एवं विश्लेषण भी किया जाता है। आर्थिक विकास में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि या कमी क्यो होती है और विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों का किस प्रकार से समाधान किया जाये।

6. क्षेत्रीय संतुलन (Regional Balance) :- आर्थिक विकास के अंतर्गत संपूर्ण देश के साथ-साथ क्षेत्रों का अध्ययन भी किया जाता हैं। इसी आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों के लिये अलग-अलग नीतियों एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाता है और उनका हल भी अलग-अलग तरीकों से किया जाता है।
7. व्यावहारिक अर्थशास्त्र (Applied Economics) :- आर्थिक विकास मूलतः देश में विद्यमान आर्थिक प्रणाली, नीतियाँ, संस्थागत स्वरूप, राजनीतिक आधार एवं श्रमयक्ति की मानसिकता पर निर्भर करता है। यही कारण हैं कि वर्तमान में आर्थिक विकास का अध्ययन व्यवहारिक अर्थशास्त्र के रूप में हुआ है।
8. अंतर्राष्ट्रीय स्तर (International Level) :- आर्थिक विकास के स्तर का माप निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होता है और इसी कारण राष्ट्रों की सम्पन्नता का अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। सामान्यतः विकसित राष्ट्र अविकसित व अर्धविकसित राष्ट्रों को आर्थिक विकास में गति लाने के लिये सहायता प्रदान करते है। अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ, जैसे विश्व बैंक, मुद्रा कोष आदि अर्धविकसित देशों को तकनीकी एवं वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराती हैं।
9. सांख्यिकीय एवं गणितीय उपकरणों का प्रयोग (Use of Statistical and Mathematical Tools) :- आर्थिक विकास को सही दिशा देने एवं दीर्घकालीन रीति नीति के निर्धारण में विभिन्न सांख्यिकीय एवं गणितीय रीतियों का प्रयोग किया जाता है। सांख्यिकी अनुसंधान से जहाँ क्रियान्वित कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाता हैं।

आर्थिक विकास एवं इसके प्रभाव :- आर्थिक विकास को बहुत से तत्व प्रभावित करते है। देश की नीतियाँ पूर्णरूप से क्रियान्वित हो तो देश अग्रसर होगा। विश्व के देशों के साथ कंधे से कंधा मिला वह खड़ा हो सकता हैं

1. प्राकृतिक संसाधन (Nature Resources) :- प्राकृतिक संसाधन वाले देशों में विकास की गति सदा तीव्र रहती है जिस देश में प्राकृतिक संसाधनों का उचित - विरांहन किया जाता है। उससे उस देश का आर्थिक विकास भी होता है।
2. मानवीय संसाधन (Human Resourecs) :- आर्थिक विकास में जनसंख्या की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती हैं। वर्तमान में विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों में मानवीय संसाधनों का समावेश होता हैं। नई सृजनात्मकता नये-नये अविष्कारों को जनम देता है। देश में किसी भी

क्षेत्र में मानवीय संसाधनों का पूर्ण विद्रोहन आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं।

3. पूँजी संचय (Capital Accumulation) :- आर्थिक विकास के लिये पूँजी संचय की आवश्यकता होती हैं। जब कोई राष्ट्र अपने उत्पादन का एक भाग पूंजीगत वस्तुओं जैसे यंत्र, मशीने, यातायात के साधन, उद्योग आदि में लगाये। इससे वास्तविक पूंजी का विस्तार होता हैं और उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। आर्थिक विकास को एक दिशा मिलती हैं। देश की श्रम शक्ति को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करके मानव-पूंजी को भी कुशलता बनाया जाता हैं।
4. उद्यमशीलता (Entrepreneurship) :- आर्थिक विकास की प्रक्रिया में साहसी का महत्व एक वीर योद्धा के समान होता है, जो अपनी सेना का कुशल प्रतिधित्व करता है और आगे बढ़ता है। साहसी वर्ग जितनी अधिक जोखिम उठाने के लिये तत्पर होता है, विकास की दर भी उतनी ही अधिक होगी।
5. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade) :- वर्तमान में कोई भी देश स्वयं का विकास अकेला नहीं कर पाता हैं उसे दूसरे अन्य देशों पर भी निर्भर रहना पड़ता हैं। आपसी सहयोग के द्वारा ये देश अपना आर्थिक विकास कर सकते हैं।
6. बाजार का आकार (Size of market) :- आर्थिक विकास के लिये बाजार का रूप बड़ा होना चाहिए, ताकि वह वस्तु विशेष तक सीमित न रह जाये। सभी वस्तुओं को बाजार में शामिल किया जाना चाहिए। ताकि ज्यादा से ज्यादा से बिक्री हो सके। जिससे बाजार का आकार बढ़ता जाये।

विकास और विस्थापन और पलायन
(Development and Displacement and Migration)

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में औद्योगिक विकास की गति तीव्र होने से नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हो रही है। इसके परिणाम स्वरूप कृषि भूमिका अधिग्रहण हो रहा है। कई परिवारों को विस्थापित भी किया जा रहा है। विस्थापन से कई संयुक्त परिवार बिखरने लगे हैं। जिससे सामाजिक स्थिति प्रभावित होने लगी हैं। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक

प्रक्रियाओं के साथ-साथ धार्मिक जीवन भी प्रभावित होता है। समय के साथ-साथ उनके व्यवसाय भी बदल रहे हैं। विस्थापन से विस्थापितों की जनाकिकीय प्रक्रियाएँ प्रभावित होती है। वर्तमान में आर्थिक विकास का पूरा उत्तरदायित्व राज्य को दिया गया है। विस्थापन से विस्थापितों की जनांकिकीय प्रक्रियाएँ प्रभावित होती हैं। भूमि अधिग्रहण एवं विस्थापन से व्यक्ति की मानसिक क्षमता प्रभावित होती है। आर्थिक अवनति के साथ-साथ उनकी मानसिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक क्षति भी होती है। देश में एक सामाजिक नीति का प्रभाव है और पुर्नवास।

भारत में विस्थापन की प्रक्रिया को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर समझना चाहिए।

2. विकास और पलायनः- भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों का तेजी से पलायन शहरों की ओर हो रहा है। बढ़ती जनसंख्या सबसे बड़ी समस्या है। भारत में कृषि क्षेत्रों की भूमि में कमी प्राकृतिक आपदाओं के कारण लोग रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करते हैं। बुनियादी सुविधाओं का उचित मात्रा में उपलब्ध न होना। जाति व्यवस्था का दुरूपयोग होना, जैसे-खाप पंचायत आदि, कुरूतियाँ, इससे बचने के लिये लोग शहरों में पलायन करते है। शहरों में औद्योगिकरण के तेजी से प्रचार से भी शहरों की ओर लोगों का रूझान बढ़ रहा है। रोजगार और मौलिक सुविधाओं का अभाव भी लोगों की पलायन की दिशा को बढ़ावा देता हैं।

3. बढ़ती आय और बढ़ती असमानताएँः- किसी भी देश के लिये बढ़ती आय असमानताएँ देश के विकास में बाधक बन सकती हैं। स्वतंत्रता के बाद देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने आय की असमानताओं को लेकर काफी सतर्क थे, उन्होंने देश के विकास के लिये ऐसे मॉडल का चयन किया जिससे देश का उत्पादन बढ़े, आय बढ़े और संपदा निर्माण हो। भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा देश बन गया हैं। तीव्र आर्थिक विकास का लोगों की आय पर भी प्रभाव पड़ा है। 1947 में प्रति आय केवल 249.6 रुपये वार्षिक थी।

उसमें रिकार्ड 200 फीसदी तक की बढ़ोत्तरी हुई हैं। वर्ष 2016 में यह आय 88,535 रुपये तक लगभग थी। प्रतिव्यक्ति आय से तात्पर्य लोगों के रहन-सहन और लोगों की व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता हैं। प्रति व्यक्ति आय वह स्केल है जिससे यह स्पष्ट होता है कि किसी देश में एक व्यक्ति की सलाना आमदनी कितनी

हैं। साथ ही किसी भी देश, शहर और क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर और उसकी गुणवत्ता का पता चलता है।

पिछले वर्षे के सर्वे से पता चला की भारत की सबसे धनी 1 प्रतिशत जनसंख्या के पास देश की कुल 58 प्रतिशत संपत्ति है। यह राशि वित्त वर्ष 2017–18 के लिये भारत सरकार की बजट राशि के बराबर है।

बढ़ती असमानताएँः– विकासशील देशों में आय असमानताओं को बढ़ावा देने की नीति अर्थव्यवस्था को अधिकहानि पहुँचाती हैं। असमानताएँ विकास में बाधा बनता हैं। अधिकत्तर लोगों गरीब होने के कारण उनके जीवन स्तर में कमी होती हैं। उनके लिये पौष्टिक आहार, शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये व्यवस्था नहीं हो पाती हैं। परिणाम स्वरूप उनकी उत्पादकीय क्षमता कम होती हैं। जिससे अर्थव्यवस्था की वृद्धि कम हो जाती हैं। इसलिये ऐसे गरीब वर्ग की आयों को बढ़ाकर तथा असमानताओं में कमी करने से केवल उनकी उत्पादकीय क्षमता में वृद्धि नहीं होगी बल्कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार असमानताओं के कारण एक अन्य प्रकार की आर्थिक क्षति, मानव पूँजी का हास हैं। विकासशील देश चाहते है कि वे एक साथ आर्थिक वृद्धि और आर्थिक समानता के घोड़ों पर सवार हो तो उन्हें संभल कर चलना होगा।

बढ़ती आय एवं आय असमानताओं का हलः– बढ़ती आय और आय असमानताओं का हल इस प्रकार हैं ये दोनों ही एक सिक्के के दो पहलु हैं।

1. आय तथा धन की असमानताएँ कम करने में राजकोषीय नीति महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। आरोही कर लगाएँ जाएँ जो प्रदर्शन उपभोग को दबाएँ और अनर्जित दरिद्र वर्गो पर अप्रत्यक्ष करों का बोक्ष अधिक नहीं होना चाहिए। काला धन निकलवाने और कर बचाव रोकने के लिये सख्त कदम उठाये जाये।
2. आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण कम करने के लिय, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देने का हर प्रयत्न किया जाए। इसके अतिरिक्त, इस दिशा में एक महत्वपूर्ण नीति– उपाय दक्ष एवं गत्यात्मक सार्वजनिक क्षेत्र हैं। उन क्षेत्रों में नये उद्यमियों को प्रोत्साहन दिया जाए जिसमें कि प्रतियोगी निवेश का अभाव है श्रेष्ठ औद्योगिक संबंधों के माध्यम से उत्पादकता में सुधार सुनिश्चित

करके तथा कृषकों को अधिक प्रेरणाएँ देकर घरेलू बाजार का तेजी से विकास किया जाए।

3. लोगों के आय के स्तर बढ़ाने और आय तथा धन की असमानताएँ कम करने के लिये पिछडे क्षेत्रों में कृषि एवं औद्योगिक विकास आवश्यक हैं। नई शुष्क कृषि प्रौद्योगिकी, सिंचाई, सुविधाएँ तथा श्रेष्ठ आगत प्रदान करके कृषि उत्पादकता बढ़ाई जाए। नये उद्योग चलाने को नये उद्यमी आकर्षित करने के लिये राजकोषीय एवं अन्य छूटे दी जाए। पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक उपक्रम स्थापित करने के लिये प्रयत्न किये जाए।

3.7 विकास और पर्यावरणीय गिरावटः–

मनुष्य के जीवन विकास एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानव का विकास के साथ–साथ पर्यावरण के साथ ही गहरा संबंध है। विकास एवं पर्यावरण एक दूसरे के विरोधी न होकर, एक दूसरे के पूरक है। और ये दोनों ही मानव जीवन के लिये बहुत आवश्यक माने गये हैं। इनमें से किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती अन्यथा मानव जीवन पूर्णरूप से प्रभावित होगा। जिसके कारण सम्पूर्ण मानव जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। इसलिये हमेशा से यह आवश्यक समझा गया कि विकास का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो मानव और पर्यावरण दोनों को ही संतुलित बना सके।

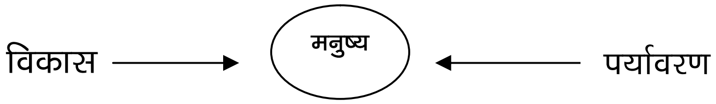

पर्यावरण Environment :– पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना हैं "परि" तथा "आवरण" परि का अर्थ है "चारो ओर" तथा आवरण का अर्थ है घेरे हुये। अर्थात् जो हमें चारों ओर से घेरे हुये हैं। वहीं पर्यावरण कहलाएगा। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रासायनिक एवं जैविक कारकों की दृष्टिगत इकाई हैं जो किसी जीवधारी अथवा परतंत्रकीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को निर्धारित करते हैं। पर्यावरण के चार तत्व हैः–

1. **स्थल मंडल (Litosphore):–** स्थलमंडल की भू–पृष्ठ पर पाये जाने वाले ठोस शैल तत्वों की एक सतह होती हैं। जो पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग के रूप में पाया जाता है। इसका निर्माण तत्वों, खनिज, शैलों तथा मिठ्ठी से हुआ है।

2. **जल मंडल (Hydrosphere):-** पृथ्वी के धरातल के लगभग 70 प्रतिशत भाग को जल मंडल कहाँ जाता है। जल की वह परत जो पृथ्वी की सतह पर महासागरों, झीलों, नदियों तथा जलाशयों के रूप में फैली हैं। जलमंडल कहलाती हैं।
3. **वायुमंडल (Atonophore):-** पृथ्वी के चारों ओर विस्तृत गैसीय आवरण को वायुमंडल कहा गया है। यह गैस जलवाष्प तथा धूलकणों का मिश्रण हैं गैस जलवाष्प तथा धूलकणों का मिश्रण है। वायुमंडल को निम्नलिखित परतों में विभाजित किया गया है तथा क्षोम मंडल, समताप मंडल, अध्यमंडल, तापमंडल, आयनमंडल, व बाहयमंडल है।

प्राकृतिक संसाधन और आर्थिक विपणन
(Natural Resources and Economic Development)

किसी देश की अर्थव्यवस्था का स्वरूप, विकास का स्तर एवं विकास की गति उस देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की मात्रा, उनकी विविधता एवं गुणवत्ता पर निर्भर रहती है। वास्तव में प्राकृतिक संसाधन अर्थव्यवस्था के लिये एक प्रकार से आधार प्रस्तुत करते हैं और उसके हर क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

उदाहरण के लिए जलवायु का प्रभावदेश की वनस्पति, खेती की पैदावार वहाँ के निवासियों की आवश्यकताएँ, व्यवसाय, कार्यक्षमता और उद्योगों की स्थिति आदि पर पड़ता है। खेती की विविधिता तथा उत्पादक्ता बहुत बड़ी सीमा तक उस स्थान की भूमि व मिट्टी पर निर्भर करती हैं। वनों से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होते हैं। इससे ईधन इमारती लकड़ी अनेक वनोपजे आदि प्राप्त होते हैं। जिनके आधार पर विभिन्न प्रकार के उद्योगों की स्थापना होती हैं। साथ ही वर्षा और जलवायु पर अच्छा प्रभाव डालते है, बाढ़ के वेग को कम करते हैं। मिट्टी के कटाव को रोकते हैं। इसके साथ ही वनों से पशुओं को चारा और भूमि के लिये खाद प्राप्त होती हैं।

देश के आर्थिक विकास में खनीजों का तो और भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। खानों से विभिन्न प्रकार के उद्योगों को कच्चामाल प्राप्त होता है। तेल एवं कोयला के रूप में ऊर्जा प्राप्त होती है। इस प्रकार देश का औद्योगिक विकास और परिणाम स्वरूप संपूर्ण अर्थव्यवस्था का स्वरूप एवं विकास का स्तर बहुत कुछ वहाँ के खनिज संसाधनों की विविधता और प्रचुरता पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों का विशेष महत्व होता है।

अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड, रूस आदि देशों के आर्थिक इतिहास से बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

पर्यावरणीय समस्याएँः–
(Environmental Problems)

वे सभी कार्य, कारण अथवा स्थितियाँ जिनसे कृतिदत्त पर्यावरण (Natural Environment) क्षतिग्रस्त, नष्ट, विकृत अथवा विलोवित होता हैं। ये पर्यावरणीय समस्यायें कहलाती हैं। इनसे मनुष्य के जीवन को खतरा, आर्थिक हानि, जीवन की गुणवत्ता का हास और अनेक संकट उत्पन्न होते हैं और सामान्यतः जिनका निदान संभव नहीं होता। यद्यपि वैज्ञानिक शोध ने इस दिशा में काफी तरक्की कि है, और विभिन्न पर्यावरणीय संकटों से बचने के लिये विभिन्न उपाय सुझाये हैं। तथापि विभिन्न संकटों से बचना एक अत्यधिक जटिल एवं कठिन कार्य हैं।

इन समस्याओं को मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है।

1. प्राकृतिक पर्यावरणीय संकट
2. मानवकृत पर्यावरणीय बाधाएँ

1. **प्राकृतिक पर्यावरणीय संकटः–** प्राकृतिक पर्यावरण की समस्याये पर्यावरण की वे समस्या हैं। जिनसे मानव जीवन की हानि तथा सम्पति की क्षति होती हैं। इन्हें प्रकृतिदत्त अनहोनी अथवा ईश्वरीय प्रकोप भी कहा जाता हैं इन संकटों में बाढ़, सूखा, भूकम्प चक्रवात, बिजली गिरना, कुहय, बर्फ गिरना वाला पड़ना, ओलावृष्टि, तूफान, गर्म शर्द हवाएँ आदि शामिल है। विज्ञान के द्वारा इन संकटों को कम करने अथवा कुछ सीमा तक नियंत्रित करने के संभावनाओं में वृद्धि हुई, किन्तु वास्तविकता यह है कि प्राकृतिक संकटों के लिये कुछ सीमा तक मनुष्य की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष क्रियाएँ भी उत्तरदायी हैं। उदा. वनों की अधिक कटाई से बाढ़ और सूखे की घटनाओं में वृद्धि हुई हैं। भूगर्भीय जल के अधिक दोहन से रेगिस्तानी क्षेत्रों में वृद्धि तथा भूकम्प आने की संभावना बढती हैं। के बाद बचत एवं विनियोगों में काफी वृद्धि की आवश्यकता हैं। अतः जन साधारण को बचनों को बढ़ाने के प्रति प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

   - जनसंख्या नियंत्रणः– भारत की राष्ट्रीय आय में पिछले 60 वर्षो में औसतन लगभग 4.3 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई हैं। जब कि इस अवधि में जनसंख्या 1.9 प्रतिशत की दर से बढ़ी हैं। अर्थात् प्रतिव्यक्ति आय में केवल 2.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई हैं। अतः जनसंख्या की वृद्धि दर को नियंत्रित करना बहुत जरूरी हैं। दूसरे शब्दों में, जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में भारत को चीन का अनुशरण करना चाहिए।

- **उन्नत तकनीकः–** राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिये वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन वृद्धि आवश्यक है और वस्तुओं एवं सेवाओं में वृद्धि के लिए उत्पादन तकनीक में आधुनिकता लाना जरूरी हैं। भारत में अभी तक "शोध एवं विकास" को प्रर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता। यहाँ यह भी उल्लेखनीय हैं कि उन्नत तकनीक केवल बड़े उद्योगों के लिये ही जरूरी नहीं हैं वरन् लघु एवं कुटीर उद्योगों के साथ ही कृषि के लिए भी आवश्यक हैं।
- **निर्यात व्यापारः–** उदारीकरण एवं भूमण्डलीय के बाद से देश के निर्यात व्यापार में वृद्धि आवश्यक हो गई हैं। अपने उत्पादों को विदेशी प्रतियोगिता के अनुकूल बनाकर विश्व बाजारों में लोकप्रियता प्राप्त करना बहुत आवश्यक। सूचना प्रौद्योगिकी एवं कम्प्यूटर साफ्टवेयर में और अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।
- **शिक्षा एवं प्रशिक्षणः–** उत्पादन एवं आय बढ़ाने के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित जनशक्ति आवश्यक है, जिससे कि विदेशी प्रतियोगिता का सही ढंग से सामना कर सके। सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि देश में यदि शिक्षा प्रणाली में युक्तियुक्त परिवर्तन किया जाता हैं।
- **सामाजिक पर्यावरण में सुधारः–** भारत में कठोर श्रम करने की संस्कृति नहीं है। इस दिशा में चीन एवं जापान से हमें बहुत कुछ सीखना हैं। धार्मिक अध्ययन सामाजिक कुरितियाँ, जाति प्रथा, भाग्यवादिता आदि अनेक ऐसे घटक है।

2. **मानवकृत पर्यावरणीय बाधाएँः–** इस श्रेणी में इन बाधाओं को रखा जाता है जो स्पष्ट किसी न किसी प्रकार से मनुष्य के क्रियाकलापों के कारण उत्पन्न होती हैं। और पर्यावरण को विकृत करने के लिये उत्तरदायी है। बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्यान्न को पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग तेजी से बढ़ा है। इससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है और भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो रही है। इसी प्रकार यद्यपि जल विश्व में असीकमत मात्रा में उपलब्ध था किन्तु अधिक उपयोग तथा ठीक ढंग से उपयोग न करने के कारण अनेक देशों में जल की पूर्ति एक जटिल समस्या बन गई हैं।

   - वायु प्रदूषण **(Air Polution)**:– वायु की मूल संरचना को ही मानव क्रियाकलापों ने छिन्न–भिन्न कर दिया हैं। वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधन

का अधिक उपयोग, औद्योगीकरण, क्लोरोफ्लोरों, कार्बन की मात्रा की वायुमंडल में निरंतर वृद्धि आदि वायु प्रदूषण से संबंधित निम्न समस्याओं को जन्म दिया हैं।

(अ) ग्रीन–हाउस प्रभाव (Green house Effect)

(ब) तेजाबी वर्षा (Acid Rains)

(स) ओजोन पर्त का क्षय (Depletion of Ozone Layer)

(द) स्मोग घटनाएँ (Smog Episodes)

- जल प्रदूषण (Water Pollution) :– अनेक शहरों एवं गाँवों में पीने का शुद्ध जल उपलब्ध नहीं हैं। औद्योगिक जल–स्त्राव, घरेलू मज–जल (Sewage), वर्षा के जल के साथ आने वाली गन्दगी भू–जल का अति उपयोग आदि अनेक ऐसे कारण है जिनमें पीने के पानी के स्त्रोत तथा भू–गर्भ जल भण्डार प्रदूषित हुए है। दूषित जल से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।
- भूमि या मिट्‌टी प्रदूषण (Soil Pollution) :– कृषि में उर्वरकों कीटनाशकों एवं अन्य रासायनिक तत्वों ने भूमि को प्रदूषित किया है। भूमि प्रदूषण से जल–प्रदूषण हुआ है। भू–जल का सिंचाई में उपयोग से जल–स्तर क्रमशः गिर रहा हैं। वृक्षों की कटाई ने भू–क्षरण को जन्म दिया है और मरूस्थलों का विस्तार किया है।
- ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution) :– यातायात के साधनों औद्योगिकरण, भारी भीड़ मनोरंजन के साधनों आदि ने ध्वनि प्रदूषण को बढ़ाया है। इसका भी मानव जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।
- प्राकृतिक संसाधनों का दोहन (Exploition) :– मनुष्य ने अपने उपयोग हेतु पुनर्उत्पादनीय एवं गैरे पुनर्उत्पादनीय संसाधनों का बहुत अधिक दोहन किया है। औद्योगिकरण के कारण अनेक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग हुआ है। कोयला, खनिज, तेल, गैस एवं अनेक खनिजों की उपलब्धता कहाँ से होगी। यह एक जटिल समस्या बन गई हैं। स्पष्ट है कि अनेक मानवीय क्रियाओं ने प्राकृतिक संतुलन को बाधित किया है। और ऐसी समस्याएँ पैदा कर दी है, जिनसे पर्यावरण दिन–प्रतिदिन प्रदूषित होता जा रहा है।

निष्कर्ष :– विकास प्रक्रिया मूलतः प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती हैं। इस प्रक्रिया में जहाँ संसाधन पर्यावरण से आर्थिक क्षेत्र की ओर स्थानांतरित होते हैं वहीं आर्थिक क्रियाओं से उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट पदार्थ एवं जहरीली गैसों का बहाव आर्थिक क्षेत्रों से पर्यावरण की ओर होता हैं और परिणामस्वरूप प्रदूषण की समस्या पैदा होती हैं। इस प्रदूषण से न केवल प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित होगी वरन् उनकी पुनर्उत्पादन दर पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा और अन्ततः मानवीय स्वास्थ्य प्रभावित होगा। इस प्रकार यदि विकास की वर्तमान प्रक्रिया ही चालू रही तो भूमण्डल पर 179 केवल दो समस्याये रहेंगी यथा एक संसाधन संकट और द्वितीय 198 पर्यावरण संकट।

DELED-02

Block – IV

Unit-4 Democracy in India

इकाई – 4 भारत मे लोकतंत्र

4. प्रस्तावना

4.0 इकाई के उदद्ेश्य

4.1 संस्थागत संरचनाएँ : केंद्र और सत्र न्यायपालिका, विधानमंडल और कार्यकारी

4.1.1 प्रस्तावना

4.1.2 विधानसभा अध्यक्ष के कर्त्तव्य और अधिकार

4.1.3 कार्यपालिका, न्यायपालिका और विद्यायिका

4.1.3.1 न्यायपालिका

4.1.3.2 विद्यायिका

4.1.3.3 कार्यपालिका

4.2 लोकतंत्र, पार्टी प्रणाली और इलेक्ट्रो राजनीति

4.2.1 प्रस्तावना

4.2.2 लोकतंत्र के प्रकार

4.2.2.1 प्रतिनिधि लोकतंत्र

4.2.2.2 उदार लोकतंत्र

4.2.2.3 प्रत्यक्ष लोकतंत्र

4.2.3 मंत्रालयों के प्रमुख विभाग

4.2.4 लोकतंत्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त

4.2.5 लोकतंत्र की आवश्यकता

4.2.6 राजनीतिक दल

4.2.7 राजनीतिक दल के कार्य

4.2.8 राजनीतिक दल का अर्थ

4.2.9 राजनीतिक दल के कार्य

4.2.10 प्रमुख राजनीतिक दल

(1) राष्ट्रीय दल

(2) ऑल इंडिया वृणमूल कॉंग्रेस

(3) बहुजन समाज पार्टी

(4) भारतीय जनता पार्टी

(5) कम्युनिफ्ट पार्टी ऑफ इंडिया

(6) कम्युनिफ्ट पार्टी ऑफ इंडिया –मार्क्ससिस्ट

(7) इंडियन नेशनल कांग्रेस

(8) क्षेत्रीय दल

(9) नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी

4.3 विकेंदीकरण और पंचायती राज (विशेष रूप से 73 वे और 74 वें संशोधन के माध्यम से)

4.3.1 प्रस्तावना

4.3.2 पंचायती राज

4.3.3 संवैधानिक प्रावधान

4.3.4 पंचायती राज

4.3.5 ग्राम सभा

4.4 जमीनी स्तर पर भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन

4.4.1 प्रस्तावना

(1) चिपको आंदोलन

(2) हरित क्रांति

(3) असम आंदोलन

(4) किसान आंदोलन

A नील विद्रोह

B चम्पारन में नील सत्यागृह

C बारदोली सत्यागृह

D नर्मदा बचाओं आंदोलन

(5) सूचना का अधिकार

4.5 जाति, वर्ग, लिंग और धार्मिक और भाषा विज्ञान पहचान की असमानताओं के संबंध में भारतीय लोकतंत्र को गहरा करने के लिए चुनौती।

4.5.1 प्रस्तावना

4.5.2 जातिगत असमानताएं

4.5.3 जाति और राजनीति

4.5.4 राजनीति में जाति

4.5.5 भारत में लैंगिक असमानता

4.5.5.1 लैंगिक असमानता की परिभाषा और संकल्पना

4.5.5.2 भारत में लैंगिक असमानता के कारण और प्रकार

4.5.5.3 लैंगिक असमानता के खिलाफ कानूनी और संवैधानिक सुरक्षा उपाय

4.5.5.4 लैंगिक असमानता को समाप्त करना

4.5.6 धर्म और राजनीति
4.5.6.1 सांप्रदायिकता
4.5.6.2 धर्म निरपेक्ष शासन
4.5.6.3 राजनीतिक दलों के लिए चुनौतियाँ
4.6 सारांश
4.7 सत्रगत कार्य
4.8 संदर्भ ग्रंथ

UNIT-IV भारत में लोकतंत्र

लोकतंत्र सरकार की एक प्रणाली है जिसमें नागरिक सीधे सत्रा का उपयोग करते है या संसद के रूप में एक शासकीय निकाय बनाने के लिए आपस में प्रतिनिधियों का चुनाव करते है। इसे बहुमत का शासन भी कहा जाता है। लोग अपने नेताओं का चुनाव करते है। प्रतिनिधि एक चुनाव में खड़े होते है, और नागरिक अपने प्रतिनिधि को वोट देते हे। सर्वाधिक मतों वाले प्रतिनिधि को शक्ति मिलती हे। और वह कार्यो को शासन एवं संविधान के नियमों द्वारा संचालित करता है,

उद्देश्य :–

(1) पाठ का अध्ययन करने के उपरांत आप भारत में लोकतंत्र की संरचना एवं कार्यकारिणी के बारे में जान पायेंगे।

(2) संस्थागत संरचानाएँ जैसे केंद्र और सत्र, न्यायपालिका विधानमंडल और कार्यकारी आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

(3) प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपकों लोकतंत्र ,पार्टी प्रणाली और इलेक्ट्रो राजनीति के विषयों में ज्ञान प्राप्त होगा।

(4) विकेंन्द्रीकरण और पंचायती राज (विशेष रूप से 73 वें और 74 वें संशोधन के माध्यम से) की कार्यप्रणाली एवं गठन के बारे में जान पायेंगे।

(5) इस इकाई के अध्ययन से जमीनी स्तर पर सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों और भारतीय लोकतंत्र की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

(6) इस अध्ययन में भारतीय लोकतंत्र में जाति, वर्ग, लिंग और धार्मिक, भाग विज्ञान पहचान की असमानताओं एवं लोकतंत्र को गहरा करने की चुनौतियों के बारे में अध्ययन करेंगे।

4.1:– संस्थागत संरचनाएँ :– केंद्र और सत्र,न्यायपालिका, विधानमंडल और कार्यकारी

परिचयः– भारत सरकार, भारत के संविधान द्वारा 29 राज्यों के संघ के विधायी, कार्यकारी और न्यायिक प्राधिकरण और एक संवैधानिक रूप से लोकतांत्रिक गणराज्य के नौ केन्द्र

शासित प्रदेशों (2019 के आंकड़ों के आधार पर 9 केन्द्र शासित प्रदेश हो गए है, पहले सात केंद्र शासित प्रदेश के रूप में बनाई गई संघ सरकार हैं। यह भारत की राजधानी नई दिल्ली में स्थित है।

आधारभूत संरचनाः– राज्य को संचालित करने के लिए वेस्टमिंस्टर प्रणाली के बाद निर्मितः–

1. संघ सरकार मुख्य रूप से कार्यपालिका विधायिका और न्यायपालिका से बनी है। जिससे सभी शक्तियाँ संविधान द्वारा प्रधानमंत्री, संसद और सर्वोच्च न्यायलय में निहित है। भारत के राष्ट्रपति राज्य के प्रमुख और भारतीय सशस्त्र बलों के कमांडर –इन –चीफ होते है जबकि निर्वाचित प्रधानमंत्री कार्यपालिका के प्रमुख के रूप में कार्य करता हैं। और संघ सरकार चलाने के लिए जिम्मेदार होती है।

2. संसद स्वभावतः द्विसदनीय है, जिससे लोकसभा निम्न सदन है, और राज्य सभा उच्च सदन है।

3. न्यायपालिका से व्यवस्थित रूप से सर्वोच्च न्यायालय 24 उच्च न्यायालय और कई जिला अदालते शामिल है, जो सर्वोच्च न्यायलय से सुक्ष्म है।

4. भारत के नागरिकों को नियंत्रित करने वाले बुनियादी नागरिक और आपराधिक कानून प्रमुख संसदीय कानून जैसे कि सिविल प्रक्रिया कोड, दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया कोड में स्थापित किए जाते है।

5. केंद्र सरकार के समान व्यक्तिगत राज्य सरकार के समान, व्यक्तिगत राज्य सरकारें प्रत्यें में कार्यकारी विद्यायिका एवं विधानमंडल होता है।

4.1.1 संस्थागत संरचनाएंः केन्द्र और सत्र, न्यायपालिका, विधानमंडल और कार्यकारीः

प्रस्तावना– आजादी के बाद भारतीय संविधान के निर्माताओं ने देश के लोकतंत्र को मजबूत बनाने और शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए केंद्रीय स्तर पर जहाँ संसद की व्यवस्था की वहीं राज्यों में विधानसभा के गठन का प्रस्ताव किया। इसके साथ ही लोकसभा के संचालन और गरिमा बनाए रखन के लिये लोकसभा अध्यक्ष और राज्यों में विधानसभा अध्यक्ष के पद का प्रावधान किया।

राज्यों में विधानसभा अध्यक्ष सदन की कार्यवाही और उसकी गतिविधियाँ के संचालन के लिए पूरी तरह जवाबदेह होता है। विधानसभा अध्यक्ष से यह अपेक्षित होता है कि वह दलगत राजनीति से ऊपर उठकर सभी दलों के साथ तालमेल बनाकर इस पद की गरिमा को बरकरार रखेगा। विधानसभा अध्यक्ष का निर्विरोध निर्वाचित होना और उसका किसी भी दल के प्रति झुकाव नहीं होने वाला स्वरूप समाज की उस राजनीतिक जागरूकता का प्रतीक है जो लोकतंत्रीय व्यवस्था की प्रमुख आधारशिला है।

सीधे–सरल शब्दों में कहीं तो विधायिका का काम कानून बनाना है कार्यपालिका कानूनों को लागू करती है और न्यायपालिका कानून की व्याख्या करती है। इन तीनों को लोकतंत्र का आधार–स्तंभ माना जाता है।

विधानसभाध्यक्ष के कर्त्तव्य और अधिकार

राज्यों की विधायिका विधानसभा के लिये निर्वाचित जनप्रतिनिधियाँ से गठित होती है। इन जनप्रतिनिधियाँ को विधायक कहा जाता है।

- विधानसभा की कार्यवाही को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष का प्रावधान संविधान में है।
- विधानसभा का गठन होने के बाद उसके प्रथम सत्र में ही विधानसभा सदस्यों द्वारा विधानसभा अध्यक्ष चुना जाता है।
- अध्यक्ष के अलावा विधानसभा के सदस्य उपाध्यक्ष का चुनाव की करते हैं जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसका कार्यभार संभालता है।

विधानसभा अध्यक्ष के प्रमुख कार्यों में वहीं सब कार्य आते हैं जो लोकसभा अध्यक्ष करता है। जैसे–

- सदन में अनुशासन बनाए रखना।
- सदन की कार्यवाही का सुचारू रूप से संचालन करना।
- सदस्यों को बोलने की अनुमति प्रदान करना।
- पक्ष और विपक्ष में समान मत आने पर निर्णायक मत प्रदान करना।

पाठासीन अधिकारी यानि विधानसभा एवं विधानसभा सचिवालय का प्रमुख होता है, जिसे संविधान प्रक्रिया नियमों एवं स्थापित संसदीय परंपराओं के तहत व्यापक अधिकार प्राप्त होते है। विधानसभा के परिसर में उसका प्राधिकार सर्वोच्च है। सदन की व्यवस्था बनाए रखना उसकी जिम्मेदारी होती है और वह सदन में सदस्यों से नियमों का पालन सुनिश्चित कराता है। विधानसभा अध्यक्ष सदन के वाद–विवाद में भाग नहीं लेता बल्कि विधानसभा की कार्यवाही के दौरान अपनी व्यवस्थाएँ/निर्णय देता है जो बाद में नजीर के रूप में संदर्भित की जाती है। विधानसभा में अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष सदन का संचालन करता है और दोनों की अनुपस्थिति में सभापति रोस्टर का कोई एक सदस्य यह जिम्मेदारी निभाता है।

4.1.3 कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका–

हमारे संविधान में राज्य की शक्तियों को तीन अंगों में बाँटा गया है– कार्यपालिका विधायिका तथा न्यायपालिका इसके अनुसार विधानपालिका का काम विधि निर्माण करना कार्यपालिका का काम विधियाँ का कार्यान्वयन तथा न्यायपालिका को प्रशासन की देख–रेख विवादों का फेसला और विधियों की व्याख्या करने का काम सौंपा गया है।

4.1.3.1 न्यायपालिकाः–

न्यायपालिका भारत की न्यायपालिका के बारे में कहा जा सकता है कि जैसा इसका नाम है वैसा ही इसका काम है। न्यायपालिका का मूल काम हमारे संविधान में लिखे कानून का पालन करना और करवाना है तथा कानून का पालन न करने वालों को दंडित करने का अधिकार भी इसे प्राप्त है। भारतीय न्यायिक प्रणाली को अंग्रेजों ने औपनिवेशिक शासन के दौरान बनाया था और उसी के अनुसार यह आज भी देश में कानून व्यवस्था बनाए रखने का काम करती है। न्यायधीश अपने आदेश और फेसले संविधान में लिखे कानून के अनुसार लेते है। न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए है। न्यायपालिका विवादों को सुलझाती है इसलिये इसकी स्वतंत्रता की रक्षा जरूर होनी चाहिए।

4.1.3.2 विधायिकाः–

भारत संघ की विधायिका को संसद कहा जाता है और राज्यों की विधायिका विधानमंडल /विधानसभा कहलाती है। देश की विधायिका यानी संसद के दो सदन हैं–उच्च सदन राज्यसभा तथा निचला सदन लोकसभा कहलाता है। राज्यसभा के लिये अप्रत्यक्ष चुनाव होता है इसमें राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों का चुनाव एकल हस्तांतरणीय मत के द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार राज्यों की विधानसभाओं द्वारा निर्धारित तरीके से होता है। राज्यसभा को भंग नहीं किया जाता, बल्कि हर दूसरे वर्ष में इसके एक–तिहाई सदस्य संवानिवृत्त होते हैं। वर्तमान में राज्यसभा में 245 सीटें है। उनमें से 233 सदस्य राज्यों और केंद्रशासित क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं और 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनित होते है।

लोकसभा जनप्रतिनिधियों की सभा है जिनका चुनाव वयस्क मतदान के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा होता हैं। संविधान द्वारा परिकल्पित सदन के सदस्यों की अधिकतम संख्या 552 है (530 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिये 20 केंद्रशासित क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिये और एंग्लो–इंडियन समुदाय के दो सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनित किये जा सकते हैं यदि उसके विचार से उस समुदाय का सदन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है) वर्तमान में लोकसभा में 545 सदस्य हैं। इनमें से 530 सदस्य प्रत्यक्ष रूप राज्यों से चुने गए हैं और 13 केंद्रशासित क्षेत्रों से जबकि दो को एंग्लो–इंडियन समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिये राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है। लोकसभा का कार्यकाल इसकी पहली बैठक की तारीख से पाँच वर्ष का होता है जब तक कि इसे पहले भंग न किया जाए।

4.1.3.3 कार्यपालिका–

संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति को सहायता करने एवं सलाह देने के लिये अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री के साथ मंत्रिपरिषद होती है। केंद्र की

कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त होती है जो उसके द्वारा केंद्रीय मंत्रिमंडल की सलाह पर संविधान सम्मत तरीके से इस्तेमान की जाती है। राष्ट्रपति के चुनाव में संसद के दोनों सदनों के सदस्य तथा राज्यों में विधानसभा के सदस्य समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के तहत मतदान करते है। उपराष्ट्रपति के चुनाव में एकल हस्तांतरणीय मत द्वारा संसद के दोनों सदनों के सदस्य मतदान के पात्र होते हैं।

राष्ट्रपति को उसके कार्यों में सहायता करने और सलाह देने के लिये प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद होती है। प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह प्रधानमंत्री की सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है। मंत्रिपरिष्द सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। संघ के प्रशासन या कार्य और उससे संबंधित विधानों और सूचनाओं के प्रस्तावों से संबंधित मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों की सूचना राष्ट्रपति को देना प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य है। मंत्रिपरिषद में कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) और राज्य मंत्री होते हैं।

4.2 लोकतंत्र, पार्टी प्रणाली और इलेक्ट्रो राजनीतिः

प्रस्तावना– एक तरह का प्रतिनिधि लोकतंत्र है, जिसमें स्वच्छ और निष्पक्ष चुनाव होते है। उदार लोकतंत्र के चरित्रगत लक्षणों में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा कानून व्यवस्था, शक्तियों के वितरण आदि के अलावा अभिव्यक्ति भाषा, सभा, धर्म और संपत्ति की स्वतंत्रता प्रमुख है।

लोकतंत्र (शाब्दिक अर्थ '' लोगों का शासन'' संस्कृत में लोक ''जनता'' तथा तंत्र '' शासन'',) या प्रजातंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था और लोकतांत्रिक राज्य दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। यद्यपि लोकतंत्र शब्द का प्रयोग राजनीतिक सन्दर्भ में किया जाता है किन्तु लोकतंत्र का सिद्धान्तो के मिश्रण से बनते है।

4.2.2 लोकतंत्र के प्रकारः–

लोकतंत्र की परिभाषा के अनुसार यह '' जनता द्वारा जनता के लिए जनता का शासन है''। लेकिन अलग–अलग देशकाल और परिस्थितियों में अलग–अलग धारणाओं के प्रयोग से इसकी अवधारणा कुछ जटिल हो गयी है। प्राचीनकाल से ही लोकतंत्र के सन्दर्भ में कई प्रस्ताव रखे गये हैं पर इनमें से कई कभी क्रियान्वित नहीं हुए।

1. प्रतिनिधि लोकतंत्र
2. उदार लोकतंत्र
3. प्रत्यक्ष लोकतंत्र

4.2.2.1 प्रतिनिधि लोकतंत्रः– प्रतिनिधि लोकतंत्र में जनता सरकारी अधिकारियों को सीधे चुनती हैं। प्रतिनिधि किसी जिले या संसदीय क्षेत्र से चुने जाते हैं या कई समानुपातिक

व्यवस्थाओं में सभी मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ देशों में मिश्रित व्यवस्था प्रयुक्त होती है। यद्यपि इस तरह के लोकतंत्र में प्रतिनिधि जनता द्वारा निर्वाचित होते है लेकिन जनता के हित में कार्य करने की नीतियां प्रतिनिधि स्वयं तय करते हैं। पद्यपि दलगत नीतियां मतदाताओं में छवि पुनः चुनाव जैसे कुछ कारक प्रतिनिधियों पर असर डालते हैं, किंतु सामान्यतः इनमें से कुछ ही बाध्यकारी अनुदेश होते हैं।

इस प्रणाली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जनादेश का दबाव नीतिगत विचलनों पर रोक का काम करता है क्योंकि नियमित अंतरालों पर सत्ता की वैद्यता हेतु चुनाव अनिवार्य है।

4.2.2.2 उदार लोकतंत्रः– एक तरह का प्रतिनिधि लोकतंत्र है, जिसमें स्वच्छ और निष्पक्ष चुनाव होते हैं। उदार लोकतंत्र के चरित्रगत लक्षणों में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा कानून व्यवस्था, शक्तियों के वितरण आदि के अलावा अभिव्यक्ति, भाषा, सभा, धर्म आदि संपत्ति की स्वतंत्रता प्रमुख है।

4.2.2.3 प्रत्यक्ष लोकतंत्रः– लोकतंत्र में सभी नागरिक सारे महत्वपूर्ण नीतिगत फेसलों पर मतदान करते है। इसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। क्योंकि सैद्धांतिक रूप से इसमें कोई प्रतिनिधि या मध्यस्थ नहीं होता। सभी प्रत्यक्ष लोकतंत्र छोटे समुदाय या नगर– राष्ट्रो में हैं।

प्राचीन काल से ही हमारे देश में गौरवशाली लोकतांत्रिक परम्परा थी। इसके अलावा सुव्यवस्थित शासन के संचालन हेतु अनेक मंत्रालयों का भी निर्माण किया गया था। उत्तम गुणों एवं योग्यता के आधार पर इन मंत्रालयों के अधिकारियों का चुनाव किया जाता था।

4.2.3 मंत्रालयों के प्रमुख विभाग थे–

(1) औद्योगिक तथा शिल्प संबंधी विभाग
(2) विदेश विभाग
(3) जनगणना
(4) क्रय–विक्रय के नियमों का निर्धारण

मंत्रिमण्डल का उल्लेख हमें अर्थशास्त्र मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारत इत्यादि में प्राप्त होता है।

4.2.4 लोकतंत्र का पुरातन उदारवादी सिद्धान्त– लोकतंत्र की उदारवादी परंपरा में स्वतंत्रता समानता अधिकार, धर्म निरपेक्षता और न्याय जैसी अवधारणाओं का प्रमुख स्थान रहा है और उदारवादी चिंतक आरंभ से ही इन अवधारणाओं को मूर्त रूप देने वाली सर्वोत्तम प्रणाली के रूप में लोकतंत्र की वकालत करते रहे हैं। नृपतियों और सामंती प्रभुओं से मूक्ति के बाद समाज के शासन–संचालन की दृष्टि से लोकतंत्र को स्वाभाविक राजनीतिक प्रणाली के रूप में

स्वीकार किया गया। मैक्फर्सन का कहना है कि पाश्चात्य जगत में लोकतंत्र के आगमन के पहले ही चयन की राजनीति प्रतियोगी राज्य व्यवस्था और मार्किट की राज्यव्यवस्था जैसी अवधारणाएं विकसित हो चुकी थीं। हकीकत में इस अर्थ में उदार राज्य का ही लोकतांत्रीकरण हो गया न कि लोकतंत्र का उदारीकरण। लोकतांत्रिक भावना के आंरभिक चिहन टॉमसमूर (यूटोरिया, 1616) और विंस्टैनले जैसे अंग्रेज विचारकों और अंग्रेज अलिविशुद्धतावाद (प्यूरिटैनिजन्म) के साहित्य में पाया जा सकता है किन्तु लोकतांत्रिक भावना की सही शुरूआत सामाजिक संविदा के सिद्धान्त के जन्म के साथ हुई क्योंकि नागरिकों के सामाजिक अनुबंध की अन्तर्निहित भावना ही सभी व्यक्तियों की समानता है। थॉमस हॉब्स ने अपनी पुस्तक लेवियाथन (1651) में प्रमुख लोकतांत्रिक सिद्धान्त की वकालत करते हुए लिखा कि सरकार का निर्माण जनता द्वारा एक सामाजिक संविदा के तहत होता है। जॉन लॉक का कहना था कि सरकार जनता के द्वारा और उसी के हित के लिए होनी चाहिए। एडम स्मिथ ने मुक्त बाजार का प्रतिमान इस लोकतांत्रिक आधार पर ही प्रस्तुत किया कि प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन करने खरीदने और बेचने की स्वतंत्रता है। प्रसिद्ध उपयोगितावादी दार्शनिक मिल और बेंथम ने पूरी तरह लोकतंत्र का समर्थन किया और उपयोगितावादी दार्शनिक ।

4.2.5 लोकतंत्र की आवश्यकताः— सहभागिता सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार लोकतंत्र वास्तविक अर्थ प्रत्येक व्यक्ति की समान सहभागिता है न कि मात्र सरकार को स्थायी बनाए रखना जैसा कि अभिजनवादी अथवा बहुलवादी सिद्धान्तकार मान लेते हैं। सच्चे लोकतंत्र का निर्माण तभी हो सकता है जब नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हों और सामूहिक समस्याओं में निरंतर अभिरूचि लेते रहें। सक्रिय सहभागिता इस लिए आवश्यक है ताकि समाज की प्रमुख संस्थाओं के पर्याप्त विनिमय हो और राजनीतिक दलों में अधिक खुलापन और उत्तरदायित्व के भाव हों।

- सहभागी लोकतंत्र के सिद्धान्तकारी के अनुसार यदि नीतिगत निर्णय लेने का जिम्मा केवल अभिजन वर्ग तक सीमित रहता है तो उसके लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप बाधित होता है। इसलिए वे इसमें आम आदमी की सहभागिता की वकालत करते हैं। उनका मानना है कि यदि लोकतांत्रिक अधिकार कागज के पन्नों अथवा संविधान के अनुच्छेदों तक ही सीमित रहे तो उन अधिकारों का कोई अर्थ नहीं रह जाता अतः सामान्य लोगों द्वारा उन अधिकारों को वास्तविक उपभाग किया जाना आवश्यक है।
- लोकतंत्र राज्य का एक स्वरूप है और वर्ग—विभाजित समाज में सरकार अधिनायकवादी और लोकतांत्रिक दोनों होती है। यह एक वर्ग के लिए लोकतंत्र है तो दूसरे के लिए अधिनायकवाद। बुर्जुआ वर्ग चुंकि अपने हित साधन में पूंजीवादी प्रणाली को नियंत्रित और संचालित करता है इसलिए उसे सत्ता से बेदखलकर समाजवादी लोकतंत्र को स्थापित करना आवश्यक है।

4.2 राजनीतिक दल के कार्यः– राजनीतिक दल क्या करते है? मूलतः राजनीतिक दल राजनीतिक पदों को भरते हैं और राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल करते हैं। दल इस काम को कई तरह से करते हैं–

1. दल चुनाव लड़ते हैं। अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में चुनाव राजनीतिक दलों द्वारा खड़ा किए गए उम्मीदवारों के बीच लड़ा जाता है। राजनीतिक दल उम्मीदवारों का चुनाव कई तरीकों से करते हैं। अमरीका जैसे कुछ देशों में उम्मीदवार का चुनाव दल के सदस्य और समर्थक करते हैं। अब इस तरह से उम्मीदवार चुनने वाले देशों की संख्या व कुछ बुनियादी राय तक समेट लाती हैं जिनका वे समर्थन करती हैं। सरकार प्रायः शासक दल की राय के अनुरूप अपनी नीतियाँ तय करती है।

2. पार्टियाँ देश कानून निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। कानूनों पर औपचारिक बहस होती है और उन्हें विधायिका में पास करवाना पड़ता है लेकिन विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी ने किसी दल के सदस्य होते हैं। इस कारण वे अपने दल के नेता के निर्देश पर फेसला करते हैं।

3. दल ही सरकार बनाते और चलाते हैं। अगर दल न हों तो सारे उम्मीदवार स्वतंत्र या निर्दलीय होंगे। तब इनमें से कोई भी बड़े नीतिगत बदलाव के बारे में लोगों से चुनावी वायदे करने की स्थिति में नहीं होगा। सरकार बन जाएगी पर उसकी उपयोगिता संदिग्ध होगी। निर्वाचित प्रतिनिधि सिर्फ अपने निर्वाचन क्षेत्रों में किए गए कामों के लिए जवाबदेह होंगे। लेकिन देश चलाने के लिए कोई उत्तरदायी नहीं होगा। हम गैर–दलीय आधार पर होने वाले पंचायत चुनावों का उदाहरण सामने रखकर भी इस बात की परख कर सकते हैं। हालांकि इन चुनावों में दल औपचारिक रूप से अपने उम्मीदवार नहीं खड़े करते लेकिन हम पाते है कि चुनाव वेफ अवसर पर पूरा गाँव कई खेमों में बँट जाता है और हर खेमा सभी पदों वेफ के लिए अपने उम्मीदवारों का ''पैनल उतारता है। राजनीतिक दल भी ठीक यही काम करते हैं। यही कारण है कि हमें दुनिया वेफ लगभग सभी देशों में राजनीतिक दल नजर आते हैं चाहे वह देश बड़ा हो या छोटा नया हो या पुराना विकसित हो या विकासशील । राजनीतिक दलों का उदय प्रतिनिधित्व पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था वेफ उभार वेफ साथ जुड़ा है।

4.2.6 राजनीतिक दल :– लोकतंत्र में नागरिकों का कोई भी समूह राजनीतिक दल बना सकता है। इस औपचारिक अर्थ में सभी देशों में बहुत सी राजनीतिक दल हैं। भारत में ही चुनाव आयोग में नाम पंजीकृत कराने वाले दलों की संख्या 750 से ज्यादा है। लेकिन, हर दल चुनाव में गंभीर चुनौती देने की स्थिति में नहीं होता। चुनाव जीतने और सरकार बनाने की होड़ में आमतौर पर कुदेक पार्टियाँ ही सक्रिय होती है। ऐसे में सवाल यह विश्व वेक संघीय व्यवस्था वाले लोकतंत्र में दो तरह के राजनीतिक दल हैं: संघीय इकाइयों में से सिर्फ

एक इकाई में अस्तित्व रखने वाले दल और अनेक या संघ की सभी इकाइयों में अस्तित्व रखने वाले दल। भारत में भी यही स्थिति है। कई पार्टीयाँ पूरे देश में फेली हुई हैं और उन्हें राष्ट्रपति पार्टी कहा जाता है। इन दलों की विभिन्न राज्यों में इकाइयाँ हैं। पर कुल मिलाकर देखें तो वे सारी इकाइयाँ राष्ट्रीय स्तर पर तय होने वाली नीतियों, कार्य{मों और रणनीतियों को ही मानती हैं। देश की हर पार्टी को निर्वाचन आयोग में अपना पंजीकरण कराना पड़ता है। आयोग सभी दलों को समान मानता है पर यह बड़े और स्थापित दलों को विशेष सुविधाएँ देता है। इन्हें अलग चुनाव चिहन दिया जाता है जिसका प्रयोग पार्टी का अधिकृत उम्मीदवार ही कर सकता है। इस विशेषाधिकार और कुछ अन्य लाभ पाने वाली पार्टियों को मान्यता प्राप्त दल कहते हैं। चुनाव आयोग ने स्पष्ट नियम बनाए हैं कि कोई दल कितने प्रतिशत वोट और सीट जीतकर मान्यता प्राप्त दल बन सकता है। जब कोई पार्टी राज्य विधानसभा के चुनाव में पड़े कुल मतों का 6 फीसदी या उससे अधिक हासिल करती है और कम से कम दो सीटों पर जीत दर्ज करती है तो उसे अपने राज्य के राजनीतिक दल के रूप में मान्यता मिल जाती है। अगर कोई दल लोकसभा–चुनाव में पडे कुल वोट का अथवा चार राज्यों के विधान सभाई चुनाव में पड़े कुल वोटों का 6 प्रतिशत हासिल करता है और लोकसभा के चुनाव में कम से कम चार सीटों पर जीत दर्ज करता है तो उसे राष्ट्रीय दल की मान्यता मिलती है। इस वर्गीकरण के हिसाब से 2017 में देश में सात दल राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त थे।

(1) ऑल इंडिया तृणमूल काँग्रेसः– यह 1 जनवरी 1998 को ममता बनर्जी के नेतृत्व में बनी। इसे 2016 में राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। 'पुष्प और तृण' पार्टी का प्रतीक है। 2014 में हुए आम चुनाव में इसे 3.84 वोट मिले और 34 सीटों पर जीत हासिल हुई, जिससे लोकसभा में यह चौथी सबसे बड़ी पार्टी बन गई।

(2) कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया–मार्क्ससिस्ट सीपीआईः– 1964 में स्थापितमार्क्सवाद–लेनिनवाद में आस्था। समाजवाद धर्मनिपेक्षता और लोकतंत्र की समर्थक तथा साम्राज्यवाद और सांप्रदायिकता की विरोधी यह पार्टी भारत में सामाजिक–आर्थिक न्याय का लक्ष्य साधने में लोकतांत्रिक चुनावों को सहायक और उपयोगी मानती है। पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा में बहुत मजबूत आधर। गरीबों, कारखाना मजदूरों, खेतिहर मजदूरों के बीच अच्छी पकड़। यह पार्टी देश में पूँजी और सामानों की मुक्त आवाजाही की अनुमति देने वाली नयी आर्थिक नीतियों की आलोचक है। पश्चिम बंगाल में लगातार 34 वर्षों से शासन में रही। 2014 के चुनाव में इसने करीब 3 फीसदी वोट और लाकसभा की 9 सीटें हासिल की।

(3) इंडियन नेशनल काँग्रेसः– इसे आमतौर पर काँग्रेस पार्टी कहा जाता है और यह दुनिया के सबसे पुराने दलों में से एक है। 1885 में गठित इस दल में कई बार विभाजन हुए हैं।

आजादी के बाद राष्ट्रीय और क्षेत्रीय स्तर पर अनेक दशकों तक इसने प्रमुख भूमिका निभाई है। जवाहरलाल नेहरू की अगुवाई में इस दल ने भारत के एक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने का प्रयास किया। 1971 तक लगातार और फिर 1960 से 1989 तक इसने देश पर शासन किया। 1989 के बाद से इस दल के जन–समर्थन में कमी आई।

(4) क्षेत्रीय दलः– इन सात पार्टियों के अलावा अन्य सभी प्रमुख दलों को निर्वाचन आयोग ने राज्यकीय दल के रूप में मान्यता दी है। आमतौर पर इन्हें क्षेत्रीय दल कहा जाता है पर यह जरूरी नहीं है कि अपनी विचारधारा या नजरिये में ये पार्टियाँ क्षेत्रीय ही हों। इनमें से कुछ अखिल भारतीय दल हैं पर उन्हें कुछ क्षेत्रों में ही सफलता मिल पाई है। समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल का राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संगठन है औ इनकी कई राज्यों में इकाइयाँ हैं। बीजू जनता दल, सिक्किम लोकतांत्रिक मोर्चा, मि.जो. नेशनल प्रंफट और तेलगांना राष्ट्र समिति जैसी पार्टियाँ अपनी क्षेत्रीय पहचान को लेकर सचेत है। पर अभी यह पूरे देश और समाज के सभी वर्गों में अपना आधर बनाए हुए हैं। अपने वैचारिक रूझान में मध्यमार्गीय वामपंथी न दक्षिणपंथी इस दल ने धर्मनिरपेक्ष और कम जोर वर्गों तथा अल्पसंख्यक समुदायों के हितों को अपना मुख्य अजेंडा बनाया है। यह दल नयी आर्थिक नीतियों का समर्थक है पर इस बात को लेकर भी सचेत है कि इन नीतियों का गरीब और कमजोर वर्गों पर बुरा असर न पड़े। 2004 से 2014 तक संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन का नेतृत्व । 2014 के लोकसभा चुनाव में यह पार्टी पराजित हुई ।

(5) बहुजन समाज पार्टीः– स्वः काशीराम के नेतृत्व में 1984 में गठन। बहुजन समाज जिससे दलित, आदिवासी, पिछड़ी जातियाँ और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल है, के लिए राजनैतिक सत्ता पाने का प्रयास और उनका प्रतिनिधित्व करने का दावा, पार्टी साहू महाराज, महात्मा फुले, पेरियार रामास्वामी।

(6) नेशनलिस्ट कॉंग्रेस पार्टीः– कॉंग्रेस पार्टी में विभाजन के बाद 1999 में यह पार्टी बनी। लोकतंत्र, गांधीवादी धर्मनिरपेक्षता, समता, सामाजिक न्याय और संघवाद में आस्था। यह पार्टी सरकार के प्रमुख पदों को सिर्फ भारत में जन्मे नागरिकों के लिए आरक्षित करना चाहती है। महाराष्ट्र में प्रमुख ताकत होने के साथ ही यह मेघालय, मणिपुर और असम में भी ताकतवर है। कॉंग्रेस के साथ महाराष्ट्र सरकार में भागीदार। 2004 से संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन में साझीदार।

राजनीतिक दलों के लिए चुनौतियाँः– हमने देखा है कि लोकतंत्र के कामकाज के लिए राजनीतिक पार्टियों कितनी महत्वपूर्ण हैं। चूँकि दल ही लोकतंत्र का सबसे यादप्रकट रूप हैं,

इसलिए यह स्वाभाविक है कि लोकतंत्रा के कामकाज की गड़बड़ियों के लिए लोग राजनीतिक दलों को ही दोषी ठहराएँ। पूरी दुनिया में लोग इस बात से नाराज रहते हैं कि राजनीतिक दल अपना काम ठभीक ढंग से नहीं करते। हमारे लोकतंत्र के साथ भी यही बात लागू होती है। आम जनता की नाराजगी और आलोचना राजनीतिकदलों के कामकाज के चार पहलुओं पर ही केंद्रित रही है। लोकतंत्र का प्रभावी उपकरण बने रहने के लिए राजनीतिक दलों को इन चुनोतियों का समाना करन चाहिए और इन पर जीत हासिल करनी चाहिए। पहली चुनौती है पार्टी के भीतर आंतरिक लोकतंत्र का न होना। सारी दुनिया में यह प्रवृत्ति बन गइ है कि सारी ताकत एक या कुछ के नेताओं के हाथ में सिमट जाती हैं। पार्टियों के पास न सदस्यों की खुली सूची होती है, न नियमित रूप से संगठित बैठके होती हैं। इनके आंतरिक चुनाव भी नहीं होते। काग्रकर्ताओं से वे सूचनाओं से वे सूचनाओं का साझा भी नहीं करते। सामान्य कार्यकर्ता अनजान ही रहता है कि पार्टी के अंदर क्या चल रहा है। उसके पास न तो नेताओं से जुड़कर फेसलों को प्रभावित करने की ताकत होती है नह ही कोई और माध्यम। परिणामस्वरूप पार्टी के नाम पर सारे फेसले लेने का अधिकार उस पाट्री के नेता हथियार लेते हैं। चूँकि कुछ नेताओं के पास ही असली ताकत होती है इसलिए जो उनसे असहमत होते हैं उनका पार्टी में टिक रह पाना मुश्किल हो जाता है। पार्टी के सिद्धांतों और नीतियों से निष्ठा की जगह नेता से निष्ठा ही याद महत्वपूर्ण बन जाती है। दूसरी चुनौती पहली चुनौती से ही जुड़ी है यह है वंशवाद की चुनौती । चूँकि अधिकांश दल अपना कामकाज पारदर्शी तरीके से नहीं करते इसलिए सामान्य कार्यकर्ता के नेता बनने और ऊपर आने की गुंजाइश काफी कम होती हैं जो लोग नेता होते हैं वे अनुचित लाभ लेते हुए अपने नजदीकी लोगों और यहाँ तक कि अपने ही परिवार के लोगों को आगे बढ़ाते हैं। अनेक दलों में शीर्ष पद पर हमेशा एक ही परिवार के लोग आते हैं यह दल के अन्य सदस्यों के साथ अन्याय है। यह बात लोकतंत्र के लिए भी अच्छी नहीं है क्योंकि इससे अनुभवहीन और बिना जनाधर वाले लोग ताकत वाले पदों पर पहुँच जाते हैं यह प्रवृत्ति कुछ प्राचीन लोकतांत्रिक देशों सहित बेशक पूरी दूनिया में दिखाई देती है। तीसरी चुनौती दलों में, खासकर चुनाव के समय पैसा और अपराधों तत्वों की बढ़ती घुसपैठ की है। चूँकि पार्टियों की सारी चिंता चुनाव जीतने की होती है अतः इसके लिए कोई भी जायज–नाजायज तरीका अपनाने से वे परहेज नहीं करती। वे ऐसे ही उम्मीदवार उतारती हैं जिनके पास काफी पैसा हो या जो पैसे जुटा सकें। किसी पार्टी को ज्यादा धन देने वाली कंपनियाँ और अमीर लोग उस पार्टी की नीतियों और फेसलों को भी प्रभावित करते हैं। कई बार पार्टियाँ चुनाव जीत सकने वाले अपराधियों का समर्थन करती हैं या उनकी मदद लेती है। दुनिया भर में लोकतंत्र के समर्थक लोकतांत्रिक राजनीति में अमीर लोग और बड़ी कंपनियों की बढ़ती भूमिका को लेकर चिंतित हैं। चौथी चुनौती पार्टियों के बीच विकल्पहीनता की स्थिति की हैं। सार्थक विकल्प का मतलब होता है कि विभिनन पार्टियों की नीतियों और कार्य{मों में महतवपूर्ण अंतर हो। हाल के वर्षों में दलों के बीच वैचारिक अंतर कम होता गया

है और यह प्रवृत्ति दुनिया–भर में दिखती है। जैसे, ब्रिटेन की लेगर पाटी और कंजरवेटिव पार्टी के बीच अंतर बस ब्यौरों का रह गया है कि नीतियाँ कैसे बनाइ जाएँ और उन्हें फेसले लागू किया जाए । अपने देश में भी सभी बड़ी पार्टियों के बीच आर्थिक मसलों पर बड़ा कम अंतर रह गया है। जो लोग इससे अलग नीतियाँ चाहते हैं उनके लिए कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है। कई बार लोगों के पास एकदम नया नेता चुनने का विकल्प भी नहीं होता क्योंकि वहीं थोड़े से नेता हर दल में आते–जाते रहते हैं।

दलों को कैसे सुधारा जा सकता है?

इन चुनौतियों का सामना करने के लिए जरूरी है कि राजनीतिक दलों में सुधार हो। ऐसे में सवाल यह उठता है कि क्या राजनीतिक दल सुधरने को तैयार हैं? अगर वे तैयार नहीं हैं तो क्या उन्हें सुधरने को मजबूर किया जा सकता है? दुनिया–भर के नागरिक इन सवालों को लेकर परेशान हैं। ये ऐसे सवाल हैं जिनका जवाब आसान नहीं हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में आखिरी फेसला राजनेता ही करते हैं जो विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोग उनकी बदल सकते हैं परउनकी जगह फिर नए नेता ही लेते हैं। अगर वे सभी सुधरना नहीं चाहते हैं तो कोई उनको सुधरने के लिए कैसे मजबूर कर सकता है? आइए अपने देश में राजनीतिक दलों और इसके नेताओं को सुधरने के लिए हाल में जो प्रयास किए गए हैं या जो सुझाव दिए गए हैं उन पर गौर करें। विधायकों और सांसदों को दल –बदल करने से रोकने के लिए संविधान में संशोधन किया गया। निर्वाचित प्रतिनिधियों के मंत्रीपद या पैसे के लाभ में दल–बदल करने में आई तेजी को देखते हुए ऐसा किया गया । नण कानून के अनुसार अपना दल–बदलने वाले सांसद या विधायक को अपनी सीट भी गँवानी होगी। इस नए कानून से दल–बदल में कमी आई है पर इससे पार्टी में विरोध का कोई स्वर उठाना और भी मुश्किल हो गया है पार्टी नेतृत्व जो कोई फेसला करता है, सांसद और विधायक को उसे मानना ही होता है।

उच्चतम न्यायालय ने पैसे और अपराधियों का प्रभाव कम करने के लिए एक आदेश जारी किया है। इस आदेश के द्वारा चुनाव लड़ने वाले हर उम्मीदवार को अपनी संपत्ति का और अपने खिलाफ चल रहे आपराधिक मामलों का ब्यौरा एक शपथपत्र के माध्यम से देना अनिवार्य कर दिया गया है। इस नयी व्यवस्था से लोगों को अपने उम्मीदवारों के बारे में बहुत सी पक्की सूचनाएँ उपलब्ध होने लगी हैं, पर उम्मीदवार द्वारा दी गई सूचनाएँ सही हैं या नहीं, यह जाँच करने की कोई व्यवस्था नहीं हैं। अभी तक हम यह बात भरोसे से नहीं कह सकते कि इस व्यवस्था के बन जाने के बाद से राजनीति पर अमीरों और अपराधियों का प्रभाव घटा है या नहीं। चुनाव आयोग ने एक आदेश के जरिए सभी दलों के लिए संगठित चुनाव कराना और आयकर का रिटर्न भरना जरूरी बना दिया है। दलों ने ऐसा करना शुरू भी कर दिया है, पर कई बार ऐसा सिर्फ खानापूरी करने के लिए होता है। यह बात अभी नहीं कही जा सकती

कि इससे राजनीतिक दलों में अंदरूनी लोकतंत्र मजबूत हुआ है। इनके अलावा राजनीतिक दलों में सुधार के लिए अक्सर कई कदम सुझाए जाते हैं। राजनीतिक दलों के आंतरिक कामकाज को व्यवस्थित करने के लिए कानून बनाया जाना चाहिए। सभी इन अपने सदस्यों की सूची रखें, अपने संविधान का पालन करें पार्टी के लिए खुला चुनाव कराएँ यह व्यवस्था अनिवार्य की जानी चाहिए। राजनीतिक दल महिलाओं को एक खास न्यूनतम अनुपात में करीब एक तिहाइ्र बद्ध जरूर टिकट दें। इसी प्रकार दल के प्रमुख पदों पर भी औरतों के लिए आरक्षण होना चाहिए।

चुनाव का खर्च सरकार उठाए। सरकार दलों को चुनाव लड़ने के लिए धन दे। यह मदद पेट्रोल कागज, फोन, बगैर के रूप में भी हो सकती है या फिर पिछले चुनाव में मिले मतों के अनुपात में नकद पैसा दिया जा सकता है।

राजनीतिक दलों ने अभी तक इन सुझावों को नहीं माना है। अगर इन्हें मान लिया गया तो संभव है कि इनसे कुछ सुधार हो। लेकिन हर राजनीतिक समस्या के लिए महान कानूनी समाधन की बात करते हुए हमें सावधान रहना चाहिए। दलों को जरूरत से ज्यादा नियमों से जकड़ना नुकसानदेह भी हो सकता है। इससे सभी दल कानून को दर किनार करने का तरीका ढूँढने लगेंगे। इसके अलावा राजनीतिक दल खुद भी ऐसा कानून पासक रने पर सहमत नहीं होंगे जिसे वे पसंद नहीं करते। दो और तरीके हैं जिनसे दबाव बनाने का यह काम चिटिठ्याँलिखने, प्रचार करने और आंदोलनों के जरिये किया जा सकता हे। आम नागरिक दबाव समूह, आंदोलन और मीडिया के माध्यम से यह काम किया जा सकता हैं अगर दलों को लगे कि सुधार न करने से उनका जनाधार गिरने लगेगा या उनकी छवि खराब होगी तो इसे लेकर वे गंभीर होने लगेंगे। सुधार का दूसरा तरीका हैं सुधार की इच्छा रखने वालों का खुद राजनीतिक दलों में शामिल होना। लोकतंत्र की गुणवत्ता लोकतंत्र के लोगों की भागीदारी से तय होती है। अगर आम नागरिक खुद राजनीति में हिस्सा न लें और बाहर से ही बातें करते रहें तो सुधर मुश्किल है। खराब राजनीति का समाधान है ज्यादा से ज्यादा राजनीति और बेहतर राजनीति। हम इस बात की चर्चा फिर से आखिरी अध्याय में करेंगे।

बहुजन समाज पार्टीः— स्वः काशीराम के नेतृत्व में 1984 में गठन हुआ। बहुजन समाज जिसमें दलित, आदिवासी, पिछड़ी जातियाँ धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल हैं जिनके द्वारा राजनीतिक सत्ता पाने का प्रयास और उनका प्रतिनिधित्व करने का दावा। पार्टी, साहू, महाराज, महात्मा फुल्ले, पेरियार रामास्वामी नायकर और बाबा साहब अंबेडकर के विचारों और शिक्षाओं से प्रेरणा लेती हैं। दलितों और कमजोर वर्ग के लोगों के कल्याण और उनके हितों की रक्षा के मुद्दों पर सबसे ज्यादा सक्रिय इस पार्टी का मुख्य आधार उत्तर प्रदेश में है, पर मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड , दिल्ली और पंजाब में भी यह पार्टी पर्याप्त ताकतवर है। अलग—अलग पार्टियों से अलग—अलग अवसरों पर समर्थन लेकर इसने उत्तर प्रदेश में चार

बार सरकार बनाई। इस दल को 2014 के लोकसभा चुनाव में करीब 4 फीसदी वोट मिले, लेकिन एक भी सीट नहीं मिली।

भारतीय जनता पार्टीः— पुराने भारतीय जन संघ के जिसे श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने 1961 में गठित किया, पुनजीवित करके 1980 में यह पार्टी बनी। भारत की प्राचीन संस्कृति और मूल्य दीनदयाल उपाध्याय के विचार—समग्र मानवतावाद एवं अंत्योदय से प्रेरणा लेकर मजबूत और आधुनिक भारत बनाने का लक्ष्य भारतीय राष्ट्रवाद और राजनीति की इसकी अवधारणा दर्जा देने के खिलाफ है। यह देश में रहने वाले सभी धर्म के लोगों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने और धर्मांतरण पर रोक लगाने के पक्ष में है। 1990 के दशक में इसके समर्थन का आधार काफी व्यापक हुआ। पहले देश के उत्तरी और पश्चिमी तथा शहरी इलाकों तक ही सिमटी रहने वाली इस पार्टी ने इस दशक में दक्षिण, पूर्व, पूर्वोत्तर तथा देश के ग्रमीण इलाकों में अपना आधार बढ़ाया। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेता की हैसियत से यह पाटी 1998 में सत्ता में आई। गठबंधन में कई क्षेत्रीय दल शामिल थे। 2014 में हुए लोकसभा चुनाव में 282 सीटें जीतकर सबसे बड़े दल के रूप में उभरी । अभी केंद्र में शासन करने वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन को नेतृत्व यही दल कर रहा है।

विकेंद्रीकरण और पंचायती राज (विशेष रूप से 73वें और 74वें संशोधन के माध्यम से):—

प्रस्तावन— भारत में पचायती राज व्यवस्था प्राचीन संस्था है। तत्कालीन पंचायत व्यवस्था का स्वरूप गाँवों में कुछ प्रमुख व्यक्तियों को पंच बनाकर सामाजिक समस्याओं का निदान करने से सम्बन्धित थी। भारत प्राचीन काल से ही ग्रामीण संस्कृति का पोशाक रहा है। पंचायती राज व्यवस्था लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का ही नहीं अपितु लोकतंत्र के विचार का भी विस्तारित रूप है। सम्पूर्णता, सामूहिकता, सामुदायिक सद्भाव स्वावलम्बन एवं स्वशासन पर आधारित परिकल्पना भारत की सनातन जीवन रचना में ही थी। अमने लोकतंत्र सर्वमत समादर और राज समाज के तत्व पश्चिम से ही नहीं सीखें है। लोकतांत्रिक मूल्य और पंचायती राज व्यवस्था जैसे तत्व भारतीय सामाजिक ढाँचें में अनादि काल से ही विद्यमान है

लोकतन्त्र का सही अर्थ है, जनता की महत्ता और उनकी सर्वोच्चता अर्थात् लोकराज जिसकी धुरी है, पंचपरमेश्वर की भारतीय मौलिक अवधारणा पर आधारित सुदृढ़ स्वस्थ एवं विकासोन्मुख पंचायती राज व्यवस्था। भारत जनसंख्या की दृष्टि से द्वितीय तथा क्षेत्रफल के हिसाब से विश्व में सातवाँ स्थान रखता है। यहाँ की संस्कृति विभिन्नता में एकता को अपने आप में समेटे हुए हैं। ऐसे विविधतापूर्ण एवं विशाल भू—खण्ड वाले राष्ट्र के शासन व्यवस्था के संचालन एवं विशाल भूखण्ड वाले राष्ट्र के शासन व्यवस्था के संचालन एवं सत्ता में विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को अनिवार्य आवश्यकता रही है। जनता की भावनाओं को दृष्टिगत रखते

हुए लोकतंत्र की प्रथम सीढ़ी पंचायतों को सुदृढ़ एवं प्रभावशाली बनाने तथा पंचायतों को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से 1992 में 73वाँ संवैधानिक संशोधन भारत सरकार द्वारा पारित किया गया। जिसके द्वारा समय से निर्वाचन की व्यवस्था हेतु पृथक राज्य पंचायत निर्वाचन आयोग का गठन वित्तीय संसाधन के लिए लग वित्त आयोग की स्थापना का प्रावधान तथा पंचायतों में सभी वर्गों तथा अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग वएं महिलाओं के उचित प्रतिनिधित्व हेतु स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था की गयी। जिसके अनुपालन में तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण हेतु उत्तर प्रदेश शासन ने उत्तर पद्रश पंचायत राज अधिनियम संशोधन विधेयक पारित करके पंचायतों को सीधे सत्ता का हस्तान्तरण किया। स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने भारत के ग्रामीण विकास में नागरिकों की सहभागिता के लिए देश में ब्लाक मॉडल को अपनाया। भारत में सन् 1952 से 1957 तक ब्लाक विकास अधिकारी ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलायें, जिसमें जनता की अल्प–सहभागिता अंकित की गई इसकी प्रणाली तथा उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए त्वरित ग्रामीण विकास के लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम एवं व्यवस्था पर विचार विमर्श करने के लिए भारत सरकार ने बलबन्त राय मेहता की अध्यक्षता में सन् 1956 में एक समिति का गठन किया। बलबन्त राय मेहता समिति ने अपनी संस्तुतियाँ सन् 1957 में सरकार को दें दी। बलवन्त राय मेहता समिति ने सभी राज्यों के लिए कोई दृढ़ स्वरूप लागू करने के लिए नहीं कहा, अपितु इस प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण नाम देकर संस्तुतियाँ प्रस्तुत की जिसमें स्थानीय स्वशासन को गाँव से लेकर जिला स्तर तक परस्पर सम्बद्ध त्रिस्तरीय रचना की बात कहीं। स्थानीय प्रशासन की इन संस्थाओ ंको प्रशासन की वास्तविक भक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व प्रदान करना चाहिए। इन संस्थाओं को पर्याप्त संसाधन दिये जोन चाहिए जिससे यह अपना उत्तरदायित्व प्रदान करना चाहिए। इन संस्थाओं को पर्याप्त संसाधन दिय जोन चाहिए जिससे यह अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकें। विभिन्न आयोजनों के द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्य{मों को इन संस्थाओं के माध्यम से चलाया जाना चाहिए। इस नयी व्यवस्था को लागू करके देखना चाहिए तथा भविष्य में अधिक कार्य शक्ति एवं उत्तरदायित्व को सौंपने का कार्य करना चाहिए।

12 जनवरी 1998 को राष्ट्रीय विकास परिषद ने बलवन्त राय मेहता की प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिशें को स्वीकार करते हुए राज्यों से कार्यान्वित करने के लिए कहा। सर्वप्रथम आंध्रप्रदेश में प्रयोग के विचार से अगस्त 1958 से कुछ भागों में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण को लागू किया गया।

2 अक्टुबर 1959 में पं. जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण योजना का श्रीगणेश किया और इसी बिन्दु से सम्पूर्ण राजस्थान में लागू कर दिया गया । इस लोकतांत्रिक विकेंन्द्रीकरण को ही पंचायती–राज कहा जाने लगा। इसे लागू करने वाला राजस्थान प्रथम राज्य है। पंचायती राज को अधिक प्रभावशाली कनाने के लिए

जनता पार्टी की सरकार ने सन् 1978 में सरकार को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत कर दिया, जिसमें पंचायती राज संस्थाओं को त्रि–स्तरीय संगठन के स्थान पर त्रि–स्तरीय पंचायत होने की बात कही गई पंचायती राज संस्थाओं को करारोपरण की भक्ति अनिवार्य रूप से प्रदान करनी चाहिए। राज्य सरकारें राजनैतिक आधार पर पंचायती राज संस्थाओं का विघटन न करें। पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव में राजनीतिक दलों को भाग लेना चाहिए। सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा तथा सम्बर्द्धन के लिए मानीटरिंग फोरम का निर्माण करना चाहिए। अशोक मेहता समिति ने बलवन्त राय मेंहता समिति के प्रावधानों में कुछ परिवर्तन किया परन्तु सरकार ने इसकी दूसरी एक भी सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया। सन् 1986 में सिंघवी समिति ने पंचायतों के नियमित चुनाव का सुझाव दिया। 1989 में सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं में सुधार लाने के लिए 64वॉ संविधान संशोधन विधेयक पारित करने का प्रयास किया जो पारित किया जो पारित नहीं हो सका। लगभग चार वर्ष के बाद संसद ने बाहरी तथा ग्रामीण स्तर पर सत्ता में जनता की सीधी भागीदारी सुनिचित करने के लिए पंचायतों एवं बाहरी संस्थाओं से सम्बन्धित दो ऐतिहासिक विधयेक सर्व सम्मति से पारित कर दिये। पंचायती राज सम्बन्धी संविधान के 73वें संशोधन तथा नगर निकाय सम्बन्धी 74वें संशोधन को संसद में बिना किसी बहस के सर्वसम्मति से पारित कर दिया था। समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुरूप विधेयक में संशोधन सरकार ने भी स्वीकार कर लिये। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्व. राजीव गाँधी और बाद में श्री पी.बी. नरसिन्हो राव की सरकारों ने इन विधेयकों को अलग–अलग रूपों में पेश किया था।

क्षेत्र पंचायत के सदस्यों का चुनाव ग्रामीण जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है। सदस्य क्षेत्र प्रमुख का चुनाव करते हैं । प्रमुख न केवल क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाता है अपितु इसका सभापतित्व भी कराता है। खण्ड विकास अधिकारी क्षेत्र पंचायत के प्रशासनिक नियंत्रण में कार्य करता हैं इस नवीन व्यवस्था में मुख्यतः स्वायत शासन की निम्नलिखित विशिष्टताएँ परिलक्षित होती है। प्रत्येक पंचायत की अवधि केवल पाँच वर्ष की होती है, प्रति पाँच वर्ष बाद पुनः निर्वाचन होगा, इसी के साथ ही अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। प्रशासन के कुछ विषय पंचायती राज संस्थाओं को प्रदत्त किये गये है। इनमें मुख्यतः कृषि पशुधन सिंचाई ग्रामीण आवास, शिक्षा, लघु, उद्योग, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम आदि है। नवीन पंचायती राज व्यवस्था लगभग 16 वर्ष पूर्व पूरा करने जा रही है और इसका सुखद परिणाम यह है कि भारत में अनादि काल से चली आ रही पंचायती राज व्यवस्था को नया स्वर और स्वरूप मिला है देश भर की पंचायतों में लगभग 30 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि है जिसमें 10 लाख महिलाएँ कार्यरत है। यह एक विशाल राष्ट्रीय उपलब्धि है।

4.3.2 पंचायती राजः– व्यवस्था में ग्राम, तालुका और जिला आते है। भारत में प्राचीन काल से ही पंचायती राज व्यवस्था अस्तित्व में रही हैं। आधुनिक भारत में प्रथम बार तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले के बगदरी गाँव में 2 अक्टूबर 1959 को पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई।

4.3.3 संवैधानिक प्रावधानः–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है। 1991 में संविधान में 63वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 करके पंचायत राज संस्था को संवैधानिक मान्यता दे दी गयी है।

- बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशें (1957)
- अशोक मेहता समिति की सिफारिशें (1977)
- पी वी के राव समिति (1985)
- डॉ. एल एम सिन्घवी समिति (1986)
- ग्राम सभा को ग्राम पंचायत के अधीन किसी भी समिति की जाँच करने का अधिकार

4.3.4 पंचायती राजः–

24 अप्रैल 1993 भारत में पंचायती राज के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मार्गचिन्ह था क्योंकि इसी दिन संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा हासिल हुआ और इस तरह महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को वास्तविकता में बदलने की दिशा में कदम बढ़ाया गया था।

73वें संशोधन अधिनियम, 1993 में निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैंः–

1. एक त्रि–स्तरीय ढांचे की स्थापना (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति या मध्यवर्ती पंचायत तथा जिला पंचायत)
2. ग्राम स्तर पर ग्राम सभा की स्थापना
3. हर पांच साल में पंचायतों के नियमित चुनाव
4. अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों का आरक्षण
5. महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटों का आरक्षण
6. पंचायतों की निधियों में सुधार के लिए उपाय सुझाने हेतु राज्य वित्ता आयोगों का गठन

7. राज्य चुनाव आयोग का गठन
8. 73वां संशोधन अधिनियम पंचायतों को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में काम करने हेतु आवश्यक शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करने के लिए राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है। ये शक्तियाँ और अधिकार इस प्रकार हो सकते हैंः

- संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में सूचीबद्ध 29 विषयों के संबंध में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करना और उनका निष्पादन करना।
- कर, डयूटीज, टॉल, शुल्क लगाने और उसे वसूल करने का पंचायतों को अधिकार
- राज्यों द्वारा एकत्र करों, डयूटियों, टॉल और शुल्कों का पंचायतों को हस्तांतरण।

4.3.5 ग्राम सभाः–

ग्राम सभा किसी एक गांव या पंचायत का चुनाव करने वाले गांवों के समूह की मतदाता सूची में शामिल व्यक्तियों से मिलकर बनी संस्था है। गतिशील और प्रबुद्ध ग्राम सभा पंचायती राज की सफलता के केंद्र में होती है।

राज्य सरकारों से आग्रह किया गया है कि वेः–
पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996 में उल्लेखित प्रावधानों के अनुसार ग्राम सभा को शक्तियाँ प्रदान करें।

1. गणतंत्र दिवस, श्रम दिवस, स्वतंत्रता दिवस और गाँधी जयंती के अवसर पर देश भर में ग्राम सभा की बैठकों के आयोजन के लिए पंचायती राज कानून में अनिवार्य प्रावधान शामिल करना।
2. पंचायती राज अधिनियम में ऐसा अनिवार्य प्रावधान जोड़ना जो विशेषकर ग्राम सभा की बैठकों के कोरम, सामान्य बैठकों और विशेष बैठकों तथा कोरम पूरा न हो पाने के कारण फिर से बैठक के आयोजन के संबंध में हो।
3. ग्राम सभा के सदस्यों को उनके अधिकारों और शक्तियों से अवगत कराना ताकि जन भागीदारी सुनिश्चित हो और विशेषकर महिलाओं तथा अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों जैसे सीमांतीकृत समूह भाग ले सकें।
4. ग्राम सभा के लिए ऐसी कार्य–प्रक्रियाएँ बनाना जिनके द्वारा वह ग्राम विकास मंत्रालय के लाभार्थी–उन्मुख विकास कार्यक्रमों का असरकारी ढंग से सामाजिक ऑडिट सुनिश्चित कर सके तथा वित्तीय कुप्रबंधन के लिए वसूली या सजा देने के कानूनी अधिकार उसे प्राप्त हो सकें।
5. ग्राम सभा बैठकों के संबंध में व्यापक प्रसार के लिए कार्य–योजना बनाना।

ग्राम सभा की बैठकों के आयोजन के लिए मार्ग–निर्देश/कार्य–प्रक्रियाएँ तैयार करना। प्राकृतिक संसाधनों, भूमि रिकार्डों पर नियंत्रण और समस्या–समाधान के संबंध में ग्राम सभा के अधिकारों को लेकर जागरूकता पैदा करना।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम ग्राम स्तर पर स्व–शासन की संस्थाओं के रूप में ऐसी सशक्त पंचायतों की परिकल्पना करता है जो निम्न कार्य करने में सक्षम होः

- ग्राम स्तर पर जन विकास कार्यों और उनके रख–रखाव की योजना बनाना और उन्हें पूरा करना।
- ग्राम स्तर पर लोगों का कल्याण सुनिश्चित करना, इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, समुदाय भाईचारा, विशेषकर जेंडर और जाति–आधारित भेदभाव के संबंध में सामाजिक न्याय, झगड़ों का निबटारा, बच्चों का विशेषकर बालिकाओं का कल्याण जैसे मुद्दे होंगे।
- 73वें संविधान संशोधन में जमीनी स्तर पर जन संसद के रूप में ऐसी सशक्त ग्राम सभा की परिकल्पना की गई है जिसके प्रति ग्राम पंचायत जवाबदेह हो।

4.4 जमीनी स्तर पर भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन

4.4.1 प्रस्तावनाः–

19वीं सदी में जबरदस्त बौधिक व सांस्कृतिक उथल–पुथल भारत की एक विशेषता थी। इस काल में हुए धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलन का भारत के इतिहास में विशेष स्थान है। इसके बहुमुखी स्वरूप एवं व्यापकता की दृष्टि से इसे एक महत्त्वपूर्ण घटना माना जा सकता है। इस आंदोलन ने देश के जनजीवन को झकझोर दिया। इसने जहाँ एक ओर धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का आह्मन किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतवासियों के मन में आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की। इन आंदोलनों का प्रभाव यह हुआ कि बीसवीं सदी के आते–आते देशवासी एवं सामाजिक सुधारों के साथ ही अपने राजनीतिक अधिकारों हेतु जागृत हुए। बीसवीं सदी में हुए राजनीतिक आंदोलनों ने धीरे–धीरे सामाजिक और धाख्रमक आंदोलनों को अपने में समाहित कर लिया और बीसवीं सदी तक आते–आते सामाजिक और धाख्रमक आंदोलन अपनी चमक खोने लगे, अब वे राजनीतिक आंदोलनों में समाहित होकर उसके एक भाग के रूप में सामने आने लगे।

जन आंदोलनों की प्रकृति हमारे लोकतंत्र की नींव ही जन आंदोलन के बीच पनपी है। 19वीं और 20वीं सदी के आरम्भिक वर्षो में भारत में किसान आंदोलन,

सामाजिक आंदोलन, राजनैतिक आंदोलन और अन्य कई पर्यावरण सम्बन्धी आंदोलन अपने अधिकारों की मांग के लिए दिनों-दिन जा रहे थे। इसमें न केवल निम्न वर्गीय लोग ही शामिल हुए अपितु मध्यम वर्गीय एवं उच्च वर्गीय लोगों ने भी इसमें बढ़-चढ़ कर भाग लिया और आंदोलनों द्वारा अपने अधिकारों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया।

4.4.1.1 चिपको आंदोलनः-

सत्तर के दशक में बांजों के साथ 'हिम पुत्रियों की सरकार, वन नीति बदले सरकार, वन जागे वनवासी जागे।' रैंणी गांव चमोली के जंगलों में गूंजे ये नारे आज भी सुनाई दे रहे हैं। इस आंदोलन की शुरूआत 1972 से शुरू वनों की अंधाधुध एवं वैध कटाई को रोकने के मुद्‌दे से 1974 में चमोली जिले में गोपेश्वर नामक स्थान पर एक 23 वर्षीय विधवा महिला गौरा देवी द्वारा की गयी थी। इस आंदोलन के तहत वृक्षों की सुरक्षा के लिए ग्रामीणवासियों द्वारा वृक्षों को पकड़कर चिपक जाया जाता था। इसी कारण इसका नाम चिपको आंदोलन पड़ गया। चिपको आंदोलनकारी महिलाओं द्वारा 1977 में एक नारा दिया गया जो काफी प्रसिद्ध हुआ। वह नारा था "क्या है इस जंगल के उपकार मिट्‌टी, पानी और बयार, जिंदा रहने के आधार"।

चिपकों आंदोलन को अपने शिखर पर पहुंचाने में पर्यावरणविद् सुंदर लाल बहुगुणा और चण्ड़ी प्रसाद भट्‌ट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में इस आंदोलन का कार्यक्षेत्र समग्र रूप से पर्यावरण की रक्षा हो गया तथा सुंदर लाल बहुगुणा जी ने "हिमालय बचाओ, देश बचाओ", का नारा दिया। दल आधारित आंदोलन जन आंदोलन कभी सामाजिक तो कभी राजनीतिक आंदोलनों के रूप में उभर कर सामने आते हैं।

ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में सामाजिक-आर्थिक मसलों पर भी चिंतन-मंथन चला, जिससे अनेक स्वतंत्र सामाजिक आंदोलनों का जन्म हुआ जैसे- जाति प्रथा विरोधी आंदोलन, किसान सभा आंदोलन और मजदूर संगठनों के आंदोलन। ये आंदोलन 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में अस्तित्व में आए। कुछ ऐसे आंदोलन जो आजादी के बाद भी चलते रहे, मुम्बई, कोलकाता और कानपुर जैसे बड़े शहरों के औद्योगिक मजदूरों के बीच मजदूर संगठ्नों के आंदोलन का बड़ा जोर था। सभी बड़ी पार्टियों ने इस तब के मजदूरों को लामबंद करने के लिए अपने-अपने मजदूर संगठन बनाये। आजादी के बाद के शुरूआती सालों में आंध्र प्रदेश के तेलगांना क्षेत्र के किसान कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में लामबंद हुए। इन्होंने काश्तकारों के बीच जमीन के पुनर्वितरण की मांग की।

आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा बिहार के कुछ भागों में किसान तथा खेती हर मजदूरों ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में अपना

विरोध जारी रखा। राजनीतिक दलों से स्वतंत्र आंदोलन दलित पैंथर्स जनमानस की दृष्टि में दलित शब्द भारतीय समाज के वंचित वर्ग की जातियों-उपजातियों की सामुदायिक पहचान के रूप में भले ही जाना जाता हो लेकिन ऐतिहासिक सच तो यह है कि दलित विमर्श एवं साहित्य के संदर्भ में दलित शब्द स्वयं में चेतना का प्रतिरूप है। भारत में सत्तरवें दशक के शुरूआती सालों से शिक्षित दलितों की पहली पीढ़ी ने अनेक मंचों से अपने हक की आवाज उठायी। इनमें ज्यादातर शहर की झुग्गी-बस्तियों में पलकर बड़े हुए इस समुदाय ने हमारे समाज में लम्बे समय तक कूरतापूर्ण जातिगत अन्याय को भुगता है।

दलित समुदाय को उनकी पहचान दिलाने के लिए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1924 में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन किया। दलित हितों की दावेदारी के इसी क्रम में दलित पैंथर मुम्बई, महाराष्ट्र में 1972 में गठित एक सामाजिक-राजनीतिक संगठ्न है, जिसने बाद में एक बड़े आंदोलन का रूप ले लिया। नामदेव ढसाल, राजा ढाले व अरूण कांबले इसके आरंभिक व प्रमुख नेताओं में हैं। इसका गठन अफ्रीकी, अमेरिकी ब्लैक पैंथर आंदोलन से प्रभावित होकर किया गया। महाराष्ट्र के विभिन्न इलाकों पर बढ़ रहे अत्याचार से लड़ना दलित पैंथर्स की अन्य मुख्य गतिविधि थी। सरकार ने दलितों पर हो रहे अत्याचारों एवं भारतीय संविधान के अनुच्छेद-17 की अवहेलना के परिणामस्वरूप 1989 में एक व्यापक कानून बनाया। इस कानून के अंतर्गत दलितों पर अत्याचार करने वालों के लिए कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया। दलित पैंथर्स का विचारात्मक अजेंड़ा जाति प्रथा को समाप्त करना तथा भूमिहीन गरीब किसान, शहरी औद्योगिक मजदूर और दलित सहित सारे वंचित वर्गों का एक संगठ्न खड़ा करना था। अन्ततः बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी एम्पलाईजफेडरेशन (बामसेफ) ने दलित पैंथर्स की अवनति से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति की। भारतीय किसान यूनियन (बी.के.यू.) सत्तर के दशक से भारतीय समाज में कई तरह के असंतोष पैदा हुए। समाज के निम्न तबके के लोगों का सरकार व राजनीतिक दालों से मनमुटाव चलता रहा। अस्सी के दशक का कृषक इसका एक उदाहरण है, जब अपेक्षाकृत धनी किसानों ने सरकार की नीतियों का विरोध किया। 1988 के जनवरी में उत्तर-प्रदेश के एक शहर मेरठ से लगभग 2000 किसान जमा हुए। ये किसान सरकार द्वारा बिजली की दर में की गई बढ़ोत्तरी का विरोध कर रहे थे। किसान जिला समाहर्ता के दफ्तर के बाहर तीन हफ्तों तक डेरा डाले रहे। इसके बाद इनकी मांग मान ली गई। किसानों का यह बड़ा अनुशासित धरना था और जिन दिनों वे धरने पर बैठे किसान, बी.के.यू. के सदस्य थे। बी.के.यू. पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और हरियाणा के किसानों का एक अग्रणी संगठ्न था। सरकार द्वारा 1990 के दशक में अपनाई गई उदारीकरण से नकदी फसल के बाजार

को हुई हानि को दूर करने के लिए गन्ने और गेहूं के सरकारी खरीद मूल्य में बढ़ोत्तरी करने, कृषि उत्पादों के अन्तर्राज्यीय आवाजाही पर लगी पाबंदियाँ हटाने, समुचित दर पर गारंटीशुदा बिजली आपूर्ति करने, किसानों के बकाया कर्ज माफ करने तथा किसानों के लिए पेंशन का प्रावधान करने की मांग की। ऐसी मांगे देश के अन्य किसान संगठनों ने भी उठाई। महाराष्ट्र के शेतकारी संगठन ने किसानों के आंदोलन को 'इंडिया की ताकतों (शहरी औद्योगिक क्षेत्र), 'भारत' (ग्रामीण कृषि क्षेत्र) का संग्राम करार दिया।

भारतीय किसान यूनियन की विशेषताऐें

सरकार पर अपनी मांगों को मानने के लिए दबाव डालने में बी0के0यू0 ने रैली, धरना प्रदर्शन और जेल भरो अभियान का सहारा लिया। इन कार्यवाहियों में पश्चिमी उत्तर-प्रदेश और उसके आस-पास के इलाके के गांवों के हजारों किसानों ने भाग लिया। देश की राजधानी दिल्ली में भी बी.के.यू. ने रैली का आयोजन किया। इस संगठन ने जातिगत समुदायों को आर्थिक मसले पर एकजुट करने के लिए जाति-पंचायत की परम्परागत संस्था का उपयोग किया। 1990 के दशक के शुरूआती सालों तक बी0के0यू0 ने अपने को सभी राजनीतिक दलों से दूर रखा लेकिन वर्तमान में यह राजनीति में दबाव समूह के रूप में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

4.4.2 हरित क्रांति-

सरकार ने तीसरी पंचवर्षीय योजना की असफलता के बाद और भारत-चीन युद्ध 1962 तथा भारत-पाकिस्तान युद्ध 1965 के द्वारा हुई हानि की भरपाई के लिए कृषि की एक नई रणनीति अपनाई, इसे हरित क्रांति का नाम दिया गया, यह एक कृषि सुधार कार्यक्रम था। 1966-69 में जब भारत ने हरित क्रांति की नीति अपनाई तो इससे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर-प्रदेश के किसानों को फायदा होना शुरू हो गया। परिणामस्वरूप गेहूं, चावल और दालों के उत्पादन में वृद्धि हुई, तथा गन्ना और गेहूं मुख्य नकदी फसल बने।

1. हरित क्रांति से कृषि में आधुनिक उपकरणों तथा संयंत्रों के उपयोग से पैदावार को बढ़ाया गया।
2. नकदी फसलों की पैदावार को भी बढ़ाकर आर्थिक क्षेत्र में वृद्धि की गई।

नकारात्मक परिणाम-

- हरित क्रांति का प्रभाव केवल कुछ ही फसलों तक सीमित रहा।
- हरित क्रांति का प्रभाव देश के कुछ ही हिस्सों तक सीमित रहा और छोटे क्षेत्र के कृषक भी इससे अछूते रहे।

4.4.3 असम आंदोलन–

आंदोलन का कारण–

सन् 1979 से 1985 तक चला असम आंदोलन बाहरी लोगों के खिलाफ चले आंदोलनों का सबसे अच्छा उदाहरण है। असमी लोगों को संदेह था कि बांग्लादेश से आकर बहुत से मुस्लिम आबादी असम में बसी हुई है। लोगों के मन में यह भावना थी कि इन बाहरी लोगों को पहचानकर उन्हें अपने देश नहीं भेजा गया तो स्थानीय जनता अल्पसंख्यक हो जाएगी। असम में तेल, चाय और कोयला जैसे प्राकृतिक संसाधनों की मौजूदगी के बावजूद व्यापक गरीबी थी। यहां की जनता का मानना था कि असम के प्राकृतिक संसाधन बाहर भेजे जा रहे हैं और असमी लोगों को कोई फायदा नहीं हो रहा है।

1979 में ऑल असम स्टूडेण्ट्स यूनियन ने विदेशियों के विरोध में एक आंदोलन चलाया। 'आसू' एक छात्र संगठन था और इसका जुड़ाव किसी भी राजनैतिक दल से नहीं था। 'आसू' का आंदोलन अवैध प्रवासी, बंगाली और अन्य लोगों के दबदबे तथा मतदाता सूची में लाखों अप्रवासियों के नाम दर्ज कर लेने के खिलाफ था। आंदोलन की मांग थी कि 1951 के बाद जितने भी लोग असम में आकर बसे हैं उन्हें असम से बाहर भेजा जाए। इस आंदोलन को पूरे असम में समर्थन मिला। आंदोलन के दौरान हिंसक और त्रासद घटनाएँ भी हुई। बहुत से लोगों को जान गँवानी पड़ी और धन सम्पत्ति का नुकसान हुआ। आंदोलन के दौरान रेलगाड़ियों की आवाजाही तथा बिहार स्थित बरौनी तेलशोधन कारखाने की तेल आपूर्ति को रोकने की कोशिश की गई। कुछ सालों के बाद राजीव गांधी के नेतृत्व वाली सरकार ने 'आसू' के नेताओं से बातचीत की। इसके परिणामस्वरूप 1985 में एक समझौता हुआ। समझौते के अंतर्गत तय किया गया कि जो लोग बांग्लादेश युद्ध के दौरान अथवा उसके बाद के सालों में असम आए हैं उनकी पहचान की जाएगी और उन्हें वापस भेजा जाएगा। आंदोलन की कामयाबी के बाद 'आसू' और असमगण संग्राम परिषद ने साथ मिलकर अपने को एक क्षेत्रीय राजनैतिक पार्टी के रूप में संगठित किया। इस पार्टी का ना 'असम गण परिषद' रखा गया। असम गण परिषद 1985 में इस वायदे के साथ सत्ता में आई थी कि विदेशी लोगों की समस्या को सुलझा लिया जाएगा और एक 'स्वर्णिम असम' का निर्माण किया जाएगा।

4.4.4 किसान आंदोलन–

भारत में प्राचीनकाल से ही विदेशी आक्रमण होते रहे हैं तथा संपूर्ण मध्यकाल में मुस्लिम शासकों एवं विदेशियों का शासन भी रहा, लेकिन कृषकों पर अत्याचार के

बहुत कम उदाहरण मिलते हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने समय-समय पर भूराजस्व की विभिन्न प्रणालियां आरम्भ की। जिसने कृषकों ने निरन्तर बढ़ते हुए लगान एवं जमीन से बेदखली की घटनाओं को अंजाम दिया, जिसे देखते हुए कृषकों ने विभिन्न मुद्दों पर आंदोलन करना प्रारंभ कर दिया। जो निम्न प्रकार से हैं-

1. **नील विद्रोह** (1859-60)-

   1957 के विद्रोह के प्श्चात् प्रथम संगठित विद्रोह बंगाल में नील की खेती करने वाले किसानों द्वारा हुआ। अंग्रेज अधिकारी बंगाल तथा बिहार के रैयतों से भूमि लेकर बिना पैसा दिये ही रैयतों को नील की खेती करने के लिए विवश करते थे, जबकि किसान अपनी उपजाऊ जमीन पर चावल की खेती करना चाहते थे। इस आंदोलन की शुरूआत 1859 में बंगाल के नादिया जिले के गोविन्दपुर गांव में दिगम्बर विश्वास व विष्णु विश्वास ने किया। दीनबंधु मित्र ने अपनी पुस्तक नील दर्पण में इसका उल्लेख किया है। हिन्दूपैट्रियाट के सम्पादक हरीश चन्द्र मुखर्जी ने नील

2. **चम्पारन में नील सत्याग्रह** (1917)-

   भारत में महात्मा गांधी के नेतृत्व में किया गया प्रथम किसान सत्याग्रह चम्पारन सत्याग्रह था। महात्मा गांधी ने अपना प्रथम सत्याग्रह का प्रयोग दक्षिण अफ्रिका में उस कानून के विरूद्ध किया जिसके अंतर्गत प्रत्येक भारतीय को पंजीकरण प्रमाण पत्र लेना जरूरी था। चम्पारन (बिहार) का मामला बहुत पुराना था। 19वीं सदी के आरम्भ में गोरे बगान मालिक जिस व्यवस्था के अंतर्गत किसानों से नील की खेती करवाते थे, उसे तिनकठिया प्रणाली कहते थे। इसके अंतर्गत किसानों को अपनी जमीन के 3/20वें हिस्से में नील की खेती करना अनिवार्य था।

   19वीं सदी के अंतिम दिनों में जर्मनी में कृत्रिम रासायनिक नील के आविष्कार के फलस्वरूप प्राकृतिक नील की मांग बाजार में कम हो गयी। इसके चलते चम्पारन के चूरोपीय बागान मालिक नील की खेती बंद करने के लिए मजबूर हो गए। 1916 ई0 में लखनऊ में कांग्रेस अधिवेशन के दौरान चम्पारन के एक किसान राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गांधी को चम्पारन आने के लिए आमंत्रित किया। अंत में सरकार ने विवश होकर किसानों की स्थिति का सर्वेक्षण करने के लिए चम्पारन एग्रेरियन कमेटी का गठन किया जिसमें महात्मा गांधी स्वयं एक सदस्य थे। इस कमेटी की सलाह पर सरकार ने तिनकठिया पद्धति को समाप्त कर दिया और किसानों से अवैध रूप से वसूले गए धन का 25 प्रतिशत भाग वापस कर दिया।

3. बारदोली सत्याग्रह (1928)

गुजरात का बारदोली सत्याग्रह पूरे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान सबसे संगठित, व्यापक व सफल कृषक आंदोलन था। कालिपराज (काले लोग) बारदोली तालुका की एक जनजाति थी जिसकी स्थिति दयनीय थी। हाली पद्धति (बंधवा मजदूरी) के अंतर्गत उन्हें उच्च जातियों के यहां पुश्तैनी मजदूर के रूप में कार्य करना पड़ता था। कुंवरजी मेहता व केशवजी गणेश ने कालिपराज साहित्य का सृजन किया तथा हॉली पद्धति के विरूद्ध आवाज उठायी। 1929 के बाद हर वर्ष कालिपराज सम्मेलन का आयोजन होने लगा। 1927 में आयोजित कालिपराज सम्मेलन के अध्यक्ष महात्मा गांधी थे। महात्मा गांधी ने कालिपराज का नाम बदलकर रानीपराज (जंगल के वासी) कर दिया। महात्मा गांधी के सचिव महादेव देसाई ने अपनी पुस्तक 'स्टोरी ऑफ बारदोली' में कालिपराजों को अहिंसक, निश्छल और कानून मानने वाला कहा है। बारदोली सत्याग्रह के समय भारत के वायसराय लार्ड इरविन थे। बल्लभ भाई पटेल ने 4 फरवरी 1928 को बारदोली किसान सत्याग्रह का नेतृत्व संभाला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बल्लभ भाई पटेल स्वतंत्र भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री बने। महिलाओं ने भी इस आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बारदोली सत्याग्रह के दौरान यहां की महिलाओं की ओर से महात्मा गांधी ने बल्लभ भाई पटेल को सरदार की उपाधि प्रदान की। ताड़ी विरोधी आंदोलन आंध्र प्रदेश की महिलाओं ने अपने आस-पड़ोस में मदिरा की बिक्री पर पाबंदी को लेकर एक स्वतः स्फूर्त आंदोलन छेड़ा। वर्ष 1992 के सितम्बर और अक्टूबर माह में इस क्षेत्र की महिलाओं ने शराब माफियाओं के खिलाफ इंकलाब छेड़ दिया। इस आंदोलन ने ऐसा रूप धारण किया कि इसे राज्य में ताड़ी विरोधी आंदोलन के रूप में जाना जाने लगा। आंदोलन का उदय आंध्र प्रदेश के नेल्लौर जिले के एक दूर-दराज के गांव दुबरगंटा में 1990 के शुरूआती दौर में महिलाओं के बीच प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रम चलाया गया जिसमें महिलाओं ने बड़ी संख्या में पंजीकरण कराया। कक्षाओं में महिलाऐं घर के पुरूषों द्वारा देशी शराब, ताड़ी आदि पीने की शिकायतें करती थी। ग्रामीणों पुरूषों को शराब की गहरी लत लग चुकी थी इसके चलते वे शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर हो चुके थे। शराबखोरी से क्षेत्र की ग्रामीण अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो रही थी, खराबखोरी के बढ़ने से कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा था। पुरूष अपने काम से गैर हाजिर रहने लगे। शराब के

ठेकेदार मदिरा व्यापार पर एकाधिकार बनाये रखने के लिए अपराधों में व्यस्त थे। शराबखोरी से सबसे ज्यादा दिक्कत महिलाओं को हो रही थी। इससे परिवार की अर्थव्यवस्था चरमराने लगी। परिवार में तनाव और मारपीट का माहौल बनने लगा। नेल्लौर में महिलाऐं ताड़ी की बिक्री के खिलाफ आगे आई और उन्होंने शराब की दुकानों को बंद कराने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। यह खबर तेजी से पूरे इलाके में फैल गयी और करीब 5000 गांवों की महिलाओं ने आंदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। प्रतिबंध संबंधी एक प्रस्ताव को पास कर इसे जिला कलेक्टर को भेजा गया। इस तरह के विरोध को देखते हुए नेल्लौर जिले में ताड़ी की नीलामी 17 बार रद्द हुई। नेल्लौर जिले का यह आंदोलन धीरे-धीरे पूरे राज्य में फैल गया।

आंदोलन के उद्देश्यः-

ताड़ी विरोधी आंदोलन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

1. महिलाओं का शारीरिक व मानसिक शोषण रोकना।
2. पुरूषों में शराब की आदत छुड़ाना।
3. आर्थिक स्थिति में सुधार करना।
4. महिलाओं में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना।
5. बेरोजगारी को दूर करना।
6. राजनीति व अपराध के बीच के सम्बन्ध को समाप्त करना।
7. लैंगिक असमानता को दूर करना।

भारत सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को और सुदृढ़ करने के लिए भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संविधान संशोधन1992-93 के अंतर्गत स्थानीय निकायों में महिलाओं को आरक्षण की व्यवस्था भी की गयी है। इस प्रकार की व्यवस्था भी की गयी है। इस प्रकारकी व्यवस्था को राज्यों की विधानसभाओं तथा संसद में भी लागू करने की मांग की जा रही है। संसद में इस आशय का एक संशोधन विधेयक भी पेश किया जा चुका है।

4. नर्मदा बचाओं आंदोलनः-

नर्मदा नदी मध्य प्रदेश से निकलकर महाराष्ट्र और गुजरात में प्रवेश कर अरब सागर में गिरती है। भारत के मध्य भाग में स्थित नर्मदा घाटी में विकास परियोजनाओं के तहत मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र से गुजरने वाली नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 30 बड़े, 135 मध्यम और 300 छोटे बांध बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। गुजरात के सरदार सरोवर और मध्य प्रदेश के

नर्मदा सागर बांध के रूप में दो सबसे बड़ी और बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं का निर्धारण किया गया है। नर्मदा के बचाव में 'नर्मदा बचाओं आंदोलन' चला। इस आंदोलन ने बांधों के निर्माण का विरोध किया। सरदार सरोवर परियोजना के अंतर्गत एक बहु-उद्देश्यीय विशाल बांध बनाने का प्रस्ताव है। बांध समर्थकों का कहना है कि इसके निर्माण से गुजरात के एक बहुत बड़े हिस्से सहित तीन पड़ोसी राज्यों में पीने के पानी, सिंचाई और बिजली के उत्पादन की सुविधा मुहैया कराई जा सकेगी। जिससे कृषि की उपज में गुणात्मक वृद्धि होगी। बांध की उपयोगिता इस बात से भी जोड़कर देखी जा रही थी कि इससे बाढ़ और सूखे की आपदाओं पर अंकुश लगाया जा सकेगा। सरदार सरोवर बांध के निर्माण से सम्बन्धित राज्यों के गरीब 245 गांव डूब के क्षेत्र में आ रहे थे। अतः प्रभावित गांवों के करीब ढ़ाई लाख लोगों के पुनर्वास का मुद्दा सबसे पहले स्थानीय कार्यकर्ताओं ने उठाया। इन गतिविधियों को एक आंदोलन का रूप 1988-89 में मिला जब कई स्थानीय स्वयंसेवी संगठनों ने इसे नर्मदा बचाओं आंदोलन का रूप दिया। नर्मदा बचाओं आंदोलन से जुड़े प्रमुख व्यक्तियों में मेधा पाटेकर, बाबा आम्टे, सुंदर लाल बहुगुणा आदि थे।

चर्चा में क्यों?

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने जन्म दिवस पर सरदार सरोवर बांध का उद्घाटन किया। उनके उद्घाटन करते ही मेधा पाटकर के नेतृत्व में 40 हजार परिवारों के हक की लड़ाई लड़ रहे नर्मदा बचाओं आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने तीन दिनों से चले आ रहे जल सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

बांध के फायदे-

1. प्रधानमंत्री ने नर्मदा नदी पर बनने वाली सरदार सरोबर बांध का लोकार्पण करते हुए कहा कि यह महत्वाकांक्षी परियोजना नए भारत के निर्माण में करोड़ों भारतीयों के लिए प्रेरणा का काम करेगी।
2. यह बांध आधुनिक इंजीनियरिंग विशेषज्ञों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय होगा, साथ ही यह देश की ताकत का प्रतीक भी बनेगा।
3. इस बांध परियोजना से मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र के करोड़ों किसानों का भाग्य बदलेगा और कृषि और सिंचाई के लिए वरदान साबित होगा।
4. इस बांध की ऊँचाई को 138.68 मीटर तक बढ़ाया गया है ताकि बिजली उत्पन्न की जा सके।
5. गुजरात क्षेत्र में सिंचाई और जल संकट को देखते हुए नर्मदा नदी पर बांध की परिकल्पना की गई थी।

बांध के विरोध का कारण–

1. भारत के चार राज्यों के लिए महत्वपूर्ण सरदार सरोवर परियोजना का नर्मदा बचाओं आंदोलन वर्ष 1985 से विरोध कर रहा है। आर्थिक और राजनीतिक विषयों के अलावा इस मुद्दे की कई परतें हैं, जिनमें इस क्षेत्र के गरीबों और आदिवासियों के पुनर्वास और वन भूमि का विषय प्रमुख मुद्दा है।
2. नर्मदा बचाओं आंदोलन द्वारा इस बांध के विरोध का प्रमुख कारण इसकी ऊँचाई है, जिससे इस क्षेत्र के हजारों हेक्टेयर वन भूमि के जलमग्न होने का खतरा है।
3. बताया जाता है कि जब भी इस बांध की ऊँचाई बढ़ाई गई है, तब हजारों लोगों को इसके आस–पास से विस्थापित होना पड़ा है तथा उनकी भूमि और आजीविका भी छिनी है।
4. इस बांध की ऊँचाई बढ़ाए जाने से मध्य प्रदेश के 192 गांव और एक नगर डूब क्षेत्र में आ रहे हैं। इसके चलते 40 हजार परिवारों को अपने घर, गांव छोड़ने पड़ेंगे।
5. इस आंदोलन की नेता मेधा पाटेकर का आरोप है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के बावजूद भी बांध प्रभावितों को न तो मुआवजा दिया गया है और न ही उनका बेहतर पुनर्वास किया गया है। उसके बावजूद बांध का जलस्तर बढ़ाया गया।
6. नर्मदा बचाओं आंदोलनकारियों की मांग थी कि जलस्तर को बढ़ने से रोका जाए तथा पहले पुनर्वास हो फिर उसके बाद विस्थापन।
7. आधिकारिक ऑकड़ो के अनुसार इस बांध के बनने से मध्य प्रदेश के चार जिलों के लगभग 23,614 परिवार प्रभावित हुए थे।

आंदोलनकारियों की मांग है कि पुनर्वास पूरा होने तक सरदार सरोवर बांध में पानी का भराव रोका जाना चाहिये। यह भराव गुजरात के चुनाव में लाभ पाने के लिए मध्य प्रदेश के हजारों परिवारों की जिंदगी दांव पर लगाकर किया जा रहा है, जो दुर्भाग्यपूर्ण है। ऐसी स्थिति को देखते हुए भारत सरकार और न्यायपालिका दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकार प्रभावित लोगों को पुनर्वास की सुविधा मिलनी चाहिए सरकार द्वारा 2003 में स्वीकृत राष्ट्रीय पुनर्वास नीति को नर्मदा बचाओं जैसे सामाजिक आंदोलन की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। आलोचकों का कहना है कि आंदोलन का अडियल रवैया विकास की प्रक्रिया, पानी की उपलब्धता और आर्थिक विकास में बांधा उत्पन्न कर रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में सरकार को बांध का काम आगे बढ़ाने की हिदायत दी है लेकिन साथ

ही उसे यह भी आदेश दिया है कि प्रभावित लोगों का पनुर्वास सही ढ़ंग से किया जाए।

4. जन आंदोलन के सबकः-

जन आंदोलन का इतिहास हमें लोकतांत्रिक राजनीति को बेहतर ढ़ंग से समझने में मदद देता है। इस तरह के गैर-दलीय आंदोलन अनियमित ढ़ंग से खड़े नहीं हो जाते। सूचना का अधिकार अधिनियम सूचना का अधिकार आंदोलन जन-आंदोलनों की सफलता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह आंदोलन सरकार से एक बड़ी मांग को पूरा कराने में सफल रहा है। यह आंदोलन 1990 में प्रारंभ हुआ और इसका नेतृत्व मजदूर कियान शक्ति संगठन ने किया था। राजस्थान में कार्यरत इस संगठन ने सरकार के समक्ष यह मांग रखी कि अकाल राहत कार्य और मजदूरों को दिये जाने वाला वेतन के रिकार्ड को सबके समक्ष रखा जाए। यह मांग राजस्थान के एक अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र भीम तहसील में सबसे पहले उठाई गई। इस मांग के अंतर्गत ग्रामीणों ने प्रशासन से अपने वेतन और भुगतान के बिल उपलब्ध कराने के लिए कहा। क्योंकि उनका कहना था कि उन्हें राहत राशि या वेतन, पारिश्रमिक का पूरा पैसा नहीं दिया जाता और उन्हें उनके वैध देय से वंचित रखा जाता है। उनका कहना था कि स्कूलों, अस्पतालों, छोटे बांध के निर्माण कार्यों तथा अन्य विकास कार्यों में धन का अत्यधिक घपला है और मजदूरों को पूरी मजदूरी नहीं मिलती है तथा फर्जी बिलों के माध्यम से भुगतान की गई राशि सरकारी कर्मचारियों ने अपनी जेब में डाल ली है। अतः उन्होंने बिलों के विवरण की भी सार्वजनिक जानकारी दिये जाने की मांग रखी। संगठन ने मजदूरों को जागृत किया और सरकार से मांग की कि सार्वजनिक सुनवाई भी की जाए। यह आंदोलन जनाधार पकड़ने लगा। संगठन ने 1994 में फिर 1996 में जन सुनवाई का आयोजन किया। इस आंदोलन के दबाव में राजस्थान सरकार को पंचायती राज कानून में संशोधन करना पड़ा और यह व्यवस्था की गई कि पंचायतों को अपने बजट, खर्चों, लेखा, नीतियों और लाभ-हानि का विवरण सार्वजनिक करना अनिवार्य है। ये सूचनाएँ पंचायत के सूचना पटल तथा समाचार-पत्रों के माध्यम से सार्वजनिक रूप से घोषित की जानी अनिवार्य हुई। इससे उत्साहित होकर सूचना के अधिकार की मांग राष्ट्रीय स्तर पर भी उठाई गई। कई संगठनों ने जनता के इस अधिकार को महत्वपूर्ण बताते हुए प्रशासन में पारदर्शिता लाने के लिए जनसाधारण के सशक्तिकरण के लिए इसकी मांग की। कंज्यूमर एज्यूकेशन एण्ड रिसर्च सेण्टर, भारतीय प्रेस परिषद् तथा शौरी समिति ने सूचना के अधिकार के बारे में एक प्रस्ताव तैयार किया था जिसके आधार पर 2002 में सूचना के अधिकार का कानून पास हुआ। परंतु इसे प्रभावकारी न माने जाने के कारण इसे लागू नहीं किया गया। सन् 2004 में लोकसभा का

चुनाव हुआ और केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ। नई सरकार ने नए सिरे से सूचना के अधिकार का कानून पास हुआ। परंतु इसे प्रभावकारी न माने जाने के कारण इसे लागू नहीं किया गया। सन् 2004 में लोकसभा का चुनाव हुआ और केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ। नई सरकार ने नए सिरे से सूचना के अधिकार का बिल संसद में प्रस्तुत किया। 2005 में इसे राष्ट्रपति से स्वीकृति मिली और उसे 12 अक्टूबर 2005 को लागू किया गया।

सूचना का अधिकार अधिनियम का अर्थ–

भारत के सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 अनुच्छेद 2(जे0) के अनुसार सूचना के अधिकार का अर्थ पहुंच योग्य सूचना का जो किसी लोक प्राधिकारी द्वारा या उसके नियंत्रणाधीन धारित है, अधिकार अभिप्रेत है और जिसमें निम्नलिखित अधिकार शामिल हैं जैसे–

1. कार्यों, दस्तावेजों, अभिलेखों का निरीक्षण करना।
2. दस्तावेजों या अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियां लेना।
3. सामग्री के प्रमाणित नमूने लेना।
4. यदि सूचना कम्प्यूटर या अन्य तरीके से रखी गयी है तो डिस्क, फ्लॉपी, टेप, वीडियों कैसेट या अन्य इलेक्ट्रानिक माध्यम या प्रिंट आउट के रूप में सूचना प्राप्त करना आदि।

सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के प्रमुख प्रावधान

- नगरिकों द्वारा मांगी जाने वाली सूचनाएँ आवेदन के 30 दिन के भीतर (सूचना अधिकारी द्वारा) उपलब्ध कराई जायेगी। यदि सूचना किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से सम्बन्धित है, तो उसे आवेदन के 48 घण्टे के भीतर प्राप्त किया जा सकता है।
- सूचना प्राप्त करने के लिए निर्धारित शुक्ल 10 रुपये नकद या ड्राफ्ट या चेक के साथ नियत प्राधिकारी के समक्ष आवेदन करना होगा।
- प्रत्येक सरकारी विभाग में एक या अधिक लोक सूचना अधिकारी नियुक्त किए जाऐंगे, जो लोगों से सूचना सम्बन्धी फार्म प्राप्त करेंगे व सूचनाएँ उपलब्ध कराऐंगे।
- आवेदक को सूचना प्राप्ति का कारण व व्यक्तिगत विवरण देना जरूरी नहीं होगा, केवल अपना नाम व पता ही देना होगा।
- बिना कारण विलम्ब से सूचना देने वाले अधिकारी पर 250 रुपये प्रतिदिन तथा अधिकतम 25,000 रुपये तक जुर्माने का प्रावधान है।

- अधिनियम में केन्द्रीय सूचना आयोग व राज्य सूचना आयोग के गठन का प्रावधान भी किया गया है।

4.4.5 जाति, वर्ग, लिंग और धार्मिक और भाषा विज्ञान पहचान की असमानताओं के संबंध में भारतीय लोकतंत्र को गहरा करने के लिए चुनौती।

Challenges to deepen Indian democracy in relation to inequities of caste, class, gender and religious and linguistics identities.

4.5.1 प्रस्तावनाः– लोकतंत्र के सिद्धांतों को हम वास्तव में कैसे और कहाँ सार्थक रूप में प्रभावी बना सकते हैं? इन विषयों पर विद्वानों के बीच हुए बहसों और चर्चाओं में, अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य पर अत्यधिक जोर दिया गया है। कुछ विद्वानों प्रांतों के अध्ययन के माध्यम से भी भारतीय लोकतंत्र का विश्लेषण करते हैं। जाति, वर्ग, लिंग या धर्म के आधार पर भी इस तरह के विश्लेषण की प्रचुरता रही है। इन अध्ययनों ने भारतीय लोकतंत्र की सफलताओं और विफलताओं को समझने में काफी हद तक मदद की है। फिर भी ये अध्ययन भारत के कई स्थानीय भाषाई क्षेत्रों में प्रभावी लोकतांत्रिक प्रथाओं के वास्तविक तनावों और चुनौतियों को समझने में पूरी तरह विफल रहे हैं। भाषा, उपर्युक्त सवालों का और भी अधिक सटीक रूप से समझ और व्याख्या करने के लिए एक बहुमूल्य माध्यम हो सकता है, खासकर यदि हम भारतीय लोकतंत्र को संविधान और आधुनिक राज्य की संस्थाओं से परे समझना चाहते हैं।

आधुनिक भारत में भाषा के मुद्दे पर बहस, आधुनिक स्थानीय शिक्षा और ब्रिटिश शासन द्वारा किए गए वर्गीकरण प्रक्रिया की शुरूआत के बाद से ही, कई तरिकों से हुई है। राष्ट्रवादी चरण के दौरान 'राष्ट्रीय' भाषा का प्रश्न राजनीतिक और भावनात्मक रूप से काफी नाजुक मुद्दा बन गया था। उत्तर भारत में हिन्दी और उर्दू के विवाद को व्यापक स्तर पर समझकर इसकी व्याख्या की गयी है। आजादी के कुछ दशकों बाद, भारत में कई भाषाई दंगे, भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी के अधिरोपण को लेकर हिन्दी के समर्थकों और गैर–हिन्दी भाषियों, विशेष रूप से तमिल और अन्य दक्षिणी भारतीय भाषाओं के बीच के संघर्ष हुए। तथापि, राज्य पुनर्गठन के बाद से भाषाई मुद्दों को सामाजिक विद्वानों के द्वारा सुलझा हुआ मुद्दा मान तेलुगु, बंगाली, पंजाबी जैसे भाषाई समुदायों के बनने के संदर्भ में कई आलोचनात्मक अध्ययन हुए हैं, लेकिन भारतीय लोकतंत्र की प्रगति और सीमाओं और इसकी विभिन्न चुनौतियों की व्याख्या करने के लिए एक अवधारणा के रूप में भाषा का उपयोग बहुत कम या न के बराबर किया गया है।

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों के लिए भाषा एक बहुत ही शक्तिशाली माध्यम बन जाता हैं। व्यक्तियों और समुदायों के लिए भाषा नई नहीं है। वे शुरूआत से ही इसे जानते हैं और इसका प्रयोग करते हैं।

लेकिन जिस तरीके से उन्होंने स्वयं को अपनी भाषा के साथ व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से जोड़ना शुरू किया, वह मूल रूप से नया तथा आधुनिक ही है। स्वयं और सामूहिक पहचान को अब एक भाषा आधार पर आकार दिया जाने लगा। राष्ट्र की संकल्पनाओं में 'राष्ट्रीय' भाषा की भूमिका 'प्रमुख विचारधारात्मक महत्व' के रूप में ऊभरकर सामने आई। भाषा के विकास एवं संवृद्धि में ही स्वयं और समुदाय के विकास को देखा जाने लगा। आधुनिक भारत में भी, भारतेन्दु के विचार निज भाषाउन्नत है, सब उन्नत की मूल (निज भाषा के विकास में ही सभी विकास की जड़े निहित हैं) उत्तर भारत के विभिन्न भाषाई समुदायों को काफी प्रभावित किया है। भाषा, उनके लिए गोलबंदकरण तथा सामूहिक पहचान के निर्माण के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम बन गई। इसने भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषा की समस्या को और भी जटिल बना दिया है। ऐसा विशेष रूप से तब होता है, जब 'मामूली' और 'गैर'स्थापित' भाषाई समुदाय, भाषा के आधार पर अपनी माँगों और चिंताओं को प्रकट करना शुरू कर देते हैं। आम तोर पर, इस तरह के भाषा आंदोलनों को 'स्थानीय' अथवा 'संकीर्ण' और भारत के 'राष्ट्रीय' भाषा के विकास और विस्तार के लिए बाधाओं के रूप में देखा जाता है।

अभी भी लाखों लोग अपनी स्थानीय भाषाओं के माध्यम से ही लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को समझते हैं एवं उसमें अपना भागीदारी भी करते हैं। भाषा आंदोलन, आधुनिक भारत में लोकतांत्रिक प्रयोग से उत्पन्न हुए उम्मीदों के क्षितिज को लगातार संवर्धित और विस्तारित करता रहा है। और, बगैर उसके समझ या अर्थों को शामिल किए भारतीय लोकतंत्र की हमारी समझ हमेशा ही आंशिक या अपूर्ण रहेगा। आधुनिक भारत की भाषाई अर्थव्यवसीा में, हम देखते हैं कि शीर्ष पर अंग्रेजी बोलने वाले अभिजात्य वर्ग के बाद अंग्रेजी और एक या अधिक भारतीय भाषाओं के ज्ञान के साथ द्विभाषी या त्रिभाषी अभिजात्य वर्ग हैं। उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानीय भाषाई क्षेत्रों में 'लोकतंत्र' या 'राष्ट्र' या 'स्वराज' जैसे विचारों को प्रसारित करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। उनके नीचे एकल-भाषाय लोगों का विशाल जनसमूह है जिसे हिन्दी का ही बहुत कम या ना के बराबर ज्ञान है। आधुनिक भारत में इन भाषाई समुदायों में से कई अभी भी 'लोकतंत्र', 'स्वराज' और 'राष्ट्र' जैसे सवालों से जूझ रहे हैं और वे देश के साथ अपनी समस्याओं को भी सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन वे ऐसा अपनी भाषाओं के अस्तित्व की कीमत पर नहीं करना चाहते। इससे भारत में भाषा और लोकतंत्र का मुद्‌दा विद्‌वानों के लिए अध्ययन का एक आकर्षक क्षेत्र बन जाता है। हम इसे और भी बेहतर ढंग से समझ सकते हैं जब हम भाषा के मुद्‌दे को केवल पहचान के के मुद्दे तक ही सीमित न कर दे। राममनोहर लोहिया जैसे समाजवादी विचारक ने अंग्रेजी का दृढ़ विरोध करते हुए, भारतीय राज्य और समाज के

लोकतंत्रीकरण में भारतीय भाषाओं की मूल्यवान भूमिका भलीभाँति समझा था। अंग्रेजी की तुलना में भारतीय भाषाओं की स्थिति अभी भी यनीय ही है। अंग्रेजी अभी भी भारत में शासक वर्ग में प्रवेश करने का एक सशक्त माध्यम है और यह अभिजात्य वर्ग तथा सामान्य जनता के बीच एक व्यापक खाई को पुनर्स्थापित करता है। क्या हम कभी इस विरोधाभास को दूर कर सकेंगे? क्या इन विरोधावासों को दूर किय बिना वास्तविक लोकतंत्रीकरण संभव है? क्या इन भाषाई आंदोलनों में किसी विशेष भाषा के ज्ञान से जुड़े विशेषाधिकारों को बदलने की क्षमता है? भाषा हालांकि में ही, लोगों को जाति, धर्म, वर्ग और लिंग की सीमाओं से परे एक साथ जुड़ने के लिए एक आधुनिक 'धर्मनिरपेक्ष' माध्यम प्रदान करती है। देश के विभिन्न हिस्सों में हो रहे भाषाई आंदोलनों के उदय और दावे की गंभीर समझ हमारे लिए भाषा आंदोलन के भीतरी वर्चस्व और अधीनस्थता को भी समझने में सहायक हो सकती है। एक भाषा के मानकीकरण के साथ कई समृद्ध साहित्यिक परंपराओं से संपन्न भाषाओं ने भी अपना अस्तित्व खोया है, लेकिन इन भाषाओं को लेने वालों में हमेशा से उनकी भाषा की विशिष्ट स्थिति की चेतना रही है। उत्तर भारत में मैथिली, भोजपुरी, अवधी और ब्रज बोलने वालों ने किस प्रकार अपने स्वतंत्र अस्तित्व का समय-समय पर दावा किया है। हालांकि, इन आंदोलनों का एक और पहलू भी है। ये आंदोलन, भले ही मानक भाषा द्वारा किये जा रहे समायोजन का विरोध करते हों, परंतु इनमें अपने भाषाई क्षेत्र के अंतर पुरानी और मौजूदा पदानुक्रमों को पुनर्स्थापित बनाए रखने की भी प्रवृत्ति रहती है। इन आंदोलनों को प्रायः प्रमुख जाति और वर्ग समूहों द्वारा ही नियंत्रित किया जाता है। लेकिन यह भी इसी भाषाई क्षेत्र में संभव है ि कइस तरह के वर्चस्व को वास्तविक चुनौती भी दिया जाता है। लेकिन यह भी इसी भाषाई क्षेत्र में संभव है ि कइस तरह के वर्चस्व को वास्तविक चुनौती भी दिया जाता है। उदाहरण के लिए, मैथिली आंदोलन में हम पाते हैं कि नेतृत्व विशेष रूप से ऊपरी जातियों, खासकर ब्राह्मणों और कायस्थों के हाथों में रहा है। लेकिन ऐसे प्रभुत्व और वर्चस्व का तेजी से विरोध भी किया जा रहा है। यदि, भारत में राज्य और उसके संस्थानों को लोकतांत्रिक बनाने के लिए समाज को लोकतांत्रिक बनाना आवश्यक है। तो, क्या इन स्थानीय भाषाओं को लोकतांत्रिक किए बिना इसे हासिल किया जा सकता है, जहाँ लोकतांत्रिक और लोकतांत्रिक ताकतों के बीच वास्तविक लड़ाई हर दिन लड़ी जाती है?

आधुनिक भारत मे भाषा, 'लोकतंत्र', 'स्वराज' और 'राष्ट्र' जैसे विचारों के प्रक्षेपकों को व्यापक रूप में समझने के लिए एक बहुमूल्य माध्यम साबित हो सकता है। वास्तव में भारतीय भाषाओं और उसके साहित्यिक तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का अध्ययन नही ंके बराबर हुआ है। इस तरह के अध्ययन से न केवल भारतीय लोकतंत्र और इसकी विभिन्न चुनौतियों के संदर्भ में हमारी समझ विकसित होगी बल्कि इन

भाषाई समुदायों का हमारी आधुनिकता के साथ उलझनों के मामले में भी बेहतर समझ बनेगी। राष्ट्रीय संकल्पनाओं से अलग इन स्थानीय भाषा क्षेत्रों में कल्पनाएं किस प्रकार की थीं? इन पदानुक्रमित समाज और समुदायों ने लोकतंत्र या समान नागरिकता जैसे आधुनिक आदर्शों के साथ कैसे अपना सामंजस्य बिठाया है? दूसरे शब्दों में भारतीय लोकतंत्र की जटिलताओं को आधुनिक भारतीय भाषाओं और इसके सार्वजनिक क्षेत्रों के अध्ययन के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है।

4.5.2 जातिगत असामनाएँः–

लिंग और धर्म पर आधारित विभाजन तो दुनिया भर में हैं पर जाति पर आधारित विभाजन सिर्फ भारतीय समाज में ही देखने को मिलता है। सभी समाजों में कुछ सामाजिक असमानताएँ और एक न एक तरह का श्रम का विभाजन मौजूद होता है। लेकिन जाति व्यवस्था इसका एक अतिवादी और स्थायी रूप है। अन्य समाजों में मौजूद असमानताओं से यह एक खास अर्थ में भिन्न है। इसमें पेशा के वंशानुगत विभाजन को रीति–रिवाजों की मान्यता प्राप्त है। एक जाति समूह के लोग एक या मिलत–जुलते पेशों के तो होते ही हैं साथ ही उन्हें एक अलग सामाजिक समुदाय के रूप में भी देखा जाता है। उनमें आपस में ही बेटी–रोटी अर्थात शादी और खानपान का संबंध रहता है। अन्य जाति समूहों में उनके बच्चों की न तो शादी हो सकती है न महत्वपूर्ण पारिवारिक और सामुदायिक आयोजनों में उनकी पाँत में बैठकर दूसरी जाति के लोग भोजन कर सकते हैं। वर्ण–व्यवस्था अन्य जाति–समूहों से भेदभाव और उन्हें अपने से अलग मानने की धारणा पर आधारित है। इसमें 'अंत्यज' जातियों के साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता था। इसकी चर्चा हमने 9वीं कक्षा में की थी। यही कारण है कि ज्योतिबा फुले, महात्मा गांधी, डॉ. आंबेडकर और पेरियार रामास्वामी नायकर जैसे राजनेताओं और समाज सुधरकों ने जातिगत भेदभाव से मुक्त समाज व्यवस्था बनाने की बात की और उसके लिए काम किया।

आर्थिक असमानता का एक महत्वपूर्ण आधार जाति भी है क्योंकि इससे विभिन्न संसाधनों तक लोगों की पहुँच निर्धारित होती है। उदाहरण के लिए पहले 'अछूत' कही जाने वाली जातियों के लोगों को जमीन रखने का अधिकार नहीं था जबकि कथित 'द्विज' जातियों को ही शिक्षा पाने का अधिकार था। आज जाति पर आधारित इस किस्म की औपचारिक और प्रकट असमानताएँ तो गैरकानूनी हो गई है पर सदियों से जिस व्यवस्था ने कुछ समूहों को लाभ या घाटे की स्थिति में बनाए रखा है उसका संचित असर अभी भी महसूस किया जा सकता है। इतना ही नहीं, इस बीच नयी तरह की असमानताएँ भी उभरी हैं। निश्चित रूप से जाति और आर्थिक हैसियत की पुरानी स्थिति में काफी बदलाव आया है। आज 'उँची' या 'नीची' किसी भी जाति में

बहुत अमीर और बहुत गरीब लोग देखे जा सकते हैं। बीस या तीस वर्ष पहले तक ऐसा नहीं था। तब सबसे 'नीची' जातियों में कोई अमीर आदमी बमुश्किल ही होता था।

4.5.3 जाति और राजनीतिः–

जाति के नाम पर समाज का विभाजन केवल भारत की खासियत है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था किसी अन्य देश में नहीं है। आज की जाति व्यवस्था पुरातन जमाने की वर्ण व्यवस्था पर आधारित है। वर्ण व्यवस्था पेशे पर आधारित थी और किसी भी पेशे को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथों की जाना होता था। किसी भी जाति के लोगों में अपने समुदाय या जाति विशेष से गहरा लगाव होता है। कुछ जातियों को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त है तो कुछ को नीचा स्थान।

4.5.4 राजनीति में जातिः–

संप्रदायिकता की तरह जातिवाद भी इस मान्यता पर आधारित है कि जाति ही सामाजिक समुदाय के गठन का एकमात्रा आधार है। इस चिंतन के अनुसार एक जाति के लोग एक स्वाभाविक सामाजिक समुदाय का निर्माण करते हैं और उनके हित एक जैसे होते हैं तथा दूसरी जाति के लोगों से उनके हितों का कोई मेल नहीं होता। जैसा कि हमने सांप्रदायिकता के मामले में देखा है, यह मान्यता हमारे अनुभव से पुष्ट नहीं होती। हमारे अनुभव बताते हैं कि जाति हमारे जीवन का एक पहलू जरूर है लेकिन यही एकमात्र या सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण पहलू नहीं है। राजनीति में जाति अनेक रूप ले सकती है सब पार्टियाँ चुनाव के लिए उम्मीदवारों के नाम तय करती हैं तो चुनाव क्षेत्र के मतदाताओं की जातियों का हिसाब ध्यान में रखती हैं ताकि उन्हें चुनाव जीतने के लिए जरूरी वोट मिल जाए। जब सरकार का गठन किया जाता है तो राजनीतिक दल इस बात का ध्यान रखते हैं कि उसमें विभिन्न जातियों और कबीलों के लोगों को उचित जगह दी जाए।

- किसी भी चुनाव क्षेत्र के लिये उम्मीदवार खड़ा करने से पहले ज्यादातर रानैतिक पार्टियाँ वहाँ के जातीय समीकरण का ध्यान रखती हैं।
- हर जाति के लोग राजनैतिक सत्ता में अपना हक लेने के लिये अपनी जातिगत पहचान को अलग–अलग तरीकों से व्यक्त करने की कोशिश करते हैं।
- चूँकि जातियों की बहुत बड़ी संख्या है इसलिये कई जातियों ने मिलकर अपना एक खास गठबंधन बना लिया है ताकि राजनैतिक मोलभाव में उन्हें बढ़त मिल सके।

- जाति समूहों को मुख्य रूप से 'अगड़े' और 'पिछड़े' वर्गों में बाँटा जा सकता है।
- लेकिन जाति पर जरूरत से ज्यादा तवज्जों देने से गलत परिणाम निकल सकते हैं। जातिगत विभाजन से अक्सर समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है और हिंसा भी हो सकती हैं
- हर जाति के लोग राजनैतिक सत्ता में अपना हक लेने के लिये अपनी जातिगत पहचान को अलग अलग तरीकों से व्यक्त करने की कोशिश करते हैं।
- चूँकि जातियों की बहुत बड़ी संख्या है इसलिये कई जातियों ने मिलकर अपना एक खास गठबंधन बना लिया है ताकि राजनैतिक मोलभाव में उन्हें बढ़त मिल सके।
- जाति समूहों को मुख्य रूप से 'अगड़े' और 'पिछड़े' वर्गों में बाँटा जा सकता है।
- लेकिन जाति पर जरूरत से ज्यादा तवज्जों देने से गलत परिणाम निकल सकते हैं। जातिगत विभाजन से अकसर समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है और हिंसा भी हो सकती है।

4.5.6 भारत में लैंगिक असमानता–

भारत में लिंग असमानता हम 21वीं शताब्दी के भारतीय होने पर गर्व करते हैं जो एक बेटा पैदा होने पर खुशी का जश्न मनाते हैं और यदि एक बेटी का जन्म हो जाये तो शांत हो जाते हैं यहाँ तक कि कोई भी जश्न नहीं मनाने का नियम बनाया गया हैं। लड़के के लिये इतना ज्यादा प्यार कि लड़कों के जन्म क चाह में हम प्राचीन काल से ही लड़कियों को जन्म के समय या जन्म से पहले ही मारते आ रहे हैं, यदि सौभाग्य से वो नहीं मारी जाती तो हम जीवनभर उनके साथ भेदभाव के अनेक तरीके ढूँढ लेते हैं।

लैंगिक असमानता की परिभाषा और संकल्पना

'लिंग' सामाजिक –सांस्कृतिक शब्द हैं, सामाजिक परिभाषा से संबंधित करते हुये समाज में 'पुरुषों' और 'महिलाओं' के कार्यों और व्यवहारों को परिभाषित करता हैं, जबकि, 'सेक्स' शब्द 'आदमी' और 'औरत' को परिभाषित करता है जो एक जैविक और शारीरिक घटना है। अपने सामाजिक, एतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं में, लिंग पुरुष और महिलाओं के बीच शक्ति के कार्य के संबंध हैं जहाँ पुरुष को महिला से श्रेष्ठ माना जाता हैं। इस तरह, 'लिंग' को मानव निर्मित सिद्धांत समझना चाहिये, जबकि 'सेक्स' मानव की प्राकृतिक या जैविक विशेषता हैं।

लिंग असमानता को सामान्य शब्दों में इस तरह परिभाषित किया जा सकता हैं कि, लैंगिक आधार पर महिलाओं के साथ भेदभाव। समाज में परम्परागत रूप से महिलाओं को कमजोर जाति–वर्ग के रूप में माना जाता हैं।

4.5.7 भारत में लैंगिक असमानता के कारण और प्रकार–

भारतीय समाज में लिंग असमानता का मूल कारण इसकी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिल्विया वाल्बे के अनुसार, "पितृसत्तात्मकता सामाजिक संरचना की ऐसी प्रक्रिया और व्यवस्था हैं, जिसमें आदमी औरत पर अपना प्रभुत्व जमाता हैं, उसका दमन करता हैं और उसका शोषण करता हैं।" महिलाओं का शोषण भारतीय समाज की सदियों पुरानी सांस्कृतिक घटना है। पित्सत्तात्मकता व्यवस्था ने अपनी वैधता और स्वीकृति हमारे धार्मिक विश्वासों, चाहे वो हिन्दू मुस्लिम या किसी अन्य धर्म से ही क्यों न हों, से प्राप्त की हैं।

उदाहरण के लिये, प्राचीन भारतीय हिन्दू कानून के निर्माता मनु के अनुसार, "ऐसा माना जाता हैं कि औरत को अपने बाल्यकाल में पिता के अधीन, शादी के बाद पति के अधीन और अपनी वृद्धावस्था या विधवा होने के बाद अपने पुत्र के अधीन रहना चाहिये। किसी भी परिस्थिति में उसे खुद को स्वतंत्र रहने की अनुमति नहीं हैं।"

मुस्लिमों में भी समान स्थिति हैं और वहाँ भी भेदभाव या परतंत्रता के लिए मंजूरी धार्मिक ग्रंथों और इस्लामी परंपराओं द्वारा प्रदान की जाती है। इसीस तरह अन्य धार्मिक मान्यताओं में भी महिलाओं के साथ एक ही प्रकार से या अलग तरीके से भेदभाव हो रहा हैं। महिलाओं के समाज में निचला स्तर होने के कुछ कारणों में से अत्यधिक गरीबी और शिक्षा की कमी भी हैं। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएं कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, संगठित वेश्यावृति का कार्य करने या प्रवासी मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिये मजबूर होती हैं।

लड़की को बचपन से शिक्षित करना अभी भी एक बुरा निवेश माना जाता हैं क्योंकि एक दिन उसकी शादी होगी और उसे पिता के घर को छोड़कर दूसरे घर जाना पड़ेगा। इसलिये, अच्छी शिक्षा के अभाव में वर्तमान में नोकरियों कौशल माँग की शर्तों को पूरा करने में असक्षम हो जाती हैं, वहीं प्रत्येक साल हाई स्कूल और इंटर मीडिएट में लड़कियों का परिणाम लड़कों से अच्छा होता हैं। अतः उपर्युक्त विवेचन के आझार पर कहा जा सकता हैं कि महिलाओं के साथ असमानता और भेदभाव का व्यवहार समाज में, घर में, और घर के बाहर विभिन्न स्तरों पर किया जाता हैं।

4.5.7 लैंगिक असमानता के खिलाफ कानूनी और संवैधानिक सुरक्षा उपायः–

लिंग असमानता को दूर करने के लिये भारतीय संविधान ने अनेक सकारात्मक कदम उठाये हैं, संविधान की प्रस्तावना हर किसी के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लक्ष्यों के साथ ही अपने सभी नागरिकों के लिए स्तर की समानता और अवसर प्रदान करने के बारे में बात करती है। इसी क्रम में महिलाओं को भी वोट डालने का अधिकार प्राप्त हैं।

संविधान का अनुच्छेद 15 भी लिंग, धर्म, जाति और जन्म स्थान पर अलग होने के कारण पर किये जाने वाले सभी भेदभावों को निषेध करता हैं। अनुच्छेद 15(3) किसी भी राज्य को बच्चों और महिलाओं के लिये विशेष प्रावधान बनाने के लिये अधिकारित करता हैं। इसके अलावा, राज्य के नीति निदेशक तत्व भी ऐसे बहुत से प्रावधानों को प्रदान करता हैं जो महिलाओं की सुरक्षा और भेदभाव से रक्षा करने में मदद करता हैं।

भारत में महिलाओं के लिये बहुत से संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय बनाये हैं पर जमीनी कहीकत इससे बहुत अलग हैं। इन सभी प्रावधानों के बावजूद देश में महिलाओं के साथ आज भी द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में व्यवहार किया जाता हैं, पुरूष उन्हें अपनी कामुक इच्छाओं की पूर्ति करने का माध्यम मानते हैं, महिलाओं के साथ अत्याचार अपने खतरनाक स्तर पर हैं, दहेज प्रथा आज भी प्रचलन में हैं, कन्या भ्रूण हत्या हमारे घरों में एक आदर्श है।

लैंगिक असमानता कैसे समाप्त कर सकते हैं–

संवैधानिक सूची के साथ–साथ सभी प्रकार के भेदभाव या असमानताएं चलती रहेंगी लेकिन वास्तिविक बदलाव तो तभी संभव हैं जब पुरूषों की सोच को बदला जाये। ये सोच जब बदलेगी तब मानवता का कए प्रकार पुरूष महिला के साथ समानता का व्यवहार करना शुरू कर दे न कि उन्हें अपना अधीनस्थ समझे। यहाँ तक कि सिर्फ आदमियों को ही नहीं बल्कि महिलाओं को भी आज की संस्कृति के अनुसार अपनी पुरानी रूढ़िवादी सोच बदलनी होगी और जानना होगा कि वो भी इस शोषणकारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का एक अंग बन गयी हैं और पुरूषों को खुद पर हावी होने में सहायता कर रहीं हैं।

हम केवल उम्मीद कर सकते हैं कि हमारा सहभागी लोकतंत्र, आने वाले समय में और पुरूषों और महिलाओं के सामूहिक प्रयासों से लिंग असमानता की समस्या का समाधान ढूँढने में सक्षम हो जायेंगा और हम सभी को सोच व कार्यों की वास्तविकाता के साथ में सपने में पोषित आधुनिक समाज की और ले जायेगा।

4.5.9 धर्म और राजनीतिः–

राजनीति में धर्म की भी अहम भूमिका होती है। कुछ देशों के राजनेता बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय को बढ़ावा देते हैं और ऐसे में अल्पसंख्यक समुदाय का नुकसान होता है। इससे बहुसंख्यक आतंक को बढ़ावा मिलता है।

सांप्रदायिकताः– जब राजनैतिक वर्ग द्वारा एक धर्म को दूसरे धर्म से लड़वाया जाता है तो इसे सांप्रदायिकता या सांप्रदायिक राजनीति कहते हैं।

राजनीति में सांप्रदायिकता के कई रूप हो सकते हैंः–

- कई लोगों को लगता है कि उनका धर्म अन्य धर्मों से ऊपर है। ऐसे लोग अक्सर दूसरे धर्म के लोगों पर अपना वर्चस्व जमाने की कोशिश करते हैं। इसके परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक समुदाय के लोग एक अलग राजनैतिक यूनिट का गठन कर सकते हैं।
- कई बार किसी खास समुदाय के लोगों में भय भरने के लिये धार्मिक चिन्हों, धर्मगुरूओं और भावनात्मक अपीलों का सहारा लिया जाता है। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है ताकि संप्रदाय के नाम पर लोगों का ध्रुवीकरण हो जाये।
- कई बार सांप्रदायिकता उग्र रूप ले लेती है और फिर सांप्रदायिक दंगे और नरसंहार होता है।

4.5.9 धर्मनिरपेक्ष शासनः–

- भारत के संविधान में यह घोषित किया गया है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। हमारे कुछ पड़ोसी देशों के विपरीत भारत में कोई भी धर्म राजकीय धर्म नहीं माना गया है।
- हमारा संविधान लोगों को अपनी मर्जी से किसी भी धर्म को मानने की छूट देता है। संविधान के अनुसार धर्म के नाम पर भेदभाव की मनाही है।
- लेकिन भारत का संविधान सरकार को धार्मिक मुद्दों में तब हस्तक्षेप करने की इजाजत देता है जब विभिन्न समुदायों में समानता बनाये रखने के लिये यह जरूरी हो जाये।

नियत कार्यः–

3. जमीनी स्तर पर भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन चर्चा कीजिए?

2 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दुः–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप किन्हीं मुख्य बिन्दुओं पर कदाचित आगे चर्चा करना चाहेंगे या बेहतर समझ के लिए कुछ स्पष्टीकरण चाहेंगे, जैसे बिन्दुओं के नीचे नोट कर दीजिए?

1 चर्चा के लिए बिन्दुः–

....

....

....

2 स्पष्टीकरण के लिए बिन्दु

....

....

....

संदर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

- जेम्सपॉल, (1996), नेशन फार्मेशन हु वर्डस अ थ्योरी ऑफ एबस्ट्रेक कम्युनिटी लंदन सेग पब्लिकेशन
- खान अली, (1992), द एक्सटीन्शन ऑफ नेशन स्टेट
- फोलोमर, पोसेफ 2007 ग्रेट संपायर्स, स्माल, नेशन्स, अनसर्टन प्यूफ्यूचर ऑफ द सोवेरिंग स्टेट
- डरसन, बेनडिक्ट, 1991 इमेजिन कम्यूनीटीज

....